



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAGO-112

जनसंख्या भूगोल

MAGO-112 भौगोलिक चिंतन के मूलाधार

- इकाई—01 भौगोलिक चिंतन की प्रवृत्तियां एवं प्राचीन काल
- इकाई—02 छायावादी युग
- इकाई—03 द्वैतवादी युग
- इकाई—04 नियतिवाद एवं सम्भववाद, अभिनव प्रवृत्तियाँ।
- इकाई—05 भूगोल का परिवर्तनशील चिंतन फलक।
- इकाई—06 भूगोल भू-भौतिकी के रूप में।
- इकाई—07 भूगोल प्रकृति—मानव अन्तर्सम्बन्ध के रूप में।
- इकाई—08 भू वैन्यासिक भूगोल, समाजवादी भूगोल की संकल्पना— पर्यावरण कारणवाद, संविकास।
- इकाई—09 भूतल की अवधारणा, भूदृश्य की संकल्पना
- इकाई—10 प्रादेशिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य, केन्द्र स्थल सिद्धान्त
- इकाई—11 भूगोल में मॉडल एवं प्रतिरूप, मात्रात्मक क्रांति
- इकाई—12 कल्याणकारी भूगोल, भूगोल में आदर्शवाद
- इकाई—13 भूगोल में प्रत्यक्षवाद, मानववाद, व्यवहारवाद
- इकाई—14 स्त्रीवाद एवं लैंगिक भूगोल, संरचनावाद
- इकाई—15 उत्तर आधुनिकतावाद, भारत में भूगोल का विकास
- इकाई—16 तन्त्र की संकल्पना, तन्त्र के प्रकार, भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

MAGO-112

जनसंख्या भूगोल

परामर्श समिति

प्रो० सीमा सिंह	कुलपति, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति ; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो० संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ० प्र० रा० ट० मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ० प्र० रा० ट० मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० अभिषेक सिंह	सहा० आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० एन.के. राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी०एच०यू०, वाराणसी
प्रो० ए० आर० सिद्धीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज
प्रो० अरुण कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी०एच०यू०, वाराणसी

लेखक

डॉ० वी० सी० जाट	प्राचार्य, राजकीयमहाविद्यालय, रादावास जयपुर राजस्थान
-----------------	--

सम्पादन

प्रो० के०एन० सिंह	मान० कुलपति दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार).
-------------------	--

समन्वयक

प्रो० संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
-----------------------	---

सह समन्वयक

डॉ० अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा
-----------------	---

मुद्रित वर्ष – 2024

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. – 978-81-976126-5-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : विनय कुमार, कुलसचिव, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2024।

मुद्रक :- चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

इकाई-1 : भौगोलिक चिंतन की प्रवृत्तियाँ एवं प्राचीन काल

इकाई की रूपरेखा

- 1.0. प्रस्तावना
- 1.1. उद्देश्य
- 1.2. प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान
- 1.3. चिरसम्मत काल
- 1.4. यूनानी भूगोलवेत्ता
- 1.5. रोमन भूगोलवेत्ता
- 1.6. सारांश
- 1.7. परिभाषिक शब्दावली
- 1.8. बोध प्रश्न
- 1.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। यह मानव एवं प्रकृति के संबंधों का अध्ययन करता है। भूगोल को ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं की जननी कहा जाता है क्योंकि इन सभी का संबंध पृथ्वी व मानव से है और सभी का विकास मानव एवं प्रकृति के मध्य अंतः क्रिया का परिणाम है जैसे यदि वनस्पति शास्त्र को ले तो पता चलता है कि सभ्यता के प्रारंभिक चरण से लेकर अब तक मानव को अपने परिवेश के वनस्पतियों के बारे में इतनी अधिक जानकारी प्राप्त हुई है कि यह विज्ञान की एक सुविकसित शाखा के रूप में विकसित हुई है। इसी तरह मृदा विज्ञान, सागरीय विज्ञान, जलवायु विज्ञान, आदि सभी विषयों का विकास मानव और प्रकृति के मध्य अंतःक्रिया का ही परिणाम है। भूगोल के वर्तमान स्वरूप के पीछे इनका एक लम्बा इतिहास है। जिसमें हम भूगोल की विकास यात्रा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं भूगोल (Geography) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनानियों ने किया एवं इसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। भूगोल का अंग्रेजी रूपान्तरण Geography है जो यूनानी भाषा के दो शब्दों Geo तथा Grapho से बना है। Geo का अर्थ पृथ्वी एवं Grapho का अर्थ वर्णन करना है। इस तरह यूनानियों ने इसे पृथ्वी के वर्णन के विषय के रूप में मान्यता प्रदान की है। प्राचीन भौगोलिक चिंतकों में भूगोल के विषय जानकारी प्राप्त होती है पर भूगोल को व्यवस्थित रूप में संयोजित करने का कार्य आधुनिक भौगोलिक चिंतकों द्वारा किया है।

1.1. उद्देश्य (Objectives)

- प्राचीन भौगोलिक ग्रन्थों के विषय में ज्ञान।
- प्राचीन भारतीय भौगोलिक विषय का ज्ञान।
- प्राचीन भौगोलिक विद्वानों के विषय में ज्ञान।
- प्रादेशिक भूगोल, ब्रह्माण्ड, सौर मण्डल आदि के विषयों में ज्ञान।
- प्रमुख सभ्यता व संस्कृति के केन्द्र स्थलों की जानकारी।
- प्राचीन शास्त्रीय काल में भूगोल का स्वरूप।

1.2. प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान

प्राचीन भारत की भौगोलिक जानकारी प्रदान करने वाले स्रोतों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. सिन्धु सभ्यता के काल (4000 B.C से 2500 B.C) के समय का भौगोलिक ज्ञान उत्तरी भारत के मोहनजोदड़ों, हड़प्पा तथा दक्षिणी भारत के तिरुनवेली नामक स्थानों की खुदाई के द्वारा प्राप्त सामग्री एवं भवनों के अवशेषों पर अंकित लिपि से प्राप्त होता है।
2. वैदिक काल के ग्रंथ प्राचीन भौगोलिक ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इनमें वेद (चारों वेद), ब्राह्मण ग्रन्थ तथा अरण्यक, उपनिषद् व पुराण प्रमुख ग्रन्थ हैं। पुराणों में भारत के भौतिक स्वरूप का विवरण मिलता है, जिनमें पर्वत, मैदान, नदियों, झीलों, वनों, मरुस्थलों आदि का विवरण प्रमुख है। इन ग्रन्थों का रचना का काल 2500 ईसा पूर्व (B.C) से 1000 ईसा पूर्व (B.C) तक माना गया है।
3. वाल्मीकि 'रामायण' एवं वेदव्यास रचित 'महाभारत' (1600 ईसा पूर्व से 600 तक) भौगोलिक ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं, इनके साथ पाणिनी के अष्टाध्यायी भी भौगोलिक ज्ञान का विवरण प्रस्तुत करते हैं।
4. बौद्धकालीन भौगोलिक ज्ञान का विवरण पालि साहित्य से मिलता है, इनमें धम्मपद (बौद्धों की गीता), बौद्ध त्रिपिटक (विनय पिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक) तथा जातक कथाएँ प्रमुख हैं। ये ग्रन्थ पालि भाषा में लिखे गये थे। मूल रूप से जातकों की टीका 'जातक ट्ठवण्णना' की विषयवस्तु से प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन का विवरण मिलता है।

प्राचीन भारतीय भौगोलिक ज्ञान का विकास क्रम

(Evolution of Geographical Knowledge in Ancient India)

प्राचीन भारतीय भौगोलिक ज्ञान, जो हमें विभिन्न ग्रन्थों, विदेशी यात्रियों एवं लेखकों, भारत में स्थित शिलालेखों तथा भग्नावशेषों से मिलता है, उसका विकास क्रमिक रूप से निम्नानुसार हुआ माना जाता है —

1. **सिन्धु सभ्यता (Indus Civilization Age)** :—वर्तमान सामयिक दृष्टिकोण से विभिन्न अन्वेषणों, प्रामाणिक पाण्डुलिपियों, तथा खुदाई में प्राप्त वस्तुओं के अवशेषों के आधार पर सिन्धु सभ्यता का समय लगभग 4000 ई.पू. (B.C.) से 2500 ई.पू. (B.C.) तक माना गया है। यहाँ पर भूमि की खुदाई के दौरान प्राप्त भग्नावशेषों तथा अन्य सामग्री की सहायता से भूगोल से सम्बन्धित जानकारी मिलती है, इनमें काँसे के औजार, मृद्भाण्ड (मिट्टी के बरतन), धातुएँ आदि प्रमुख हैं। यहाँ से खुदाई में प्राप्त नगरीय व्यवस्था से पता लगा है कि उस काल में योजनाबद्ध नगर निर्माण किया जाता था। ऐसे नगरावशेषों में हड़प्पा (मोहेंजोदड़ो, पाकिस्तान), मोहनजोदड़ो (सिंध प्रांत, पाकिस्तान), कालीबंगा (राजस्थान), लोथल (गुजरात), चन्हूदड़ो (सिंध), बनावली (हरियाणा) तथा धोलावीरा (गुजरात) आदि को ही शहर की संज्ञा दी गई है। लोथल, सुरकोटदा व धोलावीरा प्रमुख पत्तन शहर की श्रेणी में आते हैं। ये नगर वर्तमान में किसी भी विकसित देश में बसे नगरों की तुलना में सुव्यवस्थित थे। सड़कें समकोण पर काटती थीं, नगरों की सफाई व्यवस्था भी अच्छी थी, जिसके लिए कुड़ादान रखे रहते थे। रामायण ग्रंथ में अनेक भौगोलिक प्रदेशों का विवरण है जैसे— चित्रकूट, दण्डकारण्य, सिंधलद्वीप, कैलाश, आर्यावर्त आदि, कई राज्यों कौशल, काशी, मिथिला, मत्स्य, मगध, सौराष्ट्र आदि। नदियों में यमुना, मंदाकिनी, गोदावरी, पर्वतों से सुमेरु पर्वत, हिमालय आदि का वर्णन किया गया है।
2. **महाकाव्य काल : रामायण और महाभारत (Epic Age: Ramayana and Mahabharata)** :—यह काल 1600 B.C से 600 B.C. तक माना गया है। पार्जितर ने राम का समय ईसा से 1600 वर्ष ईसा पूर्व (B.C.) माना है। इस काल में वाल्मीकि रचित 'रामायण' तथा वेदव्यास रचित 'महाभारत' महान् धार्मिक ग्रन्थ हैं जो अधिकांश पुराणों से पूर्व लिखे गये थे। रामायण में भूगोल के विभिन्न पक्षों का विवरण दिया गया है, इसमें राम के वनवास काल के विवरण में जिन भागों में उन्होंने भ्रमण किया उनका वर्णन किया गया है। इसके उपरान्त सीता के रावण द्वारा हरण के कारण सीता को खोजने के लिए सुग्रीव ने विभिन्न स्थानों में खोजी दल भेजे, ये दल उत्तरी कुरु तक, पश्चिम में रक्त सागर (लाल

सागर) व मेसोपोटामिया की ओर व पूर्व में तिब्बत व चीन तथा दक्षिण-पूर्व में जावा (यव), सुवर्ण रूप्याका (सुमात्रा अथवा बोर्नियो) तथा दक्षिण में सिंहल द्वीप (श्रीलंका) तक गये थे जिनका सम्पूर्ण धरातलीय विवरण मिलता है। सीताहरण के उपरान्त रावण का पुष्पक विमान जिन-जिन स्थानों से होकर उड़ा था उनका धरातलीय विवरण यथानुसार मिलता है।

उत्तर वैदिक काल में महर्षि वेदव्यास ने महर्षियों तथा महापण्डितों के साथ 'महाभारत' (Mahabharata) की रचना की थी। यद्यपि मूल महाभारत वाल्मीकी रामायण के कुछ समय बाद का रहा होगा। इसमें बाद में संशोधित कड़ियाँ जोड़ी गयीं। इस ग्रन्थ में धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डु पुत्रों को शिक्षा के लिए द्रोणाचार्य के पास भेजना, एकलव्य कथा, पाण्डवों के वनवास काल का विवरण एवं अज्ञातवास (गुप्त निवास) का वर्णन वनवास पर्व में मिलता है। इस दौरान दक्षिण पथ कलिंग, विदेह, मगध, गंधार, माद्र आदि देशों के इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से सतत एवं व्यवस्थित सम्बन्ध थे। इसके एक खण्ड का नाम भूमि पर्व था। अधिकांश पुराणों एवं महाभारत में भारतवर्ष (भारत) को 9 विखण्डों (Divisions) में विभक्त किया गया है— (i) इन्द्र द्वीप, (ii) केसरुमत, (iii) ताम्रपर्ण, (iv) गमस्तीमन, (v) नाग द्वीप, (vi) सौम्या, (vii) गन्धर्व, (viii) वरुण द्वीप, एवं (ix) कुमारी द्वीप।

3. **पौराणिक काल (Puranic Age)** — पुराण का शाब्दिक अर्थ होता है, 'प्राचीन'। पुराणों की रचना का काल 1000 ईसा पूर्व से 800 ईस्वी तक माना गया है। इनमें अधिकांश पुराणों का प्रथम रचनाकाल 800-700 ई.पू. माना गया, जबकि चन्द्रगुप्त मौर्य, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एवं हर्षवर्धन के शासनकाल में लगभग तीन बार पुराणों के संशोधित नवीन संस्करण निकाले गये। आर्यावर्त के ऋषि एवं आचार्य पुराणों में समय-समय पर संशोधन के लिए सम्मेलन भी आयोजित किया करते थे। इन ग्रन्थों में धर्म एवं दर्शन के साथ-साथ ब्रह्माण्ड दर्शन, सृष्टि रचना, पृथ्वी की उत्पत्ति, उसके द्वीप व सागरों का वर्णन, प्रत्येक का विभाजन एवं उपविभाजन, प्रत्येक द्वीप का यथासम्भव स्पष्ट वर्णन व उनकी वनस्पति, पर्वत जैसे प्राकृतिक तथ्यों के आधार पर नामकरण, जम्बू द्वीप, भारतीय उपमहाद्वीप के उपखण्डों अथवा वर्ष और पर्वतों एवं भारतवर्ष के जनपदों, राज्यों, बस्तियों एवं प्रमुख मार्गों व नगरों का वर्णन दिया गया है।

श्रीमद्भागवत् के अनुसार अष्टारह महापुराण निम्नांकित हैं

1. ब्रह्म पुराण (10)	2. पद्म या यक्ष पुराण (55)
3. विष्णु पुराण (23)	4. शिव पुराण (24)
5. श्रीमद् देवीभागवत् पुराण (18)	6. नारदीय पुराण (25)
7. मार्कण्डेय पुराण (19)	8. अग्नि पुराण (15)
9. भविष्य पुराण (15)	10. ब्रह्मवैवर्त पुराण (18)
11. लिंग पुराण (11)	12. स्कन्द पुराण (81)
13. वराह पुराण (24)	14. वामन पुराण (10)
15. कुर्म पुराण (17)	16. मत्स्य पुराण (24)
17. गरुड़ पुराण (29)	18. ब्रह्माण्ड पुराण (12)

इन पुराणों में पृथ्वी को एक इकाई के रूप में, पृथ्वी का सौर सम्बन्ध, सौरमण्डल, ग्रहण, पृथ्वी का विभिन्न दशाओं में विस्तार, द्वीप एवं सागर का विस्तार तथा उनकी विशेषताएँ नदियाँ, पर्वत क्रम, जलवायु सम्बन्धी दशाओं का विवेचन किया गया है। भूगोल के मानवीय तथा सामाजिक पक्षों का भी वर्णन किया गया है। पुराणों में वायु, भागवद्, मार्कण्डेय, मत्स्य एवं विष्णु महापुराण भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

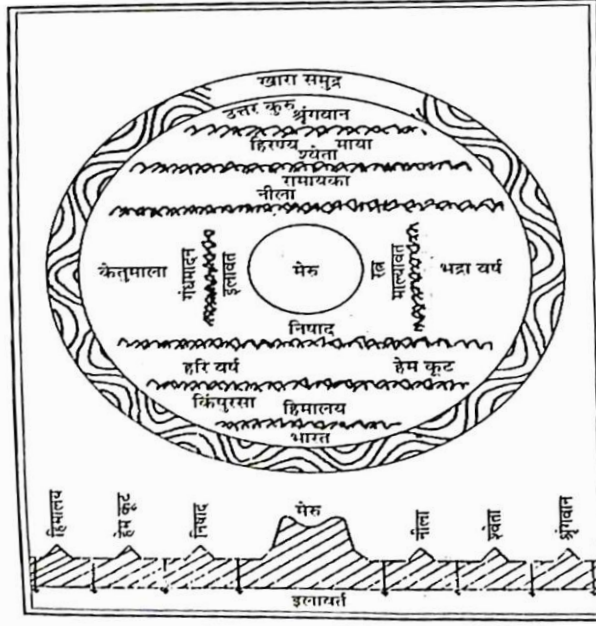
उपर्युक्त वर्णित सप्त द्वीपों के साथ इनको घेरे हुए वलयाकार रूप में सात सागर भी थे। पुराणों में सागरों को **उदधि** कहा गया है। ये सात सागर अग्रलिखित हैं—

पुराणों में वर्णित सात सागर

सागर का नाम	अर्थ	समीपवर्ती द्वीप
1. इक्षुरसोद	गन्ने के रस के सदृश्य गहरे रंग वाला सागर। इसमें शैवाल की अधिक मात्रा की सम्भावना बताई गई है।	प्लक्ष द्वीप
2. सुरोद	शराब की तरह हल्का जिसे स्वच्छ जल वाला सागर कहा गया है।	शालमली द्वीप
3. क्षारोद	लवण सागर अर्थात् खारे जल वाला सागर।	जम्बू द्वीप
4. क्षीरोद	दूध के समान सागर। इसमें तूफान अधिक आने से झाग आते थे। अतः इसे अशान्त सागर, भी कहा है।	क्राँच एवं शक के निकट
5. शोद्धोद	शुद्ध स्वच्छ जलीय सागर, जो कम लवणीय मीठा अंजीर पेड़ों का क्षेत्र जल वाला था।	पुष्कर
6. दधिमण्डोल	दही के समान। यहाँ शीतकाल में जल सागर में जम जाता है।	क्राँच
7. घृतोद	घृत (घी) के समान, जो सागर घी के समान दिखे तथा इसकी सतह पर श्वेत परत मिलती हो, ऐसे शान्त सागर को घृतोद कहा गया है।	कुश द्वीप

पुराणों में सर्वप्रथम लवण सागर का विवरण मिलता है, जो जम्बू द्वीप के चारों ओर फैला हुआ था। इसका जल अत्यन्त खारा था। इसे रामायण में जम्बू द्वीप के पूर्व दिशा में तथा महाभारत में भारत के दक्षिण दिशा में स्थित होना बताया है।

जम्बूद्वीप को निम्नलिखित उप-प्रदेशों में विभक्त किया गया है — (i) रमणक वर्ष, (ii) हिरण्यवत वर्ष, (iii) उत्तर कुरु, (iv) केतुमाता, (v) भद्र वर्ष, (vi) भारत वर्ष।



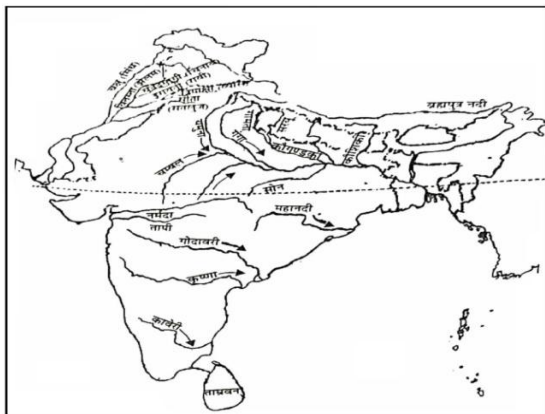
स्रोत विष्णु पुराण

1. **मेरु पर्वत** —वर्तमान पामीर को पौराणिक काल में मेरु पर्वत कहा गया है, इसका उल्लेख पुराणों के अतिरिक्त जैन, बौद्ध साहित्य, महाकाव्यों तथा उत्तर वैदिक साहित्य में भी मिलता है। ये जम्बू द्वीप का मुख्य पर्वत है। विष्णु पुराण में वर्णित किया गया है कि जम्बू द्वीप सभी द्वीपों में केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा इसके मध्य में स्वर्णिम आभा वाला मेरु पर्वत स्थित है, जो कमल के फूल के समान आकृति रखता है। इसकी ऊँचाई 84000 योजन थी।
2. **नील पर्वत** — नील पर्वत का उल्लेख भरत संहिता तथा पद्म पुराण में मिलता है। इसे मलयागिरी या नीलगिरी तथा मलयाचल के नाम से जाना जाता है। जहाँ से तीराम, तौराकान, यारकन्द नदियाँ निकलती हैं। यह दक्षिण भारत में स्थित है।
3. **हिमावत** — हिमालय का प्राचीन नाम हिमावत है। इसे कालीदास ने नागाधिराज नाम दिया है। हिमावत पर्वत में खनिजों की उपलब्धता का भी विवरण दिया है। यहीं रुद्र महादेव का उमा से विवाह हुआ था। हिमावत पर्वत से अनेक नदियाँ निकलकर भारतीय कृषि फसलों को सिंचित करती हैं।
4. **माल्यावन** — वायु पुराण में इसे हंस पर्वत तथा विष्णु पुराण में माल्यावन कहा गया है। यह मेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित है। इसे हंस पर्वत कहा गया है।
5. **निषाद** — निषाद पर्वत को वर्तमान में हिन्दूकुश पर्वत के रूप में जाना जाता है। इसके तीन प्रमुख शिखर थे, जिन पर विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा निवास करते थे।
6. **गन्ध मादन** — इसे श्रीमद्भागवत में मेरुमदार कहा गया है। यह मेरु पर्वत की एक श्रेणी है। इसे हिन्दूकुश की उत्तरी श्रेणी मानते हैं।
7. **चन्द्र द्वीप** — यह वर्तमान अल्तार्कतुबा पर्वत है। चन्द्रदीप पर्वत से चन्द्रवनिता नदी (वर्तमान ओब नदी) निकलती है। इस क्षेत्र में रूस के प्रमुख शहर बिस्क, नोवोसिविस्क तथा गोरानो आल्टिस्क की स्थापना हुई। वेतुला शिखर (4508 मीटर) यहीं है।
8. **उच्चावत** —यह वर्तमान यूराल पर्वत है। पुराणों में इसकी स्थिति उत्तर कुरु क्षेत्र के पश्चिम में बतायी गई है।
9. **हेमकूट** — यह वर्तमान कैलाश पर्वत है। पुराणों में इस पर्वत को धन का देवता (कुबेर) कहा गया है। अलकनन्दा, नन्दा और मन्दाकिनी नदियों का उद्गम यहीं से माना गया है।

10. शृंगवन —यह वर्तमान क्वातौ, किरचीज केतुमाल पर्वत श्रेणियों के रूप में फैला है।

पौराणिक नदियाँ (Puranic Rivers)

1. **सर्व गंगा या स्वर गंगा नदी** — इसे मन्दाकिनी भी कहते हैं। महापुराणों में इसके चार प्रवाह बताये हैं। एक उत्तर दिशा में जिसे भद्रसोमा कहते हैं। यह शेर के मुख से निकलती है। दूसरी गोमुख से निकलकर दक्षिण में प्रवाहित होती है, जिसे गंगा कहते हैं। तीसरी प्रमुख नदी हाथी मुख से प्रवाहित होती है, इसे सीता नदी कहते हैं। चौथी नदी घोड़े के मुख से निकलकर चाक्षु नदी के नाम से पश्चिम में प्रवाहित होती है। सीता नदी पूर्व में बहने वाली सीतोद्र ही है, इसे पहले तारीम नदी के नाम से तथा अब यांगटीसी के नाम से जाना जाता है। चाक्षु नदी वर्तमान आमू दरिया है तथा भद्रसोम नदी सरदरिया है।
2. **भद्रसोमा प्रथम** — यह वर्तमान सरदरिया नदी का प्राचीन नाम है, जो पामीर के पठार (मेरु पर्वत) से निकलकर कजाखस्तान के अरल सागर में गिरती है।
3. **भद्रसोमा-द्वितीय** — इसकी उत्पत्ति मध्य-उत्तरी एशिया में चन्द्र द्वीप से बताई गयी है। पौराणिक ग्रन्थों में इस नदी के प्रवाह क्षेत्र में आने वाले पर्वतों को देखने पर स्पष्ट होता है कि यह नदी साइबेरिया (रूस) में है। इसका नाम इर्तिश है। इसकी सहायक नदी ओब है जो पूर्वी क्षेत्रों का जलग्रहण करती है।
4. **गंगा नदी** — गंगा एक प्रमुख पौराणिक नदी है, इसका उद्गम पुराणों के अनुसार कैलाश पर्वत से हुआ था।



भारत में पौराणिक नदियाँ

5. **सीता** —पौराणिक सीता का वर्तमान नाम सतलज है जिसका उद्गम स्थान भी सिन्धु के उद्गम स्थल के पास है। पुराणों में इसे हाथी के मुख से निकलता हुआ बताया गया है। इसकी उत्पत्ति कैलाश पर्वत के उत्तर में बिन्दु सरोवर से होती है।
6. **चन्द्रवरिता** —इसे चन्द्रद्वीप से उत्तर की ओर बहते हुए बताया गया है। यह साइबेरिया में बर्फीले क्षेत्रों में बहने वाली येनिसी नदी है।
7. **नलिनी, हृदानी व पवनी** —इन तीनों नदियों को बिन्दु सरोवर से पूर्व की ओर प्रवाहित होते बताया गया है। ये क्रमशः यांगत्सी, मेकांग और सालवीन नदियाँ हैं जो कैलाश पर्वत के उत्तरी ढालों से निकलकर पूर्व की ओर चीन, थाइलैण्ड और बर्मा में जाती हैं। पुराणों में यह भी विवरण मिलता है कि ये तीनों नदियाँ इन्द्रद्वीप में बहती हैं। इन्द्रद्वीप को वर्तमान में पूर्वी एशिया का बर्मा (म्यांमार) माना गया है।
8. **लोहित, हेमशृंग** —लोहित, हेमशृंग वायु पुराण में चन्द्रप्रभा पर्वतों के सामने कांग कांगडी पर्वतों की स्थिति मानी है, जिनसे यह नदी निकलती है। ये क्षेत्र वर्तमान में कैलाश पर्वत वाला भाग है।

9. **चक्षु नदी** —यह गंगा की चार धाराओं में से एक है, जिसे सिन्धु नदी भी कहते हैं। वायु पुराण में नदियों की संख्या 93, मार्कण्डेय एवं मत्स्य पुराण में 90 तथा श्रीमद्भागवत में 42 बतायी गई है।

इस विकास क्रम में बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व महात्मा गौतम बुद्ध, पार्श्वनाथ तथा महावीर स्वामी के काल में इन ग्रन्थों की रचना की गयी। इनमें धर्मपद, बौद्ध त्रिपिटक, जातक कथायें, कंजूर, तंजूर तथा जैन आगम प्रमुख हैं। बौद्ध ग्रन्थों में भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि लोकाख्यान तथा समुद्राख्यान (महासागरीय विज्ञान) प्रमुख हैं।

पुराणों में महासागर

पुराणों में निम्न सात महासागर (सागर) भी बतलाये गये हैं —

1. **क्षारोद** — लवण सागर—जम्बू द्वीप के समीप।
2. **इक्षु रसोद**— गन्ने के रस जैसे गहरे रंग वाला प्लक्ष द्वीप में।
3. **सुरोद** —सुश की भाँति हल्का—शालमली द्वीप में।
4. **क्षीरोद**— दुग्ध की तरह क्रौंच एवं शक के निकट।
5. **घृतोद**— घी की तरह कुश द्वीप में।
6. **दधिमण्डोत** — दही जैसा क्रौंच द्वीप में।
7. **शोद्धद** —शुद्ध जल वाला — पुष्कर द्वीप में।

प्राचीन भारत के भूगोलवेत्ता

(Geographers in Ancient India)

विश्व की रचना का सबसे प्राचीन ज्ञान भारतीय विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों में मिलता है। प्राचीन भारतीय विद्वान् बहुमुखी प्रतिभा रखते थे। इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं, जिन्होंने भौगोलिक ज्ञान का विकास करने में अपना योगदान दिया —

1. **आर्यभट्ट (476 & 550 A.D.)**—आर्यभट्ट नामक खगोलशास्त्री का जन्म 476 ईस्वी में गुप्तकाल में पाटलीपुत्र में हुआ था, उन्होंने पृथ्वी की परिधि लगभग 24835 मील बतायी जो वर्तमान विद्वानों द्वारा आकलित परिधि (24901 मील) से काफी समीप है। इन्होंने 13 वर्ष की अल्प आयु में ही 'आर्यभट्ट' (Aryabhatt) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें गणितीय सिद्धान्तों तथा सूत्रों का विवरण दिया गया है। इन्होंने सूर्य एवं चन्द्रग्रहण का कारण चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के मध्य सम्बन्ध बताया। आर्यभट्ट ने ही सर्वप्रथम पृथ्वी की आकृति गोलाभीय (Spherical) बताई। इन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पृथ्वी तथा अन्य आकाशीय पिण्ड सूर्य के चक्कर लगाते हैं।
2. **वाराहमिहिर (505 & 587 A.D.)**—वाराहमिहिर प्रसिद्ध खगोलशास्त्री थे, जिन्होंने प्रमुख खगोलीय ग्रन्थ 'पंच सिद्धान्तिका' की रचना की। इन्हें पृथ्वी के अक्षांश ज्ञात करने की विधि मालूम थी। वाराहमिहिर ने ही भारतीयों को गणित में दशमलव के बारे में अवगत कराया, जहाँ सर्वप्रथम अरबवासियों ने भी इसे यहीं से सीखा था। भारत को इन्होंने पांचाल (मध्यवर्ती), मगध (पूर्वी), कलिंगा (दक्षिण-पूर्व), अवन्ति (दक्षिण), अनर्ता (दक्षिण-पश्चिम), सिन्धु-सौविरा (पश्चिम), हरहुरा (उत्तर-पश्चिम), मद्र (उत्तर) एवं कौनिंदा (उत्तर-पूर्व) आदि दिशाओं के अनुसार 9 क्षेत्रों में विभाजित किया।
3. **भास्कराचार्य (1114&1185 A.D.)**—भास्कराचार्य का जन्म सन् 1114 A.D. में बीजापुर (कर्नाटक) में हुआ था। उन्होंने बताया कि पृथ्वी गोल है तथा अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। इन्होंने दो प्रमुखग्रन्थों की रचना की थी। प्रथम ग्रंथ **सिद्धान्त शिरोमणि** था जिसके खंड क्रमशः अंकगणित, बीजगणित, ज्योमिति, गोलाभ्यास तथा दूसरा ग्रंथ **करण कुतूहल** लिखा था जिसके कुछ प्रमुख अन्वेषणयुक्त खोजों का विवरण दिया था। भास्कराचार्य ने अपने प्रथम ग्रन्थ में

वायुमण्डल की परतों की माप भी दी हैं। भास्कराचार्य ने ही पृथ्वी को 360° में विभक्त करके अक्षांश और देशान्तरों का नगरों की स्थिति बताने में उपयोग किया था।

4. **कौटिल्य (चाणक्य) (371&283 B.C.)** —कौटिल्य जो आचार्य चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध है। ईसा पूर्व (B.C.) चौथी सदी में मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त के गुरु तथा प्रधानमंत्री थे। इन्होंने मौर्यकालीन भारत का विवरण अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में किया था। इसमें भारत के 'आर्थिक भूगोल' का वर्णन किया गया है। उनके अनुसार उस काल में उत्तरी भारत के व्यापार में दक्षिणी भारत का व्यापार अधिक महत्वपूर्ण था। उत्तरी भारत से रेशमी वस्त्र, ऊनी कंबल, चमड़ा, घोड़े आदि का आयात किया जाता था। चाणक्य ने इस ग्रंथ में भारतकृषि व्यवस्था, औद्योगिक प्रगति एवं व्यापार की विस्तृत विवेचना की है।

राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से भी कौटिल्य का अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों का विवरण दिया गया है, जिनमें मगध राज्य की क्रांति, मौर्य वंश की स्थापना करना, विदेशी यूनानीयों की सत्ता को नष्ट करना तथा यवनों के आक्रमण से राष्ट्र सुरक्षा करना आदि प्रमुख हैं। इस ग्रंथ में मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र, उज्जैन, तक्षसिला आदि नगरों की भौगोलिक तथा प्रशासनिक जानकारी दी गई है। अतः स्पष्ट है कि कौटिल्य ने नगरीय भूगोल (Urban Geography) पर भी प्रकाश डाला था।

5. **कालिदास**—महाकवि कालिदास महाराज विक्रमादित्य के दरबार के प्रधान विद्वान थे। इन्होंने पांच प्रमुख ग्रंथों की रचना की थी जिनमें 'मेघदूत एवं रघुवंश' ग्रंथों में भौगोलिक जानकारी मिलती है। महाकवि कालिदास का ग्रंथ 'मेघदूत' भौगोलिक दृष्टि से जलवायु विज्ञान माना गया है। इसमें इन्होंने वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने का कारण, वर्षा की मात्रा, विभिन्न आकृति के मेघों के प्रकार तथा उनके गुणों का वर्णन किया है। अपने दूसरे काव्य 'रघुवंश' में ऋतुओं तथा जलवायु का वर्णन प्रस्तुत किया है। अतः महाकवि कालिदास को प्राचीन भारतीय काल का जलवायुवेत्ता भी कहते हैं।
6. **धन्वन्तरि** —धन्वन्तरि का नाम आयुर्विज्ञान में विशेष उल्लेखनीय है। ये आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। प्राचीन साहित्यिक जनश्रुति के अनुसार धन्वन्तरि चन्द्रगुप्त द्वितीय की राजसभा में उपस्थित नौ रत्नों में से एक थे।
7. **वाग्भट्ट** — इन्होंने 6वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'अष्टांग हृदय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी इसमें प्राकृतिक धरोहर के चिकित्सा महत्व का विवरण है।
8. **चरक** —चीनी जनश्रुति के अनुसार 'चरक' राजा कनिष्क के राजवैद्य थे। इन्होंने 10 अध्यायों वाली 'चरक संहिता' की रचना की जिसे आधुनिक चिकित्साशास्त्र का विश्वकोश मानते हैं।

भारत में भूगोल के प्रारम्भिक विकास को समझने के लिए ग्रीक विद्वानों की रचनाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। भारत के बारे में लिखित विवरण 5वीं सदी ईसा पूर्व तक के सिन्धु नदी तक के पार्सियन शासन से प्राप्त विवरण ही मुख्यतः हैं। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के अन्त में पाटलीपुत्र (पटना) में रहे यूनानी भेगस्थनीज का भारत के बारे में विवरण विभिन्न टुकड़ों में बोन विश्वविद्यालय के डॉ. स्कवानबेक (Schwanback) द्वारा लैटिन भाषा में एकत्रित किया गया, जिसे बाद में मेक्रिंडल द्वारा अनुवादित किया गया। मेगस्थनीज ने भारत में यात्रायें कर इसके विस्तार के बारे में लिखा है। मानसून का विवरण भी दिया है। भारत के बारे में टालेमी ने अधिक लिखा है। उनके मानचित्र में बंगाल की खाड़ी, श्रीलंका (Ceylon) द्वीप, गंगा नदी एवं पाटलीपुत्र का विवरण मिलता है। उन्होंने पंजाब की चार नदियों का नाम दिया तथा भारत की पहाड़ियों को 7 वर्गों में बाँटा है। उनके भारतीय ज्ञान का मुख्य स्रोत पुराणों को माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि उसे कुछ संस्कृत साहित्य एलेक्जेंड्रिया में भी मिला होगा। इस प्रकार यूनानियों का भारत के बारे में विवरण एवं ज्ञान कम मिलता है लेकिन यह अति महत्व का है।

प्राचीन भारत में भूगोल के मुख्य पक्ष (Main Aspects of Geography in Ancient India)

भारत में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त भौगोलिक जानकारी से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में भूगोल के प्रति लोगों की अटूट चेतना थी तथा भारतीय संस्कृति इस चेतना की अग्रदूत रही है। वनस्पति, धरातलीय स्वरूपों,

आकाश, सागर आदि प्राकृतिक पक्षों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं, जीवन पद्धति, नगर-ग्राम उद्योग, परिवहन आदि मानवीय पक्षों की विस्तृत विवेचना ऋषि-मुनियों के आख्यानो, वेदों तथा पुराणों में मिलती है। इनमें भारत की भौगोलिक दशाओं के साथ ही पृथ्वी के आकार, पृथ्वी की आयु, स्थलाकृतियों (पर्वत, पठार, नदियाँ), समुद्र, ज्वार-भाटा, ग्रहण, ऋतु निर्माण, दिन-रात तथा सौर परिवार आदि का विवरण मिलता है।

खगोलीय ज्ञान (Astronomical Knowledge)

भारत में प्राचीन काल में पृथ्वी के सूर्य एवं ग्रह-उपग्रहों के सम्बन्धों का पर्याप्त ज्ञान था। सौर वर्ष, सौरमास संक्रांति, क्रान्तिवृत्त तल (Ecliptical Plane), क्रान्तिवृत्त तिर्यकत्व (Ecliptical Obliquity), सौर चन्द्र लम्बन (Solar and Lunar Longitudinal Parallax), अधिवृत्त (Epicyle) आदि को भारतीयों द्वारा की गई गणनाएँ शुद्ध थीं। भारतीय प्राचीन खगोलीय ज्ञान आज भी विभिन्न खगोलविदों का मार्गदर्शन कर रहा है। ब्रह्माण्ड की कुल आयु एक सौ ब्रह्म सृष्टि वर्ष के बराबर है। ब्रह्म के एक वर्ष में 311040 करोड़ वर्ष हैं। पृथ्वी की आयु 31104000 करोड़ वर्ष बतायी गयी। प्राचीन भारतीय विद्वानों व ऋषियों का यह ज्ञान आध्यात्मिक विधि पर अधिक आधारित है, परन्तु छठी ईस्वी से 13वीं ईस्वी तक भारत में यह ज्ञान पूर्णतः भौतिक-प्राविधिक प्रणाली का प्रयोग कर विकसित हुआ जिसमें आर्यभट्ट, वाराहमिहिर व ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों के साथ यंत्रों का प्रयोग व उत्कृष्ट वेधशालाओं का निर्माण करवाया गया व वैज्ञानिकों ने अपनी प्रतिभा का उपयोग कर पृथ्वी का घूर्णन, गुरुत्वाकर्षण, चक्रकलाएँ और गृहों की स्थिति की जानकारी शुद्ध रूप में उपलब्ध करवायी। आर्यभट्ट से भास्कराचार्य तक का समय भारतीय खगोलकी (Astronomy) के पूर्ण विकास का काल था।

ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी की उत्पत्ति (Origin of Cosmos and Earth)

प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का श्रेय परमब्रह्म परमात्मा को दिया है तथा आदि पुराण ने सृष्टि (संसार) की रचना का प्रारम्भ स्वयं आँखों से देखा है जिसका विवरण अनेक जगह मिलता है:-

“हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह, एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह। नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन, एक तत्त्व की ही प्रधानता कहे उसे जड़ या चेतन।”

सूर्य को ब्रह्माण्ड की ऊर्जा एवं संरचना का प्रमुख स्रोत माना गया है। इसी से ग्रहों व उपग्रहों की उत्पत्ति होना बताया है। वेदों में पृथ्वी की आकृति गोलाकार (Spheroid) बताया है व कहा गया है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। यह गोलाकार पृथ्वी अपने पालन करने वाले सूर्य के आगे-आगे अपने जल सहित अपने कक्ष (Orbit) पर चारों तरफ घूमती है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करता है। सूर्य तथा सौरमण्डल के ग्रहों में पारस्परिक गुरुत्व शक्ति की उपस्थिति भी इसी के द्वारा सारे पिण्ड अपने कक्ष पर बिना विचलित हुए भ्रमण करते हैं।

पृथ्वी की आयु (Age of the Earth)—

प्राचीन भारतीय ज्योतिष ने पृथ्वी की आयु 2 अरब वर्ष मानी थी जो वर्तमान आकलन से काफी नजदीक है। इसी प्रकार पृथ्वी के आकार (Size) की गणना भी की गई। वाराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ पंच सिद्धान्तिका में 1018.6 योजन बताई है तथा ब्रह्मगुप्त ने भी पृथ्वी का व्यास 1581 योजन बताया जो वर्तमान आकलन के समीप है।

अक्षांश और देशान्तर (Latitude and Longitude)

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अक्षांश और देशान्तरों की विस्तृत विवेचना की गई है। भास्कराचार्य तथा अन्य प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों ने पृथ्वी को गोलाकार बताते हुए 180 अक्षांशों और 360 देशान्तरों में विभक्त किया।

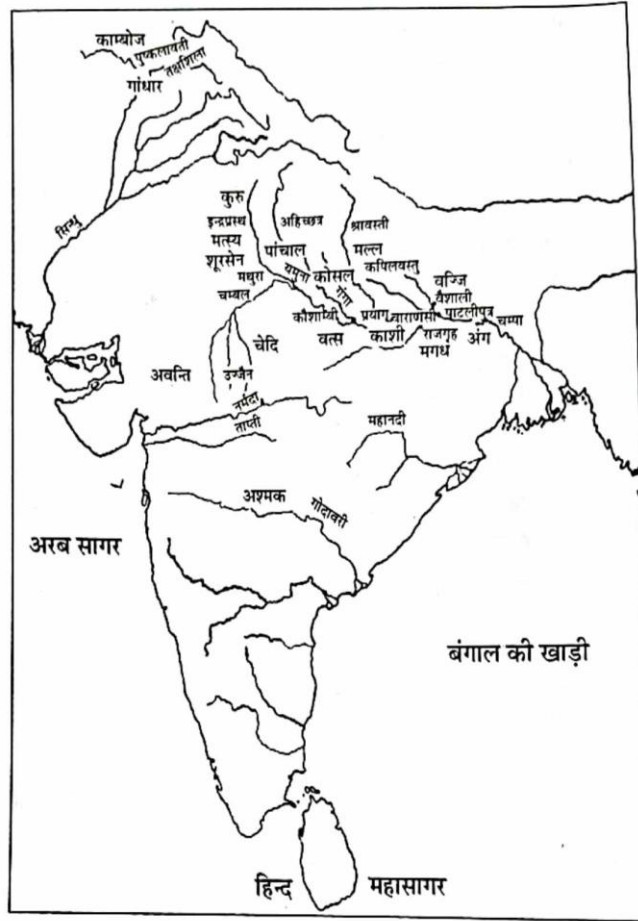
दिन-रात (Day and Night)

वैदिक ग्रन्थों में स्पष्ट किया गया है कि पृथ्वी के अपने अक्ष (Axis) पर भ्रमण (Rotation) से ही दिन और रात बनते हैं। इसे पृथ्वी की दैनिक गति कहते हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूमती है, जिससे पृथ्वी के सामने वाले आधे भाग पर दिन तथा पीछे वाले आधे भाग पर अन्धेरा रहता है। सूर्य के सम्मुख आने वाला पृथ्वी का प्रकाशमान भाग वृत्ताकार होगा, जिसे प्रकाश वृत्त (Circle of Illumination) कहते हैं।

प्रत्येक दिवस 24 घण्टे के समय को 60 घटिका (घटी) कहा गया है। एक घटी में 60 पल, एक पल में 60 विपल, एक विपल में 60 लीक्षक, एक लीक्षक में 60 लव, एक लव में 60 रेणु, एक रेणु में 60 टिकाल बताये गये हैं। एक चन्द्र वर्ष 354 दिन का व चन्द्र मास 29½ दिन व एक सौर वर्ष में 365¹/₄ (365 दिन 4 घटी, 31 पल व 30 विपल) माने गये हैं।

बौद्धकालीन महाजनपदों का अभिज्ञान साहित्यिक स्रोत से होता है। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' में निम्नलिखित सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है —

1. **अंग**— अंग का राज्य आधुनिक बिहार प्रान्त के भागलपुर तथा मुंगेर इलाके में स्थित था। इसकी राजधानी चम्पा थी। अपने पड़ोसी मगध राज्य से निरन्तर संघर्षरत रहने के कारण इसका अंत हुआ।



2. **मगध** —मगध का राज्य भी बिहार प्रान्त में पटना तथा गया जिले के क्षेत्र में स्थित था। आरम्भ में इसकी राजधानी गिरिब्रिज थी।
3. **काशी**— काशी का महाजनपद वाराणसी क्षेत्र में था तथा इस नाम का नगर ही उसकी राजधानी था। पड़ोसी राज्य कोसल की शत्रुता के कारण उसका अन्त हुआ।
4. **कोसल**— सई व गंडक नदी के मध्य भाग में स्थित कोसल महाजनपद की दो राजधानियों का उल्लेख मिलता है जो श्रावस्ती (सरयू नदी के उत्तरी क्षेत्र में) तथा (कुशावती दक्षिण में) थी।
5. **वज्जि**— वज्जि महाजनपद मगध के उत्तर में अवस्थित संघ राज्य था तथा लिच्छवी, विदेह एवं वज्जि सहित आठ कुलों के मेल से बना था। वैशाली (राजधानी), कुंडग्राम तथा मिथिला इसके मुख्य नगर थे।
6. **मल्ल**— मल्ल महाजनपद भी सम्भवतः संघ राज्य था। आरम्भ में यह राजतंत्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत

था। किन्तु बाद में प्रजातंत्रीय हो गया। कुशीनारा इसकी राजधानी थी।

7. **चेदि**— यह महाजनपद यमुना नदी के किनारे बुंदेलखण्ड के क्षेत्र में स्थित था। इसकी सीमा कुरु राज्य की सीमा से लगी हुई थी। चन्देरी इसकी राजधानी थी।
8. **वत्स** — वत्स का महाजनपद इलाहाबाद क्षेत्र में था। इसकी राजधानी कोसाम्बी थी तथा संस्कृत साहित्य में चर्चित उदयन गौतम बुद्ध के समय यहाँ का राजा था।
9. **कुरु**—कुरु महाजनपद मेरठ— हरियाणा के क्षेत्र में स्थित था। इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर (राजधानी) इसके प्रमुख नगर थे। बाद के द्वारा इस राज्य की बर्बादी मानी गई।
10. **पांचाल** —अहिच्छत्र एवं काम्पिल्य (राजधानी) व कन्नौज इसके प्रमुख नगर थे। हिमालय की तराई(उत्तर प्रदेश) से चम्बल नदी तक फैले इस राज्य के पड़ोसी कुरु राज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध थे।
11. **मत्स्य (मच्छ)**— मत्स्य महाजनपद राजस्थान के जयपुर, अलवर, भरतपुर क्षेत्र में था। इसकी राजधानी विराटनगर थी। महाभारत में इसका उल्लेख एक प्रमुख नगर के रूप में हुआ है।
12. **शूरसेन**— इस महाजनपद की राजधानी मथुरा थी तथा उसी नगर के आसपास के क्षेत्र में यह राज्य स्थित था। गौतम बुद्ध के समय यहाँ पर अवन्तिपुर राज्य कर रहा था।
13. **अश्मक**—इसकी भौगोलिक स्थिति विवाद का विषय है। सामान्यतया यह महाजनपद गोदावरी नदी के तट पर स्थित था तथा इसकी राजधानी पोतन थी, किन्तु कुछ इतिहासकारों ने इसकोसिन्धु के मुहाने पर अवस्थित माना तथा ऐसा उल्लेख यूनानियों ने एस्मेकेनॉय के रूप में किया है।
14. **अवन्ति**—पश्चिम भारत का मुख्य राज्य जिसमें, मालवा तथा मध्य प्रदेश का कुछ क्षेत्र सम्मिलित था। उज्जैन राजधानी और महिष्मति इसके केन्द्र थे।
15. **गांधार**— गांधार महाजनपद पेशावर तथा रावलपिंडी में स्थित था जिसकी राजधानी तक्षशिला नगर थी, जो व्यापार का एक मुख्य केन्द्र था।
16. **कम्बोज**— आधुनिक राजौरी व हजारा जिलों (कश्मीर) में कम्बोज राज्य था।

वैदिक काल (Vedic Age)

यह काल 2500 ई.पू. (B.C.) से 1000 ई. पू. (B.C.) तक का माना जाता है। इस दौरान वैदिक ग्रन्थों की रचना हुई थी। इन ग्रन्थों को रचनाकाल के अनुसार दो भागों में विभक्त किया गया है—

1. संहिताकालीन ग्रन्थ
2. उपनिषद्कालीन ग्रन्थ।

1. **संहिताकालीन ग्रन्थ**—संहिता काल में चार वेदों— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की रचना हुई। इनमें ऋग्वेद संसार की सबसे प्राचीन लिखित पुस्तक है। इनकी रचना का समय सामान्यतः 3500 ई. पू. से 1500 ई. पू. तक माना गया है, लेकिन बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वेद का रचनाकाल 6000 वर्ष ईसा पूर्व (B.C.) बताया है। विश्व की उत्पत्ति एवं सृष्टि के विकास का क्रमबद्ध वर्णन वेदों में मिलता है—

ऋग्वेद (Rigveda)—

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इसमें विश्व उत्पत्ति (Cosmogony) तथा ब्रह्माण्ड विज्ञान (Cosmology) के बारे में विवेचना मिलती है। इस बारे में पुराणों में भी विवरण मिलता है। इस रचना में राजा इन्द्र के साथ किये गये युद्धों का विवरण भी मिलता है, जिनमें विभिन्न देशों की भौगोलिक विवेचना की गई है। ऋग्वेद में प्राचीन काल की प्राकृतिक वनस्पति को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त किया गया है, जिनमें प्रथम वर्ग में वृक्ष (पेड़), द्वितीय वर्ग में विरुद (झाड़ियाँ), तथा तृतीय वर्ग में तृण (घास) को रखा गया है। वनस्पति का आधुनिक वर्गीकरण इन्हीं वर्गों का वैज्ञानिक विवेचन है। इस समय के मानव—पर्यावरण सम्बन्धों को भी समझाया गया है, जिसमें मानव के लिए सर्वाधिक उपयोगी वृक्षों को

पूजनीय माना गया। इनमें अशोक, आँवला, पीपल तथा वट वृक्ष प्रमुख हैं।

ऋग्वेदिक काल में लोगों को जीव-जन्तुओं की पृथक् रूप में पहचान मालूम थी। इस समय सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं के छः वर्ग बताये गये थे—

1. जंगली पशु जिन्हें मृग कहते थे।
2. जलीय जीव, जिन्हें पुडिक्यास कहते थे।
3. जल एवं थल पर रहने वाले उभयचर पशु, जिन्हें सिन्जुयार कहते थे।
4. उड़ने वाले जन्तुओं को वर्तमान की तरह पक्षी कहते थे।
5. छोटे जीव कीट कहलाते थे।
6. घरेलू जन्तुओं को पालतू पशु कहा जाता था।

इस काल में सामान्य भूगोल की जानकारी भी थी। पृथ्वी की चार दिशाओं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम के बारे में बताया गया है। इनके अतिरिक्त ग्रीष्मकाल, वर्षा, बादलों का बनना तथा वायु प्रवाह आदि की पर्याप्त जानकारी थी, अतः ऋग्वेद में पवन की गति, वायुमण्डल की परतों, पर्वतों, नदियों, बादलों के प्रकार, वर्षा, हिमपात तथा कोहरा आदि का विस्तृत विवरण मिलता है।

ऋग्वेद के अधमर्षण सूक्त में ऐसा ही विवरण निम्नांकित रूप में दिया गया है — परमेश्वर से ज्ञान और प्रकृति की उत्पत्ति हुई। उसके परमाणुओं (Atoms) से व्याप्त आकाश (Space) की उत्पत्ति हुई। परमाणुओं से परिपूर्ण आकाश में गति (Motion) अर्थात् हलचल क्रिया उत्पन्न होने के उपरान्त, नक्षत्रों (Stars), सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में भारत की नदियों का भी विस्तृत विवरण मिलता है। ऋग्वेद के 10वें मण्डल का 75वाँ सूक्त 'नदी सूक्त' कहलाता है, जिसके सभी मंत्रों में नदियों का विवरण है। इसमें सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), परुषणी (रावी), आश्विन (चिनाब), आर्जिकिया या विपास (व्यास), वितस्ता (झेलम), कुम्भा (काबुल), गोमल (गोमती), सदानीरा (गडंक), दृषदवति (घग्घर) आदि का वर्णन दिया गया है। गंगा एवं यमुना का केवल तीन बार प्रसंगवश उल्लेख आता है।

यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद (Yajurveda, Samveda and Atharvaveda)

इनकी रचना ऋग्वेद के उपरान्त हुई। मुख्य रूप से धार्मिक ग्रन्थ है, लेकिन इनमें भी विभिन्न स्थानों पर भौगोलिक दशाओं, जनसंख्या के सांस्कृतिक पक्षों, ब्रह्माण्ड विज्ञान, विश्व की उत्पत्ति, वायुमण्डल तथा प्राकृतिक वनस्पति का विवरण मिलता है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में भूगोल को एक क्रमबद्ध ज्ञान के रूप में वर्णित किया गया है जिसमें पृथ्वी के ग्रहीय सम्बन्धों, भू-आकृतिकी, स्थलाकृति, पर्वतों, नदियों, जलवायु तथा ऋतु विज्ञान, वनस्पति वर्ग, जन्तुवर्ग, खनन कार्य, पशुपालन तथा कृषि कार्य, परिवहन मार्गों, नगरों तथा राजनीतिक प्रदेशों के वर्णन किये गये हैं। इस प्रकार वेदों में व्यवस्थित भौगोलिक ज्ञान का विवरण मिलता है।

2. **उपनिषदकालीन ग्रन्थ (1000 ई.पू. से 600 ई.पू.)**—इनमें प्रमुख रूप से इशोपनिषद्, कठोपनिषद्, इनमें वृहदारण्यक उपनिषद्, भौगोलिक जानकारी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उपनिषदों में भी प्रकृति (पृथ्वी) की रचना के बारे में लिखा गया है कि —

उस परमेश्वर और प्रकृति से आत्मान् (कारण—रूप—तत्त्व) तथा उससे आकाश (Space) उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तत्त्व, और जल से पृथ्वी की रचना हुई, जिस पर वनस्पति एवं अन्न उत्पन्न हुये।

वैदिक साहित्य में प्रस्तुत सृष्टि—क्रम वर्तमान विज्ञान की शोधों से समरूपता रखता है जिस परन केवल भारतीय विद्वानों वरन् विदेशी भूगोलवेत्ता भी विश्वास रखते हैं। इस सम्बन्ध में आर्थर होम्सने कहा है कि 'वैदिक काल में भारतीय हिन्दू विद्वानों का ज्ञान उच्च एवं समृद्ध था।'

चिरसम्मत काल (Classical Times)

चिरसम्मत काल या शास्त्रीय काल शब्द का उपयोग भूगोल के विकास क्रम के दो बार तथा दो अलग स्थानों के लिए किया जाता है – प्रथम चिरसम्मत काल का समय ई.पू. 600 वर्ष को लेकर 300 ई. तक का माना गया है। इस दौरान यूनानी व रोमन भूगोलवेत्ताओं के भूगोल के विकास में दिये गए योगदान को सम्मिलित किया जाता है। इस काल हो यूनानी रोमन विद्वानों ने उच्च कोटि के ग्रंथों की रचना की जिसके लिए इन्होंने भौगोलिक यात्रायें भी ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस समय पश्चिमी यूरोपीय देश पिछड़ी दशा में थे तथा यूनान व रोम से भी पहले भारत व चीन में भूगोल विकसित दशा में था। लेकिन जब पश्चिमी यूरोपीय देश विकसित दशा में आये तब भारत व चीन इनकी पहुँच से दूर थे। अतः इनका सम्पर्क नहीं हो पाया। अतः ऐसी दशा में पश्चिमी यूरोपीय देशों जिनका पूरी दुनिया में दब-दबा था। भूगोल के विकास का श्रेय यूनानी व रोमन भूगोलवेत्ताओं को दे दिया। जबकि वास्तविक विकास इनके पहले भारत में हो चुका था। जहाँ भारत वर्ष के मनीषियों ने अपने ग्रन्थों से पृथ्वी पर भौगोलिक परिघटनाओं के बारे में वर्णन कर चुके थे। जबकि इतिहास में भी इस बात का जिक्र किया गया है कि दुनिया में सबसे पहले सभ्यता व संस्कृति का विकास भारत की सरजमीन पर हुआ था।

द्वितीय चिरसम्मत काल आधुनिक चिरसम्मत काल है जिसका काल 18वीं सदी के उत्तरार्ध से 19वीं सदी के पूर्वार्ध (1770 से 1860) ईसवी तक माना जाता है। इस समय भौगोलिक ज्ञान को संगठित करके वैज्ञानिक रूप से विकसित करने का कार्य अलेक्जेंडर हुवान हम्बोल्ट तथा कार्ल रिटर को दिया जाता है।

प्राचीन यूनानी सभ्यता के शासकीय काल में यूनान (Greece) को हेलास (Hellas) तथा इस काल को हेलेनिक काल (Hellenic Period) कहा गया। इसकी अवधि 776 बी.सी. से 323 बी.सी. तक मानी जाती है। इसके बाद 323 बी.सी. से 27 बी.सी. तक रोमन शासन के काल को यूनानी काल या हेलेनिस्टिक काल (Hellenistic Period) कहा जाता है। मिस्र स्थित सिंकदरिया यूनानी संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था।

प्राचीन काल में भूगोल का विकास का श्रेय भले ही यूनानी व रोमन विद्वानों को दिया जाता है। परन्तु भूगोल को वैज्ञानिक रूप से संस्थापित करने का श्रेय आधुनिक चिरसम्मत काल के भूगोलवेत्ताओं को दिया जाता है क्योंकि प्राचीन काल के विद्वान भूगोलवेत्ता, दार्शनिकता की छवि अधिक रखते थे। साथ ही उस समय भूगोल एक स्वतंत्र विषय के रूप में भी विकसित नहीं हुआ था। वो सभी विषय के साथ सम्मिलित रूप वर्णित था।

1. होमर (Homer) 779 ई०पू०

सर्वप्रथम यूनानी महाकवि होमर ने अपने दो महाकाव्यों – इलियड व आडेसी में अनेक स्थलों पर प्रदेशों, मानव समुदाय या जनपदों भौगोलिक वर्णन की व्याख्या की। होमर ने उगते तथा अस्त होते सूर्य का विवरण देते हुए बताया कि सूर्य सुबह समुद्री धारा से निकलता है तथा सांयकाल पुनः उसी धारा में डूब जाता है। उन्होंने पृथ्वी को विशाल रूप से बहने वाली नदी से घिरा हुआ माना था। उन्होंने चार प्रकार की हवाओं का विवरण प्रस्तुत किया—

1. **बोरियस** –उत्तरी प्रदेश से चलने वाली अति ठण्डी पवन
2. **नोटस** –दक्षिण से प्रवाहित होने वाली तुफानी पवन
3. **जीफायडस** –पश्चिमी तुफानी पवन
4. **यूरुस** – पूर्वी गर्म एवं शान्त पवन

2. थेल्स (Thales of Miltus, 624-548 B.C.)

थेल्स उत्तरी आयोनिया में मियण्डर नदी (मिंडर्स) के मुहाने पर स्थित 'मिलेटस' (Miletus) नगर का निवासी था। मिलेटसवासियों ने काला सागर (Black Sea = Euxine) के एवं भूमध्य सागर तट के चारों ओर करीब 80 यूनानी बस्तियाँ बसाई थी। थेल्स प्रख्यात गणितज्ञ, दार्शनिक तथा व्यापारी था जिसने यूनान, मिस्र तथा समीपवर्ती देशों की यात्राएँ भी की थी। इन यात्राओं के दौरान अनेक अन्वेषण किये। मिस्र में नील नदी के डेल्टा का अध्ययन किया। थेल्स प्रथम यूनानी विद्वान था जिसने पृथ्वी की

सतह पर स्थित लक्षणों एवं वस्तुओं की अवस्थिति एवं मापन का कार्य किया।

3. एनेक्सीमेण्डर (Anaximander, 610-547 B.C.)

थेल्स का शिष्य एनेक्सीमेण्डर का जन्म मिलेटस नगर में हुआ था। ब्रह्माण्ड विज्ञान का अच्छा ज्ञान था तथा पृथ्वी की उत्पत्ति, आकृति आदि के बारे में विवरण प्रस्तुत किया था। इन्होंने सर्वप्रथम नोमोन नामक यंत्र का आविष्कार किया जिसकी सहायता से दोपहर की स्थिति का सही अनुमान लगाया जाता था। गणितीय आकलन के आधार पर मापनी पर **विश्व का प्रथम मानचित्र** बनाने का श्रेय प्राप्त है।

4. हेकैटियस (Hecataeus, 550-475 B.C.)

हेकैटियस का जन्म मिलेटस नगर में हुआ था। इन्होंने मिलेटस में स्कूल शिक्षा प्राप्त की तथा प्रारम्भिक समय में दार्शनिक एवं इतिहासकार के रूप में प्रसिद्ध रहे। इतिहास पर '**वंशावलियों का वर्णन**' (**Genealogies**) नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें प्राचीन यूनानियों की शौर्य गाथाओं का वर्णन कविता के रूप में किया। इनकी दूसरी पुस्तक '**जेसपीरियोडस**' (**Gesperiodus**) थी। '**Periodus**' का शाब्दिक अर्थ है – 'पृथ्वी का वर्णन'। इस पुस्तक का दूसरा नाम '**डिस्क्रिप्शन ऑफ दि अर्थ**' (**Description of the Earth**) था। इसमें विश्व का प्रादेशिक विवरण दिया गया था। इस आधार पर हेकैटियस को ही प्रादेशिक भूगोल का संस्थापक माना जा सकता है। इस पुस्तक में विश्व के बारे में उपलब्ध भौगोलिक ज्ञान को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया।

हेकैटियस की 'जेसपीरियोडस' नामक पुस्तक दो खण्डों में प्रकाशित हुई थी। प्रथम खण्ड में यूरोपीय देशों – सिसली, साइप्रस, स्पेन, इटली, काला सागर तथा यूनानी नगरों की विस्तृत विवेचना की गई थी। यूरोप में प्रवाहित नदियों, टैनेस (डान), ईस्टर (डैन्यूब) तथा और दो नदियों के बारे में भी वर्णन किया गया है। इन्होंने कैस्पियन सागर का नाम बदलकर हिरसेनियन कर दिया था। इसी प्रकार यूरोपियन रूस को **स्कीशिया** तथा पश्चिमी यूरोप को **कैल्ट** नाम दिया। इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में ही काकेशस पर्वत के उत्तर में निवास करने वाली मेलन चलेनी, दण्डराजी, मगयार (हंगरी) तथा स्कीथियन जनजातियों का विस्तृत भौगोलिक विवरण दिया गया है।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों का विवरण प्रस्तुत किया है। हेकैटियस को यूरोप की तरह एशिया के बारे में भी पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने एशिया में विशेष रूप से ईरान तथा भारतवर्ष के बारे में जानकारी प्रस्तुत की, जिसमें यहाँ की जनजातियों तथा नदियों का विवरण दिया। उन्होंने सिन्धु तथा दजला-फरात को एशिया की प्रमुख नदियाँ बताईं। अफ्रीका को लिबिया के नाम से वर्णित किया। यहाँ की नील नदी एवं उसके तटवर्ती नगर कार्थेज के बारे में लिखा। पृथ्वी को तश्तरीनुमा मानते हुए एक विश्व का मानचित्र भी बनाया। उन्होंने बताया कि पृथ्वी तश्तरी के आकार में वृत्ताकार है जो चारों ओर से महासागरीय जल से घिरी है। इस मानचित्र में सर्वप्रथम एशिया, लिबिया तथा यूरोप को दर्शित किया।

5. हेरोडोटस (Herodotus, 484-425 B.C.)

हेरोडोटस का जन्म ई.पू. 484 में इशिया माइनर (टर्की) के दक्षिण पश्चिम में स्थित हेलिकारनेसस नगर में हुआ था। यह नगर प्रमुख शिक्षा केन्द्र मिलेटस के निकट था। हेरोडोटस एक धनी, कुलीन परिवार का सदस्य था, जिस कारण विशेष सम्मानित नागरिक माना गया था। उसके विचार अपने क्रान्तिकारी चाचा से काफी प्रभावित थे। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण प्रारम्भिक समय में फारस साम्राज्य द्वारा आलोचना का शिकार भी होना पड़ा तथा अन्त में शासकीय आदेश में अपनी जन्म-भूमि भी छोड़नी पड़ी। 'हेरोडोटस ने लिखा था कि "सम्पूर्ण इतिहास को भौगोलिक रूप से समझना चाहिए तथा सम्पूर्ण भूगोल को ऐतिहासिक रूप से निरूपित करना चाहिए।"

भ्रमण एवं अन्वेषण (Jorney and Investination)

हेरोडोटस को प्राचीन काल का महान यात्री एवं अन्वेषक माना जाता है। इन्होंने 20 वर्षों तक ज्ञात विश्व के अनेक भागों का भ्रमण किया। यूरोपीय देशों में यूनान, इटली, सिसली तथा भूमध्यसागरीय द्वीपों, मिस्र, एजियन सागर तट बेबीलोन, सूसा, असीरिया आदि देशों का भ्रमण कर भौगोलिक विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने

सर्वप्रथम मिस्र की यात्रा की जहाँ नील नदी को देखा। नील नदी के मुहाने का अध्ययन कर सर्वप्रथम 'डेल्टा' शब्द प्रस्तावित किया। उन्होंने ही कहा था कि **"मिस्र नील नदी की देन है।"** एशिया तथा अफ्रीका के मध्य स्थित लाल सागर का वर्णन प्रस्तुत किया। यात्रा करते समय विभिन्न प्रदेशों की भौगोलिक जानकारियाँ एकत्रित कर उनका विस्तृत विवरण दिया था। इनमें सिथियन निवासियों एवं काला सागर के उत्तरी तटीय क्षेत्र, डान घाटी, स्टेपीज प्रदेश, यूराल पर्वत, काकेशस पर्वत, कैस्पियन सागर के बारे में लिखा है। उन्होंने अपनी कालासागर की यात्रा के दौरान बोसफोरस एवं मारमारा जलडमरूमध्य पार किये थे। स्थल मार्ग द्वारा फारस, एशिया, बेबीलोन तथा एशिया माइनर की यात्रा की थी। हेरोडोटस ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष यूनानी सेना में रहकर बिताये तथा इस दौरान एथेन्स के एक उपनिवेश थुराई में रहे, जहाँ इन्हें गवर्नर बनाया गया।

रचनाएँ (Literary Works)

हेरोडोटस की प्रारम्भ से ही साहित्य में रुचि होने के कारण उन्होंने अपने समय के काव्य एवं साहित्य का अध्ययन किया तथा लेखन कार्य को आगे बढ़ाया। ये सर्वप्रथम इतिहासकार के रूप में लिखने लगे थे। जब मानव जातियों का अध्ययन किया तथा भौगोलिक विवरण लिखे। उन्होंने जिन क्षेत्रों की यात्रा की थी, उनका ऐतिहासिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक, भौगोलिक तथा धार्मिक विवरण विस्तृत रूप से लिखा है।

उन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक **'हिस्टेरोग्राफी' (Historiography)** लिखी, जिसमें ऐतिहासिक एवं भौगोलिक तथ्यों का सम्मिलित समावेश है। इसमें नदियों, नहरों, पर्वतों, पठारों, विश्व की प्रमुख बस्तियों, विभिन्न प्रदेशों की स्थिति, विस्तार, उनके निवासियों के क्रियाकलापों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। अतः वह अपने समय के ऐतिहासिक भूगोलवेत्ता रहे थे। उनकी पुस्तक 'इतिहास' में एक-तिहाई से अधिक भौगोलिक तथ्यों को सम्मिलित किया गया है। ऐतिहासिक तथ्यों का व्यवस्थित क्रम में उल्लेख सर्वप्रथम हेरोडोटस ने ही किया था जिस कारण इनको **'इतिहास का पिता'** कहा गया।

हेरोडोटस ने तीन महाद्वीपों, एशिया, लिबिया एवं यूरोप की 20 वर्षों तक लम्बी यात्रा करके विभिन्न प्रकार की भौगोलिक सूचनाएँ एकत्रित कर विस्तृत विवरण लिखा जिस कारण उन्हें इतिहास का पिता होते हुए भी यूनान काल का प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता माना गया। उसने जिन प्रदेशों का भ्रमण किया उनके मानचित्र भी बनाये। उन्होंने विभिन्न विषयों का अध्ययन किया, लेकिन व्यवस्थित अध्ययन किसी का भी नहीं किया। अतः उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार हेरोडोटस ने पाइथागोरस द्वारा बताई गई पृथ्वी की गोलाभ **(Spherical)** आकृति को स्वीकार नहीं किया।

हेरोडोटस ने पृथ्वी की आकृति गोलाभ या वृताकार बताने वालों की आलोचना की तथा साथ ही पूर्व में पृथ्वी के चारों ओर सागरनुमा नदियाँ बताने वालों का भी विरोध किया। उन्होंने पृथ्वी को चपटी माना है। उनके अनुसार भूमध्यसागर पृथ्वी के मध्य है, जिसके दोनों ओर बराबर भूमि का विस्तार है। उन्होंने बताया कि पृथ्वी के चपटे आकार के कारण ही पूर्वी भाग सूर्य के अधिक समीप रहता है, जिसके कारण भारत तथा समीपवर्ती देशों में प्रातः काल में सूर्य की तेजी रहती है। हेरोडोटस ने पृथ्वी पर जल, स्थल, नदियों तथा अन्य लक्षणों आदि के वितरण में समानता बताई है। इसी आधार पर बताया कि इस्टर तथा नील नदी के मुहाने आमने-सामने हैं। उन्होंने मिस्र, सिलिसिया, सिनोप एवं इस्टर को एक काल्पनिक रेखा से जोड़कर इनकी स्थिति एवं दिशा को स्पष्ट करने का प्रयास किया।

प्रादेशिक भूगोल (Regional Geography)

हेरोडोटस ने अपने समय तक के ज्ञात विश्व का मानचित्र बनाया जिसमें भूमध्य सागर को पृथ्वी के मध्यवर्ती भाग में मानते हुए इसके समीपवर्ती भागों में विश्व के निम्नलिखित तीन प्रदेशों को दर्शाया था—

1. एशिया **(Asia)**,
2. लीबिया **(Libya)** या अफ्रीका, तथा
3. यूरोप **(Europe)**।

1. एशिया (Asia)

हेरोडोटस को भूमध्यसागरीय एशिया के अतिरिक्त शेष भागों की जानकारी कम थी। फारस का साम्राज्य

पश्चिमी मिस्र से लेकर पूर्व में सिन्धु नदी तक विस्तृत था। ये सम्पूर्ण साम्राज्य 20 प्रशासनिक प्रान्तों में विभक्त था। इनको एशिया माइनर के बारे में पर्याप्त जानकारी थी। यहाँ प्रवाहित होने वाली मियेन्डर नदी (मुख्यतः टर्की में) में बनने वाले विसर्पो (**Meanders**) का भी अध्ययन किया। हेरोडोटस के अनुसार फारस साम्राज्य के उत्तर में **पोण्टस यूक्साइन (काला सागर)** एवं **केस्पियन सागर** स्थित है। इस प्रदेश में **अरेक्सस (Araxes)** नदी पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है। उन्होंने एशिया माइनर से फारस की खाड़ी तक एक शाही सड़क का भी वर्णन किया है। ये सड़क 13500 स्टेडिया लम्बी थी, जो सार्डिस से सूसा तक जाती है। हेरोडोटस ने अपने मानचित्र में एशिया को वास्तविक आकार से छोटा दर्शाया है, क्योंकि वह यूरोप तथा एशिया के उत्तरी भाग से अनभिज्ञ था। उन्होंने फारस साम्राज्य को बीस **प्रान्तों या Satrapies** में विभक्त किया। इनके नाम वहाँ की जातियों या नदियों के आधार पर रखे थे, ये निम्नलिखित हैं :-

1. हारस एवं सिलिसियन (Cilician) देश
2. माइसियन एवं लिडियन
3. आयोनिया (Ionia) – यहाँ यूनानी बस्तियाँ पास-पास पायी जाती थीं
4. हेलिस्पोंटियन (HelisPontian) – आयोनिया का उत्तरी तटीय भाग तथा पूर्वी यूक्साइन (काला सागर)
5. हरिया (फोनिशिया एवं पेलेस्टाइन सहित)
6. मिस्र
7. गन्धार (वर्तमान अफगानिस्तान)
8. केन्द्रीय प्रान्त (राजधानी सूसा का निकटवर्ती भाग)
9. बेबीलोन एवं एसिरिया के शेष भाग
10. मेडिया
11. केस्पियन
12. बेक्ट्रिया (फारस एवं सिन्धु के मध्य का भाग)
13. आरमेनिया – यूक्साइन (कालासागर) का तटवर्ती सस्पिरियल जाति का देश
14. माइसिया (पाकिस्तान का मकरान तट एवं निकटवर्ती भाग)
15. स्कथियावासी (वर्तमान यूक्रेन)
16. एशियाई इथोपियन (सिन्धु से फारस की खाड़ी का तटीय भाग)
17. परसिया (मध्यवर्ती फारस या ईरान)
18. सस्पिरियन एवं एलारोडियन (वर्तमान जार्जिया का भाग है)
19. उत्तरी काकेशस अठारहवें प्रान्त उत्तरी समीपवर्ती देश (केस्पियन सागर तथा कालासागर के मध्यका भाग)
20. भारत (उत्तरी-पश्चिमी भारत का पश्चिमी भाग)।

हिन्द महासागर (Indian Ocean)- हेरोडोटस के अनुसार दक्षिणी एशिया के तट पर अरब की खाड़ी (लालसागर) से लेकर सिन्धु के मुहाने तक इरेथ्रियन (हिन्द महासागर) का विस्तार था। उन्होंने इरेथ्रियन सागर का विवरण देते समय फारस की खाड़ी का उल्लेख कहीं नहीं किया है।

भारत (India)- हेरोडोटस को भारत के बारे में स्पष्ट ज्ञान नहीं था। उन्हें भारत के बारे में अनेकभ्रम थे। उन्होंने बताया कि भारतीय धनी हैं। यहाँ पर नदी की रेत एवं खानों से सोना निकालते हैं। भारत में एक ऐसा

पौधा है, जिसके फूलों से बुने हुए वस्त्र बनाते हैं। चींटियों के बिलों से भी सोना निकलता है।

2. लिबिया या अफ्रीका (Libya or Africa)

यूनान एवं रोमन काल में अफ्रीका को लिबिया के नाम से जानते थे। स्वयं हेरोडोटस ने इसके उत्तरी भागों तथा नील नदी घाटी के प्रथम झरने तक की यात्रा की थी। नील के डेल्टा का विस्तृत अध्ययन किया। उन्होंने यह भी बताया था कि **मिस्र नील नदी की देन (Egyptis the gift of Nile)** है। उन्होंने ही सर्वप्रथम अरब की खाड़ी (अब लालसागर) को एशिया एवं लीबिया की सीमा बताया था जबकि इससे पूर्व नील नदी को इन दोनों प्रदेशों की सीमा माना था। हेरोडोटस ने मिस्र के महान् शासक फारोह निकोलस के शासन काल में एक साहसिक समुद्री यात्रा की थी जिसके अन्तर्गत उन्होंने अरब की खाड़ी (लाल सागर) से लेकर पूरी अफ्रीका के चक्कर लगाकर हरक्यूलिस पिलर्स (जिब्राल्टर) से हो कर भूमध्यसागर पहुँचा था।

3. यूरोप (Europe)

हेरोडोटस में यूरोप को एशिया से बड़ा बताया। उनके अनुसार यूरोप का विस्तार पश्चिम में हरक्यूलिस (Pillars of Hercules) से प्रारम्भ होकर भूमध्यसागर, काला सागर (पोण्टस यूक्साइन) केस्पियन सागर, ओक्सस (Araxes) नदी को उत्तरी सीमा के सहारे सुदूर पूर्व तक है। यूक्साइन, केस्पियन सागर, ईस्टर नदी (डेन्यूब), स्कितिया एवं उसके समीपवर्ती भागों का उन्हें अपने अनुभव के साथ ज्ञान प्राप्त किया था। हेरोडोटस ने स्कितिया (वर्तमान यूक्रेन) की यात्रा की थी। वे कालासागर (Pontus Euxine) के तट पर स्थित **सामोस** नामक यूनानी बस्ती में आठ वर्ष बिताये।

6 अरस्तू (Aristotle, 384-322 B.C.)

अरस्तू दार्शनिक होने के साथ-साथ तर्कशास्त्री तथा राजनीतिशास्त्री तथा जीव-विज्ञानी भी थे। इनका जन्म यूनान में 384 ई.पू. में एजियन सागर के तट पर स्टेगेरिया (Stageria) में हुआ था। अरस्तू ने स्वतंत्र रूप से भूगोल पर कोई पुस्तक नहीं लिखी, लेकिन अपनी यात्राओं द्वारा ज्ञात विश्व का विवरण लिखा। उनके द्वारा संगृहीत भूगोल सम्बन्धी अधिकांश विवरण उनके दो ग्रन्थों ब्रह्माण्ड वर्णन (Treatise on the Heavens) एवं जलवायु विज्ञान (Meteorologica) में मिलते हैं। तापमान के आधार पर अरस्तू ने पृथ्वी को तीन कटिबंधों में विभाजित किया—

- i. उष्ण कटिबंध (Tropical zone)
- ii. शीतोष्ण कटिबंध (Temperate zone)
- iii. शीत कटिबंध (Cold Tropics zone)

7 थियोफ्रेस्टस (Theophrastus of Eresos, 372-288 B.C.)

थियोफ्रेस्टस महान् दार्शनिक अरस्तू के शिष्य थे। जिन्होंने अरस्तू के भौगोलिक कार्यों को आगे बढ़ाया। इन्होंने जलवायु विज्ञान के सम्बन्ध में अपने विचार लिखे तथा जलवायु एवं वनस्पति के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण किया। शैलों और मृदाओं का अध्ययन किया। थियोफ्रेस्टस ने पादपों का इतिहास (History of Plants) नामक पुस्तक भी लिखी, जिसमें मैसीडोनिया के मैदानी क्षेत्र, समीपवर्ती पर्वतीय प्रदेश तथा क्रीट की वनस्पति का तुलनात्मक विवरण दिया। अतः वनस्पति भूगोल का प्रारम्भ यही से माना जाता है। इन्हें वनस्पति विज्ञान का जनक (Father of Botany) कहा जाता है।

8 इरेटोस्थनीज (Eratosthenese of Cyrene, 273-192 B.C.)

इरेटोस्थनीज का जन्म 276 ईसा पूर्व (B.C.) लीबिया के प्रमुख शहर सिरीन (Cyrene) में हुआ, जब यह यूनानियों के अधीन था। इन्होंने एथेन्स तथा सिरीन नगरों में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इरेटोस्थनीज को प्रारम्भ से ही खगोलशास्त्र (Astronomy), गणित, भूगोल एवं दर्शनशास्त्र में गहरी रुचि थी। उसके जीवन का अधिकांश समय सिकन्दरिया (अलेक्जेंड्रिया) की लाइब्रेरी में बीता। यहीं 234 B.C. में मिस्र के शासक टॉलेमी ने उसे पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। यहाँ कार्यरत रहते हुए उन्होंने अनेक प्रेक्षण (Observations) किये तथा यहीं पर गणित, नक्षत्र विद्या तथा प्रादेशिक भूगोल

पर ग्रन्थ लिखे। उन्होंने गणित के अतिरिक्त भूगोल पर 'ज्योग्राफिया' (Geographia) ग्रन्थ लिखा जिसमें उसने प्रथम बार गणितीय आधार पर भूगोल का विवरण प्रस्तुत किया। ग्लोब पर प्रमुख अक्षांश-देशान्तरों की स्थिति निर्धारित की। इरेटोस्थनीज ने ही सर्वप्रथम ऐसा मानचित्र बनाया जिसमें अक्षांश-देशान्तर रेखायें खींची तथा जिस पर ज्ञात विश्व की लम्बाई एवं चौड़ाई अंकित की गई थी। 'भूगोल' (Geography) शब्द का प्रथम बार प्रयोग इन्होंने ही किया था। इसलिए मार्टिन ने इरेटोस्थनीज की भूगोल का जनक (Father of Geography) कहा है।

भूगोल को देन (Contribution to Geography)

इरेटोस्थनीज का प्रमुख योगदान भूगोल को गणितीय आधार प्रदान करना रहा। प्रेक्षण (Observation), सर्वेक्षण एवं उनके परिणामों के आधार पर स्थिति निर्धारण तथा गणना को अंकित करने की विधि उनकी अनुपम देन है। इरेटोस्थनीज के द्वारा अक्षांश-देशान्तर खींचकर मानचित्र बनाने की विधि को अनेक भूगोलवेत्ताओं ने आधार बनाया। इन्होंने आज से 2250 वर्ष पूर्व अत्यन्त सीमित साधनों के साथ आधुनिक सिद्धान्तों पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात की।

पृथ्वी की परिधि की गणना (Measurement of the Circumference of the Earth)

इरेटोस्थनीज ने सर्वप्रथम विभिन्न आँकड़ों को संगृहीत करके उनके आधार पर पृथ्वी के आकार एवं परिधि को दर्शाया तथा पृथ्वी की आकृति गोल (Round) बतलाया। इस आकृति के आधार पर दो स्थानों—अस्वान तथा सिकन्दरिया पर सूर्य घड़ी नोमोन (Gnomon) के माध्यम से सूर्य किरणों से कोण मापने का कार्य किया। सिकन्दरिया और अस्वान दोनों ही स्थान मिस्र के सीन (Syene) क्षेत्र में स्थित थे। इनके बारे में इरेटोस्थनीज ने स्पष्ट किया कि सिकन्दरिया तथा सीन एक ही देशान्तर रेखा पर स्थित हैं। इनके मध्य की दूरी 5000 स्टेडिया (Stadia or Stades)* है। सीन कर्क रेखा पर स्थित है, जहाँ पर सूर्य की किरणें जून माह में लम्बवत् पड़ती हैं। इरेटोस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि को मापने के लिए मिस्र के अस्वान क्षेत्र के सीन नामक स्थान का चयन किया। सीन में एक कुएँ को चुना गया, जिसमें 21 जून को दोपहर के समय सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ती थीं, जिस कारण पानी में सूर्य की परछाई दिखती थी। इरेटोस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि को मापने के लिए इस कुएँ का प्रयोग किया। उन्हें यह ज्ञात था कि इस कुएँ में जून में (20-22 जून) सूर्य की किरणें नीचे तलीय भाग तक पहुँच जाती हैं। इसी अवस्था में सीन स्थान पर सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ती हैं जबकि इसके विपरीत दूसरे स्थान सिकन्दरिया पर ये सूर्य की किरणें कोणीय झुकाव पर रहती हैं।

स्पष्ट है, दोनों स्थानों के मध्य सूर्य की किरणों का कोण $7^{\circ}12'$ रहा जो पूर्ण वृत्त की परिधि का $7/50$ वाँ भाग है। पूर्ण वृत्त की परिधि 360° है तथा इसका $1/50$ वाँ भाग $7^{\circ}12'$ 360° है। ये अन्तर ($7^{\circ}12'$) 5000 स्टेडिया जो पूरी परिधि का $1/50$ वाँ भाग था। अतः सम्पूर्ण परिधि (या विषुवत् रेखीय लम्बाई) = $5000 \times 50 = 250,000$ स्टेडिया (25000 मील) हुई। बाद में इरेटोस्थनीज ने इस गणना को अनुमान मानते हुए तथा परिकलन में सुविधा के लिए इसे बढ़ाकर 25200 मील कर दिया था। ये मापन 14 प्रतिशत अशुद्ध पाया गया। आधुनिक परिष्कृत यंत्रों द्वारा किये गये मापन के उपरान्त यह लम्बाई 24899 मील रही। यह गणना निम्न कारणों से अशुद्ध रही—

- i. सिकन्दरिया एवं सीन के मध्य की दूरी 5000 न होकर 4530 स्टेडिया है।
- ii. पृथ्वी की परिधि के $1/50$ वाँ भाग हेतु सिकन्दरिया तथा सीन दोनों नगरों के मध्य का $7^{\circ}12'$ भाग जो वास्तव में $7^{\circ}30'$ रहना चाहिए।
- iii. सिकन्दरिया तथा सीन वास्तविक रूप में एक ही देशान्तर पर स्थित नहीं हैं। वरन् इनकी स्थिति में $3^{\circ}3'$ का देशान्तरीय अन्तर है। सीन सिकन्दरिया से $3^{\circ}3'$ का अधिक पूर्व में स्थित है।
- iv. सीन को इरेटोस्थनीज ने कर्क रेखा पर स्थित माना लेकिन वास्तविक रूप से यह कर्क रेखा पर स्थित न होकर $24^{\circ}5'30''$ उत्तरी अक्षांश पर स्थित है। अतः ये कर्क रेखा से $35'$ उत्तर में स्थित है जहाँ सूर्य की किरणें लम्बवत् नहीं गिरती हैं।

विश्व का मानचित्र (Map of the World)— इरेटोस्थनीज ने 220 ई. पू. में ज्ञात विश्व का मानचित्र

बनाया। इसमें सिकन्दर महान् (Alexander the Great) तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा एकत्रित भौगोलिक ज्ञान को दर्शाया गया था। यह मानचित्र अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं के जाल के ऊपर बना था जिसमें 7 अक्षांश तथा 7 देशान्तर रेखाएँ निरूपित की गई थीं। इस मानचित्र में भारत तथा अफ्रीका को वास्तविक क्षेत्र से छोटा दिखाया गया है। इसमें ब्रिटेन सहित यूरोप, एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका को भी दर्शाया है। इस मानचित्र के दक्षिणी-पश्चिमी दिशा में अफ्रीका को विस्तार से दर्शाया है, जिसका आधार 'हानो (Hanno)' की अफ्रीकी यात्रा को माना है हानो ईसा पूर्व (B.C.) पाँचवीं शताब्दी में एक कार्थेज का नाविक था, जिसने उत्तमासा के अन्तरीप मार्ग से अफ्रीका की साहसिक यात्रा की थी। इस यात्रा का वर्णन हानो ने 'पेरीप्लस' (Periplus) नामक ग्रन्थ में दिया है।

विश्व मानचित्र में दर्शाये गये अक्षांशों के नाम दक्षिण से उत्तर की ओर क्रमशः सिनामोन, मेरोय, सायेन, सिकन्दरिया, रोड, ट्रॉड, बोरिस्थनीज का मुहाना तथा यूल आदि हैं। इसी प्रकार देशान्तरों के नाम पश्चिम से पूर्व में क्रमशः हरक्यूलिस स्तम्भ (जिब्राल्टर), कार्थेज, सिकन्दरिया, दजला, कैस्पियन द्वार, सिन्धु एवं गंगा का मुहाना थे। ये अक्षांश देशान्तर शुद्ध नहीं थे। उन्होंने पृथ्वी तल के वास्तविक क्षेत्र के बारे में बताया कि पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी भाग की अपेक्षा पश्चिमी पूर्वी दिशा में मानव के रहने के योग्य भूमि अधिक है। एशिया के बारे में उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनके अनुसार एशिया में एक विशाल पर्वत श्रृंखला है, जिसका नाम माउण्ट टॉरस बताया है। फिलिस्तीन क्षेत्र में टॉरस पर्वतों की स्थिति बताते हुए यह स्पष्ट किया कि ये लगातार श्रृंखलाबद्ध रूप में मध्य एशिया से पूर्व दिशा की ओर आर्मीनिया, टॉरस, कुर्दिस्तान, अल्बुर्ज तथा भारत के हिमालय से संयोजित है। इरेटोस्थनीज ने हिमालय पर्वत को ईमोस कहा, जो गंगा का स्रोत है। श्रीलंका को इस समय तप्रोबन (Taproban) नाम से जानते थे। इरेटोस्थनीज ने श्रीलंका के मानचित्र को वास्तविक आकार से काफी बड़ा दर्शाया है।

9. **पॉलिबियस (Polybius, 205-125 B.C.)** इनकी रुचि भौतिक भूगोल में अधिक थी। इन्होंने नदियों द्वारा घाटियों के अपरदन, बाढ़ों तथा निक्षेप द्वारा डेल्टा निर्माण का वर्णन किया है।
10. **हिप्पारकस (Hipparchus, 180&127 B-C-)** हिप्पारकस एक खगोलशास्त्री था, जिसने विषुवत् (Equinox) की स्थिति का पता लगाया तथा वर्ष अवधि बतायी तथा साथ ही अक्षांश देशान्तरों के रेखा जालों में मानचित्र बनाये। अक्षांश देशान्तर की सहायता से किसी स्थान विशेष को निर्धारित करने का सर्वप्रथम कार्य भी इन्होंने ही किया हिप्पारकस ने नक्षत्रों के बोध के लिए चक्रयंत्र **एस्ट्रोलैब (Astrolabe)** का आविष्कार किया तथा नक्षत्रों की एक सूची बनायी। वे असीरियन अंकगणित के आधार पर वृत्त को 360° में विभाजित करने वाले प्रथम व्यक्ति बने तथा विषुवत् रेखा तथा 0° देशान्तरीय वृत्त को वृहत् वृत्त (Great Circle) बताया। साथ ही यह भी बताया कि जैसे-जैसे विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हैं, तो अक्षांशों की लम्बाई कम होती जाती है। पृ प पश्चिमी दुनिया में ग्लोब के प्रयोग को प्रथम बार सुझाया था।
11. **पोसिडोनियस (Posidonius, 135&50 B-C-)** पोसिडोनियस ने भौतिक भूगोल को तर्कसंगत विधि से विकसित करने का सहायनीय कार्य किया है, उसे 'भौतिक भूगोल का पिता' कहते हैं। पृथ्वी की परिधि की गणना की जो इरेटोस्थनीज से कम थी। उसकी निरीक्षण क्षमता भी अद्भुत थी। उसने क्रमबद्ध रूप से ज्वार भाटा, पृथ्वी की परिधि की लम्बाई, महासागरों की गहराई, यूरोप के दक्षिण तटवर्ती तथा आन्तरिक भागों की आबादी के लक्षण, मैदानों के निर्माण एवं दक्षिणी फ्रांस में मिलने वाले छोटे-छोटे गोलाशमों का बहुत सूक्ष्म दृष्टि से प्रेक्षण किया। उसने सावधानीपूर्वक प्रेक्षण कर बताया कि अमावस्या अथवा पूर्णिमा के आसपास ज्वार सबसे ऊँचा (दीर्घ ज्वार) आता है। उन्होंने बताया था कि उच्च तापमान भूमध्यरेखा पर नहीं वरन् उष्ण कटिबन्धों के पास होता है।

1.5. रोमन भूगोलवेत्ता

प्राचीन चिरसम्मत काल में यूनानी तथा रोमन भूगोलवेत्ताओं के कार्य उल्लेखनीय रहे हैं। रोमन सभ्यता वाले देश यूनान के पश्चिम में स्थित थे। इसका प्रमुख केन्द्र रोम नगर इटली प्रायद्वीप में स्थित था। यहीं से रोमन सभ्यता विकसित हुई। इटली की प्रमुख नदी टाइबर नदी के किनारे रोम स्थित है। यह नदी इटली के मध्यवर्ती भाग से प्रवाहित होती है। यह नगर देश का प्रमुख धार्मिक केन्द्र भी था। इटली की स्थिति भूमध्यसागर

में स्थित एड्रियाटिक सागर (पूर्व में), टिरेनियन सागर (पश्चिम में), एवं भूमध्यसागर (दक्षिण में) के मध्य है। ईसा पूर्व 201 से 168 ई. के दौरान यूरोप में रोमन शासकों का शासन विभिन्न क्षेत्रों में फैला हुआ था। इन्होंने भूमध्यसागरीय क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया था। अतः विस्तृत साम्राज्य के कारण इनका सम्पर्क एशिया से भी हो गया था। इनका साम्राज्य पाँचवीं शताब्दी तक रहा। इस दौरान उत्पन्न होने वाले भूगोलवेत्ता यूनान, मिस्र तथा एशिया माइनर में रहने वाले थे, लेकिन इन देशों के भूगोलवेत्ताओं के कार्य एवं योगदान रोमन शासकों के अनुसार किये गये थे, जिस कारण इन्हें रोमनकालीन भूगोलवेत्ता कहा जाता है। प्राचीन तथ्यों से ज्ञात हुआ है कि रोमन भूगोलवेत्ता एक सीमा तक यूनानी भूगोलवेत्ताओं के कार्यों पर आधारित रहे। इस युग में भौगोलिक चिन्तन का इतिहास एड्रियाटिक सागर रोम सिकन्दरिया शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था जहाँ ज्ञात क्षेत्रों की भौगोलिक जानकारी संग्रहित थी। यहाँ अनेक रोमनवासी अध्ययन करने आते थे। इनकी कार्य पद्धति तथा दार्शनिकता यूनानियों से भिन्न थी। क्योंकि यूनानी विद्वानों की विचारधारा दार्शनिक एवं वैज्ञानिक थी जबकि रोमन विद्वानों की पद्धति व्यावहारिक थी। स्पष्ट है, प्रारम्भ में रोमवासी व्यापारिक एवं प्रशासनिक समस्याओं को हल करने तथा सैनिक विजय की योजना बनाने में व्यस्त रहे, जिसके फलस्वरूप रोमवासियों का सिद्धान्त की अपेक्षा क्रियात्मक पक्ष मजबूत रहा। रोमन भूगोलवेत्ताओं का प्रमुख योगदान ऐतिहासिक, प्रादेशिक, जनसंख्या तथा भौतिक भूगोल में माना जाता है। ये विद्वान् कल्पना के बजाय धरातलीय क्षेत्रों की जानकारी प्रदान करते पर अधिक बल देते थे, क्योंकि ये सिद्धान्त के बजाय क्रिया तथा प्रयोग में अधिक रुचि रखने थे। इनका अध्ययन तथा शोध कार्य रोमन साम्राज्य और उनकी सैनिक गतिविधियों तथा व्यापार से प्रभावित रहा है। जिस कारण इनका झुकाव भौतिक भूगोल की अपेक्षा मानव भूगोल पर अधिक रहा है। प्रमुख रोमन भूगोलवेत्ता निम्नलिखित हैं—

स्ट्रेबो (Strabo, 64 B.C. to 20 A.D.)

स्ट्रेबो का रोमन भूगोलवेत्ताओं में प्रमुख स्थान रहा है। इनका जन्म टर्की के आमासया क्षेत्र में हुआ था लेकिन इनका अधिकांश जीवन रोम में व्यतीत हुआ। इन्होंने अलेक्जेंड्रिया में रहकर अनेक कार्य किये तथा यूनानी भाषा में प्रकाशित किया। ये ही प्रमुख भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने रोमन होते हुए भी यूनानी भाषा में ग्रंथ लिखे।

भौगोलिक विश्वकोश

स्ट्रेबो ने अपनी लगन और मेहनत से उसके समय में बसे हुए संसार (Oikoumene) के जितने भागों का उसे ज्ञान था उसका वर्णन 17 पुस्तकों में विस्तृत एवं संकलित रूप से प्रस्तुत किया था, जिसे भौगोलिक विश्वकोश कहते हैं। भौगोलिक विश्वकोश में स्ट्रेबो ने भूगोल का विस्तृत एवं व्यापक अध्ययन किया है तथा भूगोल की सभी स्तरों पर विस्तृत व्याख्या की गयी है। स्ट्रेबो ने अपनी भौगोलिक विश्वकोश को रचना यूनानी भाषा में की थी तथा यह ग्रन्थ उसके स्वयं के सम्पूर्ण भौगोलिक ज्ञान के आधार पर लिखित था। प्राचीन चिरसम्मत भूगोल स्ट्रेबो ने अपने भौगोलिक विश्वकोश के प्रथम दो खण्डों में सम्पूर्ण विश्व के उस समय के ज्ञात भाग का वर्णन तथा सामान्य भूगोल की विभिन्न संकल्पनाओं तथा विधियों का विस्तृत वर्णन किया है। तीसरे से दस खण्डों तक यूरोप महाद्वीप तथा ग्यारहवें से सोलह खण्डों में एशिया तथा अन्तिम खण्ड में अफ्रीका महाद्वीप को सामान्य जानकारी, जनसंख्या, स्थलाकृति आदि का विशद वर्णन किया गया है।

स्ट्रेबो ने इरेटोस्थनीज के मानचित्रों का ज्ञान प्राप्त करके उनसे शुद्ध मानचित्रों का निर्माण किया। सर्वप्रथम स्ट्रेबो ने भूमध्य सागरीय भाग का मानचित्र बनाया था। स्ट्रेबो ने अपने मानचित्र में आइबेरियन प्रायद्वीप, यूनान तथा एड्रियाटिक सागर के शुद्ध आकार एवं आकृति में परिवर्तन करके उनके आकार में अपने अनुभव के आधार पर संशोधन किया। स्ट्रेबो ने अपने मानचित्र में आयरलैण्ड को ब्रिटेन के उत्तर में स्थित बताया है। स्ट्रेबो ने यूरोप, अफ्रीका और एशिया महाद्वीप के मानचित्रों का निर्माण किया था। लेकिन जो गलतियाँ उसके पहले के भूगोलवेत्ताओं ने की, वही गलती स्ट्रेबो ने मानचित्र निर्माण में की स्ट्रेबो ने यूरोप महाद्वीप के मानचित्र का निर्माण कुछ परिशुद्धता व परिवर्तन के साथ किया।

भौगोलिक विश्वकोश के 17 खण्ड स्ट्रेबो ने अपने भौगोलिक ग्रन्थ की रचना 17 खण्डों में की थी जिसके प्रत्येक खण्ड में पृथ्वी के उस समय के ज्ञात भाग का भौगोलिक वर्णन है। इनका विवरण निम्नलिखित है—

खण्ड 1 व 2 स्ट्रेबो ने अपने ग्रन्थ के प्रथम दो खण्डों में विश्व भूगोल तथा सामान्य भूगोल के बारे में विस्तृत जानकारी दी है।

तीसरा खण्ड—इस खण्ड में यूरोप महाद्वीप के विभिन्न देशों, विशेषकर गाल (फ्रांस), स्पेन और ब्रिटेन का वर्णन किया गया है।

चौथा खण्ड—इसमें फ्रांस, ब्रिटेन, आल्पस आदि की स्थिति, आकार आदि का वर्णन किया है।

पाँचवाँ, छठा खण्ड—इसमें इटली, सिसली, कोर्सिका तथा सारडीनिया आदि द्वीपों का प्रादेशिक भूगोल लिखा है।

सातवाँ खण्ड—इसमें उत्तरी यूरोप के विभिन्न भागों का भौगोलिक वर्णन लिखा गया है।

आठवाँ, नवाँ, दसवाँ खण्ड— यूनान तथा इसके समीपवर्ती प्रदेशों का जैसे आठवें में पीलोपीनीज, नवें में यूनान तथा दसवें में द्वीपों से सम्बन्धित वर्णन है।

ग्यारहवाँ खण्ड—इसमें एशिया महाद्वीप की भू-आकृति का वर्णन है।

बारहवाँ खण्ड—इसमें पोण्टस पर्वत, एशिया माइनर तथा कैवेडोसिया के उत्तरी भागों का भौगोलिक वर्णन है।

तेरहवाँ, चौदहवाँ खण्ड— इनमें एशिया माइनर के पश्चिमी क्षेत्रों का विस्तृत भौगोलिक वर्णन किया गया है।

पन्द्रहवाँ खण्ड—इसमें दक्षिणी एशिया के देशों अर्थात् अरेबिया, सीरिया, फारस, असीरिया, फिलीस्तीन, मैसोपोटामिया तथा भारत का वर्णन किया गया है।

सोलहवाँ खण्ड—इसमें एशिया माइनर और भारत के मध्य स्थित देशों का प्रादेशिक भूगोल लिखा गया है।

सत्रहवाँ खण्ड—इसमें अफ्रीका महाद्वीप विशेषकर लीबिया और मिस्र का विशद वर्णन किया गया है।

गणितीय भूगोल

स्ट्रेबो का गणितीय भूगोल के क्षेत्र में विशेष योगदान नहीं है, क्योंकि इसकी रुचि शुरू से ही गणितीय भूगोल में नहीं थी। गणितीय भूगोल से सम्बन्धित स्ट्रेबो की मान्यताएँ तथा संकल्पना उसके पूर्व के विद्वान् इरेटोस्थनीज, हिप्पारकस, पोसिडोनियस आदि के गणितीय भूगोल के कार्यों एवं रचनाओं पर आधारित एवं प्रभावित थी। स्ट्रेबो हिप्पारकस द्वारा प्रयोग की गई अक्षांश देशान्तर रेखाओं के मापन की विधियों को भौगोलिक ज्ञान का आधार मानता था, लेकिन इरेटोस्थनीज द्वारा अपनाई भू-मापन विधि का वह समर्थक नहीं था।

स्ट्रेबो की मान्यता थी कि पृथ्वी की आकृति गोल है तथा यह ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है। स्ट्रेबो के अनुसार मौसम परिवर्तन, दिन-रात का बनना आदि पृथ्वी की दैनिक तथा वार्षिक गतियों के कारण घटित होता है। स्ट्रेबो ने पृथ्वी को जलवायु खण्डों में विभाजित करने का भी प्रयास किया था। स्ट्रेबो ने पृथ्वी को 360° में विभाजित किया था तथा प्रत्येक अंश के मध्य की दूरी लगभग 700 स्टेडिया के बराबर निर्धारित की थी।

ऐतिहासिक भूगोल

स्ट्रेबो एक ऐसा विद्वान् था जिसकी समस्त भौगोलिक रचनाएँ एवं वर्णन इतिहास की विभिन्न प्रक्रियाओं से प्रत्यक्षतः प्रभावित थी। स्ट्रेबो ने अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर ऐतिहासिक वर्णन को भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्धित कर एवं प्रभावित करने वाले कारकों के अध्ययन एवं उनके ऐतिहासिक प्रभावों का विस्तृत अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। स्ट्रेबो ने यूरोप के प्राचीन कालीन शासकों की सेनाओं के सामने आनेवाली भौगोलिक एवं प्राकृतिक बाधाओं का ऐतिहासिक वर्णन किया। सीजर महान् की सेना को स्पेन की सड़कों पर चलते समय आने वाली समस्याओं का वर्णन भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्धित करके किया। स्ट्रेबो ने अपने भौगोलिक वर्णन में बताया है कि यूरोप महाद्वीप की शीतोष्ण जलवायु के परिणामस्वरूप ही वहाँ के लोग अत्यधिक मेहनती, कुशल प्रशासक, सैनिक तथा अनुशासित हैं।

प्रादेशिक भूगोल

स्ट्रेबो एक महान् प्रादेशिक भूगोलवेत्ता था। उसने अपने समय के ज्ञात संसार के विभिन्न देशों का प्रादेशिक भूगोल लिखा था। स्ट्रेबो ने अपने भौगोलिक विश्वकोश में भारत, यूनान, सीरिया, अरब, दजला-फरात, पर्शिया, एशिया-माइनर, इटली, स्पेन, यूरोप, अफ्रीका आदि देशों का प्रादेशिक भूगोल अपने भौगोलिक ग्रन्थ में लिखा है। स्ट्रेबो को विश्व के उस समय के ज्ञात भाग की विस्तृत जानकारी नहीं थी, लेकिन वह विभिन्न विद्वानों के वर्णनों तथा अन्य स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त कर अज्ञात भागों का वर्णन किया परन्तु स्ट्रेबो द्वारा रचित भौगोलिक वर्णनों में अनेक गलतियाँ थी, क्योंकि उसने भौगोलिक वर्णन अपनी कल्पनाओं तथा दूसरे मनुष्यों द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर ही किया। स्ट्रेबो की यह मान्यता थी कि पृथ्वी पर स्थित विभिन्न स्थानों में एक स्थान अपनी विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों से दूसरे स्थान से भिन्न होता है अर्थात् विभिन्न स्थानों में विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। अतः स्ट्रेबो अंशतः क्षेत्रीय विभिन्नताओं के बारे में भी जानकारी रखता था।

क्लॉडियस टॉलेमी

टॉलेमी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों में पर्याप्त मतभेद पाए जाते हैं। सामान्यतया विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार टॉलेमी का जन्म 90 ई. में टॉलेमस हरसी नामक स्थान पर हुआ माना जाता है। अन्य इतिहासकारों के अनुसार टॉलेमी का जन्म स्थान पेल्यूसियस नगर को माना जाता है। सम्भवतया टॉलेमी का जन्म सिकन्दरिया (मिस्र) के टॉलेमी गाँव में हुआ जिसके आधार पर इसका नाम टॉलेमी पड़ा। टॉलेमी का शिक्षण कार्य सिकन्दरिया में ही पूर्ण हुआ। टॉलेमी की रचनाओं से पता चलता है कि उसकी गणित, खगोल और भूगोल के अध्यापन कार्य में विशेष रुचि थी। टॉलेमी ने अपना अध्यापन एवं वर्णन सम्बन्धी कार्य सिकन्दरिया के पुस्तकालय में रहकर ही पूर्ण किया। टॉलेमी की प्रक्षेपण, मानचित्र निर्माण, गणित और खगोलकी में विशेष रुचि के कारण ही उसने मानचित्रों का निर्माण भी किया।

टॉलेमी के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ (Important Books of Ptolemy)

(1) गाइड टू ज्योग्राफी

ज्योग्राफी की यह ग्रन्थमाला आठ खण्डों में प्रकाशित की गई थी। इसमें प्रमुख सैद्धान्तिक नियमों का वर्णन खण्ड एक में किया गया है। खण्ड दो से सात तक टॉलेमी के समय बसे संसार के ज्ञात भाग के लगभग 8,000 स्थानों के नाम, स्थिति आदि का वर्णन अक्षांश व देशान्तर रेखाओं की सहायता से किया गया है। आठवाँ ग्रन्थ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें मानचित्र कला के विभिन्न नियमों एवं सिद्धान्तों का सैद्धान्तिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् टॉलेमी ने अपने इस ग्रन्थ में मानचित्रकला, शंक्वाकार प्रक्षेप, अक्षांश देशान्तर रेखायें मालूम करने की विभिन्न विधियों की जानकारी, ज्ञात विश्व का मानचित्र निर्माण, वर्णात्मक भूगोल पर अधिक बल देना आदि को सम्मिलित किया। उसने शंक्वाकार प्रक्षेप में संशोधित किया तथा ध्रुवीय क्षेत्रों के लिए त्रिविम प्रक्षेप का प्रयोग किया। उसको ग्रन्थमाला ज्योग्राफिया में एक संसार का तथा 26 अन्य क्षेत्रों के मानचित्र हैं। इन मानचित्रों से ही सर्वप्रथम संसार की सामान्य मानचित्रावली तैयार हुई थी।

(2) **अल्माजेस्ट** टॉलेमी के इस ग्रन्थ में गणित और खगोलकी, विविध यन्त्र, नक्षत्रों आदि को सम्मिलित किया गया है।

(3) **ग्रहीय सिद्धान्त** इसमें ग्रहों के आपसी सम्बन्धों, गतियों और उनके मध्य एक दूसरे के बीच स्थित दूरियों आदि में सम्बन्धित परिकल्पनाओं का वर्णन किया गया है। टॉलेमी ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के केन्द्र में माना तथा सभी आकाशीय पिण्डों का इसकी परिक्रमा करते हैं, जो 15वीं शताब्दी तक यूरोप में सत्य माना जाता रहा।

(4) **एनेलिमा** नक्षत्र विज्ञान तथा प्रेक्षकों की परिकल्पना आदि का सैद्धान्तिक वर्णन इसमें किया गया है।

भूगोल में योगदान

टॉलेमी का झुकाव प्रारम्भ से ही भौगोलिक अन्वेषण कार्य की ओर अधिक था। इसका महत्त्वपूर्ण कार्य खगोलकीय, गणितीय भूगोल तथा सामान्य भूगोल आदि पर है टॉलेमी ने निम्नांकित पहलुओं पर अधिक बल

दिया—

खगोलकी पर विशेष अन्वेषण

अलेक्जेंड्रिया की वेधशाला में टॉलेमी ने खगोलकी के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए कई प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग कर अन्वेषण कार्य किया। टॉलेमी ने नक्षत्रों के उदय—अस्त होने, गोधुली, ऋतु निर्माण आदि की जानकारी हेतु अपने अनुभव के आधार पर एक कैलेण्डर का निर्माण किया था। टॉलेमी के विचार थे कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित है तथा सभी आकाशीय पिण्ड पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं और पृथ्वी केन्द्र में स्थिर है। ब्रह्माण्ड में टॉलेमी ने 1022 नक्षत्र बताए तथा उनका विचार था कि ब्रह्माण्ड में एक स्थिर नक्षत्र मण्डल है जो गतिहीन है तथा अन्य नक्षत्र मण्डल उसके बाहर स्थित हैं, जो हमेशा गतिशील रहते हैं। टॉलेमी के ये विचार पन्द्रहवीं शताब्दी तक यूरोप में माने जाते रहे, लेकिन इसके बाद अन्य विद्वानों की खोजों और अन्वेषणों ने टॉलेमी के विचारों को अशुद्ध तथा अविश्वसनीय बना दिया।

पृथ्वी की आकृति

टॉलेमी का विचार था कि पृथ्वी ठोस गोलाभ की भाँति है, जो चपटी नहीं है तथा लगभग गोल वस्तु के समान है। टॉलेमी ने इरेटोस्थनीज के द्वारा निर्धारित की गई अक्षांश देशान्तर रेखाओं की सहायता लेकर पृथ्वी पर इनका निर्धारण किया तथा बताया कि दो रेखाओं की बीच की वास्तविक दूरी ज्ञात करके ही अक्षांश देशान्तर रेखाएँ खींची जा सकती हैं, अन्यथा इनके निर्धारण में त्रुटियाँ हो जाती हैं। टॉलेमी के अनुसार पृथ्वी का व्यास 18000 भौगोलिक मील है। इसके प्रधान अक्षांश रेखा को 360° अंशों में विभाजित करने का कार्य भी किया।

गणितीय भूगोल, मानचित्रकला तथा सामान्य भूगोल में विशेष योगदान (Specific Contribution in Mathematical Geography, Cartography and General Geography)

टॉलेमी ने शुरू से ही गणितीय भूगोल में अधिक योगदान दिया तथा प्रक्षेपों की निर्माण विधियों का वर्णन किया। उन्होंने शंक्वाकार प्रक्षेपों में परिवर्तन कर उनका रूपान्तरण किया तथा पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों के मानचित्र निर्माण हेतु त्रिविम प्रक्षेपों का अधिकाधिक प्रयोग किया। संसार के विविध क्षेत्रों के मानचित्र बनाने के लिए मानचित्र निर्माण विधियों का वर्णन किया। उसकी ग्रन्थमाला ज्योग्राफिया में एक संसार का मानचित्र बनाकर दर्शाया गया है, जिसमें उस समय के ज्ञात भागों को प्रदर्शित किया गया है तथा अन्य 26 छोटे—छोटे मानचित्र बनाये गये हैं। प्राचीन इतिहासकारों के विचारों के अनुसार टॉलेमी द्वारा निर्मित मानचित्रों से ही संसार के विभिन्न भागों की सामान्य मानचित्रावली तैयार मानी जाती है। सामान्य भूगोल के अन्तर्गत उनकी प्रमुख ग्रन्थमाला 'ज्योग्राफिया' थी, जो आठ खण्डों में प्रकाशित हुई थी। जिसमें सामान्य सैद्धान्तिक नियमों का सविस्तार वर्णन, विभिन्न ज्ञात स्थानों के नाम तथा स्थिति एवं मानचित्र निर्माण कला की विभिन्न विधियों का सविस्तार वर्णन किया गया है। टॉलेमी ने उस समय रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों के मानचित्रों का भी निर्माण किया था। टॉलेमी एक ऐसा भौगोलिक विद्वान् था जिसने उस समय के ज्ञात भागों के समुद्री मार्गों के भौगोलिक मानचित्रों का निर्माण किया। इन मानचित्रों की सहायता से कई नाविकों तथा भ्रमणकारियों ने विभिन्न ज्ञात भागों की यात्रा भी की थी। टॉलेमी ने ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक आधार पर पृथ्वी के अक्षांश देशान्तरों का निर्धारण कर उस समय बसे हुए संसार के ज्ञात भाग का मानचित्र बनाया था।

टॉलेमी के संसार के मानचित्र तथा अन्य मानचित्र शंक्वाकार प्रक्षेप के परिवर्तित रूप के आधार पर बनाये गये हैं। जिसमें यूनानी भूगोल का सारांश प्रस्तुत किया तथा साथ ही संसार की जलवायु व्यवस्था भी प्रदर्शित की गई है।

टॉलेमी द्वारा बताये गये विश्व मानचित्र निर्माण के लिए आवश्यक नियम—

- (1) उत्तरी ध्रुव (North Pole) 90° अक्षांश द्वारा केन्द्रित किया जाता है तथा ध्रुव एक बिन्दु मात्र ही है।
- (2) पृथ्वी का प्रमुख अक्षांश वह रेखा है जो रोड द्वीप तथा जिब्राल्टर से होकर गुजरती है।
- (3) भूमध्य रेखीय परिधि की लम्बाई टॉलेमी ने 18,000 मील बताई है।
- (4) टॉलेमी के अनुसार भूमध्य रेखा सबसे बड़ा अक्षांश है तथा अन्य अक्षांश ध्रुवों की ओर छोटे होते जाते

हैं।

- (5) समस्त देशान्तर उत्तरी ध्रुव पर आपस में मिल जाते हैं। इनके मध्य की सापेक्ष दूरी भूमध्य- रेखा पर अधिकतम पायी जाती है।

प्रादेशिक भूगोल

टॉलेमी का एक भूगोलवेत्ता की दृष्टि से प्रमुख योगदान उसके द्वारा लिखित 'गाइड टू ज्योग्राफी' ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में टॉलेमी ने प्रादेशिक भौगोलिक विशेषताओं को वैज्ञानिक ढंग से वर्णित किया है। एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका महाद्वीप के विभिन्न ज्ञात देशों का नाम, स्थिति, उनमें स्थित नगरों, पर्वतों, पठारों तथा इन देशों में प्रवाहित होने वाली विभिन्न नदियों के नाम तथा इनके प्रवाहित क्षेत्रों को मानचित्र में भी दर्शाया गया है। टॉलेमी ने अपनी पुस्तक में यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप के उस समय के ज्ञात भागों का ही प्रादेशिक भूगोल लिखा है। टॉलेमी ने अपनी ग्रन्थमाला के दूसरे खण्ड में यूरोप महाद्वीप के इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, मध्य यूरोप, स्पेन, पुर्तगाल आदि की विभिन्न प्रादेशिक विविधताओं का वर्णन किया है। एशिया के भारत, चीन, मध्य एशिया एवं अन्य समीपवर्ती देशों की विविध विशेषताओं का वर्णन किया है। टॉलेमी को अन्य दो महाद्वीपों की अपेक्षा अफ्रीका महाद्वीप के बारे में जानकारी सीमित थी। केवल उत्तरी अफ्रीका तथा नील नदी के बारे में ही टॉलेमी ने लिखा है।

टॉलेमी का प्रभाव

टॉलेमी ने अपने अनुभव तथा कल्पनाओं के आधार पर अपना भौगोलिक ज्ञान संकलित किया। उनके द्वारा बताये अनुसार कोलम्बस ने गोल पृथ्वी पर भारत में पहुँचने के लिए पश्चिम में यात्रा की तथा इसी भूलवश ही उसने अमेरिका की खोज कर ली। टॉलेमी ने ही बतलाया था कि हिन्द महासागर के दक्षिण में एक महाद्वीप स्थित है, जिसका उस समय ज्ञान नहीं था। यह अण्टार्कटिका महाद्वीप है। टॉलेमी द्वारा लिखित ग्रन्थमाला ज्योग्राफिया, एनालोमा, अलमाजेस्ट तथा उसके द्वारा निर्मित मानचित्रों का प्रभाव संसार में सत्रहवीं शताब्दी तक छाया रहा। अतः टॉलेमी के द्वारा दिये गये भौगोलिक योगदान को आज भी भूलाया नहीं जा सकता। टॉलेमी के बारे में टूली ने लिखा है कि टॉलेमी की पदवी भीमकाय की है।

पोम्पोनियस मेला

पोम्पोनियस मेला का जन्म दक्षिणी स्पेन में हुआ था। मेला एक ऐसा भूगोलवेत्ता था, जिसने भूगोल के साथ-साथ इतिहास के वर्णनों में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। पोम्पोनियस मेला अपने पहले के विद्वानों के इस विचार से असहमत था कि पृथ्वी की आकृति गोल है। अतः वह पृथ्वी की गोलाभ आकृति नहीं मानता था।

ग्रन्थ (Books)

पोम्पोनियस मेला ने अपने जीवन काल में अनेक छोटी बड़ी पुस्तकों की रचना की, लेकिन इनमें निम्नलिखित तीन प्रमुख थीं—

- (1) ब्रह्माण्ड विज्ञान (Cosmography)
- (2) डिकोराग्राफिया (Dechorographia)
- (3) स्काईलैक्स (Skylax)

इसमें ब्रह्माण्ड के बारे में विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा मेला ने इस पुस्तक में पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के मध्य में बताया है। अफ्रीका भारत के बारे में भी उसने संक्षिप्त विवरण अपनी पुस्तक में दिया है। उसका भारत के सम्बन्ध में ज्ञान यूनानियों के द्वारा बताये हुए तथ्यों पर आधारित था। उसने भारत को विभिन्न उपजों का वर्णन किया है। मेला ने अपने समय के ज्ञात भागों के क्षेत्रों का प्राकृतिक वर्णन अपनी पुस्तकों में किया है। तथा जहाँ-जहाँ उसने यात्रा नहीं की, वहाँ के लिए पूर्व के विद्वानों द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार उनका विवरण अपनी पुस्तकों में दिया है। उसने पृथ्वी के उस समय के ज्ञात भू- भागों की स्थिति, आकृति, बनावट, प्राकृतिक सीमाएँ, जलवायु तथा अन्य प्राकृतिक तथ्यों की जानकारी अपनी पुस्तकों में विस्तृत रूप से दी है। उसने पृथ्वी पर स्थित किन्हीं दो स्थानों के मध्य की दूरी नापने का भी कार्य किया था। अतः मेला एक भूगोलवेत्ता के

साथ-साथ इतिहासकार व गणितज्ञ भी था।

प्लिनी (Pliny 23- 79 ई.)

प्लिनी का जन्म 23 ई. में इटली के उत्तर में स्थित विकोना नामक स्थान पर हुआ था। प्लिनी एक भूगोलवेत्ता के साथ-साथ एक कुशल प्रशासनिक भी था। इसी कारण वह नीरो तथा टाइटस के शासनकाल में अनेक उच्च पदों पर रहा तथा कई ऐसे कार्य किये, जिस कारण वह नीरो का प्रशंसनीय बन गया था।

ग्रन्थ

- (1) **प्राकृतिक इतिहास** – इसका प्रकाशन प्लिनी ने 37 खण्डों में किया था। शुरू के दो खण्डों में आकाशीय पिण्ड तथा पृथ्वी की आकृति, आकार, धरातल तथा ऋतु आदि के बारे में वर्णन किया गया है। तीन से छः खण्डों में प्लिनी ने विभिन्न क्षेत्रों का प्रादेशिक भूगोल लिखा है। सातवें से ग्यारहवें खण्ड में प्लिनी ने मानव शास्त्र तथा जीव-विज्ञान पर विस्तृत विवरण दिया है। तथा शेष खण्डों में वनस्पति शास्त्र के विभिन्न तथ्यों का वर्णन किया गया है।
- (2) **हिस्ट्री ऑफ दि वार्स इन जर्मनी** – यह बीस खण्डों में प्रकाशित है।
- (3) **हिस्ट्री ऑफ हिज ओन टाइम्स** – इसका इक्कीस खण्डों में प्रकाशन किया गया है। ये दोनों ग्रन्थ साहित्य पर आधारित हैं। अतः प्लिनी की भूगोल के साथ-साथ साहित्य में भी रुचि थी।
- (4) **मिटियोरोलोजी** – यह प्लिनी का दूसरा महत्वपूर्ण भौगोलिक ग्रन्थ था जिसमें आकाशीय पिण्डों तथा उनसे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं, बिजली चमकना, तारों का टूटना, बादलों का गरजना, सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण, ज्वालामुखी का फटना तथा भूकम्प की विभिन्न क्रियाएँ आदि का विवरण विभिन्न सार्थक तथ्यों के आधार पर दिया गया है।

प्लिनी भूगोलवेत्ता के साथ-साथ महान् गणितज्ञ भी था। उसका विचार था कि पृथ्वी पिण्डाकार शक्ल में है, तथा यह अपनी कीली पर झुकी हुई है, जिस कारण ऋतु परिवर्तन होता है। उसने विभिन्न प्रकार की गणना करके संसार की लम्बाई-चौड़ाई ज्ञात करने का भी प्रयास किया था तथा उसने बतलाया था कि पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम लम्बाई उसको उत्तर-दक्षिण चौड़ाई से अधिक है। अतः प्लिनी अपने काल का एक ऐसा भूगोलवेत्ता था जिसने पृथ्वी के विभिन्न भागों के वर्णन के साथ-साथ आकाशीय गतिविधियों के बारे में भी विस्तृत विवरण दिया था।

सैनिका

इनका विशिष्टिकरण भौतिक भूगोल में था। इन्होंने भूकम्प से होने वाली चट्टानों को क्षरण क्रिया तथा डेल्टाओं के निर्माण सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत किया था।

1.6. सारांश

प्राचीन भौगोलिक चिंतन का क्षेत्र विस्तृत है। जिसमें भूगोल विषय पर बहुत से विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। प्राचीन भूगोल के विकास के विषय में विद्वानों में एकमत नहीं है। यूरोपीय विद्वान विशेषकर पश्चिमी यूरोपीय देशों के विद्वानों ने भूगोल के विकास का श्रेय यूनानी व रोमन विद्वानों को दिया जबकि वास्तविक रूप में इन सबसे पहले भारत में भौगोलिक विवरणों को प्राचीन भारत में निर्मित ग्रंथों में देखा जा सकता है। यूनानी दार्शनिकों ने अपने ग्रंथ में कई विवरण दिये जिनमें भूगोल की कई शाखाओं यथा— खगोल विद्या, ज्योतिष विद्या, ज्यामिती, गणित, मानचित्रकला, तथा प्रादेशिक भूगोल का विकास हुआ, रोमन विद्वानों का प्रमुख योगदान ऐतिहासिक व प्रादेशिक भूगोल में रहा है। इसी क्रम में समुद्र तटीय स्थिति होने के साथ यूनानी व रोमन विद्वानों का वहां की कठोर जलवायु व भौगोलिक दशा का भी प्रभाव रहा। जिसने वहां के लोगों को जीवन संघर्ष के दौरान भौगोलिक घटनाओं को जानने के लिए प्रेरित किया। शुरू में योगदान में यूनानी साम्राज्य का विकास हुआ। जब वहां के शासकों की साम्राज्य विस्तार की नीति ने भौगोलिक विकास को अपना योगदान दिया जैसे – एजेक्जीमेण्डर उस समय का महान शासक व विश्व विजेता था जिसने अपने विजित क्षेत्रों को उस समय के ज्ञात विश्व के क्षेत्रों को एक मानचित्र के रूप में विकसित किया। उनके इस कार्य के लिए उन्हें दुनिया

का प्रथम मानचित्र निर्माता कहा गया। 100 ई.पू. आते-आते यूनानी साम्राज्य का पतन होता गया तथा इसके साथ रोमन साम्राज्य का विकास शुरू हो गया। जिसके साथ रोमन भूगोल का भी विकास हुआ तथा स्ट्रैबो व टालमी के कार्य सराहनीय रहे। प्राचीन काल में भूगोल का विकास शुरू हो गया पर यह विकसित दशा में नहीं पहुँच पाया।

1.7. परिभाषिक शब्दावली

1. प्राचीन भारतवर्ष – 4000 ई. पू. से 800 ई. तक
2. वराहमिहिर – (505 – 5875 ई.)— प्रसिद्ध भारतीय खगोलशास्त्री
3. चिरसम्मतकाल – प्राचीन शास्त्रीय काल 600 ईसा पूर्व से 300 ई. तक
4. यूनानी काल – 900 ईसा पूर्व से 200 ई. तक
5. रोमन काल – 200 ईसा पूर्व से 300 ई. तक
6. पंच सिद्धान्तिका – प्रसिद्ध खगोलशास्त्री वराहमिहिर का ग्रन्थ
7. स्टेडिया – दूरी नापने की इकाई
8. नोमोन – एक तरह की सूर्य घड़ी की तरह
9. मिटिरियोलोजिका – अरस्तु की जलवायु विज्ञान पर लिखी किताब
10. होमर – यूनानी महाकवि इलियड व ओडेसी ग्रन्थ
 - सिन्धु सभ्यता काल
 - वैदिक काल
 - चिरसम्मत काल
 - आर्यभट्ट
 - होमर
 - हेलिकारनेसस नगर
 - जेस पिरियोडत
 - मिलेटस
 - मेसिडोनिया
 - भौगोलिक विश्व कोष

1.8. बोध प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय भौगोलिक ज्ञान के विकास क्रम को स्पष्ट कीजिए।
2. भूगोल में यूनानी भूगोलवेत्ताओं के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. इरेटोस्थनीज का भूगोल के विकास में योगदान।
4. हैरोडोटस के भौगोलिक विवरण को स्पष्ट कीजिए।
5. रोमन भूगोल के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
6. यूनानी व रोमन भूगोलवेत्ताओं के विचारों की तुलना कीजिए।

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Ali, S.M. The Geography of Purans
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London-
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.
- प्रो. मजिद हुसैन—भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

इकाई-02 : छायावादी युग (Romantic Periods)

ईकाई की रूपरेखा

- 2.0 प्रस्तावना
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 छायावादी युग—दार्शनिक पृष्ठभूमि
- 2.3 भूगोल का दार्शनिक आधार
- 2.4 हम्बोल्ट
 - 2.4.1 हम्बोल्ट की संकल्पनाएँ
- 2.5 रीटर
 - 2.5.1 रीटर की प्रमुख संकल्पनाएँ
- 2.6 सारांश
- 2.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 2.8 बोध प्रश्न
- 2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 प्रस्तावना

भूगोल में छायावादी युग 1800–1859 के बीच का समय माना जाता है। 19वीं सदी के प्रारम्भ से आधुनिक भूगोल का सूत्रपात हो चुका था। जिसमें हम्बोल्ट व रीटर का योगदान प्रमुख रहा है। इनसे पूर्व इमेनुअल कांट का कार्य सराहनीय है, जिन्होंने भूगोल को दार्शनिक आधार प्रदान किया तथा भूगोल को अलग-अलग शाखाओं में विभक्त किया। आधुनिक भूगोल व प्राचीन भूगोल में प्रमुख अन्तर यह रहा कि प्राचीन भूगोल में पृथ्वी की आकृति, ग्रह, नक्षत्र, अक्षांश देशान्तर आदि का अध्ययन किया जाता रहा है। जबकि आधुनिक भूगोल का उद्देश्य भूतल के क्षेत्रीय स्वरूप का विवेचन करना है। इस काल में पृथ्वी पर घटित विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं दृश्यों को स्पष्ट करने का कार्य शुरू हो चुका था। इस युग को आधुनिक या वैज्ञानिक युग बताने का आधार भी यही रहा है कि इस समय मानव की तार्किक क्षमता पर जोर दिया गया, जो पदार्थ जगत को समझने और पार्थिव रहस्यों को उजागर करने की दिशा में एक प्रयास इस समय के विद्वानों ने प्राकृतिक स्वरूपों को देखने, उनके बारे में जानकारी एकत्र करने के लिए लम्बी-लम्बी यात्राएँ की। जो भौगोलिक अध्ययन की दिशा में एक नयी शुरुआत थी। छायावादी युग में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करने के साथ-साथ उत्पत्ति के विषय में कार्य किया गया जैसे पादप व वनस्पतियों की उत्पत्ति, उनकी प्रजातियाँ तथा तापमान से उनका सम्बन्ध, पर्वत, पठार मैदान, नदियाँ झीलें, महाद्वीप, महासागर आदि सब पार्थिव दृश्यों का सजीव चित्रण किया गया साथ ही इस युग में भूगोल एक संस्थापित विषय के रूप में अस्तित्व में आया।

2.1 उद्देश्य (Objectives)

- भूतल के क्षेत्रीय स्वरूप का विवेचन करना।
- प्राकृतिक दृश्यों का विवेचन करना।
- भूगोल के दार्शनिक स्वरूप को स्पष्ट करना।
- भौतिक जगत व वास्तविक जगत विकास को प्ररिभाषित करना।
- प्राचीन भूगोल व आधुनिक भूगोल के अन्तर के अन्तर स्पष्ट करना।

- दार्शनिक व साहित्य की पृष्ठभूमि के आधार पर भौगोलिक चिंतन को समझना।
- भूगोल के छायावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करना।

2.2 छायावादी युग (Romantic Periods) (1800&1859)

हम्बोल्ट को छायावादी युग का प्रतिनिधि माना जाता है। इनके साथ रीटर का योगदान भी है, जो आधुनिक भूगोल के संस्थापक विद्वान भी माने जाते हैं। इनसे पहले कांट को भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास करने वाले विद्वान के रूप में समझा जाता है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही आधुनिक भूगोल का विकास शुरू होता है। जब भूगोल को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाता है। प्राचीन भूगोल पृथ्वी, आकृति, विस्तार अन्य ग्रहों से सम्बन्ध तथा भूतल के विभिन्न स्थानों के अक्षांश-देशान्तर के निर्धारण आदि सभी पहलुओं पर अपने विचार प्रस्तुत करता है तथा आधुनिक भूगोल भूतल के क्षेत्रीय स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। भूतल के इन प्राकृतिक दृश्यों का विवेचन ही भूगोल में छायावादी युग की झलक देखने को मिलती है। इससे पहले यदि भूगोल की अध्ययन सामग्री का विवेचन किया जाए तो उसमें गणितीय भूगोल प्रादेशिक भूगोल जैसे वर्णन देखने को मिलते हैं छायावाद शब्द साहित्यिक शब्द है। साहित्य में इस पर विस्तृत विवरण दिया गया है। जिसमें प्रकृति के सुन्दर चित्रण को कई साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक भाषा के माध्यम से समझने का प्रयास किया है। इन्होंने प्रकृति के दृश्यों का अवलोकन कर उनका विवरण दिया है।

कांट ने 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी दार्शनिक अवधारणाओं को संश्लेषित करने के क्रम में प्रत्यक्षानुभव द्वारा भौतिक जगत के तत्वों के क्षेत्रीय आयामों को महत्वपूर्ण मानते हुए आधुनिक भूगोल को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस ठोस दार्शनिक आधार पर 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अलेक्जेंडर वान हम्बोल्ट तथा कार्ल रीटर ने इसे भूगोल में स्थापित करने का कार्य किया है। इनका उद्देश्य अपनी-अपनी पद्धतियों से भूतल के विभिन्न क्षेत्रों के स्वरूप निरूपण कर आधुनिक भूगोल के स्वरूप में वृद्धि करना है। इस युग को “आधुनिक शास्त्रीय युग” के नाम से भी जाना है। इस युग को हार्टशोर्न ने भूगोल का “क्लासिकल युग” युग भी कहा है। हेटनर ने इस युग का प्रारम्भ 1799 ई० से माना जब हम्बोल्ट ने दक्षिण अमेरिका की अपनी यात्रा की शुरुआत की हम्बोल्ट व रीटर ने अपने जीवन काल में लम्बी यात्राएँ की तथा इन यात्राओं के दौरान इन्होंने जो चित्रण किया उन सब को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया इन्होंने न केवल भूगोल बल्कि भूगोल के अलावा भी कई क्षेत्रों में इनका योगदान है इनका चिंतन तत्कालीन छायावादी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत रहा है। जो इस युग के दर्शन एवं साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति के सर्वथा अनुरूप था।

2.2.1. दार्शनिक पृष्ठभूमि

आधुनिक भूगोल की संस्थापना जर्मनी में हुई जहाँ कांट, हम्बोल्ट व रीटर को इस कार्य का श्रेय दिया जाता है। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में स्पिनोजा का दर्शन लोकप्रिय था जो देकार्त की निगमनात्मक विवेचन पद्धति पर आधारित थी। स्पिनोजा का मत था कि मनुष्य की तार्किक क्षमता सार्वभौमिक एवं चिरन्तन सत्य को उद्घाटित करने में समर्थ है। यदि स्वयं सिद्ध प्रथम सिद्धान्त पर क्रमबद्ध तरीके से आगे बढ़ा जाए तो दर्शन के अंतिम लक्ष्य अर्थात् सम्पूर्ण परम ज्ञान की प्राप्ति तक पहुँचा जा सकता है। इसके विपरीत कांट ने यह कहा कि तत्व जगत के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही तर्क को आगे बढ़ाया जा सकता है। प्रत्यक्ष अनुभव के आधार वास्तविक जगत को उद्घाटित किया गया है। एक विशाल श्रृंखला के रूप में हर तत्व कड़ियों के रूप में जुड़ा हुआ है। परन्तु यह बाह्य जगत वास्तविकता की छाया मात्र है, पर वास्तविकता वैज्ञानिक विवेचन से परे है तथा उस दिव्य सनातन सत्य तक वैज्ञानिक तर्क बुद्धि से पहुँचना असम्भव है। इस युग में कांट की छवि एक स्पष्ट दार्शनिक के रूप में थी। इन्होंने भूगोल विकास में अपना योगदान दिया। इस योगदान पर दार्शनिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी तरह हम्बोल्ट एक वनस्पति वैज्ञानिक के रूप में जाने जाते हैं। साथ ही दर्शन का प्रभाव भी इनके विचारों पर देखा जा सकता है। रीटर भी इसी क्रम में आगे बढ़ते हैं। इस तरह यह युग विभिन्न प्रवृत्तियों यथा आदर्शवाद, तर्क सम्मत चिंतन तथा विश्वासमूलक दर्शन का युग था।

दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय सेंलिंग, हीगल कांट के आदर्शवाद की ओर आगे बढ़ा। कांट के परवर्ती दार्शनिकों एवं विचारकों के सम्मुख ज्ञान के इन क्षेत्रों को किसी एक समवेत सूत्र में बांधने की समस्या थी।

दार्शनिकों के इस सम्प्रदाय ने एक आदर्शवाद सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयास किया जो तात्कालिक दार्शनिक समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो। यह सम्प्रदाय यह मानता है कि वास्तविक ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्रत्याक्षानुभव के परे है। यदि ज्ञान का उद्देश्य वास्तविकता को सक्रिय जीवन्त, संश्लिष्ट एवं आध्यात्मिक प्रक्रिया को समझना है, तो ऐसी विधि से जो भौतिक तत्वों के क्षेत्रीय, कालिक आयाम एवं कार्य-कारण विवेचन तक सीमित हो, इसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

इस प्रकार इस युग की दार्शनिक मान्यतायें यह थी कि "भौतिक जगत वास्तविकता की एक छाया मात्र है, भौतिक जगत वास्तविकता को परिभाषित करता है तथा उसके मर्म को समझने हेतु एक माध्यम प्रदान करता है। इस युग के भूगोलवेत्ताओं में काण्ट स्वयं एक दार्शनिक था तथा उसके विचारों में इसका समावेश था। हम्बोल्ट व कार्ल रीटर दोनों के ही विचार इस युग की दार्शनिक अवधारणाओं से प्रभावित थे। काण्टको भूगोल में दार्शनिक विचारधारा का शिलान्यास करने वाला विचारक माना जाता है। इसी आधार पर काण्ट ने भूगोल को प्रथम बार ही अलग-अलग शाखाओं में विभक्त करने का कार्य किया था। हम्बोल्ट व रीटर पर दर्शन का प्रभाव तथा भौगोलिक विवरण प्रस्तुत करने के लिए साहित्यिक भाषा का उन पर प्रभाव था। ये सब तथा और विवरण भूगोल में छायावादी युग को प्रस्तुत करने हैं तथा इनका चिंतन छाया छायावादी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है।

भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास (Foundation of Philosophical Base of Geography)

इमैनुअल काण्ट (Immanuel Kant 1724-1804)

अठ्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में स्पिनोजा का दर्शन पर्याप्त लोकप्रिय था, जो दकार्ते की निगमनात्मक विवेचन पद्धति पर आधारित था। इसका अनुसरण करते हुए स्पिनोजा ने बताया कि मनुष्य की तार्किक क्षमता सार्वभौमिक एवं चिरन्तन सत्य का उद्घाटन करने में समर्थ है। जबकि इसके विपरीत काण्ट ने यह सिद्ध किया कि पदार्थ जगत् के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही तर्क आगे बढ़ सकता है।

दार्शनिक भूगोलवेत्ता इमैनुअल काण्ट का जर्मन भूगोलवेत्ताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। फॉसटर महोदय की तुलना में काण्ट एक आरामकुर्सी पर बैठने वाला (Armchair Geographer) था। काण्ट के भौगोलिक कार्यों पर दार्शनिक प्रभाव अधिक होते हुए भी इन्हें भूगोल को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है। काण्ट का जन्म पूर्वी प्रशिया के कोनिंग्सबर्ग कालिनिनग्रांड में 22 अप्रैल, 1724 ई. में हुआ था। उसके माता-पिता कठोर धार्मिक मत के थे जो सन् 1758 तक कोनिंग्सबर्ग (रूसी आधिपत्य) में प्रचलित था। काण्ट की प्रारम्भ में लैटिन भाषा में अच्छी रुचि थी। उसकी मुख्य रुचि दर्शन, गणित एवं प्राकृतिक विज्ञानों में थी। कोनिंग्सबर्ग में शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त सन् 1746 से 1775 तक वहाँ के एक अमीर परिवार में निजी शिक्षक रहे। बाद में डी-इग्ने (Oo Fire) शोध प्रबन्धन पर 1755 ई० में पी.एच.डी. की उपाधि मिली। इन्होंने कोनिंग्सबर्ग विश्वविद्यालय में सन् 1756 से 1797 तक 40 वर्षों में भूगोल का अध्यापन कार्य कराया तथा भौतिक भूगोल पर व्याख्यान दिये।¹ सन् 1801 से 1804 तक इनके भौगोलिक कार्य प्रकाशित हुए जिनके द्वारा इनको ख्याति मिली, तभी काण्ट पराभौतिकशास्त्र तथा तर्कशास्त्र (Metaphysics and Logic) पढ़ाते थे। इसी क्रम में उन्होंने भौतिक भूगोल पर भी व्याख्यान दिये। उस समय भौतिक भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी के प्राकृतिक स्वरूप के साथ-साथ मानव प्रजाति एवं मानव के कार्यों द्वारा उत्पन्न पृथ्वी तल पर परिवर्तन को भी समाहित किया जाता था। उसकी सन् 1755 में लिखी प्रारम्भिक पुस्तक 'General Natural History एवं Theory of Heavens' को भौगोलिक कार्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। उनका केवल सैद्धान्तिक खगोलशास्त्र के प्रति योगदान था। उन्होंने पृथ्वी की आन्तरिक संरचना में भूकम्प पर प्रबन्ध लिखा।

काण्ट का चिन्तन—

काण्ट ने तार्किक ढंग से सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने में भूगोल की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए बताया कि ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है।— (1) शुद्ध तर्क द्वारा, (2) इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव या तो आन्तरिक इन्द्रियों से प्राप्त होता है या बाह्य इन्द्रियों से। बाह्य इन्द्रियों से प्राकृतिक पहलुओं का ज्ञान होता है, जबकि आन्तरिक इन्द्रियों से आत्मा का। काण्ट के अनुसार

प्रकृति के बारे में प्राप्त ज्ञान को प्राकृतिक भूगोल कहते हैं। काण्ट ने भौतिक भूगोल को प्रकृति का एक सामान्य विवरण बताते हुए प्राथमिकता दी है। काण्ट की दृष्टि में भूगोल एक क्रमबद्ध विज्ञान है।

आंतरिक चेतन मानव से सम्बन्धित है तथा बाह्य चेतन प्रकृति से। ये दोनों मिलकर ही भौगोलिक परिवेश का निर्माण करते हैं। काण्ट के अनुसार भूगोल की वे सभी शाखाएँ जो दृश्य एवं सुस्पष्ट हैं, भौतिक भूगोल से सम्बन्धित हैं तथा प्रकृति का अंग हैं। भूगोल का दूसरा भाग मनुष्य है जिस पर काण्ट ने अधिक अध्ययन तो नहीं किया लेकिन यह कहा कि आगामी समय में मानव महत्ता स्वीकार की जाती रहेगी जिससे मानव विज्ञान, मानव भूगोल का विकास होगा। यद्यपि उनके 'शुद्ध तर्क की समीक्षा' (Critique of Pure Reasons, 1791) और न्याय की समीक्षा (Critique of Judgement, 1790) में भौगोलिक सन्दर्भ अवश्य है। काण्ट ने एक पुस्तक मानव की विभिन्न जातियों पर भी लिखी थी। उनका 'व्यावहारिक दृष्टिकोण से मानवशास्त्र' (Anthropology from Pragmatic Point of View, 1798) पर लिखे निबन्ध में विश्व की जातियों एवं नृजातीय समूहों पर अनेक भौगोलिक वर्णन उपलब्ध हैं।

काण्ट ने प्रकृति के विषय में बाह्य ज्ञान को तीन प्रकार से क्रमबद्ध कर प्रस्तुत करने पर बल दिया है—प्रथम, एक प्रकार के तत्व, जैसे—उच्चावच, जलवायु, वनस्पति तथा मानव का अध्ययन द्वितीय, प्रकृति प्रदत्त तत्वों का एक समयावधि में एक साथ अध्ययन करके तथा तृतीय, प्रकृति में विद्यमान सभी तत्वों का एक स्थान या क्षेत्र में अध्ययन करना। प्रथम विधि संकल्पनात्मक है, जिसकी सहायता से विभिन्न क्रमबद्ध विषय, जैसे—भौतिकशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जलवायु विज्ञान, मानवशास्त्र आदि की विषयवस्तु प्राप्त होती है। द्वितीय प्रकार का ज्ञान इतिहास से सम्बन्धित है तथा तीसरे प्रकार का अध्ययन भूगोल की विषयवस्तु है। इस प्रकार काण्ट के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीनों प्रकार के ज्ञान अनिवार्य हैं।

काण्ट के अनुभाविक ज्ञान को दो भागों में विभाजित किया। ये विभाजन प्रथम, विचार एवं विशेष धारणाएँ तथा दूसरा, समय एवं स्थान (**Time and Space**) के आधार पर किया। प्रथम विधि इतिहास से सम्बन्धित है तथा दूसरी विधि भौगोलिक वर्णनों तथा वर्गीकरण द्वारा प्राकृतिक वर्णन से सम्बन्धित है। भौगोलिक वर्णनों को समझने के लिए समय या काल का महत्व विशेष माना गया है। पृथ्वी तल के विकास की व्याख्या समय के सन्दर्भ में ही करना चाहिए। काण्ट महोदय ने प्रदेशों को भी प्राकृतिक तथ्यों पर आधारित मानकर पृथ्वी की ग्लोबीय इकाई के महत्व को अनेक स्थानों पर वर्णित किया है।

काण्ट ने भूगोल की रूपरेखा सामान्य भूगोल के रूप में मानी है, जिसमें लुलोप्स, बर्गमैन, बुआचे, बफन आदि का अनुसरण करते हुए बताया कि आनुभाविक ज्ञान निम्न दो रूपों में प्राप्त किया जा सकता है—(1) तथ्यों को समय एवं क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में देखना, (2) प्रकृति के क्रम के सिद्धान्तानुसार।

इतिहास एवं भूगोल का सम्बन्ध—

इतिहास एवं भूगोल का सम्बन्ध काण्ट के भूगोल पर इतिहास एवं दर्शनशास्त्र की गहरी छाप रही। उन्होंने बताया कि भूगोल के वर्तमान तथ्यों का अध्ययन करते समय उनके भूतकालीन स्वरूपों पर भी विचार किया जाना चाहिए। इस प्रकार उनके अनुसार भूगोल प्राकृतिक घटनाओं का कोष है तथा इतिहास एवं भूगोल दोनों के अध्ययन द्वारा ही हमारा आनुभाविक ज्ञान पूर्ण होता है, साथ ही इतिहास का अध्ययन तब तक अधूरा रहेगा जब तक उसमें भौगोलिक जानकारी का समावेश न हो। इस प्रकार काण्ट ने इतिहास एवं भूगोल के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों को स्पष्ट किया है। काण्ट ने इतिहास को 'अनवरत भूगोल' (Continuous Geography) भी कहा जाता है। उनके अनुसार भूगोल इतिहास का आधार है, क्योंकि भूगोल का अस्तित्व सभी कालों में रहा है। काण्ट ने भौतिक भूगोल को 'प्रकृति की सामान्य रूपरेखा' (Ein allgemeiner माना है?

काण्ट प्रथम भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने भौगोलिक चिन्तन में इतिहास को महत्व दिया तथा इतिहास के बिना भौगोलिक विकास अधूरा बताया। काण्ट के इतिहास को महत्व देने के पीछे एक कारण यह भी था कि सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी के अनेक भूगोलवेत्ताओं की नियुक्ति एक साथ इतिहास एवं भूगोल के प्रोफेसर के रूप में विभिन्न विश्वविद्यालयों में एक ही पद पर हुई। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण रहा कि तत्कालीन समय में इतिहास एवं भूगोल एक साथ पढ़ाये जाते थे जिसके कारण इन दोनों विषयों में अन्तर्सम्बन्धित चिन्तन निरन्तर बना रहा।

काण्ट के अनुसार इतिहास समय के अनुसार चलने वाला मानवीय घटनाओं का एक काश है जिसमें निरन्तरता बनी रहती है जबकि भूगोल प्राकृतिक घटनाओं का कोष है। काण्ट ने भूगोल को इतिहास से पुराना माना है क्योंकि भूगोल सभी कालों में रहा है, जब मनुष्य का अस्तित्व इस पृथ्वी पर नहीं था तब भी प्राकृतिक क्रियाएँ तो सक्रिय थी इसलिए भूगोल से इतिहास को आधार मिला है। प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का आधार पृथ्वी तल, प्रकृति एवं प्राकृतिक वातावरण रहा है जो भूगोल के विषय का प्रारम्भिक आधार रहा है। इसलिए मानवीय घटनाओं का अभिलेख होने से वर्णनात्मक है जबकि भूगोल प्रकृति की गहराईयों में भी झाँकता है, अतः यह व्याख्यात्मक है। इस प्रकार काण्ट ने इतिहास को निरन्तर भूगोल बताते हुए कहा है कि भूगोल एवं इतिहास दोनों मिलकर ही हमारे ज्ञान की परिधि को पूरा करते हैं इसलिए इतिहास एवं भूगोल को परस्पर निकट सम्बन्धित माना जाना चाहिए।

प्रकृति एवं मानव के परस्पर सम्बन्धों का मानवीय क्रिया-कलापों से सन्दर्भ में विस्तृत अध्ययन किया। यहाँ मानवीय क्रिया-कलापों को व्यापारिक एवं राजनीतिक दृष्टि से ही स्थान दिया था। मानव एवं प्राकृतिक शक्तियों की अतःक्रियाओं को स्वीकार कर बताया कि मनुष्य पृथ्वी तल पर परिवर्तन लाने वाला महत्वपूर्ण घटक है। प्रकृति की विविधता में मानवीय कार्यों का भी अपना महत्व है इस दृष्टि से रिटर की मानव केन्द्रित विचारधारा का आधार यहीं बन गया था। इस प्रकार काण्ट ने भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा कि “भूगोल का क्षेत्र पृथ्वी का सम्पूर्ण धरातल है। यह हमारे अनुभवों का क्षेत्र है। इस पृथ्वी के धरातल का अध्ययन इसके विभिन्न स्थलों पर दिखाई गई विविधताओं के आधार पर ही किया जाता है।” काण्ट महोदय ने भूगोल के अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट कर बताया कि यह हमारे ज्ञान की उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था प्रदान करता है। भूगोल हमारे लिए आन्तरिक एवं बाह्य सन्तुष्टि का स्रोत भी है। काण्ट के इन विचारों पर टोलमी एवं स्ट्रेबो का भी प्रभाव पड़ा था।

काण्ट के अनुसार, भूगोल का क्षेत्र पृथ्वी का सम्पूर्ण धरातल है, जो हमारे अनुभवों का क्षेत्र है। इस पृथ्वी के धरातल का अध्ययन इसके विभिन्न स्थलों पर पायी जाने वाली विविधता के आधार पर किया जाता है, साथ ही इसमें सभी तथ्यों के गूढ़ सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

काण्ट ने भूगोल को निम्नांकित रूपों में विभक्त किया है (Ankündigung)-

1. भौतिक भूगोल (Physical Geography)-

इसमें प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। भौतिक भूगोल को ही अन्य सभी शाखाओं का आधार माना है, जिसका सम्बन्ध स्थल जल व नियत संसार से है। अतः भौतिक भूगोल संसार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक अनिवार्य विषय है।

2. गणितीय भूगोल (Mathematical Geography or the Mathematical Study of the Earth)&

इसमें पृथ्वी की आकृति (Shape), आकार (Size) एवं गतियों (Movements) का अध्ययन किया जाता है। इसमें सौरमण्डल (Solar Syestm) की अवस्थिति का भी अध्ययन होता है।

3. नैतिक भूगोल (Moral Geography)-

इसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार-विचारों, रीति-निवाजों, चरित्र एवं सभ्यताओं का अध्ययन किया जाता है। वर्तमान सांस्कृतिक एवं सामाजिक भूगोल इसी के विकसित रूप हैं।

4- राजनीतिक भूगोल (Political Geography)-

इसमें विभिन्न राजनीतिक इकाइयों एवं उनके भौतिक परिवेश (Physical Environment) के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, इसके अन्तर्गत प्रादेशिक व राजनीतिक भूगोल दोनों समाविष्ट हैं। कार्ल रिटर ने काण्ट की इस विधि का अनुकरण करते हुए महाद्वीपों का प्रादेशिक वर्णन प्रस्तुत किया था।

5. व्यापारिक भूगोल (Commercial or Mercantile Geography)-

काण्ट ने स्थानिक विभिन्नता को मद्देनजर रखते हुए बताया कि किसी भौगोलिक क्षेत्र में किसी

वस्तु का उत्पाद आवश्यकता से अधिक हो सकता है, जबकि इसके क्षेत्र में आवश्यकता से कम सम्भव है। इस भिन्नता के सन्दर्भ में अन्तराष्ट्रीय व्यापार का आरम्भ होता है, जिसके तहत दो क्षेत्रों में अधिकता व कमी वाली वस्तु का आदान प्रदान होता है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के व्यापार का भौगोलिक अध्ययन ही व्यापारिक भूगोल है।

6. धर्म या आध्यात्म भूगोल (Theological Geography or The Distribution of Religious)–

इसे वातावरण विश्वास भूगोल भी कहते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के भौगोलिक वातावरण में, धार्मिक सिद्धान्तों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है, उदाहरणार्थ सुदूर चीन, जापान एवं कोरिया आदि के धर्म विश्वास तथा यूरोपीय ईसाइयों के धार्मिक विश्वासों में काफी अन्तर पाया जाता है जिसकी भिन्न भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं।

काण्ट की 'भौतिक या प्राकृतिक भूगोल' में स्ट्रैबो द्वारा सम्मिलित सभी तत्वों का समावेश था, इस 'प्राकृतिक भूगोल' के आधार पर ही उसने अन्य भूगोलों, जैसे—राजनैतिक भूगोल, वाणिज्य भूगोल, नैतिक भूगोल तथा धार्मिक भूगोल एवं प्रत्येक देश के वर्णन का सूत्रपात किया था। प्राकृतिक भूगोल, संसार के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए अनिवार्य प्राक्कथन है, चाहे उसे देशाटन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अथवा पठन द्वारा परोक्ष रूप से अर्जित किया जाए। सारांश में "वह प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए अनुकूल व्यवधान है, हमारे बौद्धिक आनन्द को योगदान देता है तथा सामाजिक प्रवचन के लिए बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध करता है।"

परन्तु सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने अपनी रचनाओं में भूगोल के उद्देश्य को वैज्ञानिक सन्दर्भ में अनुदित करने का कोई प्रयास नहीं किया। वे तो उसकी व्यावहारिक उपयोगिता में अभिरुचि रखते थे। बार—बार उन्होंने उसके अन्य उद्देश्यों—इतिहास के ज्ञान तथा सरकार के लिए व्यावहारिक सहायता पर बल दिया। विजोटस्की ने दर्शाया है कि यह उपयोगितावादी दृष्टिकोण किस प्रकार भूगोल की वैज्ञानिक प्रगति में बाधक रहा है।

यद्यपि यह तर्क दिया जाता था कि कतिपय राजनैतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भूगोलवेत्ता का कार्य अस्थाई मूल्य का था, परन्तु यह तर्क निरर्थक था जब तक कि भूगोल के अध्यापक का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक क्षेत्रों के सम्बन्ध में सूचनाएँ देना ही था। वास्तव में जब मध्य यूरोप—जर्मनी तथा इटली का राजनैतिक—मानचित्र सैकड़ों राज्यों में विभक्त था, भूगोल के अध्यापक के पास प्राकृतिक प्रदेशों की बात सोचने का अवकाश कहाँ था?

इसके विपरीत उन लोगों के लिए जो वैज्ञानिक भूगोल को विकसित करने का प्रयास कर रहे थे। राजनैतिक प्रदेशों के आधार पर ज्ञान का परम्परागत संगठन असंतोषजनक था परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उन दिनों के अथवा आज के यूरोप के राजनैतिक मानचित्र अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्तमान राजनैतिक मानचित्र को कोई भी प्राकृतिक भूगोल का गम्भीर विद्यार्थी साधारण रूप से संतोषजनक नहीं कह सकता है।

अब की भाँति तब भी राजनैतिक आधार को छोड़कर, संसार का प्रादेशिक विभाजन बड़ी कठिन समस्या थी। इस दीर्घकालीन समस्या का समाधान अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में फ्रांस में विशेषकर बुआश ने इस सिद्धान्त के आधार पर किया कि संसार में पर्वत श्रेणियों का जाल अटूट है। जर्मनी में गाटरर ने इसी सिद्धान्त के आधार पर संसार को प्राकृतिक प्रदेशों में विभक्त किया। यद्यपि इसके पूर्व हॉलैण्ड, इटली तथा जर्मनी में ऐसे अन्य प्रयास भी किये गये थे, परन्तु गाटरर के कार्य का प्रभाव, समकालीन तथा उत्तरवर्ती विद्वानों (जिनमें हम्बोल्ट भी सम्मिलित किया जाता है) पर बहुत बड़ा। इसी कारण से हम उसके 1773–75 के प्रकाशनों को भूगोल के पुनरुद्धार का प्रारम्भ मान सकते हैं।

वैज्ञानिक भूगोल को इससे कुछ विभिन्न प्रेरणा दार्शनिक काण्ट से मिली जिसने कोनिंग्सबर्ग विश्वविद्यालय में 1756–1796 ई. के दौरान 'प्राकृतिक भूगोल' पर अड़तालीस व्याख्यानमालाएँ दीं। काण्ट के लिए, जैसा कि जरलैण्ड ने लिखा है— भूगोल का अध्ययन उसकी दार्शनिक विचारधारा के लिए आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान का माध्यम मात्र था परन्तु जब उसने यह देखा कि भूगोल का यथेष्ट एवं संगठित विकास नहीं हुआ, तो उसने अन्यान्य स्रोतों से उसकी विषय—सामग्री का संकलन एवं संगठन किया तथा बहुत—सी विशिष्ट समस्याओं, जैसे पृथ्वी के परिभ्रमण का वायु—दिशा के विचलन पर प्रभाव पर विचार व्यक्त किये।

भूगोल में काण्ट के योगदान के ऐतिहासिक महत्त्व का अनुमान लगाना कठिन है। उसकी 'प्राकृतिक भूगोल' की व्याख्यानमाला चालीस वर्ष तक बड़ी लोकप्रिय रही तथा सन् 1800 में इसके प्रकाशन के पूर्व बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ चल रही थीं। इसके अतिरिक्त उसके हेर्डर प्रभृति पुराने शिष्यों ने उसकी विचारधारा को बहुत प्रसारित कर दिया था चाहे परोक्ष रूप से अथवा 1881-85 के दौरान के प्रकाशनों के कारण उसकी व्याख्यानमाला का महत्त्वपूर्ण प्रभाव हम्बोल्ट तथा रिटर दोनों पर पड़ा।

आधुनिक भूगोल के लिए, जैसा कि?आडिकेस ने लिखा है—काण्ट का योगदान केवल ऐतिहासिक महत्त्व का है? गेरलाण्ट प्रभृति भूगोल के विद्वानों ने इसकी विशद विवेचना की है। परन्तु काण्ट के अध्ययन का एक खण्ड आज भी आधारभूत महत्त्व का है जिसमें उसने भूगोल तथा अन्य विज्ञानों के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है।

काण्ट अपने समय के प्रसिद्ध दार्शनिक भूगोलवेत्ता रहे जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान विषमताकारी घटकों की व्याख्या तथा उनमें व्याप्त क्षेत्रीय विभिन्नता के अध्ययन को भूगोल में आवश्यक बताकर महत्त्व दिया। तत्कालीन समय में यद्यपि तथ्यात्मक भूगोल विकसित नहीं हो पाया था साथ ही काण्ट उस समय के विद्वानों की तरह महान् यात्री नहीं थे इसीलिए उनका भौगोलिक चिन्तन आनुभाविक (Empirical) नहीं रहा। इनके अध्ययन का आधार दार्शनिक होने से वे प्रकृति के प्रेमी बने। दार्शनिकता के कारण काण्ट के भौगोलिक विवरणों में दर्शन, धर्म व नैतिकता की झलक मिलती है लेकिन काण्ट महोदय ने अपने भौगोलिक चिन्तन द्वारा भूगोल को विशिष्टता प्रदान की।

अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ट (Alexander Von Humboldt, 1769-1859)

हम्बोल्ट का पूरा नाम फ्रेडरिक विल्हेम हिनरिच अलेक्जेंडर बरोन वॉन हम्बोल्ट (Friedrich Wilhelm Heinrich Alexander, Baron Von Humboldt) था। हम्बोल्ट का जन्म प्रशिया के एक कुलीन परिवार में 14 सितम्बर, 1769 को हुआ था। उनका प्रारम्भिक अध्ययन वनस्पति विज्ञान एवं भू-गर्भशास्त्र में हुआ था। प्रतिष्ठित शास्त्रीय भूगोल के विकास में हम्बोल्ट का व्यक्तित्व महान् है। वर्तमान में जर्मनी में उनके नाम पर अनेक वैज्ञानिक संस्थाएँ स्थापित हैं, जहाँ भूगोल सहित कई विज्ञानों का अध्ययन तथा अन्वेषण किये जाते हैं।

हम्बोल्ट ने अपनी लम्बी-लम्बी यात्राओं में स्वयं द्वारा एकत्रित तथ्यों तथा प्रेक्षणों का विश्लेषण करके एक युक्तिसंगत वर्णन प्रस्तुत किया था। समयानुसार उन्होंने अपने विषय से हटकर भौतिक, रसायन विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान तथा शरीर क्रिया विज्ञान से भी अन्वेषण किये थे। गटिंगन तथा फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त हम्बोल्ट ने खनन भू-वैज्ञानिक के पद पर कार्य किया तथा इसके अध्ययन के लिए वह फॉर्स्टर के साथ आल्प्स पर्वत पर बवेरिया, इटली, आस्ट्रिया व स्विट्जरलैण्ड देशों में भी गया। हम्बोल्ट को जैव भूगोल कास्मॉस (1845-62), हम्बोल्ट की धारा, हम्बोल्टीयन विज्ञान, बर्लिन के लिए जाना जाता है। लुइस आगासीज इनके प्रसिद्ध शिष्य थे। इनके विचारों से डार्विन, वालेस, थार्यू, व्हीटमेन, एमर्सन, म्यूर तथा इरविंग प्रभावित हुए थे।

हम्बोल्ट को छायावादी युग का प्रतिनिधि माना जाता है। अपनी युवावस्था में जब मैं अध्ययन और भ्रमण करने में लगे हुए थे यूरोप की दार्शनिक एवं साहित्यिक वातावरण में छायावादी विचारधारा व्याप्त थी। हम्बोल्ट गेटे व शिल्ले जैसे दार्शनिकों के सम्पर्क में थे और उनके विचारों से प्रभावित थे। हम्बोल्ट प्रकृति के सर्वव्यापी सौन्दर्य एवं अद्भूत रहस्य से चमत्कृत एवं अभिभूत थे। इसी कारण हम्बोल्ट प्रकृति को एक निर्जीव नीरस तत्व के रूप में नहीं वरन् सजीव सुव्यवस्थिति एवं जीवन्त ईकाई के रूप में देखते थे।

हम्बोल्ट के ग्रन्थ (Books of Humboldt)

1. 'राइनलैण्ड बेसाल्ट' पर लिखा गया शोध ग्रन्थ, 1789
2. प्रकृति दिग्दर्शन (Views of Nature), 1847
3. दोनों गोलाद्धों की चट्टानों की विशिष्ट स्थिति पर भू-वैज्ञानिक लेख, 1823
4. मध्य एशिया (Asia Centrale), 1843 : तीन खण्डों में (अन्तिम तीसरा खण्ड 1845 में प्रकाशित हुआ)
5. भूमध्य रेखीय प्रदेशों का वर्णन, 1815-1820
6. दक्षिणी अमेरिका के मूल वंशज

7. मैक्सिको तथा क्यूबा का प्रादेशिक वर्णन

8. कॉसमॉस (Kosmos) एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो सन् 1845 से 1862 के मध्य पाँच खण्डों में प्रकाशित हुआ।

जॉर्ज फॉर्स्टर अपने पिता के इन विचारों से सहमत थे तथा उन्होंने माना कि उनकी यात्राओं के विवरण में प्राकृतिक वृत्तान्त मिलते हैं। सन् 1789 में हम्बोल्ट के साथ राइन नदी की यात्रा पर फॉर्स्टर ने एक विवरण प्रकाशित किया था, जिसका नाम था— '**Views of Lower Rhine**' इसके द्वारा जॉर्ज फॉर्स्टर ने अपने पूर्व के अध्ययन को और मजबूत बनाया। इस बारे में हम्बोल्ट ने अपनी पुस्तक '**Kosmos**' में लिखा है कि—'फॉर्स्टर उनके मित्र व शिक्षक थे जिनके माध्यम से वैज्ञानिक यात्राओं की नींव पड़ी।

सन् 1790 में हम्बोल्ट अपनी माँ की इच्छानुसार गटिंगन विश्वविद्यालय छोड़कर वित्तीय क्षेत्र में कार्य करने के लिए हेम्बर्ग चला गया। जहाँ उसने वाणिज्य के साथ वनस्पतिशास्त्र, खनिजशास्त्र व भूगोल का अध्ययन किया। यहाँ एक वर्ष पढ़ने के बाद वे खनिजशास्त्र में उच्चशिक्षा के लिए फ्रीबर्ग गये। जहाँ खनिजशास्त्र के अध्ययन के साथ-साथ वनस्पति व प्राणीशास्त्र में भी उनकी रुचि बनी रही। खानों में मिलने वाले पेड़-पौधों का सूक्ष्म अध्ययन करते रहे तथा इन प्रयोगों के बारे में लैटिन भाषा में पुस्तक भी प्रारम्भ की। इसके साथ ही पेड़-पौधों का पारिस्थितिकीय अध्ययन भी किया। इस पुस्तक में हम्बोल्ट ने वनस्पति को भूगोल की विषयवस्तु का घटक माना। इसी समय हम्बोल्ट ने भूगोल के लिए 'जियोअग्निया' लैटिन भाषा के शब्द का प्रयोग किया जो रिटर के अर्डकुण्डे (Erdkunde) का समानार्थी था। हम्बोल्ट ने आगे चलकर लिखा है कि वनस्पति भूगोल में ऐसे संयोजनों और सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है जिनके माध्यम से किसी क्षेत्र की वनस्पति परस्पर सम्बन्धित रहती है।

सन् 1796 में सरकारी नौकरी छोड़कर वैज्ञानिक शोध करने में लग गये। सन् 1797 में वेस्टइंडीज की यात्रा के लिए वियना एवं पेरिस गये। पेरिस में 'इंस्टीट्यूट द फ्रांस' नामक संस्थान में उनका सम्पर्क अनेक वैज्ञानिकों से हुआ। जिनमें प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री बोन्पालैण्ड प्रमुख थे। बोन्पालैण्ड के साथ हम्बोल्ट स्पेन जाकर वहाँ से स्पेन के दक्षिणी अमेरिकी उपनिवेशों की यात्रा की योजना बनाई तथा सन् 1799 में दक्षिणी अमेरिका की यात्रा पर रवाना हुए। यह समय उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दौर था जब उनके विचार प्राकृतिक भू-दृश्य के अध्ययन की ओर अग्रसर हुए। हम्बोल्ट ने दक्षिणी अमेरिका की यात्रा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए अपने मित्र को एक पत्र लिखा कि—

इस यात्रा के दौरान मैं पौधों तथा जीवाश्मों को एकत्र करूँगा। उन्नत यंत्रों की सहायता से खगोलीय आँकड़े तैयार करूँगा तथा विभिन्न स्थानों की हवाओं का रासायनिक विश्लेषण भी करूँगा। लेकिन ये सब मेरी यात्रा का मूल उद्देश्य नहीं है। सम्पूर्ण यात्रा के दौरान मेरा ध्यान प्रकृति में परस्पर सहअस्तित्व में विद्यमान तत्त्वों और शक्ति के स्रोतों के बीच व्याप्त समरसता तथा अप्रमाणित संसार की वनस्पतियों और पशुओं पर परिलक्षित होने वाले उनके प्रभावों के रहस्योद्घाटन पर केन्द्रित रहेगा।' हम्बोल्ट के इस विचार से स्पष्ट होता है कि उनकी इस वैज्ञानिक यात्रा का मूल उद्देश्य प्रकृति की सार्वभौमिक एकता और समरसता तथा जैविक और अजैविक तत्त्वों के सामंजस्य के अनुरूप एक विश्वव्यापी विज्ञान की स्थापना करना था। जिसकी परिणती 'आधुनिक भूगोल' की नींव के रूप में हुई।

सन् 1798 में वह फ्रेंच वनस्पति वैज्ञानिक ए. बोन्पालैण्ड (Aime Bonpaland, 1773-1858) के साथ मेड्रिड पहुँचा, जहाँ ऊँचाई के अनुसार बदलते तापमान का अध्ययन किया तथा बताया कि ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं, तापमान में कमी आती है। इसी आधार पर उन्होंने स्पेन के मसीटा पठार की ऊँचाई ज्ञात की। इसके उपरान्त वेनेजुएला गये जहाँ वह पाँच वर्षों तक रहा जिसमें 64 हजार किमी. का सफर किया। वेनेजुएला की वेलेंसिया झील का भी अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि वनों की कटाई से वर्षा में कमी आती है। सन् 1800 में वह ओरोनिको नदी बेसिन में अपना शोध कार्य करने लगा। यहाँ भूमध्यरेखीय जलवायु में उच्च तापमान, जंगली जीव-जन्तु, मच्छर, कीट-पतंगों तथा भोज की कमी आदि कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् 1801 में हम्बोल्ट पुनः एण्डीज पर्वतों के अध्ययन के लिए कोलम्बिया पहुँचा जहाँ स्वयं चिम्बोरोजो पर्वत शिखर पर चढ़ा। पीरू की राजधानी लीमा पहुँचकर उन्होंने सागरीय धाराओं का अध्ययन किया। वर्तमान में भी दक्षिणी-पूर्वी अर्जेन्टीना के समीप बहने वाली धारा का नाम हम्बोल्ट की धारा है।

दक्षिणी अमेरिका की यात्रा

हम्बोल्ट प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री बोन्पलैण्ड के साथ सबसे पहले वेनेजुएला के कुमाना (**Cumana**) शहर में पहुँचे। यहाँ से दोनों काराकास गये जहाँ मानव अधिवासों का सर्वेक्षण किया व इसके बाद काराकास से दक्षिण-पश्चिम में वलैन्सिया घाटी पहुँचे। इस घाटी में एक वलैन्सिया नामक छिछली झील स्थित थी जहाँ दोनों वैज्ञानिकों ने तीव्र वन उन्मूलन का स्थानीय दृश्य व इससे वहाँ के स्थानीय लोगों के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का विश्लेषण किया। सन् 1800 में ओरोनिको नदी घाटी में लगभग 1725 मील लम्बे क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। इसके बाद हम्बोल्ट ने स्पष्ट किया कि बुआशे द्वारा बताये गये विचार निराधार हैं। बुआशे ने यह बताया था कि पृथ्वी की सतह विस्तृत रूप में फैली हुई पर्वत श्रृंखलाओं द्वारा भिन्न-भिन्न घाटियों में विभाजित है। जबकि हम्बोल्ट ने पाया कि ओरोनिको घाटी व अमेजन घाटी दोनों के मध्य कोई पर्वत श्रृंखला नहीं है। हम्बोल्ट ने इन विचारों की पुष्टि ओरोनिको की एक सहायक नदी के पर्वतीय क्षेत्र में अमेजन की सहायक रायोनिग्रो नदी स्रोत में प्रवाहित होती है। इस सम्पूर्ण यात्रा में दोनों विद्वानों ने बड़ी मात्रा में अनेक वनस्पति के नमूने इकट्ठे किये। 18वीं शताब्दी के नवम्बर माह में पुनः कुमाना पहुँचे, जहाँ से वे क्यूबा की यात्रा पर गये और क्यूबा से सन् 1801 में कोलम्बिया के कार्टाजेना बन्दरगाह पर पहुँचे। यहाँ से हम्बोल्ट अपने साथी के साथ कोलम्बिया, इक्वेडोर व पीरू में स्थित एण्डीज पर्वत श्रृंखला के सर्वेक्षण में जुट गये। इस सर्वेक्षण के दौरान उन्होंने अपने द्वारा देखे गये प्रमुख स्थानों के तापमान, अक्षांश-देशान्तर तथा उनकी समुद्रतल से ऊँचाई के बारे में आँकड़ों का संग्रह किया जिनके आधार पर हम्बोल्ट ने उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में धरातलीय ऊँचाई और वायु तापमान के वानस्पतिक कृषि पर प्रभावों का उल्लेख किया। एण्डीज पर्वत की ज्वालामुखी चट्टानों का अध्ययन कर यह स्पष्ट किया कि ए. जी. वार्नर द्वारा प्रतिपादित संकल्पना सही नहीं है। जिसमें उन्होंने यह बताया था कि पृथ्वी की सभी चट्टानें परतदार हैं जबकि एण्डीज पर्वत की ये चट्टानें ग्रेनाइट, नीस व अन्य रवेदार चट्टानें थीं। इसी यात्रा के दौरान दोनों विद्वान् इक्वेडोर की चिम्बोरोजो पर्वत की चोटी पर भी गये। यह पर्वतीय चोटी 20561 फीट ऊँची है जिसे तात्कालीन विश्व की सबसे ऊँची चोटी माना गया है। सन् 1802 में हम्बोल्ट ने 19286 फीट की ऊँचाई पूरी की थी। इस पर्वतीय चोटी पर यात्रा के दौरान हम्बोल्ट ने ऊँचाई के मानव शरीर में प्रभावों का अध्ययन किया। इसके बाद वो लीमा (पीरू की राजधानी) पहुँचे। जहाँ पीरू के समुद्रतटीय क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। यहाँ समुद्री पक्षियों की बीट से बनी गुआनों चट्टान के नमूने इकट्ठे किये और अध्ययन के लिए यूरोप भेज दिया। इसके बाद गुआनों चट्टान एक बहुमूल्य उर्वरक का स्रोत बन गई। दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट स्थित केलाओं से इक्वेडोर के गायकिल तक की समुद्री यात्रा के दौरान हम्बोल्ट ने सागरीय जल के तापमान में उतार-चढ़ाव का अध्ययन किया तथा यहीं से समुद्री धाराओं से सम्बन्धित दृष्टि प्राप्त की। इसी समय पीरू के पश्चिमी तट पर एक ठण्डी जलधारा की खोज की। जिसे पीरू की धारा तथा बाद में हम्बोल्ट की धारा (हम्बोल्ट के नाम पर) कहा गया। यहाँ से सन् 1803 में दोनों वैज्ञानिक मैक्सिको तट के एकापुल्को बन्दरगाह पर पहुँचे। उस समय मैक्सिको को शन्या स्पेनश कहा जाता था। यहाँ पर हम्बोल्ट ने मैक्सिको की भौगोलिक और आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन किया। बाद में यहाँ से एकत्रित आँकड़ों के आधार पर ही हम्बोल्ट ने 'मैक्सिको का प्रादेशिक भूगोल' लिखा।

सन् 1804 में ये दोनों हवाना (क्यूबा) पहुँचे। जहाँ से संयुक्त राज्य अमेरिका होते हुए फिलाडेल्फिया पहुँचे। फिलाडेल्फिया में प्रसिद्ध दार्शनिक थॉमस जेफरसन से मिलकर 30 जून, 1804 को वापस पहुँचे।

हम्बोल्ट को जैव-भूगोल का संस्थापक माना जाता है, इन्होंने ही सर्वप्रथम विश्व की प्राकृतिक वनस्पति तथा फसलों का ऊँचाई तथा तापमान से सम्बन्ध स्पष्ट किया। अल्फ्रेड रसेल वालेस द्वारा सन् 1876 में लिखित पुस्तक 'जीवों का भौगोलिक वितरण' (The Geographical Distribution of Animals) में स्पष्ट किया गया है कि हम्बोल्ट के जीव-जन्तुओं तथा पादपों पर लिखे विभिन्न लेखों के बाद ही जैव-भूगोल को पादप भूगोल (Phytogeography) तथा प्राणी भूगोल (Geography) नामक शाखाओं में विभक्त किया गया।

पर यूराल पर्वतीय क्षेत्र के धात्विय खनिज प्रदेशों का भ्रमण किया। इन प्रदेशों के वर्णनों को उसने सन् 1843 में फ्रांसीसी भाषा में मध्य एशिया (Asia Centrale पद 3001) नामक ग्रन्थ में छपवाये।

सन् 1830 में पुनः बर्लिन में लौटे तथा वहाँ अपने जीवन के शेष 29 वर्ष व्यतीत किये। हम्बोल्ट ने समताप रेखा (Isotherm) तथा 'हिमावरित (Permafrost) शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'One spirit one life' तथा 'Unity in Multiplicity' की संकल्पना भी दी। हम्बोल्ट ने प्राकृतिक तथा मानवीय

तथ्यों का शुद्धतापूर्ण उल्लेख किया था। भूगोल का कोई तथ्य उसकी दृष्टि से नहीं बचा था। हम्बोल्ट प्रकृति की एकता (Unity of Nature) में तथा प्राकृतिक कारणत्व (Casualty) में विश्वास रखता था।

रूस की यात्रा

सन् 1829 में हम्बोल्ट रूस के लिए रवाना हो गया और सेंट पीटर्सबर्ग का ऐतिहासिक शहर, पहुँच गया।

लेनिनग्राड

हम्बोल्ट के शब्दों में, बर्फ से नीचे के तापमान में मेरा बूढ़ा शरीर सुन्न-सा हो गया था लेकिन फिर भी, मैं एक बात से खुश रहता था और मुझे यात्रा जारी रखने हेतु प्रेरणा मिलती रहती थी और वह थी नये स्थान की खोज करने का रोमांच। मैं फिर धीरे-धीरे यूराल पर्वत और मध्य एशिया के पहाड़ों की ओर बढ़ता गया और वहाँ से शिथिल होकर कैस्पियन सागर तक नीचे उतर आया और सबसे बड़ी बात, मुझे मंगोलिया के रहस्यमयी प्रदेश की यात्रा करने का भी अवसर मिल गया। कजान, ओमस्क, बाराबिंसक और टारा की अपनी पूरी यात्रा के दौरान, मंगोलिया को तो छोड़ ही दें, मैंने तापमानों तोबोलस्क, में होने वाले अन्तर को पूरी मेहनत से नोट किया। एक ही अक्षांश की ओर बढ़ते हुए सागर से दूरी के अनुरूप तापमान बदलता रहता है। अतः मैंने रूस के विभिन्न स्थानों से एकत्र किये तापमान सम्बन्धी आँकड़ों को जल्दी से संकलित किया और तापमान सम्बन्धी विश्व का पहला मानचित्र तैयार किया। फिर, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समताप रेखा किसी रेखांश के अनुरूप नहीं होती। यह मेरे महाद्वीपीय सिद्धान्त, महाद्वीपीय अंतः प्रदेशों में अत्यधिक मौसमी ठंड या गर्मी पड़ने के सिद्धान्त और तटवर्ती क्षेत्र में पूरे वर्ष भर शीतोष्ण तापमान रहने के सिद्धान्त का आधार था। यह निष्कर्ष इतना अधिक कल्पनापूर्ण था कि मैं विश्व के शिखर पर जा पहुँचा। क्या आपको इस बात की जानकारी है कि इस निष्कर्ष के पश्चात् ही 'मौसम विज्ञान' शब्द को भूगोल के पुस्तकों में शामिल किया गया था? जार ने भी मेरे प्रयासों की सराहना की और मेरी ही पहल पर अपने देश के विभिन्न भागों में मौसम सम्बन्धी केन्द्रों की स्थापना करके हमारे विषय क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हम्बोल्ट का वैज्ञानिक युग

हम्बोल्ट दक्षिणी अमेरिका की यात्रा पूरी करके बर्लिन पहुँचे तथा सन् 1806 में जर्मनी में राजनीतिक अस्थिरता के बाद उसकी योग्यता के आधार पर सन् 1807 में एक राजनीतिक के रूप में पेरिस भेजा गया जहाँ का वातावरण वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए अनुकूल लगा जिस कारण हम्बोल्ट लगभग वहाँ पर 19 वर्ष रुके। इस अवधि में उन्होंने अपनी दक्षिणी अमेरिकी यात्रा के बारे में 'नये महाद्वीप के विषुवत् रेखीय प्रदेशों की यात्रा' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक फ्रेंच भाषा में 30 खण्डों में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रारम्भ में हम्बोल्ट ने लिखा कि इस यात्रा में देखे गये वृत्तान्त केवल अद्भुत दृश्यावली न होकर एक प्राकृतिक सार्वभौमिक एकता का स्वरूप था। आगे उन्होंने लिखा है कि इस पुस्तक की पृष्ठभूमि सन् 1790 में जॉर्ज फॉर्स्टर के साथ इंग्लैण्ड यात्रा के दौरान बनी थी। उन्होंने आगे लिखा है कि भौतिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में सम्पन्न मेरा शोध कार्य इन प्रारम्भिक विचारों का विस्तृत रूप है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की यात्रा ने मुझे विश्व के प्राकृतिक इतिहास को समझने का उपागम प्रदान किया है। हम्बोल्ट के अनुसार, वनस्पति भूगोल और उनके विश्वव्यापी विज्ञान पर इस योजना का मुख्य ध्यानाकर्षण रहा। अपने वनस्पति भूगोल में हम्बोल्ट ने लिखा था कि इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विषुवतरेखीय प्रदेशों में पाये जाने वाले प्राकृतिक दृश्यभूमि का समन्वित विवरण प्रस्तुत करना था। इस दृश्यभूमि में प्राकृतिक तथ्यों के साथ मानवजनित दृश्यभूमि में भी अन्तर आवश्यक माना है।

मैक्सिको के प्रादेशिक भूगोल पर लिखते हुए हम्बोल्ट ने स्पष्ट किया है कि वर्तमान समय की प्रमुख चेतना समाजवादी चेतना है। अतः इस परिप्रेक्ष्य में प्रादेशिक भूगोल एक महत्वपूर्ण योगदान है। जेम्स के अनुसार हम्बोल्ट का यह विवरण 'संसाधनों तथा उत्पादनों का जनसंख्या व राजनीतिक स्थितियों के सन्दर्भ में किये गये प्रारम्भिक विश्लेषणों में से एक था।' हम्बोल्ट के इस यात्रा वृत्तान्त के अन्तिम तीन खण्ड अंग्रेजी में Personal Narrative शीर्षक के रूप में प्रकाशित हुए थे। जिसमें दोनों वैज्ञानिकों के द्वारा किये गये वैज्ञानिक अनुसंधानों, सम्बन्धित समस्याओं का स्पष्टीकरण व अनुसंधानों के परिणामों की विवेचना की गई है। हम्बोल्ट द्वारा प्रस्तुत इस पुस्तक का समकालीन वैज्ञानिक चिन्तन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। चार्ल्स डार्विन ने भी इस पुस्तक का अनेक बार अध्ययन किया। इसके बाद उनके विचारों की दिशा भी बदल गई थी। इस पुस्तक से नये महाद्वीपों के बारे में अनेक वैज्ञानिक विवरण मिले जिनसे विभिन्न प्राकृतिक परिघटनाओं की जानकारी भी मिली।

कॉसमॉस (Kosmos) की रचना

हम्बोल्ट के जीवन के महत्वपूर्ण स्रोत और विचारों की महत्वाकांक्षी योजना के रूप में कॉसमॉस पुस्तक की रचना की गई। इस पुस्तक की रचना की पृष्ठभूमि सन् 1790 के दशक में बन गई थी जिसकी परिणती सन् 1827 में हम्बोल्ट के बर्लिन लौटने पर प्रारम्भ हुई।

कॉसमॉस की प्रारम्भिक योजना के अनुसार, इसमें पाँच खण्ड प्रस्तावित किये जाने थे लेकिन सन् 1859 में हम्बोल्ट के देहावसान के समय तक अन्तिम खण्ड पूरा नहीं हो सका लेकिन उनके द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर सन् 1862 में इसे प्रकाशित किया गया। कॉसमॉस के प्रथम खण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विवरण किया गया है। द्वितीय खण्ड में सभ्यता के विकास के सम्पूर्ण दौर में चित्रकारों और कवियों द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक दर्शन के प्रयासों की विवेचना से प्रारम्भ कर मानव द्वारा पृथ्वी के रहस्य को समझने तथा नवीन स्थानों की खोज के लिए किये गये प्रयासों का ऐतिहासिक विवरण किया गया था। तृतीय खण्ड में खगोलशास्त्र तथा आकाशीय पिण्डों से सम्बन्धित विवरणों का समावेश किया गया था। चतुर्थ खण्ड में मुख्यतः पृथ्वी से सम्बन्धित विवरण दिये गये थे। पाँचवें खण्ड में वनस्पति और प्राणी भूगोल के साथ-साथ मानव भूगोल का विवरण देना था जो पूर्ण नहीं हो सका।

हम्बोल्ट द्वारा प्रस्तुत संकल्पनाएँ (Concepts by Humboldt)

हम्बोल्ट ने भूगोल में सात पक्षीय संकल्पनाओं (Seven Aspected Concepts) का प्रतिपादन किया था, जिनके आधार पर भूगोल का विकास हो रहा है। ये निम्न प्रकार हैं—

1. पृथ्वी तल की संकल्पना मानवीय निवास के रूप में (The Concept of Earth's Surface as the Home of Man)—हम्बोल्ट महोदय के अनुसार, भूगोल में पृथ्वी तल का अध्ययन मानवीय निवास के रूप में किया जाता है। इस संकल्पना को उनके अनुदर्शकों ने माना तथा आगामी भूगोलवेत्ता भी सम्भवतः मानेंगे।
2. संसार के स्थानिक वितरणों का विज्ञान (Science of Spatial Distributions of the World)—हम्बोल्ट की मान्यता थी कि भूगोल स्थानिक वितरणों का शास्त्र है। वास्तविक रूप से स्थानिक वितरणों की संकल्पना ही भूगोल की मूलभूत संकल्पना है। स्थानिक वितरणों में सम्पूर्ण संसार का अध्ययन होता है, जहाँ मानव निवास कर अपनी क्रियाएँ सम्पादित करता है।
3. सामान्य भूगोल ही भौतिक भूगोल है (General Geography is Physical Geography)—हम्बोल्ट ने सामान्य भूगोल को ही भौतिक भूगोल माना है, जिसमें मानवीय अध्ययन को सम्मिलित किया है। अपने ग्रन्थ कॉसमॉस में जलवायु के विस्तृत विवरण तथा चट्टानों पर फैली वनस्पति एवं मानव समुदायों का विवरण दिया है। उन्होंने भौतिक भूगोल का उद्देश्य सजीव एवं निर्जीव के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन करना बताया है।
4. भूगोल सम्बन्धों का अध्ययन है (Geography is a Study of Relations)—हम्बोल्ट महोदय ने बताया कि भूगोल का प्रमुख उद्देश्य पृथ्वी पर मानवीय तथा भौतिक तथ्यों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन है। भूगोल में प्राकृतिक पर्यावरण तथा मानव निर्मित दृश्यावली का अध्ययन किया जाता है। उन्होंने कॉसमॉस में लिखा है कि 'निर्जीव भू-सतह में वही तत्त्व है जो जन्तुओं तथा पादपों में। सभी जैविक तथा अजैविक तत्त्वों में परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है। प्राकृतिक दृष्टिकोण से मानवीय क्षमता पादपों तथा जीव-जन्तुओं की अपेक्षा बेहतर है। वह अपनी मानसिक क्षमता के बल पर प्रकृति में व्याप्त विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा दुर्गम भू-दृश्यों में अपना अनुकूलन स्थापित कर लेता है तथा यथाशीघ्र प्राकृतिक नियंत्रणों से बाहर निकल जाता है तथापि मानव प्रकृति की पार्थिव एकता से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है।
5. सांसारिक दृश्य घटनाओं की समझ (Comprehension of World Phenomena)—भौगोलिक अध्ययन में सांसारिक परिघटनाओं का अध्ययन प्रमुख कार्य है। ये घटनाएँ अत्यन्त जटिल होती हैं। इनमें ज्वालामुखी उद्गार, मनुष्य के कृषि व्यवसाय, परिवहन साधन, जलवायु के अनुसार मानवीय रहन-सहन आदि प्रमुख हैं। इनके कारण तथा परिणाम अलग-अलग होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि समान

जलवायु दशाएँ, मृदा, यातायात के साधन तथा सिंचाई के साधन उपलब्ध होने पर मनुष्य एक ही प्रकार की कृषि करे। इस प्रकार इन घटनाओं में पायी जाने वाली विभिन्नता तथा समाकलन का अध्ययन करके हम इनमें व्याप्त जटिलताओं को समझते हैं।

6. भूगोल में दृश्य घटनाओं की विषमांगता (Heterogeneity of Phenomena) –हम्बोल्ट ने अन्य विज्ञानों से भूगोल को अलग बताते हुए कहा कि अन्य विज्ञानों में सम्पादित विभिन्न दृश्य घटनाओं में परस्पर समानता होती है, लेकिन भौगोलिक अध्ययन में सम्मिलित परिघटनाओं में विषमता पायी जाती है।
7. प्रकृति की एकता (Unity of Nature)–हम्बोल्ट सदैव प्रकृति की एकता में विश्वास करता था। इन्होंने बताया कि सम्पूर्ण प्रकृति में प्राकृतिक परिघटनाओं के वितरण में भिन्नताएँ होते हुए भी एकता है। इस एकता को भूगोल प्रदर्शित करता है। उनके अनुसार उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक केवल एक ही आत्मा प्रकृति को सजीव बनाती है। पृथ्वी पर पत्थरों, नदियों, भवनों, वनस्पति, जीव-जन्तुओं तथा मानवीय ओत-प्रोत में एक ही जीवन है अर्थात् प्रकृति एक ऐसा समन्वय है जो सृष्टि की समस्त वस्तुओं का परस्पर सम्मिश्रण करती है। प्रति एक महत्त्वपूर्ण इकाई है जो जीवन प्राण द्वारा चेतन और सजीव है। इस प्रकार हम्बोल्ट बहुलता में एकता (Unity in Multiplicity) का अन्वेषण करने के प्रतिपादक थे।

हम्बोल्ट की अध्ययन विधि (Methodology of Humboldt)

भौगोलिक अध्ययन के लिए हम्बोल्ट ने निम्न पाँच पक्ष अपनाये थे—

1. आनुभाविक विधि (Empirical Method) – प्रेक्षण (Observation) तथा परीक्षण (Experimentation) द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। इसमें यंत्रों का नूतन ज्ञान व प्रयोग समाहित है।
2. क्रमबद्ध विधि (Systemetic Method) –अध्ययन में वर्गीकरण को महत्त्व देना, जैसे भौतिकी, भू-विज्ञान आदि प्राकृतिक विज्ञानों की तरह भूगोल के क्रमबद्ध अध्ययन पर बल दिया गया।
3. तुलनात्मक विधि (Comparative Method) – दृश्य घटनाओं तथा वितरणों के प्रेक्षणों, उदाहरणों और तथ्यों (Facts) की तुलना करके निष्कर्ष निकालना।
4. पूर्ण शुद्धता (Precision) – प्रत्येक प्रक्रिया में शुद्धता का अनुसरण करना।
5. मानचित्र विधियाँ (Cartographic Methods)–मानचित्र एवं रेखाचित्रों द्वारा तथ्यों को प्रदर्शित करना।

कार्ल रिटर (Carl Ritter, 1779-1859)

रिटर का जन्म सन् 1779 में प्रशिया के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र शनेपफेन्थल के निकट मेग्डेलबर्ग में हुआ। सन् 1785 में रिटर ने शनेपफेन्थल में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ की। यहाँ की शिक्षा रूसो एवं पेस्टोलॉजी विचारधाराओं पर आधारित थी जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रति के प्रति रुचि पैदा करना था। इस व्यवस्था में चारों ओर के क्षेत्रों का भ्रमण कराकर क्षेत्रीय सम्बन्धों को विशेष महत्त्व दिया जाता था, जो एक भूगोलवेत्ता के रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसके उपरान्त 17 वर्ष की आयु में हैले विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर गणित, दर्शनशास्त्र, इतिहास तथा प्रकृति-विज्ञान आदि का अध्ययन किया। भूगोल के आधुनिक शास्त्रीय युग में हम्बोल्ट के समकालीन रिटर का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भौगोलिक चिन्तन के इतिहास में दोनों विद्वानों को एक-सा व अलग-अलग रूपों में आधुनिक भूगोल के संस्थापक के रूप में जाना जाता है।

भूगोल का विकास एवं अध्यापन कार्य (Development of Geography and Teaching Works) कार्ल रिटर का जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ था। केवल पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उनके पिता का निधन हो गया, जिस कारण पाँच सदस्यों वाले परिवार में रिटर की शिक्षा व्यवस्था के लिए भी उनकी माँ के सामने विकट समस्या आ गई थी। उसी समय प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री क्रिस्टियन सोल्जमेन ने एक प्रायोगात्मक शिक्षा संस्थान की स्थापना की जहाँ एक ऐसे बालक की आवश्यकता थी जो सांसारिक शिक्षा से वंचित रहा हो। संयोगवश वे रिटर से प्रभावित हुए और अपना शिष्य बना लिया। तत्कालीन समय में प्रचलित अध्ययन पद्धति के अनुसार बच्चों को बिना समझाये केवल पाठ याद करने की पद्धति का प्रचलन था। लेकिन सोल्जमेन ने उससे हटकर रूसो व पेस्टोलॉजी के विचारों पर आधारित प्रायोगात्मक व प्रत्यक्ष दर्शन के माध्यम से अध्यापन कराने की नयी

पद्धति चलायी। रिटर को गुट्समुथ्स संस्था में रखा गया। सोलजमेन के इस विद्यालय में रिटर को प्रारम्भ से ही मानव पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों को समझने का अध्ययन करवाया गया। विद्यालय के अध्यापक बच्चों को अपने स्तर पर मानव प्रकृति के सम्बन्धों को समझने के लिए प्रोत्साहित करते थे। उसके लिए अनुकूल तथ्य यह भी था कि उस समय विद्यालय पहाड़ी व कम ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में खोले जाते थे जिस कारण समीपवर्ती प्राकृतिक भू-दृश्य के बारे में पर्याप्त दृष्टि बन सके। रिटर में बचपन से ही प्राकृतिक वातावरण की विविधता की एकता एवं मूलभूत समरसता के प्रति चेतना उत्पन्न हो गई थी जो रिटर के विभिन्न लेखों में आजीवन देखने को मिलती है तथा बाद में उनके भौगोलिक चिन्तन का आधार बन गई। सन् 1807 में रिटर हम्बोल्ट से मिले जिसके बाद उनकी भूगोल के प्रति रुचि और बढ़ी। अतिशीघ्र ही वे यूरोप के प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन करने लगे तथा 'यूरोप के प्रादेशिक भूगोल' नामक पुस्तक दो खण्डों में प्रकाशित की। यह पुस्तक यूरोप के ऐतिहासिक घटनाक्रम को समझने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। रिटर ने हैले विश्वविद्यालय में 2 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करके सन् 1798 में फ्रैंकफर्ट नगर के हालवेग परिवार में व्यक्तिगत (प्राइवेट) अध्यापक बनकर बच्चों को शिक्षा देना आरम्भ किया जहाँ वह 20 वर्षों तक रहा था। इस अवधि में उसने यूरोपीय देशों का भ्रमण किया। सन् 1804 में 'यूरोप पर एक भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांख्यिकीय चित्रण' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस यात्रा के दौरान स्विट्जरलैण्ड में पेस्टोलॉजी से इनकी कई बार भेंट हुई जिनसे प्रकृति एवं आध्यात्मवाद की प्रेरणा मिलती रही। सन् 1806 में हम्बोल्ट के सम्पर्क से इनकी कार्यशैली परिवर्तित हुई। इस भेंट के उपरान्त हम्बोल्ट ने रिटर के अन्दर भूगोल के प्रति रुचि उत्पन्न कर भौगोलिक कार्यों की ओर प्रेरित किया। इन्होंने यूरोप के छः मानचित्र प्रकाशित किये। इन भौगोलिक लेखों से उसकी ख्याति फैली तथा सन् 1819 में उसे फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय के अन्तर्गत लिपजिग में इतिहास-भूगोल का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। एक वर्ष उपरान्त नवस्थापित बर्लिन विश्वविद्यालय में भूगोल का सर्वप्रथम प्रोफेसर नियुक्त हो गया, जहाँ वह जीवनपर्यन्त अध्यापन कार्य करता रहा।

रिटर के चिन्तन में प्रारम्भ से ही इतिहास और भूगोल की पारस्परिकता देखने को मिलती है। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के छः साल बाद रिटर की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक 'अर्डकुण्डे' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के प्रथम दो खण्डों का प्रकाशन वर्ष 1817-18 में हुआ। इसके तीसरे खण्ड में रिटर भूगोल और इतिहास के अन्तर सम्बन्धों को स्पष्ट करना चाहते थे लेकिन यह पूर्ण नहीं हो सका। अर्डकुण्डे का मुख्य उद्देश्य प्रकृति और इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पृथ्वी का विज्ञान अथवा भौतिक अथवा ऐतिहासिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए तुलनात्मक भूगोल की सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना था। तत्कालीन विधिवत् समाज में इस रचना को व्यापक लोकप्रियता मिली व इसी आधार पर सन् 1820 में रिटर को बर्लिन विश्वविद्यालयों में भूगोल का प्रोफेसर बनाया गया। इस समय तक भी रिटर का मुख्य ध्यान ऐतिहासिक लेखन के सामान्य पृष्ठभूमि तैयार करना था। लेकिन सन् 1820 में जब सम्पूर्ण जर्मनी में विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल के क्षेत्र में रिटर को प्रोफेसर स्तर के प्रथम पद पर नियुक्ति मिली तो उनका ध्यान भूगोल की वैज्ञानिक परिदृष्टि पर पड़ा व उनके मस्तिष्क में भौगोलिक अध्ययन की स्वतंत्र शाखा के विकास की संकल्पना बनी। इसके बाद रिटर ने अर्डकुण्डे को पुनः लिखना प्रारम्भ किया। जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1822-23 में इसका नया संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें इतिहास पर आधारित तीसरे खण्ड की योजना को सम्मिलित नहीं किया गया। इस प्रकार रिटर ने सन् 1832 से 1838 के मध्य अर्डकुण्डे के छः खण्ड तथा सन् 1838 और 1859 के मध्य 11 खण्ड सम्मिलित किये गये। इस प्रकार इस पुस्तक में कुल 19 खण्ड प्रकाशित हुए। रिटर के सन् 1859 में स्वर्गवास के कारण इसमें (अर्डकुण्डे में) केवल वे यूरोप, अफ्रीका व एशिया महाद्वीपों का विवरण ही पूरा कर सके थे। इस पुस्तक के प्रकाशन से भूगोल में प्रादेशिक अध्ययन को महत्व मिला। इस प्रकार रिटर ने तत्कालीन समय के हर सम्भव स्रोतों से सूचनाओं का संग्रह कर संश्लेषणात्मक भौगोलिक लेखन को भी प्रारम्भ किया।

रिटर का मानना था कि अर्डकुण्डे का प्रकाशन वैज्ञानिक भूगोल के प्रतिपादक में सहयोगी रहा, क्योंकि उनकी वैज्ञानिक भूगोल पारस्परिक भूगोल से काफी भिन्न थी। प्रकृति की विविधताओं में एकता उनकी प्रादेशिक भूगोल का मुख्य केन्द्र थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थानीय दृश्य भूमि के विभिन्न घटकों की पारस्परिकता व समरसता को उजागर किया है। हम्बोल्ट की तरह रिटर ने भी प्राकृतिक परिवेश की इस मूल समरसता को 'जूंसामेन हैंग' नाम दिया। रिटर के एक महत्वपूर्ण लेख भौगोलिक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य केवल दृश्यभूमि का वर्णन न होकर इसमें निहित नियमों को खोजना है। किसी भी क्षेत्र के बारे में वस्तुओं और आँकड़ों की गणना न कर उन स्थानों की परस्पर अन्तर्सम्बद्धता व स्थानीय दृश्यभूमि तथा समन्वित प्रकृति को अनुबद्धित करने वाले

नियमों की खोज है। रिटर ने बताया है कि भूगोल के विद्यार्थी का मुख्य कार्य विभिन्न घटकों के स्थानीय स्वरूप व उनके परस्पर सहअस्तित्व को स्पष्ट करना है। रिटर की इसी नवीन अध्ययन पद्धति को अर्डकुण्डे कहा गया जिसका शाब्दिक अर्थ पृथ्वी का विज्ञान, भी होता है, जो बाद में भूगोल का पर्याय माना गया। रिटर के अनुसार भूगोल मूल रूप से पृथ्वी तल पर मानव निवास का अध्ययन है।

रिटर के ग्रन्थ (Books of Ritter)

रिटर ने अपने जीवन में अनेक पुस्तकें, मानचित्र तथा शोधपत्र प्रकाशित किये थे उनमें मुख्य निम्नलिखित

1. यूरोप का भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांख्यिकीय चित्रण (Europe: A Geographical, Historical and Statistical Painting, 1804)
2. यूरोप के प्राकृतिक संसाधनों के छः मानचित्र, 1806
3. यूरोप के भूगोल का दूसरा खण्ड, 1807
4. भौगोलिक ग्रन्थ 'अर्डकुण्डे (Erdkunde) का प्रथम खण्ड' अफ्रीका महाद्वीप, 1817
5. अर्डकुण्डे का द्वितीय खण्ड 'एशिया महाद्वीप', 1818
6. अर्डकुण्डे का छः खण्डों में बृहदाकार प्रकाशन (20,000 पृष्ठ), 1833
7. अर्डकुण्डे के 19 ग्रन्थों का प्रकाशन, 1859
8. काला तथा केस्पियन सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों का मानव स्थानान्तरण।

हार्टशॉर्न ने अपनी पुस्तक 'The Nature of Geography' में बताया है कि रिटर द्वारा ईश्वरीय विचारधारा अपनाने का मूल कारण पृथ्वी के भौगोलिक विश्लेषण में मिलने वाले तीन मौलिक तथ्य थे। प्रथम, ब्रह्माण्ड में पृथ्वी का स्वरूप सबसे अलग है। द्वितीय, पृथ्वी मनुष्य के पर्यावास (**Habitat**) के रूप में ईश्वर की अनुपम कृति है। तृतीय, पृथ्वी के विभिन्न परिमण्डलों की भौतिक रचना में मिलने वाली सर्वव्यापी विविधता।

रिटर की विचारधारा (Ritter's Thought)

रिटर की भौगोलिक विचारधारा हम्बोल्ट से प्रभावित हुई जिसे स्वयं रिटर ने स्वीकार किया, लेकिन रिटर ने भूगोल की प्रादेशिक विधि को अपनाया जिसमें भौतिक तथा मानवीय कारकों के संश्लेषण पर बल दिया जाता है। इन दोनों की विचारधारा में समानता होते हुए भी बहुत अन्तर था। रिटर की विचारधारा के प्रमुख तथ्य निम्नलिखित थे—

1. विकासवादी विचारक (Progressive Thinker)—रिटर के विचार विकासवादी रहे हैं, जिन्हें समझने के लिए उनके समस्त लेखों तथा ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है।
2. ज्यूने का प्रभाव (Impact of Zuebe) — रिटर ने गेट्टेरेर तथा होम्मेयर की शुद्ध भूगोल (Reine or Pure Geography) को अस्वीकार करते हुए उसे अवैज्ञानिक बतलाया है। इस सन्दर्भ में रिटर ने बताया है कि 'Reine Geography is nothing more than a general description of terrain' इनके विचार ज्यूने से मिलते-जुलते थे जो किसी क्षेत्र की भू-रचना, जलवायु, पादपों तथा मनुष्यों में अन्तर्सम्बन्ध मानता था।
3. नियतिवादी (Deterministic) — रिटर पर्यावरण निश्चयवाद (Determinism) को मानता था। उसने मानव तथा प्रकृति की परस्पर प्रतिक्रिया को प्रधानता देते हुए बताया कि यूरोप की कटी-फटी समुद्र तट रेखा का महत्त्व यूरोप के इतिहास पर परिलक्षित होता है। समुद्र तट के निवासियों पर भी समुद्र का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।
4. मानव केन्द्रित भूगोल (Anthropocentric Geography) — रिटर का भूगोल मानव केन्द्रित था। उनके अनुसार, भूगोल का उद्देश्य मानव केन्द्रित दृष्टिकोण से पृथ्वी तल का अध्ययन करना तथा उसमें मानव एवं प्रकृति को अन्तर्सम्बन्धित करना है। केवल पृथ्वीतल का वर्णन करना ही भूगोल का उद्देश्य नहीं वरन् पृथ्वी पर मानवीय क्रियाओं का वर्णन विशेष महत्त्व रखता है।

5. सम्पूर्ण की संकल्पना (Concept of Whole) – रिटर की ग्रन्थमाला अर्डकुण्डे का मुख्य उद्देश्य प्रादेशिक व्यक्तित्व तथा पूर्णता की संकल्पना को स्पष्ट करना था। उनके कथन "From an Individual fact towards whole" में प्रकृति एवं मानवीय तथ्यों को सम्बद्धपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना पुष्ट हुआ है। वे कहते थे कि केवल प्राकृतिक तथ्य या मानवीय पक्ष भूगोल का निर्माण नहीं कर सकता। अतः सम्पूर्णता के लिए विभिन्न शक्तियों का संयोजन आवश्यक है। उदाहरणार्थ अर्डकुण्डे के प्रथम खण्ड में अफ्रीका को चार भागों में विभाजित करके उनके उप प्रदेश बनाये तथा प्रत्येक का पूर्ण वर्णन किया है। इसके उपरान्त उन सभी उप प्रदेशों तथा प्रदेशों को पुनः एकत्रित करके सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप का एक व्यक्तिगत पूर्ण रूप में (As an Individual Whole) वर्णन किया है। अतः रिटर महोदय ने भिन्न व्यक्तित्व वाली भौगोलिक इकाइयों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करके अन्ततः पृथ्वी की एकता को स्पष्ट करना ही भूगोल का उद्देश्य माना है।
6. क्षेत्रीय सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Relationship in Space) – रिटर ने पृथ्वी तथा उसके निवासियों में व्याप्त घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध (Reciprocal Relation) माने हैं। उन्होंने बताया कि दोनों में से किसी एक को भी इन सम्बन्धों के बिना अलग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अतः रिटर भी हम्बोल्ट की तरह प्रकृति की एकता में विश्वास रखते थे।
7. भूगोल अर्डकुण्डे का पर्याय है (Geography is Synonymous of Erdkunde) – रिटर ने भूगोल के लिए अर्डकुण्डे शब्द का प्रयोग किया था। उन्होंने पृथ्वी का सर्वाधिक पूर्ण (Most Complete) तथा ब्रह्माण्डीय (Most Cosmical) दृश्य अपनाकर उसे मधुर इकाई के रूप में संगठित करके, उसमें सम्पूर्ण ग्लोब का वर्णन तथा मानव व उसके सृष्टिकर्ता (Creator) के सम्बन्धों का विवेचन आवश्यक माना है। उनका मानना था कि भूगोल के द्वारा प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों तथा आकृतियों का मानव जाति के साथ होने वाले घनिष्ठ सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए रिटर की दृष्टि में अर्डकुण्डे भूगोल को वैज्ञानिक रूप देने वाली श्रेष्ठ कृति थी।
8. ईश्वर उद्देश्यवादी विचारधारा (Teleological Views) – रिटर ने पृथ्वी के अध्ययन के लिए उद्देश्यवादी उपागम को अपनाया था। रिटर का ईश्वरीय उद्देश्यवादी विचारधारा या उपागम की दृष्टि से भूगोल में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका मानना था कि पृथ्वी की रचना ईश्वर ने उद्देश्यपूर्वक की है जो कदापि अर्थहीन नहीं है बल्कि पृथ्वी मानव की शिक्षण भूमि है जिसके प्रांगण में मानव का पोषण होता है। यहाँ उसे प्रकाश प्राप्त होता है। उनके अनुसार पृथ्वी पर महाद्वीपों की संरचना, उच्चावच तथा स्वरूप आकस्मिक न होकर कुछ नियमों के आधार पर निर्धारित हुआ है तथा यह मानव विकास में अपना योगदान देने में बाध्य है अर्थात् ईश्वर का यह उद्देश्य था कि विभिन्न मानव वर्गों को विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक वातावरण प्रदान किये जायें जहाँ वातावरण के द्वारा उनकी सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक प्रगति का स्वरूप निर्धारित हो सके।
9. प्रादेशिक अध्ययन (Regional Study) – रिटर ने भौगोलिक अध्ययन में प्रादेशिक वर्णन को विशेष महत्त्व दिया है, यद्यपि उसकी प्रथम रचना 'योरोप' क्रमबद्ध प्रणाली पर आधारित थी, लेकिन इसके उपरान्त उन्होंने सभी कृतियों एवं लेखों में प्रादेशिक प्रणाली को अपनाया। उन्होंने पृथ्वी तल को प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करके उनका वर्णन किया। लेकिन पृथ्वी के प्रादेशिक अध्ययन के लिए राजनैतिक सीमाओं को अस्वीकार करते हुए प्राकृतिक प्रदेशों को आधार माना है। प्रादेशिक अध्ययन के लिए रिटर ने लैण्डरकुण्डे (Lander Kunde) शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ प्राकृतिक प्रदेश होता है।
10. भूगोल आनुभाविक विज्ञान के रूप में (Geography as Empirical Science) – रिटर ने भूगोल को अन्य विज्ञानों की तरह केवल सिद्धान्तों पर आधारित न मानकर एक आनुभाविक विज्ञान माना है जो प्रेक्षणों तथा परिणाम पर आधारित है।
11. स्थल का चित्रण (Representation of Land) – रिटर ने अपना उद्देश्य समस्त स्थल का सजीव चित्रण प्रस्तुत करना माना था। इसके लिए स्थल के प्राकृतिक तथा कृषि उत्पादनों, प्राकृतिक तथा मानवीय लक्षणों को अलग-अलग तथा सम्बद्धतापूर्ण (Coherent Whole) रूप में इस तरह प्रस्तुत करें कि मानव तथा प्रकृति के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण आकलन स्वयं प्रत्यक्ष हो जायें जिससे उसकी परस्पर तुलना की जा सके।

रिटर की अध्ययन विधि (Ritter's Methods)

1. **आनुभाविक विधि (Empirical Method)** – रिटर भूगोल को एक आनुभाविक विज्ञान मानते हुए भौगोलिक अध्ययन के लिए आनुभाविक विधि का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध में रिटर ने फॉर्सटर का अनुसरण करते हुए निरीक्षण पद्धति अपनाने पर बल दिया। रिटर आर्मचेयर भूगोलवेत्ता (Armchair Geographer) का विरोधी था। उसने सावधानीपूर्वक शुद्ध प्रेक्षण कर उन्हें एकत्रित करके उनसे सत्य का निश्चय करने की विधि को अपनाया। उन्होंने अपने ग्रन्थ भू-विज्ञान में लिखा है कि, “मेरा मुख्य उद्देश्य तथ्य एकत्रित करना न होकर प्रकृति की विभिन्नता में निहित सामान्य नियमों को स्पष्ट करना है। इन नियमों का सम्बन्ध प्रत्येक तथ्य से क्रमशः मिलाना है। विशुद्ध ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ग्लोब पर दृष्टव्य बाह्य विविधता एवं असम्बद्धता में अन्तर्निहित पूर्ण एकता एवं लयबद्धता जो मनुष्य एवं प्रकृति के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध में मूर्तिमान होते हैं, का उद्घाटन करना मेरा उद्देश्य है।
2. **तुलनात्मक विधि (Comparative Method)** – रिटर ने भूगोल के विविध तथ्यों के कारण सम्बन्धों (Casual Relationship) को समझने के लिए तुलनात्मक विधि को महत्वपूर्ण माना है। इसलिए उन्होंने अपने ग्रन्थ ‘अर्डकुण्डे’ का उपशीर्षक सामान्य तुलनात्मक भूगोल (General Comparative Geography) रखा था। रिटर के अनुसार, “वह समस्त भौगोलिक विवरण जो वर्णन तक सीमित न रहकर उसके आगे तक अग्रसर होता है, वह तुलनात्मक भूगोल कहलाता है।
3. **प्रादेशिक वर्णन विधि (Regional Method)** – रिटर ने प्राकृतिक प्रदेशों (Lander Kunde) को अपने वर्णन का प्रमुख आधार माना है।
4. **विश्लेषण तथा संश्लेषण विधि (Analysis and Synthesis Method)** – रिटर ने प्रेक्षणों का विश्लेषण करके उसके तथ्यों की तुलना करने के बाद विभिन्न अंगों को एकत्र करके उनके संश्लेषण द्वारा क्षेत्रों के सभी तथ्यों के सम्मिलित तथा सम्बद्ध रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।
5. **मानचित्रण विधि (Cartographic Method)** – रिटर ने भौगोलिक वर्णनों के लिए मानचित्रण विधि को एक प्रमुख विधि माना है। उसने यूरोप के आर्थिक तथा प्राकृतिक तथ्यों को छः मानचित्रों की सहायता से प्रस्तुत किया था।

रिटर की भौगोलिक विचारधारा का संक्षिप्त उल्लेख करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि रिटर एक बहुत बड़ा निर्माणकर्ता (Great Formulator) था। उसने 18वीं सदी के भूगोलवेत्ताओं के बिखरे ज्ञान का संश्लेषण करके उसे सर्वमान्य भौगोलिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने आनुभाविक तथा तुलनात्मक विधि की सहायता से मानव तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने की विधि का विकास किया। रिटर महोदय ने अपने ग्रन्थ ‘लेण्डरकुण्डे’ में प्रादेशिक आधार को संगठित किया।

हम्बोल्ट और रिटर की तुलना (Comparison of Humboldt and Ritter)

हम्बोल्ट तथा रिटर दोनों ही समकालीन शास्त्रीय भूगोलवेत्ता थे तथा दोनों को ही आधुनिक भूगोल का संस्थापक माना जाता है। उनकी भौगोलिक विचारधाराओं में निम्न समानताएँ तथा असमानताएँ हैं:—

समानताएँ (Similarities)

- 1) **पूर्णरूपेण अध्ययन (Study of the Whole)** – दोनों ने ही भूगोल में पूर्णता के अध्ययन को महत्वपूर्ण माना है, उनका विचार था कि पृथ्वी के किसी भी भू-भाग का पृथक् एकाकी रूप में अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए वरन् सम्पूर्ण विश्व के सन्दर्भ में देखना चाहिए।
- 2) **आनुभाविक अध्ययन (Empirical Study)** – दोनों विद्वान् भौगोलिक अध्ययन में स्वयं के अनुभव को प्रधानता देते थे। उनका मानना था कि इन अनुभवों का विश्लेषण और संश्लेषण करके सामान्यीकरण किया जाना चाहिए।
- 3) **भौगोलिक विविधताएँ (Geographical Diversities)** – दोनों ही भूगोलवेत्ता यह मानते थे कि भिन्न-भिन्न भौगोलिक कारकों से भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विविधताएँ उत्पन्न हुई हैं। अतः इनके कारकों तथा प्रभावों का अध्ययन आवश्यक है।

- 4) **भौतिक भूगोल (Physical Geography)** – दोनों के विचारों में यह भी समानता थी कि पृथ्वी पर विद्यमान प्राकृतिक भौतिक कारक कुछ नियमों के अनुसार ही भौगोलिक दृश्यावली का निर्माण कर उसमें परिवर्तन करते हैं।

हम्बोल्ट का यथार्थवादी दृष्टिकोण था और उनका यह दृष्टिकोण पूर्ण रूपेण साध्यपरक नहीं था, लेकिन रीटर ने प्रकृति के संयोजन को ईश्वर की योजना के रूप में विवेचना की थी। इस प्रकार दोनों विद्वानों में निम्नलिखित असमानताएँ थीं—

1. **प्रादेशिक तथा क्रमबद्ध भूगोल (Regional and Systematic Geography)** – रीटर प्रादेशिक भूगोल का समर्थक था, जबकि हम्बोल्ट क्रमबद्ध भूगोल के अध्ययन पर विशेष बल देता था। इस प्रकार दोनों के कार्य क्षेत्रों में भिन्नता थी तथा अध्ययन के दृष्टिकोण भी अलग-अलग थे।
2. **ईश्वरीय उद्देश्यवादी विचार (Teleological Views)** – रीटर ने पृथ्वी को मानवीय विकास की पृष्ठभूमि के रूप में ईश्वरीय कृति माना है। उनकी मान्यता थी कि मनुष्य भी ईश्वर की कृति है। इसलिए वह भौतिक संसाधनों के अनुकूल ही अपने कार्य करता है जबकि हम्बोल्ट मूल रूप से वैज्ञानिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए विकासवादी सिद्धान्त को महत्वपूर्ण मानता था, जो डार्विन के विचारों से प्रभावित था।
3. **मानव केन्द्रित भूगोल (Anthropocentric Geography)** – रीटर के अध्ययन में मानव को केन्द्रीय स्थान (Anthropocentric Attitude) देकर प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। जबकि हम्बोल्ट ने अपने अध्ययन में वनस्पति, जलवायु, जीव-जन्तु तथा समुद्री-विकास आदि पर बल दिया है। अतः वह प्राकृतिक भूगोलवेत्ता था। उसने मानवीय क्रियाओं को सर्वोच्च मानते हुए भी प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन को प्राथमिकता दी।
4. **स्थानिक वितरण (Spatial Distribution)**—हम्बोल्ट ने भूगोल में स्थानिक विशेषताओं के कारण विषमांगताओं के अध्ययन पर बल दिया है। रीटर ने स्थानिक वितरण को गौण मानते हुए सम्पूर्ण विश्व के सन्दर्भ में स्थानीय व क्षेत्रीय भिन्नताओं के अध्ययन पर बल दिया है।

2.6 सारांश (Summary)

भूगोल में प्राकृतिक रहस्यों को दार्शनिक आधार पर उद्घाटित करना या प्रस्तुत करना ही छायावादी युग है। इस युग में भूगोल एक का एक नया स्वरूप विकसित हुआ। इसे भूगोल का आधुनिक युग या वैज्ञानिक युग भी कहा जा सकता है। हम्बोल्ट के छायावादी युग का प्रतिनिधि विचारक माना जाता है। छायावादी युग में भूगोल को संस्थापित करने में हम्बोल्ट का साथ रीटर ने दिया। इनके पहले भूगोल में दार्शनिक आधार का शिलान्यास करने का श्रेय काण्ट को दिया जाता है। यह समय 18वीं शदी के उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध का समय है। काण्ट हम्बोल्ट व रीटर जर्मन विचारक थे। जर्मनी के जर्मनी में इस समय ज्यूने, स्पिनोजा जैसे दार्शनिकों के दर्शन व साहित्यों का स्वरूप छायावादी दृष्टिकोण से ओत-प्रोत था। जिसका प्रभाव हम्बोल्ट व रीटर पर था। इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर हम्बोल्ट एक भ्रमणशील विद्वान बना। भ्रमण के समय इन्होंने जो प्राकृतिक दृश्य देखे, प्रकृति के विभिन्न रूपों से अवगत हुआ उनको साहित्यिक भाषा में पिरोकर भूगोल विषय में नये आयाम स्थापित किए। हम्बोल्ट ने प्राकृतिक दृश्यों को काफी नजदीक से देखा और उनके सुन्दर चित्रण को अपने लेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया। हम्बोल्ट पर प्राकृतिक चित्रण का गहरा प्रभाव था जबकि रीटर हम्बोल्ट में एक आर्मचेयर भूगोलवेत्ता थे। वे ईश्वरीय उद्देश्यवादी विचार से प्रभावित थे। हम्बोल्ट की तरह इन्होंने लम्बी यात्राएं नहीं की। रीटर का दर्शन आदर्शवादी दार्शनिकता (Idealist Philosophers) से मिलता-जुलता था जबकि हम्बोल्ट की दार्शनिकता नितान्त आदर्शवादी नहीं थी। हम्बोल्ट क्रमबद्ध अध्ययन व रीटर प्रादेशिक अध्ययन पर जोर देते थे। हम्बोल्ट का उद्देश्य सांसारिक परिघटनाओं को समझना था जो धरातल पर जटिल रूप में पाया जाता है। जबकि भूगोल को एक आनुभविक विज्ञान मानते थे उनका यह अध्ययन प्रेक्षण व परिणाम पर आधारित था। छायावादी युग की और अधिक स्पष्ट छवि हम्बोल्ट व रीटर के ग्रन्थों क्रमशः कॉसमॉस व अर्दकुण्डे से प्रतीत होती है जो प्राकृतिक दृश्यों को और स्पष्ट रूप से समझने में सहायता करते हैं। हम्बोल्ट प्रकृति की एकता में विश्वास रखते थे। शायद इसी कारण अन्य भूगोलवेत्ताओं ने हम्बोल्ट का छायावादी युग का प्रतिनिधि विचारक माना है। रीटर का अर्दकुण्डे “पृथ्वी का विज्ञान” है जो

पृथ्वी की प्राकृतिक तत्वों के साथ मानवीय पक्षों को सम्मिलित कर समग्रता का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

ईश्वरीय उद्देश्यमूलक विचारों के कारण रीटर प्राकृतिक पक्षों पर ज्यादा जोर नहीं दे पाये। भूगोल का वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने का कार्य रीटर द्वारा किया गया। उनके इन कार्यों के समय को शास्त्रीय काल माना गया। हम्बोल्ट व रीटर दोनों के संयुक्त अध्ययनों के आधार पर भूगोल में वैज्ञानिक आधार स्थापित किया गया।

2.7. पारिभाषिक शास्त्रीय युग

- आधुनिक शास्त्रीय युग— 19वीं सदी हम्बोल्ट रीटर द्वारा भौगोलिक अध्ययन को वैज्ञानिक पर संस्थापित किया गया काल।
- छायावाद युग— भूगोल में सन 1800–1859 तक का समय जब प्राकृतिक विवरणों को साहित्यिक भाषा व दार्शनिक आधार पर संजोया गया।
- जूसामेनलेंग?—पृथ्वी पर घटित होने वाली घटनाओं के पीछे कारण को होना।
- कॉसमॉस—हम्बोल्ट का ग्रन्थ जो प्राकृतिक जगत का विवरण प्रस्तुत करता है।
- अर्दकुण्डे— रीटर का ग्रन्थ, पृथ्वी के विज्ञान के रूप में।
- नैतिक भूगोल— काण्ट द्वारा विभक्त भूगोल 06 शाखाओं में एक मनुष्य के आचार—विचारों, रीति—रिवाजों, सभ्यताओं आदि का अध्ययन।
- ईश्वर उद्देश्यवादी विचार—रीटर का विचार जो स्पष्ट करता है कि पृथ्वी की रचना ईश्वर ने उद्देश्यपूर्ति के लिए की है।
- तुलनात्मक विधि— परिघटनाओं और वितरणों के प्रेक्षणों, उदाहरणों तथा तथ्यों की तुलना करके निष्कर्ष निकालना।
- यूरेनोग्राफी— खगोल विज्ञान।
- कालमापी— हम्बोल्ट द्वारा पहली बार प्रयुक्त उपकरण से अक्षांश—देशांतर का निर्धारण।

2.8. बोध प्रश्न—

1. छायावादी युग को अर्थ की व्याख्या कीजिए
2. आधुनिक शास्त्रीय युग का समय।
3. काण्ट की भूगोल की विभिन्न शाखाएँ।
4. ईश्वरीय उद्देश्यवाद क्या है
5. कॉसमॉस ग्रन्थ के कितने खण्ड हैं।
6. अर्दकुण्डे ग्रन्थ के प्रथम व द्वितीय खण्डों में कौन से महाद्वीपों का विवरण है।
7. प्रेक्षण का अर्थ।
8. प्रकृति में एकता

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London-
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- प्रो. माजिद हुसैन-भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशन् नयी दिल्ली

इकाई-03 : द्वैतवादी युग काल खण्ड

ईकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूगोल में द्वैतवाद का विकास

3.4 भूगोल में प्रमुख द्वैतवाद

3.4.1 प्रादेशिक तथा व्यवस्थित भूगोल

3.4.2 नियतिवाद बनाम सम्भववाद

3.4.3 गुणात्मक बनाम मात्रात्मक

3.4.4 भावमूलक और नियमान्वेषी

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्न

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल में द्वैतवाद का अर्थ है किसी विषय से सम्बन्धित दो प्रकार के के विचार एवं इनके मध्य टकराव। भूगोल विषय में यह टकराव भौतिक भूगोल व मानव भूगोल को लेकर हुआ। जिसमें कुछ विद्वान मानव भूगोल को भूगोल की मुख्य विषय-वस्तु मानते हैं। उनका मानना है भूगोल के अध्ययन का आधार मानव है। जिसे केन्द्र बिन्दु मानकर विषय की रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए जबकि कुछ विद्वान भूगोल के अध्ययन में प्राकृतिक पक्षों पर जोर देते हैं उनका मानना है कि प्राकृतिक दृश्यों का अध्ययन ही भूगोल के अध्ययन की सही विषय वस्तु हो सकती है। हम्बोल्ट व रीटर की मृत्यु के वर्ष के समय ही भूगोल में छायावादी युग का अन्त हो गया था। इसके साथ ही द्वैतवादी युग अर्थात् दो मतों को लेकर टकराव की स्थिति बनना शुरू हो गई थी। इनके पूर्व भूगोल में द्वैतवादी युग की शुरुआत 17वीं सदी के मध्य सन 1650 से वारेनियस की पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही हो गया था। यह पुस्तक सामान्य भूगोल के नाम से प्रकाशित हुई। इन्होंने भूगोल को सामान्य एवं विशिष्ट भूगोल को क्रमबद्ध भूगोल के नाम से भी जाना जाता है। वारेनियस ने यह विभाजन भूगोल के विकास के लिए किया था। परन्तु आगे चलकर विकास के ये मत टकराव की स्थिति में परिवर्तित हो गये। द्वैतवाद भूगोल के स्वरूप को लेकर एकमत होने से है। परन्तु समय के भूगोल का क्षेत्र विस्तृत होता चला गया। इस विस्तारित पक्षों के समर्थन में कई विद्वान अपने-अपने तर्क लेकर खड़े हो गये तथा वही सब द्वैतवाद या टकराव के कारण बने। काण्ट ने भौतिक भूगोल पर बल दिया तथा उन्होंने भूगोल को भूतल का अध्ययन बताया। 19वीं सदी तक भूगोल का अर्थ भौतिक भूगोल से लिया जाता था, परन्तु मानवीय पक्ष को भी इसमें सम्मिलित किया जाता था। 20वीं शताब्दी में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने मानवीय पक्ष पर बल दिया। हार्टशोर्न ने द्वैतवादी विचारों जैसे विचार पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कि यह भूगोल को दो राहों पर ले जाने वाला विचार है और इस विचार के साथ भूगोल अपने समग्र लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच पाएगा।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद जानने के विषय—

— भूगोल में टकराव के बिन्दु ।

- भूगोल में टकराव की शुरुआत ।
- वास्तव में भूगोल एक है इसे विभक्त नहीं किया जा सकता ।
- भूगोल न केवल प्रकृति तक सीमित है और न केवल मानव तक सीमित है ।
- भूगोल एक पार्थिव एकता के रूप में ।
- द्वैतवाद भूगोल में भ्रम मात्र है ।

3.3 भूगोल में द्वैतवाद का विकास–

वारेनियस के ग्रंथ सामान्य भूगोल से भूगोल में द्वैतवाद की शुरुआत मानी जाती है। परन्तु द्वैतवाद भूगोल में वास्तविक रूप से 19वीं शताब्दी तक स्थापित नहीं हो सकता था। यह कुछ समय तक वास्तविकता से दूर रहा तथा केवल का विषय ही बना रहा। इसके विषय क्षेत्र की सामग्री भूगोल की शाखाओं से ली गई है। प्राचीन यूनानी व रोमन भूगोल वेत्ताओं के भौगोलिक लेखों में भी द्वैतवाद की पुष्टि मिलती है। जिनके ग्रन्थ प्राकृतिक वातावरण पर आधारित थे। इसके बाद के समय में जब-जब भौतिक वातावरण व मानवीय पहलुओं पर भूगोल में चर्चा की गई। द्वैतवाद या टकराव की स्थिति बनी रही है। काण्ट ने भूगोल को प्रथम बार विभिन्न शाखाओं में विभक्त करने का कार्य किया। जिसके बाद द्वैतवाद को एक स्पष्ट विषय मिल गया। पुर्नजागरण काल के उत्तरार्द्ध में यूरोप में भूगोल में द्वैतवाद का स्पष्ट विकास हुआ जिसके तहत भूगोल में द्वैतवाद के कई क्षेत्र विकसित हुए इसी के साथ भूगोल को मानव एवं पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का विज्ञान भी माना जाता रहा है, तथा इसी से ज्ञान के तमाम विषयों का विकास भी हुआ। इस भूगोल में द्वैतवाद युग में भूगोल को एक विषय के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया गया परन्तु जैसा कि भूगोल की प्रकृति से स्पष्ट है। भूगोल को किसी एक शाखा के रूप में समेटा नहीं जा सकता इसका विषय क्षेत्र बहुत विस्तृत है तथा समय के साथ इसका दायरा बढ़ता जा रहा है। इसलिए कभी-कभी इसे भूगोल में एक भ्रममात्र भी माना जाता है।

3.4 भूगोल में द्वैतवाद का विकास–

भूगोल में द्वैतवाद का विकास कई रूपों में देखने को मिलता है। इसके निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्र हैं।

- 3.4.1 प्रादेशिक तथा व्यवस्थित भूगोल
- 3.4.2 नियतिवाद बनाम सम्भववाद
- 3.4.3 गुणात्मक बनाम मात्रात्मक
- 3.4.4 भावमूलक और नियमान्वेषी
- 3.4.5 भौतिक भूगोल बनाम मानव भूगोल
- 3.4.6 सैद्धान्तिक बनाम व्यावहारिक भूगोल
- 3.4.7 ऐतिहासिक समकालीन भूगोल

3.4.1 प्रादेशिक तथा क्रमबद्ध भूगोल–(Systematic Versus Regional Geography)

वारेनियस ने 17वीं शताब्दी के मध्य भूगोल को दो भागों में बांटा था वे सामान्य भूगोल और विशिष्ट भूगोल थी जो आगे चलकर क्रमशः व्यवस्थित या क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल कही जाने लगी।

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल के मध्य यह द्वैतवाद नवीन न होकर प्रचीन काल से चला आ रहा है। प्रारम्भिक शास्त्रीय युग के यूनानी एवं रोमन भूगोलवेत्ता भी इसमें विश्वास रखते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब प्राकृतिक भूगोल तथा मानव भूगोल का विभाजन हुआ था तभी आगे चलकर भूगोलवेत्ता इस बात पर एक मत हुए कि भूगोल में तत्त्वों एवं क्षेत्रों का अध्ययन समान रूप से होना चाहिए। भौगोलिक अध्ययन एवं शोध के विकास के चलते जैसे-जैसे प्रदेशों नये सिद्धान्त सामने आये वैसे ही पारम्परिक सन्तुलित विचारधारा प्रभावहीन होने लगी। इस नवीन विचारधारा में तत्त्वों (स्थिति, जलवायु, वनस्पति आदि) तथा क्षेत्रों (हिमालय प्रदेश, प्रेयरी प्रदेश, थार का रेगिस्तान आदि) के अध्ययन को समान रूप से महत्व प्रदान किया गया।

क्रमबद्ध या सामान्य भूगोल ने प्रचलित विज्ञानों से व्यापक तथा सामान्य विचारधाराओं की खोज करना सीखा। प्रादेशिक भूगोल विशिष्ट अध्ययन की सीमा में ही इसी तरह बना रहा। वारेनियस के बाद जर्मन विद्वान् अलेक्जेंडर वाल हम्बोल्ट ने क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक में अन्तर किया। हम्बोल्ट ने भूगोल को खगोल विज्ञान या ब्रह्माण्ड विज्ञान और भूगोल में बाँटकर स्पष्ट किया कि खगोल विज्ञान वर्णात्मक खगोलशास्त्र है, जबकि भूगोल में स्थानिक भिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए दो परस्पर क्षेत्रों में पाये जाने वाले तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। हम्बोल्ट ने आगमनात्मक पद्धति में विश्वास करने के कारण शोध की आनुभाविक विधि को महत्व दिया।

क्रमबद्ध भूगोल में भूगोल के तत्वों के प्रकरणों का अलग-अलग अध्ययन किया जाता है। जैसे पृथ्वी का जलमण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल में विभाजित करके अध्ययन किया जाता है। इन मण्डलों को पुनः उपविभाजित करके विश्लेषण किया जाता है। जैसे स्थल मण्डल की संरचना वाकृति जलवायु प्राकृतिक वनस्पति, निदियाँ, मिट्टी आदि में विभक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार इसे आर्थिक प्रकरण तथा सांस्कृतिक प्रकरण नामक विभागों एवं अनेक उपविभागों में बाँटकर सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है। हम्बोल्ट क्रमबद्ध भूगोल के पोषक थे उन्होंने सम्पूर्ण भूतल का एक जीवंत इकाई के रूप में माना तथा विभिन्न तत्वों का भूतलीय अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करवाया।

प्रादेशिक उपागम में भूतल के अलग-अलग प्रदेशों का अध्ययन किया जाता है। पृथ्वी की मिलती-जुलती विशेषताओं के समांग प्रदेशों में विभक्त किया जाता है। तथा प्रत्येक प्रदेश या क्षेत्र के भौगोलिक तत्वों का विश्लेषण किया जाता है, जिसे प्रादेशिक भूगोल कहा जाता है। इसके माध्यम से भूतल की समानताओं और विषमताओं को समझा जा सकता है। एक भौगोलिक प्रदेश वह क्षेत्र होता है जिसमें एक प्रकार की आंतरिक समानता पायी जाती है। जैसे मानसूनी जलवायु के प्रदेश चावल उत्पादन के लिए उपयुक्त दशाएं प्रस्तुत करते हैं।

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल में द्वैतवाद

(Dualism in Systematic and Regional Geography)

भूगोल में भू-तल पर पाये जाने वाले विभिन्न परिवेशों तथा मनुष्य के मध्य अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के लिए भूगोलवेत्ता विभिन्न विधितंत्रों एवं उपकरणों का प्रयोग करते हैं। प्रकृति एवं मानव के क्रियाकलापों की विवेचना परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होने के उपरान्त भी अनेक अवसरों में भिन्न रूप में होती है। भूगोल में विद्यमान यह प्रकरणात्मक (Topical) विभाजन एक प्रकार से भौगोलिक विषयवस्तु के अध्ययन के उपागम (Approaches) हैं। जिन्हें भौगोलिक अध्ययन की रीतियाँ या विधियाँ भी कह सकते हैं, ये केवल अध्ययन की सुविधा के लिए पृथक् रूप में पहचानी जाती हैं।

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल के मध्य यह द्वैतवाद नवीन न होकर प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्रारम्भिक शास्त्रीय युग के यूनानी एवं रोमन भूगोलवेत्ता भी इसमें विश्वास रखते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब प्राकृतिक भूगोल तथा मानव भूगोल का विभाजन हुआ तभी आगे चलकर भूगोलवेत्ता इस बात पर एक मत हुए कि भूगोल में तत्वों एवं क्षेत्रों का अध्ययन समान रूप से होना चाहिए। भौगोलिक अध्ययन एवं शोध के विकास के चलते जैसे-जैसे प्रदेशों के नये सिद्धान्त सामने आये वैसे ही पारम्परिक सन्तुलित विचारधारा प्रभावहीन होने लगी। इस नवीन विचारधारा में तत्वों (स्थिति, जलवायु, वनस्पति आदि) तथा क्षेत्रों (हिमालय प्रदेश, प्रेयरी प्रदेश, थार का रेगिस्तान आदि) के अध्ययन को समान रूप से महत्व प्रदान किया गया।

भूगोल में सर्वप्रथम क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल का विभाजन वारेनियस ने प्रारम्भ किया था, जब भूगोल की शाखा में विभाजन प्रारम्भ हुआ था। क्रमबद्ध या सामान्य भूगोल ने प्रचलित विज्ञानों से व्यापक तथा सामान्य विचारधाराओं की खोज करना सीखा। प्रादेशिक भूगोल विशिष्ट अध्ययन की सीमा में ही इसी तरह बना रहा। वारेनियस के बाद जर्मन विद्वान् अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ट ने क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल में अन्तर किया। हम्बोल्ट ने भूगोल को खगोल विज्ञान या ब्रह्माण्ड विज्ञान और भूगोल में बाँटकर स्पष्ट किया कि खगोल विज्ञान वर्णात्मक खगोलशास्त्र है, जबकि भूगोल में स्थानिक भिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए दो परस्पर क्षेत्रों में पाये जाने वाले तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। हम्बोल्ट ने आगमनात्मक पद्धति में विश्वास करने के कारण शोध की आनुभाविक विधि को महत्व दिया।

हम्बोल्ट का समकालीन विद्वान् कार्ल रिटर उद्देश्यवादी विद्वान् था। रिटर महोदय ने प्राकृतिक तथ्यों की सम्पूर्णता को अंशों में निहित योजना में समझने पर बल दिया था। उन्होंने भूगोल को एक अनुभाविक विज्ञान माना था। रिटर के अनुसार क्षेत्रीय तथ्य इस प्रकार सम्बन्धित रहते हैं कि उन क्षेत्रों को विशेष एकाई के रूप में महत्त्व मिलता है। अतः उनका अध्ययन सम्पूर्णता में किया गया। रिटर के विचार हीगल से भी मिलते थे जिनके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि को समझने में ईश्वर में विश्वास माना था। इस तरह रिटर की वैज्ञानिक अवस्थिति उद्देश्यवादी (Teleological) थी, जिसके अनुसार वे यह मानते थे कि महाद्वीपों की आकृति आकस्मिक न होकर ईश्वर द्वारा नियोजित है।

रिटर के उपरान्त वॉन रिचथोफेन ने भूगोल को परिभाषित किया। उनके अनुसार भूगोल का उद्देश्य पृथ्वी तल पर होने वाले विविध तथ्यों के अन्तर्सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित करना है। इनके बाद रेटजेल का प्रभाव रहा है। उसने मानवशास्त्रीय अध्ययन में विवेकी पद्धति को अपनाया। रेटजेल के बाद हेटना ने पूर्व में प्रचलित स्थलीय (Monothetic) या सामान्य विज्ञान के स्थान पर भूगोल को विशिष्ट भावमूलक (Idiographic) अथवा प्रादेशिक अध्ययन माना।

क्रमबद्ध या प्रकरणात्मक भूगोल (Systematic or Topical Geography)

क्रमबद्ध या व्यवस्थित या सामान्य भूगोल में भू-तल के भौतिक तथा मानवीय तथ्यों के लक्षणों, प्रक्रियाओं तथा विशेषताओं को विभिन्न प्रकरणों में विभक्त करके अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है, इसमें भूगोल के तत्त्वों (Element) को प्रकरणों (Topic) में विभाजित करके पृथक् पृथक् अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, सर्वप्रथम सम्पूर्ण पृथ्वी का अध्ययन किया जाये तो उसे विभिन्न मण्डलोंय वायुमण्डल, जलमण्डल, स्थलमण्डल एवं जैवमण्डल आदि में विभक्त करके पृथक् रूप में अध्ययन किया जायेगा फिर यदि पृथ्वी के इन मण्डलों के उपविषयों का विश्लेषण करना है तो इसे पुनः विभाजित करना पड़ेगा जैसे वायुमण्डल को विभिन्न परतों में विभक्त करके तथा तापमान वायुदाब, वर्षा, पवनों आदि का तथा स्थलमण्डल के विभिन्न धरातलीय स्वरूपों पर्वत, पठार एवं मैदानों तथा जलमण्डल में सागरों की तलीय आकृति व जलीय विस्तार, जलीय गतियों (लहरें, धारायें तथा ज्वार-भाटा) व जलीय चक्र का अध्ययन किया जायेगा। इसी प्रकार यदि जीवमण्डल का क्रमबद्ध अध्ययन करना है तो इसके घटकों (जैविक तथा अजैविक) का पृथक् रूप में विश्लेषण करना होगा। क्रमबद्ध विधि से मानव भूगोल का भी अध्ययन किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत यदि जनसंख्या का अध्ययन करना है तो इसकी वृद्धि दर, घनत्व, वितरण, लिंगानुपात, साक्षरता, ग्रामीण, नगरीय जनसंख्या आदि का प्रकरणात्मक अध्ययन किया जायेगा। इसी प्रकार कृषि भूगोल में गेहूँ, चावल, चार, गन्ना आदि फसलों का तथा आर्थिक भूगोल में खनिजों, उद्योग तथा परिवहन का प्रकरणबद्ध अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है भौतिक एवं मानवीय तथ्यों को प्रकरणों में बाँटकर भौगोलिक अध्ययन करने के कारण इसे प्रकरणबद्ध उपागम (Topical Approach) भी कहते हैं।

भूगोल में प्रादेशिक अध्ययन की संकल्पना का विकास (Development of Concept of Regional Study in Geography)

आधुनिक भूगोल में प्रादेशिक अध्ययन की संकल्पना और क्षेत्रीय स्तर पर पृथ्वी के परिवर्तनशील स्वरूप के अध्ययन के लिए उसे छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटने की पद्धति सर्वप्रथम जर्मन भूगोलवेत्ता रिचथोफेन (1883) ने प्रतिपादित की थी। हेटनर ने इस संकल्पना को और आगे बढ़ाया था। अंग्रेजी भाषी देशों में इस पद्धति का प्रचार हार्टशोर्न (1939) की पुस्तक नेचर ऑफ जिओग्राफी के प्रकाशन के साथ प्रारम्भ हुआ था और उसके प्रभाव में यह पद्धति शीघ्र ही भौगोलिक अध्ययन की सर्वमान्य पद्धति के रूप में स्थापित हो गई। फ्रांस में पॉल विडाल डी ला ब्लाश के नेतृत्व में प्रादेशिक अध्ययन बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही विकसित हो चुका था। इस प्रकार बीसवीं सदी के मध्य अर्थात् सन् 1950 के दशक के प्रारम्भ तक प्रादेशिक भूगोल भौगोलिक अध्ययन की मुख्य धारा के रूप में प्रतिस्थापित रहा। परन्तु सन् 1950 के दशक का अन्त होते-होते इसके प्रति असंतोष की लहर फैलने लगी थी। इस प्रकार के अध्ययन की आलोचना करते हुए जी.एच.टी. किम्बल (1951) ने ध्यान दिलाया कि वैज्ञानिक चिन्तन अध्ययन हेतु चुनी गयी वस्तुओं के बीच समानताओं का उद्घाटन कर उनके निर्माण में निहित सामान्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन का प्रयास करती है उनके बीच पाई जाने वाली विभिन्नताओं

का उद्घाटन नहीं। विविधता में एकता के सूत्रों की खोज करना वैज्ञानिक चिन्तन का मुख्य उद्देश्य है। इसीलिए प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत किए जाने वाले अध्ययन को शेफर (1953) ने अपवादों के अध्ययन पर केन्द्रित और विज्ञान की मूल आत्मा के विपरीत अध्ययन बताया। इस समस्या की व्याख्या करते हुए विलियम बुंगी रेखांकित किया कि प्रादेशिक भूगोल के अध्येताओं की मुख्य कठिनाई उनकी भौगोलिक स्थिति के बारे में अनूठेपन की संकल्पना में निहित थी। यही कारण था कि भूगोलविद् अपनी व्याख्या में स्थानों के बीच पाई जाने वाली समानताओं के स्थान पर उनके परस्पर विभेदों पर ध्यान केन्द्रित करते रहे थे। दूसरी मूलभूत कठिनाई यह थी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भूगोल के विद्यार्थियों में यह आम धारणा बन गई थी कि फ्रांसीसी भौगोलिक चिन्तन में प्रादेशिक इकाइयों को सन्निहित पारिस्थितिकीय इकाइयों के रूप में देखने सम्बन्धी मान्यता औद्योगीकरण के सर्वव्यापी प्रभाव के फलस्वरूप अब व्यावहारिक दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त हो गयी थी। परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के मध्य तक भौगोलिक चिन्तन की मुख्य धारा के रूप में प्रादेशिक अध्ययन के प्रति विद्यार्थियों का लगाव द्रुत गति से कम हो गया और अध्ययन की शाखा के रूप में प्रादेशिक भूगोल की प्रतिष्ठा में कमी आई।

प्रादेशिक भूगोल Regional Geography

प्रादेशिक भूगोल में पृथ्वी तल के समान लक्षणों वाले प्रदेशों (Homogeneous Regions) में विभक्त कर लिया जाता है। इन सभी समांगी क्षेत्रों (Homogeneous Regions) में भौगोलिक विशेषताओं को समानता पायी जाती है तथा ये इन भौगोलिक दशाओं की दृष्टि से परस्पर एक-दूसरे से भिन्नता रखते हैं। इस प्रकार प्रादेशिक भूगोल में प्रत्येक समांगी प्रदेश का भौगोलिक तत्त्वों को क्रमबद्ध करके अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है पृथ्वी पर छोटे गये क्षेत्रों का अध्ययन ही प्रादेशिक भूगोल है। उदाहरण के लिए भारत में हिमालय क्षेत्र एक भौगोलिक प्रदेश है, जिसमें भौगोलिक दशाओं की समांगता है तथा अपने समीपवर्ती या अन्य भौगोलिक प्रदेश (जैसे थार का रेगिस्तान या दक्कन का पठार) से इस दृष्टि से भिन्नता रखता है। इस प्रकार हिमालय के भौगोलिक तत्त्व धार के रेगिस्तान के भौगोलिक तत्त्वों से भिन्नता रखते हैं, जिस आधार पर ये एक दूसरे से भिन्न हैं, इनमें भिन्नता लाने वाले भौगोलिक कारकों में भू-रचना, जलवायु, मृदायें, प्राकृतिक वनस्पति, प्राणीजगत्, जनसंख्या, कृषि प्रतिरूप निर्माण उद्योग, व्यापार परिवहन आदि प्रमुख हैं। प्रादेशिक अध्ययन में इनको प्रकरणबद्ध करके पढ़ा जाता है।

प्रादेशिक भूगोल से भिन्न प्रादेशिक उपागम या विधि में किसी चयनित समरूप प्रदेश की आन्तरिक भौगोलिक दशायें समान होती हैं। उदाहरण के लिए कृषि प्रदेश में सर्वत्र एक-सी समरूपता होती है, इसी प्रकार प्रादेशिक विधि से छोटे गये प्रदेश वनस्पति प्रदेश, चावल प्रदेश, पशुचारण प्रदेश हो सकते हैं लेकिन प्रादेशिक भूगोल के किसी प्रदेश, यथा— राजनीतिक प्रदेश में प्राकृतिक प्रदेश, जलवायु प्रदेश, मृदा प्रदेश, कृषि प्रदेश आदि सभी हो सकते हैं। प्रादेशिक अध्ययन में किसी भी प्रदेश को उप प्रदेशों Sub Regions तथा लघु प्रदेशों Micro Regions में विभक्त कर लिया जाता है, जिससे उस प्रदेश का विस्तृत अध्ययन करने में सरलता रहे।

प्रादेशिक तथा व्यवस्थित (क्रमबद्ध) भूगोल में आधारभूत अन्तर बताने वाला प्रथम भूगोलवेत्ता वारेनियस था। उन्होंने भूगोल की एक शाखा सामान्य भूगोल बतायी जिसमें पृथ्वी का सामान्य अध्ययन होता है। ये सामान्य भूगोल (क्रमबद्ध) सामान्य नियमों, सिद्धान्तों तथा जनक संका का सामान्य अध्ययन सम्बन्धित है। अतः उनके अनुसार सामान्य भूगोल का अनुप्रयोग किसी क्षेत्र या देश के लिए होता है, जिसे विशेष भूगोल कहते हैं। विशिष्ट भूगोल में विशिष्ट क्षेत्रों व प्रदेशों का अध्ययन होता है। इस प्रकार सामान्य बनाम विशिष्ट भूगोल या क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक भूगोल का अभ्युदय हुआ। इस प्रकार वारेनियस ने क्रमिक रूप से वर्णित सामान्यीकृत अध्ययन को क्रमबद्ध भूगोल तथा विशेष भूगोल को प्रादेशिक भूगोल कहा है। कान्ट तथा हम्बोल्ट ने सामान्य भूगोल को क्रमबद्ध भूगोल तथा विशिष्ट भूगोल को प्रादेशिक भूगोल कहा तथा अपने ग्रन्थ कासमास में क्रमबद्ध भूगोल पर बल देते हुए बताया कि पृथ्वी पर भौतिक कारकों में भिन्नताओं में एकता मिलती है। उन्होंने बताया कि क्षेत्रीय अध्ययनों की तुलना करने पर ही सामान्य प्राकृतिक नियमों को बनाया जा सकता है। इसलिए क्षेत्रीय अध्ययन क्रमबद्ध भूगोल में सहायक होते हैं। हम्बोल्ट कभी भी दोनों को पृथक् नहीं मानता था, वह तो केवल क्षेत्रीय अध्ययनों की विधि से सामान्यीकरण करना चाहता था। अतः वह पूर्णरूपेण भौगोलिक अध्ययनों में विश्वास करता था। कार्ल रिटर एक प्रादेशिक भूगोलवेत्ता था, लेकिन वह भूगोल में प्रादेशिक विवरण के साथ ही

उन थोशाश्वत नियमों के अध्ययन में भी विश्वास करता था, जिनसे पृथ्वी पर स्थानिक सम्बन्ध स्थापित हुए हैं। रिचथोफेन भी प्रादेशिक भूगोल का समर्थक था उसने चीन का प्रादेशिक अध्ययन प्रस्तुत किया तथा बताया कि प्रदेशों का अध्ययन भूगोल का मुख्य आधार है। रिचथोफेन ने रितर के प्रादेशिक व हम्बोल्ट के क्रमबद्ध अध्ययन को समन्वित करके उसे एक-दूसरे का पूरक बताया रेटजेल ने प्रादेशिक अध्ययन में निगमनात्मक विधि अपनाई है। हेटनर ने भूगोल को परिभाषित करते हुए सामान्य भूगोल की जगह प्रादेशिक भूगोल बताया। फ्रांस में ब्लाश ने प्रादेशिक अध्ययन पर बल दिया। उसने प्रादेशिक अध्ययन के लिए एक विशिष्ट इकाई को चुना जिसे पेज (Pays) कहा है। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के बाद जर्मनी, फ्रांस तथा ब्रिटेन के भूगोलवेत्ताओं के दृष्टिकोण में विभिन्नता दृष्टिगत हुई। जर्मनी में क्रमबद्ध अध्ययन पर बल देते हुए लैण्डशॉप्ट के अध्ययन को महत्त्व दिया वहीं फ्रांस एवं ब्रिटेन में सामान्य भूगोल को भौगोलिक ज्ञान का ताज (General Geography as the Crown of Geographic Knowledge) बताया। फ्रांस के लेलासू एवं शोले ने प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन के लिए क्रमबद्ध भूगोल की अनिवार्यता पर बल दिया। रिचार्ड हार्टशोर्न ने क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल के मध्य द्वैतवाद को स्पष्ट करने के लिए भौगोलिक संगठन के तत्त्वों की तुलना मानव शरीर से की तथा बताया कि जिस प्रकार मानव शरीर के अंगों का पृथक् पृथक् अध्ययन किया जाता है। उसी प्रकार भूगोल में पृथ्वी के तल पर पाये जाने वाले विभिन्न समांगी क्षेत्रों के विभिन्न भौगोलिक तत्त्वों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस तथ्य में कठिनाई यहाँ आती है कि भूगोल की अध्ययन विधियों की तुलना मानव शरीर से नहीं की जा सकती, क्योंकि वैज्ञानिक अनेक मानव शरीरों का अध्ययन कर सकते हैं, लेकिन भूगोलवेत्ता केवल भू-तल का ही अध्ययन करता है। स्पष्ट है कि भूगोल का मुख्य उद्देश्य पृथ्वीतल का क्षेत्रीय अध्ययन करना है, जिसमें क्षेत्रीय विभिन्नताओं एवं अन्तरसम्बन्धित तथ्यों का जितना गहन अध्ययन किया जा सके उतना ही भौगोलिक वर्णन स्पष्ट तथा विस्तृत रूप में होगा तथा यह तभी सम्भव है, जबकि अध्ययन प्रकरणबद्ध हो।

सारांशतः द्वैतवाद का विकास पृथ्वी पर विस्तृत विभिन्न जटिलतापूर्ण परिघटनाओं के समकेन एकीकृत अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से हुआ था। अतः इस प्रयास में क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल एक-दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। विडाल डी ला ब्लास ने अपने समय में भूगोल को मिश्रित रूप में पढ़ा तथा लघु क्षेत्रों (Pays) को संश्लेषित किया।

3.4.2 भौतिक भूगोल बनाम मानव भूगोल (Physical Geography Versus Human Geography)

20वीं सदी के प्रारम्भ में भूगोल को दो शाखाओं भौतिक भूगोल व मानव भूगोल में बांटा गया। जिनका दो अलग विषयों के रूप में समझा जाने लगा तथा इनके बीच टकराव की स्थिति इतनी बढ़ गई की कई विश्वविद्यालयों में इनके लिए अलग-अलग विभागाध्यक्षों की नियुक्ति की जाने लगी। एक और डेविस पेंक पेरोल जैसे भूगोल वेत्ताओं ने व्यवस्थिति या भौतिक भूगोल को ही भूगोल माना वहीं दूसरी ओर रेटजेल, हैकल, बकल एवं कुमारी सैम्पुल जैसे भूगोलवेत्ताओं ने मानव भूगोल को ही भूगोल को आधार माना। प्रकृति एवं मानव के मध्य द्वैतता का यह युग प्राचीन समय से चला आ रहा है।

भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल के विकास को दृष्टिगत करने पर स्पष्ट हुआ है कि भौतिक भूगोल को भूगोल की नींव के रूप में माना जाता है। वुलरिज तथा ईस्ट अपनी पुस्तक 'Spirit and Purpose of Geography' में स्पष्ट किया है, कि भूगोल की नींव भौतिक भूगोल पर आधारित रही है, जिस पर मानवीय क्रियाओं का निर्माण होता है। इस मत के अनुसार मानवीय क्रियाओं की पृष्ठभूमि प्राकृतिक तथ्य हैं। लेकिन समय के साथ परिवर्तन आया तथा मानवसत्तावादी विचारधारा के अनुसार मनुष्य प्रकृति के नियन्त्रणों से मुक्त रहकर के कार्य करता है। इस प्रकार भौतिक एवं मानव भूगोल के मध्य उत्पन्न इस द्वैतवाद के सम्बन्ध में निम्न दो दृष्टिकोण स्पष्ट होते हैं—

1. भूगोल को भौतिक तथा मानव भूगोल के रूप में विभक्त करना उपयुक्त है।
2. भूगोल को इस प्रकार दो वर्गों में विभाजित करना अनुचित है।

प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार भूगोलशास्त्री भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल में विभाजन का प्रमुख आधार इनकी विधितंत्र की भिन्नता मानते हैं। इनके अनुसार भौतिक भूगोल में भौतिक परिघटनाओं (Natural Phenomena) का अध्ययन किया जाता है। इन परिघटनाओं का विशेष अध्ययन भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology), जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, समुद्र विज्ञान, आदि में किया जाता है।

दूसरी ओर मानव भूगोल के अध्ययन में मानव के सभी व्यवसायों तथा भूमि, जल, मृदा, जीव-जन्तु, वायुमण्डलीय तत्वों, वनस्पति तथा खनिजों तथा उसके जीवन पर महत्व का अध्ययन करते हैं। लेकिन यदि मानव भूगोल को भौतिक भूगोल की तरह परिभाषित किया जाए तो भूगोल का महत्व आसानी से निर्धारित नहीं हो पायेगा, क्योंकि मानव भूगोल का विषय क्षेत्र मानवीय क्रिया-कलापों तक ही सीमित हो पायेगा। यह माना जाता है कि मनुष्य प्रकृति को एक सीमा तक अपने अनुकूल परिवर्तित कर लेता है लेकिन ऐसा होने पर भी मनुष्य प्राकृतिक परिवेश के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है। प्राकृतिक भूगोल की तरह मानव भूगोल को भी विस्तृत करे तो इसमें आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आदि तीनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है। इस आधार पर आर्थिक भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल, परिवहन भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल, सामाजिक भूगोल तथा राजनीतिक भूगोल आदि शाखाएँ विकसित हुई हैं। भूगोल में हेटनर, ब्लाश तथा ब्रूश जैसे विद्वानों ने भौगोलिक अध्ययन में प्रकृति एवं मानव दोनों ही तथ्यों को अविभाज्य करार दिया है तथा इन द्वन्द्वों तथा टकराव के मध्य मेकिन्डर, रिचगेफन ने अपने लेखों के माध्यम से भौगोलिक एकता को बनाए रखने का भी प्रयास किया है।

दूसरे वर्ग के भूगोलवेत्ता इस विभाजन को स्वीकार करते हैं। ऊपर वर्णित मानव भूगोल की कुछ शाखाएँ तो प्राकृतिक कारकों से पूर्णरूपेण सम्बद्ध हैं, जिनमें आर्थिक एवं कृषि भूगोल मुख्य हैं, इतना ही नहीं स्वयं मानव भी जो मानव भूगोल का मुख्य अंग है, प्राकृतिक कारकों से इस सीमा तक प्रभावित होता है कि अपने मूल रूप में ही बदल जाता है। उदाहरणार्थ एक प्रजाति से मिलकर नवीन प्रजाति को जन्म देती है, जिसके शारीरिक गठन में जलवायु दशाओं की प्रमुख भूमिका होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक तथा मानव भूगोल को द्वैत उपयुक्त नहीं है। भूगोल का अस्तित्व एक सेतु की भाँति है, जो दोनों को संयोजित करता है, जब भी जिन कारणों से भी विषय के इन पृथक् पक्षों पर बल दिया जाता है, मौलिक उद्देश्य के विपरीत है।

भूगोल में स्ट्रेबो (64 ई0पू0) से रीटर व हम्बोल्ट (1855) तक के एक लम्बे काल में प्रकृति एवं मानव भूगोल एक अविभाज्य अंग के रूप में विकसित हुए। इसके बाद पेरोल ने भूगोल में सिर्फ अजैव धरातल को सम्मिलित करने की माँग उठाई तब से भूगोल का विभाजन शुरू हो गया। पेरोल की ही संकल्पनाओं के कारण भौतिक भूगोल और मानव भूगोल द्वन्द्व की स्थिति में फँस गया तथा पेक डेविस ने अपने निष्कर्षों में पेरोल के लेखों का मान्यता प्रदान कर दी। इसके बाद भूगोल में एक के बाद एक द्वन्द्व चलते रहे। मार्टोनी, कोपेन ने भू-आकृति जलवायु को ही भूगोल का मुख्य तत्व माना। मानवीय तत्वों को नजर-अंदाज कर दिया तथा जारलैण्ड ने तो यहां तक कह दिया कि मानव को भूगोल से पूरी तरह हटा देना चाहिए। इसके विपरीत रेटजेल ने मानवीय तत्वों को भौगोलिक अध्ययन के केन्द्र बिन्दु के रूप में मानते हुए कहा कि मानव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी प्राकृतिक वातावरण से कम नहीं आंका जाना चाहिए।

भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल (Physical Geography and Human Geography)

भौतिक एवं मानव भूगोल के मध्य अन्तर ग्रीक भौगोलिक युग से ही चला आ रहा है। हैकटेयस Hecataeus तथा पोसीडोनियस Posidonius ने भौतिक भूगोल के अध्ययन पर बल दिया जबकि हेरोटस Herodotus और स्ट्रेबो ने मानव भूगोल को महत्व दिया। सर्वप्रथम बर्नहार्ड वारेनियस के पुस्तक ज्योग्राफिया जनरैलिस (Geographia Generalis) में भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल अद्वैत को स्पष्ट किया। भूगोल में द्वैतवाद के उद्भव के विश्लेषण के विकास की ऐतिहासिक समीक्षा हाना आवश्यक है। भौतिक भूगोल का विकास ईसा से 100 वर्ष पूर्व ही हो गया था तथा इस दृष्टि से प्रसिद्ध यूनानी भूगोलवेत्ता पोसीडोनियस Posidonius को प्रथम भौतिक भूगोलवेत्ता माना जाता है। भौतिक भूगोल व्यवस्थित क्रम में विकास प्राचीन चिरसम्मत काल में प्रारम्भ हुआ जो मध्यकाल में विकसित रहा 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में भौतिक भूगोल को जर्मनी में सामान्य भूगोल के रूप में माना जाता रहा है।

पृथ्वी से सम्बन्धित सभी भौतिक विज्ञान भूगोल विषय में सम्मिलित कर लिये गये। कार्ल रिटर ने भी पृथ्वी का विवेचन भौतिक दृश्य घटनाओं सहित उनके सकारण में विश्वास करते थे। उन्होंने सकारण प्राकृतिक प्रारूपों के अन्तर्सम्बन्धों को स्वीकार किया तथा सम्बन्धों के आधार पर व्यक्त करने का प्रयास किया। उन्होंने मानव केन्द्रित प्रकृति के अध्ययन की गौण कहा है।

मानव भूगोल का विकास भौतिक भूगोल के बाद हुआ है। भूगोल के मानवीय पक्ष को ऐतिहासिक काल से ही उदासीन माना गया है। पूर्व मध्यकालीन समय में डी. प्लानो तथा मार्कोपोलो द्वन एशिया तथा चीन के साँस्कृतिक परिवेश का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें मानवीय दृष्टि से विवेचना की गई है। एक अन्य यात्री विद्वान् विलियम रुबरेक ने काकेशस तथा बाल्कन पर्वत प्राकृतिक तथा साँस्कृतिक विवेचन नामक पुस्तक लिखी जिसमें मानव के कार्यों की भौगोलिक विवेचना की गई है। अरब भूगोलवेत्ताओं ने भी भूगोल के मानवीय पक्ष पर अधिक प्रकाश नहीं डाला। खोजकाल (1400 से 1700) में कोलम्बस, वास्को-डी-गामा तथा मैगेलन आदि खोजी यात्री मानव सम्बन्धी विभिन्न तथ्यों को संगृहीत किया।

भूगोल में मानव केन्द्रित अध्ययन का आधार मान्टेस्क्यू तथा हेटनर के मानव समाज पर प्रकृति के प्रभावों के अध्ययन के दौरान तैयार हुआ। 18वीं सदी के अन्य प्रमुख भूगोलवेत्ताओं जॉन रीनाल्ड फॉर्स्टर, जॉर्ज फॉर्स्टर तथा कुक आदि ने भी मानव एवं प्रकृति के साहचर्य की विवेचना की जिसको मानव भूगोल का विकास आगे बढ़ा। जे. फॉर्स्टर द्वारा भौगोलिक ज्ञान के 6 वर्गों में मानव को स्थान मिला। ये वर्ग निम्नलिखित हैं—(1) सलिल भूमि, (अ) महासागर और जल, (ब) वायुमण्डल, (स) पृथ्वी के परिवर्तन, (द) जीवधारी, (य) मानव। 18वीं सदी में काण्ट का झुकाव भौतिक भूगोल की ओर होते हुए भी उसके मानव पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों में विश्वास होने के कारण मानव भूगोल में दार्शनिक भावना का उदय उनकी योग्यता का प्रतिफल है। 19वीं शताब्दी में मानव भूगोल को विकसित करने वाले भूगोलवेत्ताओं में हम्बोल्ट रिटर, रेटजेल, रिचथोफेन तथा पेशेल प्रमुख हैं। हम्बोल्ट ने मानव को सामान्य भूगोल का अंग मात्र अपने ग्रन्थ कॉस्मॉस में प्रकृति की एकता के बारे में बताया कि, "Nature considered rationally a unity in diversity of phenomena-"हम्बोल्ट महोदय ने मानव-प्राकृति सम्बन्धों तथा प्रकृति के उन सभी कारकों का जो मानव पर प्रभाव डालते हैं का विस्तृत विवेचन किया तथा साथ ही प्रकृति के मानव स्वरूप होने वाली मानवीय अनुक्रिया (Human Response) की भी व्याख्या की। इनके समकालीन विद्वान् कार्ल रिटर अपने ग्रन्थ अर्डकुण्डे (Erdkunde) में पृथ्वी के विभिन्न भूमि क्षेत्रों का प्रादेशिक अध्ययन मानवीय क्रियाकलापों के सन्दर्भ में किया है। मानव भूगोल को व्यवस्थित क्रम में संगठित करने का कार्य प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता फ्रेडरिक रेटजेल ने किया। इन्होंने ही भूगोल में सर्वप्रथम प्रादेशिक दृष्टिकोण से हटकर व्यवस्थित (क्रमबद्ध) विधि से मानव का अध्ययन किया। अतः इन्हें मानव भूगोल का जन्मदाता कहा जाता है। रेटजेल महोदय ने डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर मानव का अध्ययन कर मानव भूगोल को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रेटजेल महोदय ने ही पर्यावरणीय निश्चयवाद का प्रतिपादन किया। मानव पर्यावरणीय एवं प्रकृति के साहचर्य Symbiosis के बारे में अपने ग्रन्थ मानव भूगोल (Anthropogeographie) में वर्णन किया। सन् 1891 में प्रकाशित इसके दूसरे खण्ड में मानव प्रवास तथा साँस्कृतिक लक्षणों के प्रसार का विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने राजनीतिक भूगोल के अध्ययन से मानव भूगोल का स्पष्टीकरण निम्न रूप में प्रस्तुत किया, "What is considered to as Human Geography was actually the Political Geography up to the time of Blache

एलेन चर्चिल सेम्पुल ने भी मानव भूगोल के विकास में योगदान दिया। मानव भूगोल के विकास की इस पृष्ठभूमि पर फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने भी अग्रब्लाशण्य कार्य किया है। भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल के मध्य द्वैतवाद स्पष्टतः प्रारम्भ हुआ। इसमें विडाल डी ला से माटोनी, ब्लैचार्ड, डी-फोन्तेन्स तथा जीन गोटेमन की प्रमुख भूमिका रही। ब्लाश ने मानवसत्तावादी विचारधारा को अपनाते हुए मानव भूगोल की सिद्धान्तवादी रूप को प्रस्तुत किया, जिसका समर्थन एवं विकास वे जीवनपर्यन्त करते रहे। जीन बूश ने मानव भूगोल का वर्गीकरण मानवीय तथ्यों के आधार पर किया। डीमाजियाँ ने मानव भूगोल को सरल रूप में परिभाषित कर इसमें दार्शनिकता का समावेश किया इनके अतिरिक्त हंटिंगटन, पल्यूर, लीप्ले, गिडिज आदि ने भी मानवीय पक्ष पर बल दिया।

भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल के विकास को दृष्टिगत करने पर स्पष्ट हुआ है कि भौतिक भूगोल को भूगोल की नींव के रूप में माना जाता है। वुलरिज तथा ईस्ट अपनी पुस्तक 'Spirit and Purpose of Geography' में स्पष्ट किया है, कि भूगोल की नींव भौतिक भूगोल पर आधारित रही है, जिस पर मानवीय क्रियाओं का निर्माण होता है। इस मत के अनुसार मानवीय क्रियाओं की पृष्ठभूमि प्राकृतिक तथ्य हैं लेकिन समय के साथ परिवर्तन आया तथा मानवसत्तावादी विचारधारा के अनुसार मनुष्य प्रकृति के नियंत्रणों से मुक्त रहकर के कार्य करता है। इस प्रकार भौतिक एवं मानव भूगोल के मध्य उत्पन्न इस द्वैतवाद के सम्बन्ध में निम्न दो दृष्टिकोण स्पष्ट होते हैं—

1. भूगोल को भौतिक तथा मानव भूगोल के रूप में विभक्त करना उपयुक्त है।
2. भूगोल का इस प्रकार दो वर्गों में विभाजित करना अनुचित है।

प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार भूगोलशास्त्री भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल में विभाजन का प्रमुख आधार इनकी विधितंत्र की भिन्नता मानते हैं। इसके अनुसार भौतिक भूगोल में भौतिक परिघटनाओं Natural Phenomenon का अध्ययन किया जाता है। इन परिघटनाओं का विशेष अध्ययन भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology), जलवायु विज्ञान (Climatology), मौसम विज्ञान (Meteorology), जल विज्ञान (Hydrology) तथा समुद्रविज्ञान (Oceanography) आदि में किया जाता है। भौतिक भूगोल को मानव भूगोल से पृथक् मानने वाले विद्वानों का कहना है कि इसमें मनुष्य के सहयोग के बिना प्रकृति स्वयं कार्य करती है। इस आधार पर प्रकृति का सीमांकन अजैविक संसार तक ही कर दिया गया जिस आधार पर मानवसहित विभिन्न जीवों को पृथक् कर प्राणी भूगोल को विषय क्षेत्र माना गया।

दूसरी ओर मानव भूगोल के अध्ययन में मानव के सभी व्यवसायों, तथा भूमि, जल, मृदा, जीव- जन्तु, वायुमण्डलीय तत्त्वों, वनस्पति तथा खनिजों तथा उसके जीवन पर महत्व का अध्ययन करते हैं लेकिन यदि मानव भूगोल को भौतिक भूगोल की तरह परिभाषित किया जाये तो भूगोल का महत्व आसानी से निर्धारित नहीं हो पायेगा, क्योंकि मानव भूगोल का विषय क्षेत्र मानवीय क्रिया-कलापों तक ही सीमित नहीं हो पायेगा हालांकि मनुष्य प्रकृति को एक सीमा तक अपने अनुकूल परिवर्तित कर लेता है लेकिन ऐसा होने पर भी मनुष्य प्राकृतिक परिवेश के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता है। प्राकृतिक भूगोल की तरह मानव भूगोल को भी विस्तृत करें तो इसमें आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आदि तीन पहले आधार पर आर्थिक भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल के रूप में अध्ययन किया जाता है। तथा राजनीतिक भूगोल आदि विकसित हुई हैं। शाखाएँ दूसरे वर्ग के भूगोलवेत्ता इस विभाजन को अस्वीकार करते हैं। ऊपर वर्णित मानव भूगोल की कुछ शाखायें तो प्राकृतिक भूगोलवेत्ता से स्पूर्णरूपेण सम्बद्ध है, जिनमें आर्थिक एवं कृषि भूगोल मुख्य हैं इतना ही नहीं स्वयं मानव भी जो मानव भूगोल का मुख्य अंग है, प्राकृतिक कारकों से इस सीमा तक प्रभावित होता है कि अपने मूल रूप में ही बदल जाता है। उदाहरणार्थ एक प्रजाति दूसरी प्रजाति से मिलकर नवीन प्रजाति को जन्म देती है, जिसके शारीरिक गठन में जलवायु दशाओं की प्रमुख भूमिका होती है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक तथा मानव भूगोल का द्वैत उपयुक्त नहीं है। भूगोल का अस्तित्व एक सेतु को भाँति है, जो दोनों को संयोजित करता है, जब भी तथा जिन कारणों से भी विषय के इन पृथक् पक्षों पर बल दिया जाता है, मौलिक उद्देश्य के विपरीत है।

भूगोल के समग्र अध्ययन की आवश्यकता (Need to Study of Geography as a Whole)

भूगोल के भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल के मध्य विभाजन का अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट हुआ है कि भूगोल का समग्र अध्ययन किया जाये तो पृथक् अस्तित्व स्वतः ही महत्वहीन हो जायेगा। भूगोल में भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार के तथ्यों के क्षेत्रीय वितरण का सम्मिलित रूप में अध्ययन किया जाता है। जिस आधार पर प्रो. वूलरिज महोदय ने बताया कि भूगोल को दो पक्षों, भौतिक एवं मानव में विभक्त करना उपयुक्त नहीं है। उनकी दृष्टि में इन दो पक्षों के आधार पर द्वैत मिथ्या है। वास्तव में भूगोल ऐसा संयोगी विषय है, जो भौतिक एवं मानवीय विज्ञानों के मध्य पुल (Bridge) की भूमिका रखता है, जिसके आधार पर ही भौतिक एवं मानवीय तथ्यों के मध्य सम्पर्क स्थापित होता है। हाल ही में पीटर हैगेट ने भूगोल को नवीन स्वरूप, भूगोल एक विश्वव्यापी संश्लेषण (Geography: A Global Synthesis) के रूप में प्रस्तुत किया है।

वास्तव में भूगोल एक ऐसा एकीकृत क्षेत्र है, जिसकी कुछ विशेषताओं पर मानव मुक्त प्रकृति तथा अन्य पर मनुष्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी कारण हेटनर ने क्षेत्रीय एकता में प्रकृति तथा मानव को अभिन्न अंग माना था। उनके अनुसार प्रगति एवं मानव दोनों ही भू-सतही क्षेत्रों के विशेष लक्षणों के वास्तविक परिचायक हैं तथा अन्तरसम्बन्धों के आधार पर ही इन दोनों को भौगोलिक अध्ययन से पृथक् नहीं किया जा सकता है। हेटनर की तरह ही एन्ड्रयू जॉन हरबर्टसन ने स्पष्ट किया कि, भूगोल विषय में भौतिक एवं मानवीय पक्षों को पृथक् पृथक् रखकर अध्ययन करना उपयुक्त न होगा वरन् सम्पूर्ण को मानव तथा उसके पर्यावरण से पृथक् करना खूनी जुर्म है। आगे चलकर पाल विडाल-डि-ला ब्लाश ने लिखा था कि, मानव भूगोल का उस भूगोल से कोई महत्व नहीं है, जिससे मानवीय हितों को निकाल दिया गया है। वास्तव में ऐसा कभी नहीं हुआ है। अतः यह तो विशेषज्ञों के मस्तिष्क की उपज है। वॉन रिचथोफेन ने भूगोल के इन दो विपरीत पक्षों के मध्य

समन्वय स्थापित करने का कार्य किया। उनके अनुसार भूगोल पृथ्वी के धरातल पर स्थित विभिन्न अन्तर्सम्बन्धित अध्ययन करता है। अध्ययन के लिए उत्पन्न किया गया यह द्वैत मिथ्या है, क्योंकि भूगोल में प्राकृतिक तत्त्व एवं मानवीय क्रियाएँ परस्पर अन्तर्सम्बद्ध हैं, जिनका स्वतंत्र रूप में अध्ययन करता उपयुक्त नहीं है।

3.4.3 नियतिवाद बनाम संभववाद—(Determinism Vs Possibilism)

प्राचीनकाल से ही भूगोल के अध्ययन के प्रकृति और मनुष्य दो प्रमुख पक्ष रहे हैं। जिसे सर्वप्रथम रेटजेल ने नाम दिया। वे नियतिवाद के पोषक भूगोलवेत्ता थे जिसके अन्तर्गत उन्होंने बताया कि मनुष्य प्रकृति का दास है उसकी सभी गतिविधियाँ प्रकृति द्वारा निर्धारित व नियंत्रित होती हैं। प्राचीन यूनानी व रोमन दार्शनिकों ने मानवीय क्रिया-कलापों पर वातावरण के नियंत्रण की बात कह दी थी जिसके साथ नियतिवादी विचारों की शुरुआत हो चुकी थी। इस दृष्टिकोण से स्ट्रेबो का नाम प्रथम नियतिवादी विचारक के रूप में जाना जाता है। इसके बाद कई भूगोलवेत्ताओं ने इस पर अपने विचार दिए। नियतिवाद शब्द का प्रथम बार प्रयोग जर्मनी में हुआ जहाँ इसका श्रेय रेटजेल ने हासिल किया। जहाँ इसे वातावरणवाद व प्रकृतिवाद के नाम से भी जाना गया। जिसका संक्षेप सार है मानव विकास उसके भौतिक वातावरण से सम्बद्ध है। 20वीं सदी के तीसरे से पाँचवे दशक तक नियतिवादियों से संभववादियों के बीच द्वन्द की स्थिति बनी रही।

काण्ट, हैकल, बकल, रिचथोफेन, किरचौफ, डिमोलिन्स, रेटजेल, टैटनर आदि जर्मन विचारक नियतिवाद के समर्थक थे। फ्रांस के लिप्ले, ब्रिटेन में मेकिन्डर, अमेरिका में डेविस, सेम्पुल व हंटिंगटन ने नियतिवाद का समर्थन किया। नियतिवाद में प्रकृति के पूर्ण वर्चस्व की बात पर कुछ विद्वानों ने आपत्ति उठाई जिसमें ब्लाश ने इसके विपरीत सम्भववाद का समर्थन किया। रोजर मिंशुल ने तो यहां तक कह दिया कि नियतिवादियों ने व्यावहारिकता को नजरअंदाज करके मानव के ऊपर मात्र प्रकृति का वर्चस्व स्थापित कर दिया।

सम्भववाद का विकास फ्रांस में हुआ। जहाँ विडाल-डी-ला-ब्लाश को सम्भववाद का जनक कहा जाता है। फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता फेब्रे ने सम्भववाद को स्पष्ट करते हुए कहा कि प्राकृतिक पर्यावरण सर्वत्र अनेक सम्भावनाओं वाला क्षेत्र है, जिनमें मानव अपनी स्वेच्छा एवं क्षमतानुसार चयन करता है। ब्लाश ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि प्रकृति मात्र एक परामर्शदात्री के रूप में है।

इस प्रकार द्वैतवाद के इस विषय के बारे में कहा जा सकता है कि 19वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में भौतिक भूगोल में प्रशिक्षित जर्मन भूगोल वेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित एवं अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं द्वारा समर्पित निश्चयवाद अपने चर्मोत्कर्ष पर थी जिसके आलोचकों के रूप में इतिहास में प्रशिक्षित फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने सम्भववाद को विकसित किया और नियतिवाद की कट्टरता, अवैज्ञानिकता एवं अव्यवहारिकता पर आपत्ति प्रकट करते हुए मनुष्य को प्रधानता प्रदान की।

3.4.4 गुणात्मक बनाम मात्रात्मक भूगोल—(Qualitative vs. Quantitative Geography)

समय के साथ भूगोल के परिवर्तन की स्थिति देखने को मिलती है। समय-समय पर इसकी प्रकृति में कई भूगोलवेत्ताओं ने परिवर्तन किया। इसी परिवर्तित स्वरूप के कारण भूगोल में टकराव या द्वन्दता की स्थिति देखने को मिलती है। भूगोल में यह द्वैतवाद नवीन है जो आधुनिक बनाम प्राचीन कहा गया। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व भूगोल में मुख्यतः गुणात्मक या वर्णनात्मक विश्लेषण का समावेश था सन 1940 के दशक के आस-पास दक्षिणी जर्मनी में केन्द्र स्थान के अध्ययन के तहत गणितीय विधियों का प्रावधान किया गया। जिसका अंग्रेजी में अनुवाद होने के उपरान्त यह विश्व स्तर पर फैलने लगा। इसके बाद 1970 के दशक के आस-पास अमेरिका के भौगोलिक अध्ययनों में गुणात्मक के स्थान पर मात्रात्मक स्थान दिया गया तथा भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में कई गणितीय व सैद्धान्तिक विधियों को काम में लिया जाने लगा। जिससे भूगोल का स्वरूप मात्रात्मकता की ओर जाते हुए दिखने लगा। गुणात्मक भूगोल का स्वरूप गौण होने लगा जो भूगोल के अपने मूल स्वरूप को खोने की स्थिति में पहुँच गया। यह बात कई भूगोलवेत्ताओं को खटकने लगी तथा उन्होंने भूगोल के मात्रात्मक स्वरूप को लेकर आपत्ति उठाना शुरू हो गया जो एक प्रकार के द्वैतवाद का निर्धारक तत्व है।

इस प्रकार भूगोल में द्वैतवाद युग के समन्वयन का एवं विशेषीकरण का भी एक युग रहा है। जो सन 1883 से 1900 तक रहा है। हम्बोल्ट व रीटर के देहान्त के पश्चात दो दशकों तक भूगोल में प्राकृतिक एवम् मानवीय तथा क्रमबद्ध एवम् प्रादेशिक का जो द्वन्द प्रकट हुआ उसका समन्वयन में रेटजेल की विशेष भूमिका थी। भौगोलिक विचारधारा की पूर्ववर्ती दिशा निर्धारित करने में रेटजेल का अद्वितीय योगदान रहा है। रेटजेल

की कृतियों ने भौगोलिक विचारधाराओं को स्पष्ट करने में अपना योगदान दिया है।

भूगोल का प्रारम्भिक विकास यात्राओं व खोजों के विवरणों के प्रकाशन से हुआ। इस प्रकार के विषय-सामग्री वर्णनात्मक प्रकृति की होती थी। धीरे-धीरे विश्व के लगभग सभी भागों की प्राकृतिक दशाओं और मानव जीवन से सम्बन्धित विवरण प्रकाशित होने के साथ-साथ भूगोल की विषय-सामग्री का कलेवर बढ़ता गया। पुनः मानव व प्रकृति के बीच के सम्बन्धों की व्याख्या होने लगी। इस काल में भी भूगोल अवर्णनात्मक ही रहा। अतः भूगोल की अध्ययन पद्धति प्रारम्भ से ही गुणात्मक (फनंस) रही। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भी विद्वानों को भूगोल का गुणात्मक स्वरूप ही था। इस काल में विकसित सम्भववादी विचारधारा के मानने वाले विद्वान भी मनुष्य की स्वतंत्रता तथा उसके कार्य-व्यवहार में अनिश्चितता पर ही अधिक बल देते रहे। वे मानवीय कार्य के अध्ययन में समझ व विवेकपूर्ण विश्लेषण पर बल देते थे। इसी के साथ दूसरी ओर नियतिवादी विचारक भी मानव पर प्राकृतिक वातावरण के प्रभाव की व्याख्या ही करते रहते थे। प्रायः विद्वानों का यह विचार रहा कि भूगोल की मुख्य विषयवस्तु भूतल, जो विविध तत्त्वों से बना है, यह अलग-अलग भागों में अलग-अलग गुण-धर्मों से युक्त है। कहीं पर कुछ तत्त्वों में घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई पड़ते हैं तो कहीं पर वे परस्पर बहुत ढीले-ढाले बंधन में बंधे हैं अतः उनकी माप करना सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए, एक ही क्षेत्र में निवास करने वाले दो या दो से अधिक मानव समुदाय भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवनयापन कर रहे हैं। अतः उनकी इन विशिष्ट जीवन शैलियों को गुणात्मक तरीके से ही समझा जा सकता है जिसके लिए उनका विवरण ही प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरी ओर जीवधारियों, के रूप से मानव की गतिशीलता भी तत्त्वों के अनुपात या कम में लगातार विभेद करती रहती है जिसके कारण एक स्थान की विशेषताएँ दूरवर्ती दूसरे भाग में परिलक्षित होती हैं। ये सब भौगोलिक अध्ययन की विषयवस्तु हैं। अतः इन सब बातों का ज्ञान गुणात्मक तरीके से ही हो सकता है। भूतल क वास्तविक स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए प्राकृतिक वैज्ञानिकों की तरह किसी वस्तु का पृथक् से अध्ययन करना सार्थक नहीं है, बल्कि निरीक्षण की जाने वाली सभी वस्तुओं का वर्णन किया जाना चाहिए। इन सब कारणों से भूगोल में क्षेत्रीय विलक्षणतापरक संकल्पना को भी स्थान मिला, जिसके अनुसार शिव का प्रत्येक क्षेत्र अपने-आप में विलक्षण है। यद्यपि इस प्रकार की विचारधारा का विकास जर्मनी में हुआ किन्तु के अनुसार तमाम पश्चिमी देशों में भूगोल इसी दौर से गुजरा है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए। प्रादेशिक विवरण के रूप में भौगोलिक साहित्य का अधिकांश भाग गुणात्मक ही है। आधुनिक भूगोल के अग्रदूत हम्बोल्ट व रिटर की कृतियाँ गुणात्मक भूगोल के उत्तम उदाहरण हैं। भूगोल का यह स्वरूप प्रादेशिक और क्रमबद्ध दोनों प्रकार की पद्धति में समान रूप से प्रचलित रहा, क्योंकि भूतल या उसके किसी भाग का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करत भूगोल का मुख्य उद्देश्य माना जाता रहा, जिसके लिए सभी सम्भव तरीकों से सभी विशेषताओं गुणों का वर्णन आवश्यक माना जाता रहा। वैज्ञानिक पद्धतियों के धीरे-धीरे बढ़ते हुए प्रभाव ने भूगोलवेत्ताओं को यह सोचने के लिए किया कि भूतल की इतनी अधिक विशेषताओं या गुणों के पुंज में उलझे रहने से भौगोलिक गहनता नहीं आ सकती। अतः पहली बार हर्बर्टसन द्वारा प्राकृतिक प्रदेशों पर किये गये कार्य से भूतल की इन विशेषताओं में से कुछ को अलग छोटकर नये प्रकार से विचार करना प्रारम्भ हुआ और विकसित तकनीकों तथा नवीन आँकड़ों की मदद से दो या दो से अधिक वस्तुओं और घटनाओं के आपसी सम्बन्धों की माप होने लगी। इस प्रक्रिया में महत्त्व के अनुसार अन्तर्सम्बन्धों वाली विशेषताओं को अपवाद के रूप में छोड़ा जाने लगा। यह भूगोल के मात्रात्मक अध्ययनों की ओर बढ़ने की एक प्रक्रिया थी जो सतत जारी रही।

सन् 1950 के बाद भूगोल में एक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई पड़ा जिसे बर्टन ने मात्रात्मक क्रान्ति (Quantitative Revolution) कहा है। इस क्रान्ति के मूल में परम्परागत भूगोल के प्रति असन्तोष था एवं भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य से इसमें एक सैद्धान्तिक तंत्र विकसित करने की प्रबल आकांक्षा थी। यद्यपि मात्रात्मक क्रान्ति का सूत्रपात प्राकृतिक विज्ञानों में हुआ था किन्तु धीरे-धीरे कई सामाजिक विज्ञानों, जैसे अर्थशास्त्र में भी इसका समावेश होने लगा और सांख्यिकी विधियों का उपयोग होने लगा। विशिष्ट एवं अपवाद के प्रतीक तत्त्वों को भूलकर सामान्य विशेषतायुक्त तत्त्वों के विश्लेषण में संलग्न होने की प्रवृत्ति सामाजिक विज्ञानों में भी जोर पकड़ने लगी। इसका प्रारम्भ सन् 1949 में जिफ के एक खेल से हुआ। इसी काल में स्टेवार्ट ने जनसंख्या के वितरण एवं संतुलन की स्थिति स्पष्ट करने के लिए गणितीय विधियों का प्रयोग किया। सन् 1949 में प्रिन्स्टन में स्टेवार्ट के नेतृत्व में कुछ प्राकृतिक एवं सामाजिक वैज्ञानिकों ने दोनों वर्गों के विज्ञानों से अधिक आदान-प्रदान की आवश्यकता पर बल दिया। इससे सामाजिक विज्ञानों में गणित के प्रयोग का द्वार

खुल गया। स्वयं स्टेवार्ट ने प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों की परस्पर निर्भरता पर जोर देते हुए सामाजिक भौतिकशास्त्र का विचार विकसित किया। इसके साथ ही कई भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को मात्रात्मक बनाने पर जोर दिया।

इस मात्रात्मक क्रान्ति ने अध्ययन सम्बन्धी निम्नलिखित प्रक्रियाओं को जन्म दिया—

1. भूगोल के विश्लेषण—वर्णन में सांख्यिकी विधियों का अधिकाधिक प्रयोग।
2. सर्वेक्षण—मापों और तथ्यमापों में सामान्य जनप्रिय नई विधियों और चारों का प्रयोग।
3. आनुभविक पद्धति में तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषणों में विविधता।
4. कम्प्यूटरों का अधिक प्रचार।

इसके परिणामस्वरूप भू-आकृति विज्ञान में शोले, स्टालर, ड्यूरी मैके, वोल्मैन ने सांख्यिकी विधियों के प्रयोग के प्रति अधिक उत्साह प्रदर्शित किया। जलवायु विज्ञान में थॉर्नथ्वेट आदि विद्वान पहले से ही इसका प्रयोग कर रहे थे फिर भी भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति के प्रसंग में सन् 1950 का दशक तीव्र वाद-विवाद का काल रहा, क्योंकि मानव भूगोल पर कार्य करने वाले विद्वानों में इसके प्रति अरुचि बनी रही। इसीलिए सन् 1958 में एकरमैन ने इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए यह लिखा कि भूगोल में पहले से ही वितरणों के विश्लेषण में साधारण सांख्यिकी का प्रयोग होता रहा है। अब इसमें कठिन सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग होने लगा है जो सर्वथा न्यायसंगत है। आगे चलकर इसमें और भी कठिन विधियों का उपयोग होने की सम्भावना है, परन्तु स्पेट जैसे कुछ भूगोलवेत्ता इस प्रकार के अध्ययनों के प्रति सन्देह व्यक्त करते रहे, क्योंकि ये भूगोलवेत्ता यह मानते थे कि यह रूप भूगोल के कुछ ही पक्षों के लिए उपयुक्त है सम्पूर्ण भूगोल के लिए नहीं। लेकिन इसके पक्षधरों ने इन सन्देहों को व्यर्थ बताते हुए यह कहा कि भूगोल में संकल्पनात्मक प्रगति के साथ-साथ तकनीक में भी परिवर्तन होना चाहिए। भूगोल चर्चों की अधिकता एवं जटिलता होने के कारण ही सांख्यिकी विधि का उपयोग अनिवार्य है। इस तरह हसन 1950 के दशक में भूगोलवेत्ताओं का एक ऐसा दल प्रकट हुआ जिसने भूगोल की परम्परागत क्षेत्रीय विलक्षणतापरक संकल्पना के अवैज्ञानिक स्वरूप की कटु आलोचना की तथा सांख्यिकीय विधियों का अधिकाधिक प्रयोग करके भूगोल के सिद्धान्त निरूपण एवं नियम प्रतिपादन बल देते हुए इसमें अपेक्षित वैज्ञानिकता का समावेश करने एवं इस प्रकार भूगोल को अन्य विज्ञानों के समकक्ष खड़ा करने का प्रयास किया। इसी कारण हार्टशोर्न जैसे परम्परावादी भूगोलवेत्ता ने भी भूगोल की परिभाषा नये सिरे से निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की—

“भूगोल पृथ्वीतल के विभिन्नतापूर्ण स्वरूप का यथार्थ क्रमबद्ध एवं तर्कसंगत विवेचन करता है।”

सन् 1950 के दशक के वाद-विवाद के फलस्वरूप सन् 1960 के दशक में मात्रात्मक क्रान्ति शुरू हुआ जिसके कारण भूगोल के अध्ययन, अनुसंधान, अन्वेषण और प्रेक्षण (Observation) के विधितंत्र में ठोस परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। सन् 1962 में बूंगे W-M- Bunge ने अपनी पुस्तक में भूगोलवेत्ताओं को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने बताया कि भूगोल का पारम्परिक गुणात्मक विवरणात्मक रूप त्याग दिया जाना चाहिए और इसे एक सैद्धान्तिक निमनात्मक स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए। उन्होंने भूगोल में आदर्श अवस्थिति तथा वितरण प्रारूपों का अध्ययन करने पर जोर दिया तथा इसके ज्यामितीय एवं विशेषतया टोपोलॉजी से निःसृत संकल्पनाओं के अधिकाधिक उपयोग पर जोर दिया। यह कार्य मात्रात्मक अध्ययन के बिना नहीं हो सकता था। अतः सन् 1960 के दशक में मात्रात्मक पद्धति पर आधारित भौगोलिक अध्ययनों की बाढ़ सी आ गई। यही नहीं, मात्रात्मक भूगोल पर भी पर्याप्त ग्रन्थ प्रकाश में आये। विभिन्न देशों में मात्रात्मक भूगोल पर आयोजित संगोष्ठियों-सम्मेलनों आदि के द्वारा भी इस क्रान्ति को विस्तार मिला। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1960 में सामुद्रिक अनुसंधान संस्थान की भूगोल शाखा ने यही संगोष्ठी आयोजित की, जिसके कारण मात्रात्मक भूगोल में अत्यधिक रुचि प्रदर्शित करने वाले युवा भूगोलवेत्ताओं का एक दल तैयार हुआ। इसके बाद अन्य कई संस्थानों द्वारा समय-समय पर इस प्रकार के आयोजन किये जाते रहे। उधर स्वीडन में लुण्ड अध्ययन केन्द्र द्वारा भी इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किये गये। धीरे-धीरे यह क्रान्ति ब्रिटेन तथा अन्य देशों में भी फैलती चली गयी, फलस्वरूप मात्रात्मक भूगोल के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले इजार्ड, चोर्ले तथा हैगेट, ग्रेगरी, कोल और किंग, गैरीसन और मार्बिल, बैरी और मार्बिल यीट्स, किंग आदि के ग्रन्थ प्रकाश में आये।

मात्रात्मक भूगोल के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में दूसरे विज्ञानों की सांख्यिकीय तकनीकों का अनुकरण करते हुए उन्हें विभिन्न क्षेत्रों की वस्तुओं और घटनाओं के वितरण—प्रारूप, सह—सम्बन्ध आदि का अध्ययन करने के उपयोग में लाया गया। ज्यों—ज्यों इस कार्य में कठिनाई आती गई उसके अनुकूल आवश्यक संशोधन किये जाने लगे। स्थानिक वितरण, प्रादेशिक तंत्र, यातायात आदि के अध्ययनों में विशेष रूप से यह क्रम चलता गया। स्थानिक वितरणों का प्रतिगमन के सहारे से अध्ययन किया गया और विभिन्न चरों के वितरण स्वरूप को प्रतिगमन (Regression) समीकरणों द्वारा समझाया गया, भूतल की विभिन्न अवस्थाओं के लिए उत्तरदायी कारकों की अन्तर्निर्भरता के अध्ययन के लिए प्रमुख कम्पोनेट विश्लेषण (Principal Component Analysis) किया गया, वस्तुओं और घटनाओं के वर्गीकरण के लिए बहुचर विश्लेषण विधि का उपयोग किया गया।

3.4.5 भावमूलक और नियमान्वेषी पद्धतियाँ (Idiographic and Nomothetic Approache)

भूगोल और अन्य विज्ञानों के मध्य के सम्बन्ध कभी भी स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं हो सके, क्योंकि स्वयं भूगोलवेत्ताओं ही अपने विषय के बारे में विवाद होता रहा है। भिन्न—भिन्न राष्ट्रों के भूगोलविद अपने विषय को अलग—अलग विज्ञानों की परिधि में रखते रहे हैं। फ्रान्स व जर्मनी में इसे इतिहास के नजदीक रखा गया। ब्रिटेन में भूगर्भशास्त्र के साथ इसे जोड़ा गया और अमेरिका में, विशेष रूप से कार्ल सावर द्वारा नेतृत्व प्रदान किये गये, बर्कले स्कूल द्वारा, इसे मानवशास्त्र (Anthropol) में विशेष रूप से जोड़ा गया। इसी तरह मात्राकरण के पक्षधर इसे आचरण विज्ञान या गणित से जोड़ने के पक्ष में पाये जाते थे। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि कुछ विद्वान भूगोल को प्राकृतिक विज्ञानों के साथ बोज़ते हैं और दूसरे कुछ इसका सम्बन्ध सामाजिक विज्ञानों व इतिहास से अधिक घनिष्ठ बताते हैं। के इस सबका परिणाम इसके विधितंत्रात्मक स्वरूप पर पड़ा और प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के विधि तंत्रात्मक द्वैतवाद के घेरे में भूगोल भी आ गया। सामाजिक विज्ञानों, विशेष रूप से इतिहास में जिस अध्ययन पद्धति (विधितंत्र) का उपयोग किया गया उसे भावमूलक पद्धति (Idiographic Method) तथा प्राकृतिक विज्ञानों में जिस अध्ययन पद्धति (विधितंत्र) का उपयोग होता है उसे विधिमूलक या नियमान्वेषी पद्धति (Nomothetic Method) कहा जाता है। इन्हीं के आधार पर भूगोल में भी भावमूलक एवं विधिमूलक पद्धतियों का द्वैतवाद पाया जाता है।

प्रो. एच.एस. माथुर के अनुसार जो विद्वान भूगोल को सामाजिक विज्ञानों और विशेष रूप से इतिहास के वर्ग में रखते हैं। वे इसके भावमूलक (Idiographic) रूप की बात करते हैं। इस प्रकार के अध्ययन में विलक्षणता (Uniqueness) की बात की जाती है अर्थात् प्रत्येक वस्तु या घटना अपने में विलक्षण (Unique) होती है अतः किसी प्रकार का सामान्यीकरण या नियम बनाकर उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। इतिहास की घटनाएँ इसी प्रकार की हैं। कुछ भूगोलवेत्ताओं ने भी यह विचार रखा कि भूमि का हर भाग एक—दूसरे से भिन्न है और स्वयं में विलक्षण है। हमें उनका अध्ययन अलग—अलग करना चाहिए। एक क्षेत्र के समान दूसरा क्षेत्र नहीं हो सकता। अतः उनके लिए कोई समान नियम कैसे बनाया जा सकता है और उनका सामान्यीकरण कैसे किया जा सकता है। जर्मनी और फ्रान्स के भूगोलवेत्ताओं द्वारा उन्नीसवीं सदी में इसी प्रकार के विचार रखे गये। जर्मन सम्प्रदाय के इतिहास व भूगोलविदों द्वारा स्थापित यह विचार अन्य सामाजिक विज्ञानों में भी लोकप्रिय हुआ। मैक्स वेबर के अनुसार नियम प्राकृतिक विज्ञानों में महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, क्योंकि वे विज्ञान सार्वभौमिकता से सम्बन्धित हैं। चूँकि ये नियम विषय—सामग्री की दृष्टि से अति सूक्ष्म होते हैं। अतः ऐतिहासिक वस्तुओं व घटनाओं (परिदृश्यों) के लिए न महत्वपूर्ण हो सकते हैं और न ही मूल्यवान, क्योंकि इनके आधार पर वस्तुओं और घटनाओं से सम्बन्धित विस्तृत बातों या गुणों, जो उनमें पाये जाते हैं, का विवरण देना सम्भव नहीं हो पाता। अतः उनकी बहुत—सी विषय—सामग्री छूट जाती है। सांस्कृतिक विज्ञानों के लिए सार्वभौमिक और सामान्य प्रकार का ज्ञान मूल्यवान नहीं होता। सिम्पसन द्वारा भी इसी प्रकार का विचार रखा गया और ऐतिहासिक विज्ञानों के साथ—साथ भूगर्भशास्त्र के अध्ययन के लिए भी उन्होंने ऐसे ही विचार रखे। उनका कहना था कि भूगर्भशास्त्र अध्ययन विधि के विचार से भौतिकशास्त्र की अपेक्षा इतिहास के अधिक नजदीक है।

प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता हेटनर ने भी भूगोल को भी भावमूलक (Idiographic) विज्ञान ही माना है। उनके अनुसार भूगोल सामान्य भू—विज्ञान नहीं है वरन् पृथ्वीतल का क्षेत्रीय विज्ञान है। भूगोल का उद्देश्य प्राथमिक रूप से क्षेत्रों अथवा प्रदेशों का अध्ययन करना है। क्षेत्रों के अध्ययन में प्रकृति और मानव दोनों सम्मिलित हैं। उनके अनुसार हर क्षेत्र विलक्षण है। फ्रांस में ब्लाश ने भी इसी प्रकार का विचार फैलाया। उन्होंने

यह निष्कर्ष निकालकर दिया था कि भूगोल में स्थानों का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। ब्लाश के अनुसार मनुष्य हर स्थान पर अपनी प्राकृतिक दशाओं के अनुसार सामंजस्य स्थापित करता है और बदले में अपने वातावरण पर भी प्रभाव डालता है। इन दोनों की परस्पर अन्तर्प्रतिक्रिया प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग प्रकार से होती है इसीलिए उन्होंने विश्व के भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अन्वेषण करने का प्रयत्न किया और हर प्रदेश के व्यक्तित्व को पहचानने पर जोर दिया।

भावमूलक भूगोल की इस धारणा ने अन्य भूगोलवेत्ताओं को भी प्रभावित किया, क्योंकि उन्नीसवीं सदी के वातावरणवाद की लहर के कारण भूगोल का स्वरूप सतही होता जा रहा था। मानव वातावरण के सन्दर्भ में कार्य-कारण का मनमाना अन्तर्सम्बन्ध प्रदर्शित किया जा रहा था और भूगोल का अध्ययन इसी के इर्द-गिर्द सिमटने लगा था इसलिए सामाजिक विज्ञानों और इतिहास में प्रचलित पद्धति भावमूलक (Idiographic Method) को भूगोल में भी स्थान मिला ताकि विश्व के भिन्न-भिन्न भागों को उनके वास्तविक रूप में स्वतंत्र रूप में देखा जा सके।

दूसरी ओर प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा विधिमूलक पद्धति (Nomothetic Method) से अध्ययन किया जाता रहा है जिसके अन्तर्गत निश्चित नियमों और सामान्यीकरण के आधार पर विषयवस्तु को देखा-परखा जाता है। इन नियमों का सत्यापन करके उन्हें सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया जाता है। उदाहरण के लिए, भौतिक विज्ञान में ऐसा ही अध्ययन किया जाता है और सम्पूर्ण जगत् में घटनाओं की विविधता होने पर भी उनमें एकत्व की खोज की जाती है। भूगोल को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए इस विधि पर जोर देना आवश्यक समझा गया। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, जीवों की उत्पत्ति या विभिन्न भू-रूपों की उत्पत्ति स्वयं में विलक्षण घटनाएँ होने पर भी इनके सम्बन्ध में नियम प्रतिपाद पर जोर दिया जाता है। अधिक जटिल स्थितियों प्रतिदर्शों (Models) के द्वारा समझाया जाता है। भूगोल में इसका प्रेरणा-स्रोत विज्ञान का वह दर्शन रहा है जो निरपेक्ष आदर्श वस्तुनिष्ठावाद को वैज्ञानिक अध्ययन का आधार मानता है। निरपेक्ष आदर्शवाद की यह मान्यता है कि सभी विज्ञानों में विधिपरक एकता (Unity of Method) है। किसी भी विज्ञान को अपने अध्ययन तत्त्व से निरपेक्ष रहकर अपने अमूर्त, आदर्श स्वरूप पर ध्यान देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अध्ययन मूल्य-सापेक्ष नहीं होना चाहिए। अर्थात् वैज्ञानिक अध्ययन किसी तत्त्व के स्वरूप, भला-बुरा, वांछित अवांछित के विवाद से परे रहकर निरूपण-विश्लेषण करता है। इसी दर्शन से प्रभावित होकर भूगोल को भू-वैज्ञानिक संगठन के (आदर्श) प्रतिरूप का अध्ययन करने वाला विषय माना गया। अन्य सामाजिक विज्ञानों एवं इतिहास पर भी इस दर्शन का प्रभाव पड़ रहा था और विद्वान यह मानने लगे थे कि विलक्षण के विचार में कमियाँ हैं और उनमें सुधार होना चाहिए। उनके अनुसार यों तो प्राकृतिक और सामाजिक दोनों विज्ञानों में अध्ययन को जाने वाली घटनाओं में विलक्षणता है और उन्हें अविलक्षण (Non Unique) मानना वैचारिक है जिनके आधार पर उनके प्रकार या वर्ग बना लिये जाते हैं और फिर सामान्यीकरण किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों एवं इतिहास में भी ऐसा ही किया जा सकता है जिससे इनके ढाँचे और संरचनात्मक स्वरूप का निर्माण हो, क्योंकि सामान्यीकरण, संकल्पना और सिद्धान्तों के बिना व्याख्या बौद्धिक विवेचन हो ही नहीं सकता।

बीसवीं शताब्दी में भूगोल में क्रान्तिकारी परिवर्तन इसी विचार से प्रभावित होकर हुआ जिसके परिणामस्वरूप भौगोलिक संकल्पनाओं, नियमों और प्रतिदर्शों पर विशेष बल दिया जाने लगा। इस कार्य के लिए प्राचीन भौगोलिक साहित्य की बारीक छान-बीन की जाने लगी और दूसरे विज्ञानों में स्थापित नियमों के आधार पर भूगोल में भी नियमों और प्रतिदर्शों का निर्माण किया जाने लगा। गुरुत्व प्रतिदर्शवान थ्यूनेन व क्रिस्टैलर का केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त उद्योगों की अवस्थिति के सिद्धान्त आदि के आपके प्रचलन से इस परिवर्तन को समझा जा सकता है। इस तरह भावमूलक (Idiographic) तथा नियमान्वेषी भूगोल (Nomothetic Geography) का द्वैतवाद उभरकर सामने आया।

नियमान्वेषी भूगोल (Nomothetic Geography) में सिद्धान्तों और नियमों पर अत्यधिक जोर दिये जाने के कारण इसकी आलोचना भी की जाती है। इस विधि के लिए सांख्यिकीय औजारों का प्रयोग किया जाता है और शोधकर्ता अपने अध्ययन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए इन्हीं के अनुकूल आँकड़े इकट्ठे करता है। फलस्वरूप सिद्धान्त से आँकड़ों का स्वरूप निश्चित करने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है और आँकड़ों से सिद्धान्त के अतिक्रमण पर ध्यान नहीं दिया जाता। धीरे-धीरे अध्ययन वास्तविकता से दूर चला जाता है। इससे मूल्यों, मान्यताओं और घटनाओं में छिपी हुई अन्तर्प्रक्रिया का ज्ञान नहीं हो पाता है। दूसरे विज्ञानों-अर्थशास्त्र,

समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि द्वारा अवास्तविक मान्यताओं पर विकसित सिद्धान्तों का बिना जाँचा-परखा उपयोग करने पर वे भौगोलिक अध्ययन के उद्देश्य से दूर भी चले जाते हैं। भू-वैन्यासिक संगठन के विश्लेषण का सैद्धान्तिक स्वरूप भी उसे वास्तविकता से दूर ले जाता है। उदाहरण के लिए, हैगेट ने भू-वैन्यासिक संरचना के मूल तत्त्वों—गमनागमन मार्ग जाल, संगम केन्द्र, पदानुक्रम एवं प्रवणता सतह का निरूपण तो किया, परन्तु किसी क्षेत्र विशेष की भू-वैन्यासिक संरचना में वैकल्पिक राजनीतिक, आर्थिक दशा के अनुसार ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ये घटक तत्त्व किस प्रकार परिवर्तित होते हैं, इसका विवेचन नहीं किया, जबकि हम सभी यह जानते हैं कि उक्त घटक तत्त्वों की अनदेखी नहीं की जा सकती।

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की यद्यपि अनेक भूगोलवेत्ताओं ने आलोचना की है लेकिन वास्तव में भूगोल में वैज्ञानिक विश्लेषण मात्रात्मक विधियों के आधार पर ही सम्भव हुए हैं। सन् 1960 के बाद अधिकांश शोधकर्ताओं ने इन विधियों को अपनाया तथा इनका उपयोग सिद्धान्त एवं मॉडल बनाने में किया। प्रारम्भ में गणितीय विधियों का प्रयोग मानव भूगोल में किया। सिद्धान्तों एवं मॉडलों द्वारा मानव पर्यावरण सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या की गई लेकिन इसकी प्रतिक्रिया में मानव भूगोल में आचरण एवं मानवीय पद्धतियों को प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार भूगोल में अन्य समाज विज्ञानों के साथ ही अनुमानों एवं भविष्यवाणियों का मिला-जुला प्रयोग आवश्यक माना गया।

भौतिक भूगोल में भी गणितीय विधियों के आधार पर अनेक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं को मॉडल निर्माण कर दर्शाया जाता है। वर्तमान में विवर्तनिक घटनाओं एवं जलवायु एवं मौसमी विश्लेषणों में गणितीय विधियों का सहारा लिया जाता है। वर्तमान में कम्प्यूटर आधारित विश्लेषणों में गणितीय विधियाँ आवश्यकता बन गई हैं। मानचित्र कला का वर्तमान स्वरूप बिना गणितीय विधियों के समावेश के अधूरा है। पीटर हैगेट, चोर्ले एवं हार्वे ने भौगोलिक निदर्शन (Paradigm) एवं मॉडल निर्माण में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग में कम्प्यूटर को आवश्यक बताया था।

3.5 सारांश—(Summary)

भूगोल में द्वैतवाद व टकराव भूगोल के विकास के साथ नये-नये विषयों के रूप में देखने को मिलता है। जबकि वास्तविकता यह है कि टकराव जैसा कुछ है। दरअसल भूगोल के विषय-वस्तु का समर्थन जिन-जिन विद्वानों ने किया उसके पीछे मूल कारण उनके द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा है। जैसे भौतिक भूगोलवेत्ताओं का शिक्षण भूगर्भशाखा में हुआ है जहाँ मानवीय अध्ययन की कोई गुंजाइश ही नहीं है, जबकि मानव भूगोलवेत्ताओं का प्रारम्भिक प्रशिक्षण इतिहास की पृष्ठभूमि में हुई है। जहाँ मानवीय उपलब्धियों की ही चर्चा की गई है। इसलिए भौतिक बनाम मानवीय भूगोल के बीच द्वन्द्व 20वीं सदी के प्रारम्भ में विकसित हुए हैं। परन्तु भूगोल के एक समुदाय विशेष द्वारा इस द्वन्द्व को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। 20वीं सदी के अन्त तक यह मान्यता पूर्णतया विकसित होने लगी कि मानव एवं प्रकृति में अन्योन्याश्रय संबंध है। अतः भौतिक एवं मानव भूगोल एक दूसरे के पूरक हैं। 21वीं सदी का मानव औद्योगीकरण, नगरीयकरण एवं भौतिकता के लिए पर्यावरण पर कुछ ज्यादा ही निर्भर हो गया है। जिससे पारिस्थितिक असंतुलन एवं प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बढ़ गया है, जो मानव एवं प्रकृति के सामंजस्य से ही समाप्त हो सकता है अतः अब इनके मध्य किसी प्रकार के द्वन्द्व की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है।

इसी प्रकार यदि द्वैतवाद के एक दूसरे पक्ष को ले क्रमबद्ध भूगोल में भूगोल के विभिन्न प्रकरणों का प्रादेशिक अध्ययन होता है। वही प्रादेशिक भूगोल में प्रदेश विशेष में भूगोल के विभिन्न प्रकरणों का क्रमबद्ध अध्ययन होता है। इन दोनों में द्वन्द्व नहीं अन्तर्संबंध है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। भूगोल के इन दोनों उपागमों को संतुलित विकास के अभाव में भूगोल की विभिन्न शाखाएं विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में प्रविष्टि हो जाती है।

नियतिवाद व सम्भववाद पर्यावरण व मानव का पक्ष रखने वाले विचार हैं। सभ्यता के विकास में मानवीय प्रभावों का जितना योगदान है उससे कम प्राकृतिक कारकों का भी नहीं है। इसलिए इसमें से किसी भी एक पक्ष के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है।

भूगोल के गुणात्मक व मात्रात्मक स्वरूप को लेकर भी विरोधाभास की स्थिति बनी है। क्योंकि दूसरे विश्व युद्ध से पूर्व भूगोल का स्वरूप गुणात्मक या वर्णनात्मक या जिसमें भौगोलिक घटनाओं का सविस्तार वर्णन

किया जाता था। 1940 व 1970 के दशक से भूगोल के वर्णनात्मक स्वरूप के स्थान पर गणितीय विधियों व सिद्धान्तों का सहारा लिया जाने लगा। इसमें केन्द्रीय स्थानों की महत्व को प्रदर्शित किया जाने लगा। इससे भूगोल अपना मूल स्वरूप खो देने की स्थिति में पहुँच गया। इस पर कई भूगोलवेत्ताओं ने आपत्ति उठाई प्रो० स्टाम्प, स्पेट, हार्वे आदि ने मात्रात्मक भूगोल पर कड़ा प्रहार करते हुए इसे पूँजीवाद का प्रभाव बताया तथा आम लोगो तक इसकी पहुँच न हो सकने की बात कही। प्रो० रामलोचन सिंह ने भूगोल के इस सबसे नवीनतम स्वरूप के मध्य समन्वय स्थापित करने पर बल दिया क्योंकि आधुनिक तकनीकी का समावेश आज समाज विज्ञान के सभी विषयों में हो चुका है। आज हम चाह कर इस स्थिति से बच नहीं सकते। अतः जहाँ आवश्यक हो वहाँ भूगोल के विकास में मात्रात्मक स्वरूपों का भी सहारा ले लेना चाहिए। बशर्ते इस बात का ध्यान रहे की इनके अति उपयोग से भूगोल अपना मूल स्वरूप न खो बैठे।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

द्वैतवाद— भूगोल में विभाजन या टकराव की स्थिति।

भौगोलिक द्वैतवाद— प्राकृतिक व मानवीय दृश्यों की अलग-अलग श्रेणियों के मध्य विचारों के बीच द्विभाजन की स्थिति।

सामान्य भूगोल— सन 1650 में वारेनियस द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ, जिससे द्वैतवाद का सूत्रपात हुआ।

क्रमबद्ध भूगोल— पृथ्वी तल के अलग-अलग लक्षणों का अध्ययन क्रमबद्ध रूप में किया जाता है।

प्रादेशिक भूगोल— पृथ्वी की मिलती-जुलती विशेषताओं के समांग प्रदेशों में विभक्त कर प्रत्येक प्रदेश या क्षेत्र के भौगोलिक तत्त्वों का विश्लेषण करते हैं।

भौतिक भूगोल— भूगोल की एक शाखा के रूप में जिसमें प्राकृतिक दृश्यों का विवरण दिया जाता है।

मानव भूगोल— भूगोल की एक शाखा जिसमें मानव केन्द्र बिन्दु मानकर अध्ययन किया जाता है।

वातावरण नियतिवाद— मानव विकास उसके भौतिक वातावरण से सम्बद्ध है।

3.7 बोध प्रश्न—

3.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल में द्वैतवाद की संकल्पना की विवेचना कीजिये।

प्रश्न-02— भूगोल में द्वैतवादी चिंतन को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-03— भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल के बीच द्वैतवाद को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-04— भूगोल में द्वैतवाद भ्रम की स्थिति है। स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-05— निश्चयवाद व सम्भववाद के मध्य द्वैतवाद को स्पष्ट कीजिए।

3.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— भूगोल का गुणात्मक स्वरूप क्या है?

प्रश्न-02— समकालीन भूगोल किसे कहते हैं?

प्रश्न-03— भूगोल के मात्रात्मक स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-04— क्रमबद्ध भूगोल किसे कहते हैं।

प्रश्न-05— प्रादेशिक अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-06— ऐतिहासिक भूगोल किसे कहते हैं।

3.7.3 बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— सामान्य भूगोल ग्रन्थ है।

- | | |
|--------------|-----------|
| (क) हम्बोल्ट | (ख) रीटर |
| (ग) वारेनियस | (घ) काण्ट |

प्रश्न-02— क्रमबद्ध भूगोल के समर्थक भूगोलवेत्ता है।

- | | |
|-----------|--------------|
| (क) रीटर | (ख) हम्बोल्ट |
| (ग) काण्ट | (घ) वारेनियस |

प्रश्न-03— प्रादेशिक भूगोल के समर्थक भूगोलवेत्ता है।

- | | |
|-----------|--------------|
| (क) काण्ट | (ख) हम्बोल्ट |
| (ग) रीटर | (घ) रेटजेल |

प्रश्न-04— किस भारतीय भूगोलवेत्ता ने भूगोल में गुणात्मक एवं मात्रात्मक अध्ययन के समन्वयन पर बल दिया।

- | | |
|------------------------|----------------------|
| (क) प्रो० रामलोचन सिंह | (ख) प्रो० जसबीर सिंह |
| (ग) प्रो० स्टाम्प | (घ) प्रो० स्पेट |

प्रश्न-05— सम्भववाद शब्द का प्रथम बार प्रयोग किस विद्वान ने किया—

- | | |
|------------|-------------|
| (क) ब्लांश | (ख) फेब्रे |
| (ग) सावर | (घ) सेम्पुल |

प्रश्न-06— नियतिवाद विचारक नहीं है।

- | | |
|------------|--------------|
| (क) रेटजेल | (ख) सेम्पुल |
| (ग) फेब्रे | (घ) हम्बोल्ट |

उत्तर माला—

01—(ग), 02—(घ), 03—(ग), 04—(क), 05—(ख), 06—(ग),

3.8 सन्दर्भग्रन्थ सूची—

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- प्रो. माजिद हुसैन— भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली
- **Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.**
- **Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.**
- **Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.**
- **Mastin G.F. All possible world. Oxford London.**
- **Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts**
- डा. एम.डी. मौर्या, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास— शारदा पुस्तक भण्डार प्रयागराज

इकाई-04 : नियतिवाद एवं सम्भववाद, अभिनव प्रवृत्तियाँ

ईकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 नियतिवाद
- 4.4 सम्भववाद
- 4.5 नव नियतिवाद
- 4.6 अभिनव मत
- 4.7 सारांश
- 4.8 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.9 बोध प्रश्न
- 4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव पर्यावरण सम्बन्धों पर चर्चा भूगोल में प्राचीन काल से ही किया जाता आ रहा है। इसे एक विचार धारा के रूप में प्रस्तुत करने का काय जर्मन व फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने किया। इन्होंने मानव भूगोल के विकास में अपना योगदान दिया है तथा मानव को भूगोल में स्थान दिलाने के लिए पर्यावरण आवश्यक है। बिना वातावरण के अनुकूलन के पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व सम्भव नहीं है परन्तु विचार से कही आगे निकलकर इस बात पर चर्चा की जाने लगी की क्या मानव बिना वातावरण की आशा के कुछ नहीं कर सकता है? क्या मनुष्य प्रकृति का दास है यही से विद्वानों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। जिस विद्वान का शिक्षण कार्य जैसे विषयों में हुआ है। उसके विचार उसी के अनुरूप बनते चले गये।

निश्चयवाद और सम्भववाद मानव-पर्यावरण सम्बन्धों को बताने वाली प्रमुख विचारधाराएं हैं। जिन्होंने पृथ्वी पर पाये जाने वाली विभिन्न भौगोलिक वातावरणों का उदाहरण देते हुए अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। यह स्थिति 20वीं सदी के लगभग मध्य तक बनी रही। इसके बाद आगे भूगोलवेत्ताओं ने इनके बीच समन्वय स्थापित करवाने को प्रयास किया तथा मानव पर्यावरण सम्बन्धों को प्रदर्शित करने वाले विचारों के अलावा भूगोल में कई नवीन विचारों को भी समावेश किया है। ये अभिनव विचार क्षेत्रों का अध्ययन तथा भूगोल के स्वरूप को परिवर्तित करने वाले रहे हैं।

4.2 उद्देश्य (Objectives)–

- मानव पर्यावरण के बीच अन्तर्सम्बन्धों को प्रस्तुत करना।
- मानव तथा पर्यावरण के बीच उत्पन्न श्रेष्ठता की होड़ का खंडन करना।
- जर्मन विचारधारा वातावरणवाद को स्पष्ट करना।
- फ्रांसीसी विचारधारा सम्भववाद को स्पष्ट करना।
- मध्यमार्गी विचारों को स्पष्ट करना।
- भूगोल में अभिनव प्रवृत्तियों की व्याख्या करना।

4.3 नियतिवाद (Determinism)-

सभ्यता के प्रारम्भिक दौर से लेकर 19वीं सदी तक नियतिवादी विचारों का वर्चस्व रहा। जिसके बारे में

सीधे तौर पर कहा गया कि मनुष्य प्रकृति का दास है। अर्थात् मनुष्य की शारीरिक बनावट, त्वचा का रंग, लम्बाई, गठन आदि से लेकर मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यकलापों पर वातावरण का गहरा नियंत्रण पाया जाता है। 19वीं सदी में यह विचारधारा अपने चरम स्तर तक पहुँच गयी। नियतिवाद को पर्यावरण निश्चयवाद भी कहा जाता है। इसके समर्थक भूगोलवेत्ताओं का विवरण निम्न है।

- यूनानी व रोमन विद्वान— हिप्पोक्रेटस, अरस्तू, स्ट्रेबो आदि।
- जर्मन विद्वान— वारनियस, काण्ट, हम्बोल्ट, रीटर, रेटजेल आदि।
- अमेरिकन विद्वान— एलन चर्चिल, सेम्पुल, हटिंगटन।
- फ्रांसीसी विद्वान— बोदिन, माण्टेस्क्यू, डिमोलिन्स, लिप्ले आदि।
- अरब भूगोलवेत्ता— अल बरूनी, अलमस्तानी, अल इदरीशी आदि।
- ब्रिटिश भूगोलवेत्ता— बकल।

वारेनियस (1622–1650 ई०)

वारेनियस ने सन 1650 में अपने ग्रन्थ सामान्य भूगोल में भूगोल को सामान्य भूगोल व विशिष्ट भूगोल में बांटा। वारेनियस ने प्राकृतिक शक्तियों का समर्थन करते हुए बताया कि मानव को अपना गुजारा करने के लिए प्राकृतिक वातावरण का सहारा लेना पड़ा।

बकल (1622–1650 ई०)

ब्रिटिश भूगोलवेत्ता बकल ने अपनी पुस्तक इंग्लैण्ड में सभ्यता का इतिहास के दो खण्डों में निश्चयवाद के कई उदाहरण प्रस्तुत किए एक उदाहरण में उन्होंने बताया कि जलवायुविक वैविध्य के आधार पर श्रमिकों की कार्य कुशलता व्यस्तता आदि पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। गर्म क्षेत्रों के श्रमिक जल्द व अधिक थक जाते हैं। अतः उनमें दक्षता का अभाव पाया जाता है। समशीतोष्ण क्षेत्रों में श्रमिक जल्द नहीं थकते अतः उनकी कार्यकुशलता अधिक होती है। अत्यधिक सर्द प्रदेश के श्रमिक श्रम की दृष्टि से प्रतिकूल होते हैं। अतः यहां के श्रमिकों की दक्षता भी न्यून होती है।

अरब जगत में नियतिवाद (08वीं सदी से 13वीं सदी तक)

08वीं सदी से 13वीं सदी अरब जगत के विद्वानों का भूगोल के विकास में योगदान रहा है। इनके विचारों पर यूनानी विद्वानों का प्रभाव था। इसलिए वे भी नियतिवाद के प्रवर्तक थे। अरब विद्वानों ने विश्व के आवासीय क्षेत्रों को सात जलवायु प्रदेशों में विभक्त किया। अल मसूदी (890–956 ई०), इब्न हाकल, अल इदरीसी (1199–1166 ई०) ने पर्यावरण से मानव क्रिया और उनकी जीवन शैली में सहसम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया था। अल मसूदी ने कहा था कि उस भूमि में जहां जल की अधिकता पाई जाती है वहां के निवासी प्रफुल्लित और विनोदी होते हैं। जबकि शुष्क प्रदेशों के निवासी असंतुलित होते हैं। ऐसे उन्होंने अरब जगत के मरुस्थलीय दशाओं से घिरे हुए क्षेत्र को देखकर कहा था। इसके आगे उन्होंने कहा कि चलवासी पशुचालक खुली हवा में निवास करते हैं। जिसके प्रभाव स्वरूप वे शक्ति-सम्पन्न और विवेक के लिए जाने जाते हैं।

प्राचीन काल से ग्रीक विद्वानों द्वारा भी प्राकृतिक तत्वों के प्रभाव को स्वीकार किया जाता था निश्चयवाद को पर्यावरणवाद तथा नियतिवाद भी कहते हैं। स्ट्रेबो (Strabo) (63 ई०पू० से 36 ई०) ने पर्यावरणीय प्रभावों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रोम साम्राज्य की सम्पन्नता का कारण इटली की अनुकूल जलवायु रही है। स्ट्रेबो को विश्व का प्रथम नियतिवाद विचारक माना जाता है कि गर्म प्रदेश के निवासी प्रतिरोधी, कुटिल लेकिन सच एवं झूठ में अन्तर कर सकने वाले होते हैं। इस प्रकार पर्यावरण का प्रभाव मानवीय क्रिया-कलापों से ऊपर उसकी मानसिक तथा बौद्धिक दशाओं व आदतों को भी नियंत्रित करता है। शीतोष्ण प्रदेशों के निवासी शीत प्रदेशों के निवासियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान तथा गर्म प्रदेश के निवासियों की तुलना में अधिक शक्तिशाली होते हैं। माँण्टेस्क्यू (1689–1755) ने भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए लिखा है कि उर्वर भूमि में कुलीनतंत्र (Aristocracy) या तानाशाही चलती है।

अरस्तु (384–322 ई०पू०)– अरस्तू ने मानव के विकास में पर्यावरणियों शक्तियों के प्रभाव का समर्थन किया तथा प्राकृतिक शक्तियों को अत्यन्त शक्तिशाली माना है।

उन्होंने कहा है कि, “शीत जलवायु में रहने वाले लोग शारीरिक दृष्टि से सशक्त, साहसी, स्पष्ट वक्ता, कम शंकालू तथा कपटरहित होते हैं, जबकि दक्षिण के लोग वृद्ध पुरुषों की भाँति भीरु, शारीरिक दृष्टि से दुर्बल, कम कार्यक्षमता वाले तथा निष्क्रिय होते हैं। उत्तरी क्षेत्र के निवासी, जो दक्षिण में रहने के लिए जाते हैं, शीघ्र ही अपनी शक्ति खो देते हैं तथा शिथिलता उन्हें प्रभावित करने लगती है।

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक भूगोलवेत्ता इमेनुएल काण्ट (1724–1804) ने अपनी पुस्तक ‘भौतिक भूगोल’ में प्राकृतिक भूगोल का मानवीय इतिहास पर प्रभाव स्पष्ट कर बताया कि यूरोप के विभिन्न प्रदेशों की भिन्न मात्रा में विकास का कारण उनका पर्यावरण है।

रेटजेल (1844–1904) निश्चयवाद का जन्म एवं विकास जर्मनी में ही हुआ तथा (इसके प्रमुख प्रतिपादक जर्मन भूगोलवेत्ता एवं मानव भूगोल के जन्मदाता फ्रेडरिक रेटजेल थे। रेटजेल महोदय ने प्राकृतिक वातावरण के तत्त्वों, जैसे कि धरातल की बनावट, जलवायु, वनस्पति आदि में तथा मानव के मध्य जटिल सम्बन्ध पाये जाते हैं, जिनमें पर्यावरणीय तत्त्व अधिक प्रभावशाली हैं जो मानवीय क्रिया–कलापों को नियंत्रित करते हैं। उनके अनुसार, हमारी बुद्धि, संस्कृति एवं सभ्यता की उपलब्धियों की तुलना एक चिड़िया की स्वच्छन्द उड़ान से नहीं की जा सकती, उसकी तुलना एक पौधे के तने से की जा सकती है, क्योंकि हम सदैव पृथ्वी से आबद्ध हैं तथा शाखाएँ तने पर ही अवलम्बित हो सकती हैं। उनके मतानुसार भू–सतह पर जड़ एवं चेतन की भी स्वतंत्र इकाई नहीं है। ये सब एक–दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित हैं। इसी आधार पर रेटजेल ने पार्थिव एकता के सिद्धान्त की विवेचना की है। रेटजेल महोदय मुख्यतः नियतिवादी विचारक थे लेकिन उनके विचारों में मानवीय क्रियाशीलता तथा स्वतंत्रता की झलक भी मिलती है। उनके मतानुसार मानवीय क्रियाकलापों का अवलोकन किसी अर्थशास्त्री, इतिहासकार अथवा दार्शनिक के दृष्टिकोण से नहीं वरन् एक भूगोलवेत्ता के दृष्टिकोण से करना चाहिए। मानव अपना सिर आकाश में चाहे जितना ऊँचा क्यों न कर ले तथापि उसके पैर सदा धरती पर ही टिके रहेंगे तथा उसकी धूल प्रकृति में विलीन हो जायेगी।

निश्चयवाद की विचारधारा को पुष्ट करते हुए कार्ल रिटर (1779–1859) ने बताया कि भौतिक पर्यावरण मानवीय क्रिया–कलापों को सीमाबद्ध करता है। उनकी मानव केन्द्रित (Anthropocentric) विचारधारा को इससे बल मिला। साथ ही रिटर ने मानवीय कार्यकुशलता को कभी भी पूर्णरूपेण महत्त्वहीन नहीं माना। अपनी पुस्तक यूरोपा (Europa) के प्रथम प्रकाशन के द्वितीय भाग में प्रकृति के प्रभावों का विवरण दिया है। उन्होंने बताया कि मानव पर प्रभाव डालने वाली प्राकृतिक शक्तियों में जलवायु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

हम्बोल्ट (1769–1859) ने अपनी विचारधारा को जलवायु तथा प्राकृतिक वनस्पति से सम्बन्ध स्थापित कर स्पष्ट किया। उन्होंने प्रकृति को नजदीक से अनुभूत किया तथा प्राकृतिक शक्तियों को मानवीय शक्तियों से अधिक शक्तिशाली माना है। हम्बोल्ट ने अपने ग्रन्थ कॉसमॉस (Cosmos) में बताया कि “भौगोलिक विश्लेषण का अन्तिम लक्ष्य असंख्य प्राकृतिक दृश्यों के मध्य एकता को दृष्टिगत करना है।” उन्होंने सभ्यता के विकास को मद्देनजर रखते हुए भूमध्यसागर के विस्तार के प्रभाव को पुष्ट करते हुए लिखा है कि, ‘सागरीय प्रभाव फोनेशियन लोगों (Phoenicians) की बढ़ती शक्ति का कारण था। तत्पश्चात् हेलेनिक (Hellenic) राष्ट्रों एवं साधारण विचारों का तीव्रता से विस्तार होने के क्षेत्र में भी इसका प्रभाव रहा, यूनानियों का सक्रिय जीवन विशेष रूप से आयोनियन (Ionians) लोगों द्वारा सामुद्रिक अभियान के लिए उत्पन्न रुचि ने भूमध्यसागरीय क्षेत्र को विकसित करने में एक सर्वसम्पन्न क्षेत्र प्रदान किया तथा इसके साथ–साथ दक्षिणी व पश्चिमी भागों में स्थिति महासागरों का भी विकास हुआ।”

सन् 1859 में कार्ल रिटर तथा हम्बोल्ट की मृत्यु हुई तथा इसी वर्ष चार्ल्स डार्विन की पुस्तक जीवों की उत्पत्ति (Origin of Species) प्रकाशित हुई जिसमें जीवों के विकास एवं पर्यावरण का घनिष्ठ सहसम्बन्ध बताया गया है। डार्विन के विचारों से प्रभावित होकर जर्मनी के प्रसिद्ध जीव विज्ञानी हीकल (Haeckel) ने मानव पर्यावरण सह–सम्बन्धों की दिशा में आधारभूत विचार व्यक्त करते हुए पर्यावरणीय तत्त्वों को महत्त्व प्रदान किया। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता डिमोलिन्स (Demolins) ने अपने ग्रन्थ ‘सामाजिक भूगोल’ में पर्यावरणीय शक्तियों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप में स्वीकार करते हुए समाज को पर्यावरण की उपज बताया। उनके अनुसार “समाज का

निर्माण पर्यावरण द्वारा होता है।" (Society is fashioned by Environment)

फ्रेडरिक लीप्ले (F-LePlay) (1806–1882) ने अपने सिद्धान्त स्थान–कार्य– लोग (Place&Work&Folk) के माध्यम से समाज पर पर्यावरण के प्रभावों को समझाया था जिसका अभिप्राय यह था कि किसी स्थान का वातावरण उस प्रदेश में किये जाने वाले कार्य के प्रकार को निश्चित करता है और कार्य के द्वारा सामाजिक संगठन निश्चित किया जाता है। विलियम मोरिस डेविस, एलन चर्चिल सेम्पुल तथा एल्सवर्थ हंटिंगटन नामक तीनों अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं ने पर्यावरणीय निश्चयवाद की संकल्पना को और अधिक सशक्त किया। प्रसिद्ध भू-आकृति विज्ञानी डेविस ने मानव को प्रकृति से संयोजित करने का प्रयास किया। इन्होंने मानव तत्त्वों पर भौतिक तत्त्वों का नियंत्रण एवं प्रभुत्व बताया।

निश्चयवाद की संकल्पना सन् 1911 में चरमोत्कर्ष पर पहुँची जब फ्रेडरिक रेटजेल की शिष्या अमेरिकन भूगोलविद् एलन चर्चिल सैम्पुल (1863–1932) ने अपनी पुस्तक **भौगोलिक वातावरण के प्रभाव** (Influences of Geographic Environment) का प्रकाशन किया। सैम्पुल ने रेटजेल के 'Anthropogeographie' नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित इस विचारधारा को मद्देनजर रखते हुए उपर्युक्त पुस्तक लिखी थी। सैम्पुल ने पूर्णरूप से मनुष्य पर वातावरण का नियंत्रण तथा प्रभाव बताते हुए लिखा है कि 'Man is the product of earth's surface. This means not merely that he is a child of earth, dust of her dust, but the earth has mothered him, fed him, set him tasks directed his thoughts, confronted him with difficulties that have strengthened his body and sharpened his wits, given him his problems of irrigation and navigation and the same time whispered hints for their solutions- She has entered into his bone and tissues into his mind and soul.'

अर्थात् मनुष्य पृथ्वी तल की उपज है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही नहीं है कि वह पृथ्वी का बच्चा है और उसकी धूल का कण है, वरन् यह भी है कि पृथ्वी माता ने उसका पालन–पोषण किया है, उसके लिए कर्तव्य निश्चित किये हैं, उसके विचारों को निश्चित दिशाओं की ओर मोड़ा है, उसके समक्ष ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं, जिनसे उसके शरीर को बल मिलता है और बुद्धि को तीव्रता। पृथ्वी ने उसको नौसंचालन और सिंचाई की समस्याएँ दी हैं और साथ ही साथ उसके कान में उन समस्याओं का हल भी बतला दिया है। वह उसकी हड्डी और माँस में तथा उसके मस्तिष्क और आत्मा में प्रविष्ट हो गई है।

सैम्पुल ने इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रकृति ने पर्वतों पर रहने वाले मनुष्यों को लोहे के पैर दिये हैं, जिनसे वह ढालों पर चढ़ता–उतरता है, समुद्री तट पर रहने वाले मनुष्यों को कमजोर और ढीले–ढाले पैर दिये हैं, परन्तु इसके बदले में उसके सीने एवं भुजाओं का विकास किया है जिनसे वह नावों की पतवार चलाता है। नदीघाटी के निवासियों को प्रकृति ने उपजाऊ मृदा से बाँध दिया है, वह उसके विचारों और आकांक्षाओं को शान्त और नीरस तथा कठिन कार्यों में जकड़ देती है। पवन प्रताड़ित पठारों पर रहने वाला मनुष्य अपने मवेशियों को एक चरागाह से दूसरे चरागाह में तथा एक नखलिस्तान (Oasis) से दूसरे नखलिस्तान (मरुद्यान) में ले जाता है। लम्बे–चौड़े वातावरण में रहने के कारण उसके विचारों में महान् सादगी आ जाती है। इस प्रकार सैम्पुल ने प्राकृतिक वातावरण का नियंत्रण मनुष्य के केवल भोजन, वस्त्र, मकान और आर्थिक उद्योग पर ही नहीं वरन् उसके विचारों, भावनाओं और धार्मिक विश्वासों पर भी बतलाया है। इस प्रकार सैम्पुल ने अपनी पुस्तक में प्राकृतिक वातावरण के विभिन्न तत्त्वों, जैसे भूमि की बनावट, नदियाँ, समुद्रों, जलवायु, मिट्टी, खनिज पदार्थ, वनस्पति, जन्तु जगत् आदि के प्रभावों को मनुष्य शरीर तथा क्रिया–कलापों, सामाजिक संगठन और संस्कृति पर स्पष्ट समझाया है।

कुमारी सैम्पुल के अनुसार, 'मनुष्य मोम या प्लास्टिक के पुतले के समान है, जिस पर पर्यावरण का पूर्ण प्रभाव पड़ता है तथा मनुष्य उसी के अनुसार अपने को अनुकूलित कर लेता है।

सैम्पुल ने नियतिवाद का पूर्णरूपेण समर्थन नहीं किया तथा मानवीय सूझ–बूझ एवं चेतना को भी स्थान–स्थान पर महत्त्व दिया है। उनके मतानुसार, प्रकृति मानव पर निरन्तर तथा निश्चयात्मक प्रभाव डालती है लेकिन इस कार्य में प्रकृति मनुष्य की तरह शोरगुल न कर मूक रहती है।

एल्सवर्थ हंटिंगटन (1876–1947) ने पर्यावरणवादी विचारधारा को संगठित करने का कार्य किया, उन्होंने सन् 1915 में लिखित अपनी पुस्तक 'सभ्यता एवं जलवायु' (Civilization and Climate) तथा सन् 1927 में 'मानव एवं आवास' (The Human and Habitat), 'संस्कृति के मुख्य स्रोत' (Main Springs of Civilization) में

प्राकृतिक वातावरण के मानव पर नियंत्रण को स्पष्ट किया। हंटिंगटन महोदय ने बताया कि प्राकृतिक शक्तियाँ मानवीय रहन-सहन, कार्यों तथा सांस्कृतिक तत्त्वों, जैसे – कला, साहित्य, धर्म, शिक्षा आदि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

पर्यावरणीय निश्चयवाद का 20वीं शताब्दी के आरम्भिक बीस वर्षों तक पर्याप्त प्रभाव रहा था, किन्तु इसके उपरान्त भूगोलवेत्ताओं द्वारा पर्यावरणवाद पर आक्षेप किया गया जिसके अनुसार पर्यावरण मानव को प्रभावित करता है, किन्तु मनुष्य भी पर्यावरण में परिवर्तन करता है। उन्होंने माना कि मानव पर्यावरण का दास न होकर उसका अपनी बौद्धिक क्षमता से उपयोग करता है। विभिन्न प्रकार की जलवायु में विभिन्न सभ्यताएँ विकसित हुई हैं जिनके विकास में मनुष्य की अहम् भूमिका रही है। अतः वर्तमान प्रौद्योगिक मानव के समक्ष वातावरण नियंत्रक न होकर प्रभावशील ही सिद्ध हो रहा है।

निश्चायवाद की आलोचना (Criticism of Determinism)

बीसवीं शताब्दी के मध्य में निश्चयवादी विचारधारा की मान्यता में कमी आयी तथा मानवीय क्रियाकलापों की भूमिका को महत्त्व मिलने लगा। ऐसा बीसवीं सदी के प्रथम दशक में रेटजेल तथा सेम्पुल द्वारा भी स्वीकार किया गया था तथा उन्होंने यह स्वीकार किया था कि मानव पर प्रकृति का पूर्ण नियन्त्रण न होकर प्रभाव है।

समान भौगोलिक दशाओं वाले पर्यावरण में मानव की भिन्न-भिन्न भूमिका से विभिन्न लक्षणों वाली संस्कृति विकसित होती है। उदाहरण के लिए टुण्ड्रा प्रदेश की समान भौतिक दशाओं में उत्तरी कनाडा तथा साइबेरिया स्थित हैं, लेकिन इन क्षेत्रों के निवासियों, एस्किमो, लेप्स, चुकची सैमोयेट्स आदि के क्रियाकलापों में काफी भिन्नता मिलती है। इस प्रकार एक ही पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के रहन-सहन के तरीके मिलते हैं। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगल ने कहा था कि, “मेरे सामने भौगोलिक नियतिवाद की बातें मत करो, क्योंकि जिस स्थान पर पूर्व में यूनानी लोग रहते थे वहाँ पर वर्तमान में तुर्क लोग रहते हैं तथा यही बात नियतिवाद का खण्डन करती है।

मानवीय क्रिया-कलापों के दृढ़ आधार को दृष्टिगत करने पर नियतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रकृति प्रदत्त शक्तिशाली विचार हास्यास्पद से लगते हैं। आज तक सम्पन्न मानवीय कार्यों को मात्र प्रकृति के संकेतों पर किये गये कार्य नहीं माना जा सकता है, वरन् इनमें मानवीय क्षमताओं का भी आभास होता है। रूसी वैज्ञानिकों ने उत्तरी सीमा पर उच्च अक्षांशों में गेहूँ उगा लिया है। उर्वरकों का प्रयोग करके प्रति एकड़ उपज दर में वृद्धि कर ली है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में इन्दिरा गाँधी नहर का विस्तार कर अनुपजाऊ भाग में सघन कृषि विकसित की है। स्वयं कट्टर नियतिवादी भी मानवीय प्रभुता को अस्वीकार नहीं कर सके।

डिमोलिन्स ने स्वीकार किया है कि मानवीय क्षमताएँ किसी स्थान को परिवर्तित करने में अपनी प्रमुख भूमिका रखती हैं, जिससे उस परिवर्तित स्थान का मूल प्रभाव स्वयं मानव पर समाप्त हो जाता है। किरचॉफ ने प्रकृति और पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध तथा किसी स्थान पर मानवीय उन्नति की तरफ उन्मुख होती दौड़ से प्रभावित होकर कहा है कि, मानव ऐसी मशीन नहीं है, जिसकी स्वयं की कोई अभिलाषा है। उसके जन्म स्थान की परिस्थितियाँ यदाकदा उसे एक नियंत्रित (अधीन) एवं उदासीनता लिए हुए शिष्य के सदृश्य पाती हैं।

प्राचीन समय में विकसित निश्चयवाद पूर्णरूपेण प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभावों की अमिट एवं पूर्ण स्थिति पुष्ट करता है, जिसमें मानवीय इच्छा अनुपस्थित है। जबकि सभी विद्वान् मानवीय स्वेच्छा (Freedom of Choice and Selection) को भौतिक शक्तियों के नियन्त्रण से बाहर मानते हैं। जैसा कि ऊपर किरचॉफ ने स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा कि प्रकृति मानव के समक्ष अनेक परिस्थितियाँ प्रस्तुत करती हैं, जिनमें अनेक अनुकूल तथा अनेक प्रतिकूल होती हैं। मानव अपनी असीम क्षमता तथा स्वेच्छा से अपनी विचारधारा के अनुसार उनका उपयोग करता है, जिसमें वह अपने में निहित महत्वाकांक्षाओं की भी सहायता लेता है।

सम्भववाद (Possibilism)

निश्चयवाद की विचारधारा के अन्तर्गत यह अनुभव किया गया कि मनुष्य की क्षमताओं को पर्यावरणीय शक्तियाँ नियंत्रित नहीं कर सकतीं वरन् मात्र प्रभाव डाल सकती हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार पर्यावरण के द्वारा कुछ सम्भावनायें (Possibilities) प्रस्तुत की जाती हैं और मनुष्य अपनी छॉट (Choice) के द्वारा उनका उपयोग कर सकता है। सम्भववाद की विचारधारा का जन्म और विकास फ्रांस में हुआ था। इसके जन्मदाता

विडाल डी ला ब्लाश थे। सम्भववाद शब्द का सबसे पहले प्रयोग ला फेब्रे ने किया।

फेब्रे ने बताया कि प्राकृतिक पर्यावरण सर्वत्र अनेक सम्भावनाओं वाला क्षेत्र है, जिनमें मानव अपनी स्वेच्छा एवं क्षमतानुसार चयन करता है। जब यूरोप के निवासी संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू इंग्लैण्ड राज्य में जाकर बसे थे, तो वहाँ के पर्यावरण से उन्होंने सम्भावनाएँ तलाशी तथा इस आधार पर कुछ लोग वन काटने लगे, कुछ मत्स्य व्यवसाय करने लगे तथा कुछ कृषि कार्य में संलग्न हो गये।

फेब्रे महोदय ने अपनी पुस्तक 'इतिहास की भौगोलिक प्रस्तावना' में लिखा है कि मानव एक भौगोलिक अभिकर्ता है, पशु नहीं है। वह सर्वत्र पृथ्वी की रचना की विवेचना में उन परिवर्तनशील भौगोलिक अभिव्यक्तियों के समन्वय तलाशने में योग देता है, जिनका अध्ययन करना भूगोल का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

उनके अनुसार प्राकृतिक वातावरण की अपेक्षा मनुष्य के कार्यों को प्राथमिक स्थान दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि मानव प्रकृति द्वारा प्रस्तुत की गई सम्भावनाओं का स्वामी होता है तथा उनके प्रयोग का निर्णायक होता है। सम्भावनाओं के उपयोग से स्थिति में जो परिवर्तन होता है, उससे मानव को, मात्र मानव को ही प्रथम स्थान प्राप्त होता है। पृथ्वी की जलवायु या विभिन्न स्थानों की परिस्थितियों को वह कभी नहीं मिल सकता है। सम्भववाद किसी निश्चित स्थान तथा प्रकृति में प्रत्येक चरण पर सम्भावना के दर्शन पर आधारित है।

उनके अनुसार मानव का पर्यावरण में वही महत्त्व है जो अन्य तत्वों, जैसे— जलवायु, वनस्पति, मृदा आदि का होता है। मनुष्य सर्वत्र विद्यमान सम्भावनाओं का स्वामी है, जिनसे वह अपनी आवश्यक सम्भावना का चयन अपनी कुशाग्र बुद्धि से करता है।

सम्भववादी विचारधारा के जनक ब्लाश, (Vidal de la Blache) ने अपनी पुस्तक 'मानव भूगोल के सिद्धान्त' (Principles of Human Geography, 1922) में मानव पर्यावरण सम्बन्धों में सम्भववादी विचारधारा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। उनके अनुसार प्रकृति मात्र एक परामर्शदात्री के रूप में है। (Nature is never more than an adviser) मनुष्य प्रकृति के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। वह प्रकृति में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक अनुकूलन करके परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। पर्यावरणीय कारक मानव को प्रभावित नहीं करते वरन् मानव द्वारा सामंजस्य के दौरान स्वयं परिवर्तित होते रहते हैं। ब्लाश ने मानवीय शक्ति, ज्ञान, कौशल तथा बौद्धिकता को मद्देनजर रखते हुए पर्यावरणीय नियंत्रण के स्थान पर मात्र प्रभाव माना है, जिससे मानवीय क्रियायें अवरुद्ध नहीं होती हैं। ब्लाश मानव को एक ऐसा भौगोलिक कारक मानता है, जो कर्मप्रधान (Active) और कृतप्रदान (Passive) दोनों ही हैं। मानवीय क्रिया पृथ्वी के सजीव एवं निर्जीव दोनों तथ्यों में परिवर्तन करती है। डेविस के शिष्य ईसा बोमेन ने भौगोलिक अध्ययन में गहराई पर प्रविष्ट सम्भववादी जड़ों को अधिक महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार जैसे-जैसे ज्ञान और विज्ञान का विकास और विस्तार होता है, प्राकृतिक वातावरण तथा संसाधनों के उपयोग का स्वरूप एवं मात्रा बढ़ती है।

ब्लाश ने मानवीय कार्यों की सराहना करते हुए कहा है कि पेड़-पौधों को मूलस्थान से जाकर विश्व के अन्य भागों में विसरित करने का प्रमुख कार्य मनुष्य का ही है। इस प्रकार मनुष्य ने प्राकृतिक दृश्यभूमि को परिवर्तित किया है। ब्लाश प्रकृति में व्याप्त पार्थिव एकता में विश्वास करते थे। उन्होंने लिखा है कि, समस्त भौगोलिक विकास में पार्थिव एकता एक प्रबल विचारधारा है।

ब्लाश के शिष्य जीन ब्रूश (Jean Brunhes) भी सम्भववाद के समर्थक थे, वे मानते थे कि मनुष्य अपने वातावरण के प्रभाव को चुपचाप सहन नहीं करता, वरन् उसे परिवर्तित करने में क्रियाशील रहता है। पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए कोई भी वस्तु इतनी परम सीमित नहीं है कि उसमें छॉट की सम्भावना न हो। प्राकृतिक वातावरण द्वारा कुछ सीमायें निर्धारित की जाती हैं, और मनुष्य यद्यपि इन सीमाओं को लाँघ तो नहीं सकता, तथापि उसमें परिवर्तन अवश्य कर सकता है। इस परिवर्तन से मनुष्य इन प्राकृतिक तथ्यों को अपने उपयोग योग्य बनाता है। अतः ब्रूस महोदय ने पर्यावरण की सीमाओं को स्वीकारते हुए मानव क्षमता को महत्त्व देते हुए पर्यावरण को एक सीमाकारी तथा अवरोधक शक्ति माना है न कि नियंत्रणकारी।

उन्होंने लिखा है कि, "मानव पूर्णरूपेण अकर्मण्य तभी होता है, जब भौतिक विश्व उसे निष्प्राणित कर देता है, वास्तव में जब तक वह जीवित रहता है तब तक क्रिया-प्रतिक्रिया करता रहता है।" उनके अनुसार मनुष्य वातावरण का उपयोग करते समय अपनी छॉट के अनुसार पर्यावरण के अनेक प्रभावों की अवहेलना कर सकता है।

परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है तथा पृथ्वी तल पर प्रत्येक क्षण हर वस्तु किसी न किसी रूप में बदलती रहती है। इस परिवर्तन में मानव की प्रमुख भूमिका रहती है। वह भौतिक तथा सांस्कृतिक भू-दृश्यों के रूप, अवस्था तथा स्थिति को प्रभावित करता है। लेकिन ब्लाश तथा ब्रूश दोनों ने कभी भी सम्भववादी विचारधारा के प्रति कट्टरवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया। ब्रूश ने इस सन्दर्भ में मानव भूगोल को प्राकृतिक तथा मानवीय शक्तियों का सामंजस्य स्थल बताया है (Human Geography is a Field of Compromise)।

अमेरिकन भूगोलवेत्ता ईसा बोमेन (Isaiah Bowman) ने सम्भववाद को स्वीकार करते हुए यह बताया कि मानवीय विकास भौतिक वातावरण द्वारा नियंत्रित न होकर केवल प्रभावित होता है। प्रकृति केवल मानव के समक्ष परिस्थितियाँ प्रस्तुत करती हैं जिनका प्रयोग करके विकास करता है। उन्होंने मानवीय क्षमताओं को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, मनुष्य दक्षिणी ध्रुव पर सुविधाजनक एवं प्रकाशमय नगर की स्थापना कर सकता है और शिक्षा, रंगमंच तथा खेलकूद आदि की व्यवस्था कर सकता है। पनामा जैसी नहर बना सकता है, सहारा जैसे मरुस्थल में कृत्रिम पर्वत का निर्माण कर वर्षा अनुकूल परिस्थितियाँ उपस्थित कर सकता है।

बोमेन ने स्पष्ट किया कि मानवीय चिन्तन तथा विचारधारा का मानव सभ्यता के विकास तथा अवनति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, क्योंकि प्राकृतिक परिवेश कभी भी किसी सभ्यता को पूर्णरूपेण नष्ट नहीं कर सकता है। वे तो मनुष्य द्वारा ही अपनाई तथा छोड़ी जाती हैं। उन्होंने आगे लिखा है कि प्राकृतिक परिवेश मानव समाज के स्वरूप तथा स्वभाव को निर्धारित नहीं करता, उसके द्वारा तो कुछ सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं जिनमें कार्यरत रहते हुए मानव द्वारा निरन्तर नवीन प्राकृतिक तथ्य खोजे जाते हैं, तथा प्राचीन तथ्यों को कौशल तथा सामाजिक क्रियाओं के विकास द्वारा नवीन महत्त्व मिलता रहता है।

अमेरिकन भूगोलवेत्ता कार्ल सावर ने सन् 1947 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सांस्कृतिक भूगोल' (Cultural Geography) में सम्भववाद का समर्थन करते हुए निश्चयवादी विचारधारा के सम्बन्ध में कहा है कि "निश्चयवादी नियन्त्रण के स्थान पर प्रभाव तथा प्रभाव के स्थान पर अनुक्रिया या समायोजन शब्द का प्रयोग करने लगे हैं।"

डिमांजियो (Demangeon) ने मानव शक्ति को सर्वोपरि मानते हुए बताया कि मानव द्वारा वातावरण के परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं। उनके अनुसार मानव ने संचार के साधनों के द्वारा, पातालतोड़ कुओं तथा नदियों के नियंत्रण द्वारा, मानवीय भोजन के लिए नये पौधों के विकास द्वारा वातावरण में परिवर्तन किये हैं।

इस प्रकार सम्भववाद निश्चयवाद के विपरीत विकसित होने वाली विचारधारा थी, जिसमें मानव को पर्यावरण से सर्वोच्च रूप में वर्णित किया गया तथा उसे पर्यावरण में अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने वाला महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक माना है।

सम्भववाद की आलोचना (Criticism of Possibilities)

सम्भववादी विचारकों ने प्रकृति पर प्रत्यक्ष प्रहार किया जिस कारण उन्हें अनेक स्थानों पर आलोचना का शिकार होना पड़ा। सम्भववाद के कट्टर समर्थक ला फेब्रे ने भी पर्यावरणीय शक्तियों को स्वीकार कर लिया था। वे लिखते हैं कि, "मनुष्य अपने पर्यावरण के प्रभावों से कभी भी पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं रह सकता।" (Man can never entirely rid themselves whatever they do of the hold their environment has on them) सम्भववादी प्राकृतिक शक्तियों को नगण्य समझ लिया था लेकिन कुमारी सैम्पुल का कथन इस सन्दर्भ में उपर्युक्त सिद्ध होता है कि, "मनुष्य अपने विषय का कोलाहल करता है। जबकि प्रकृति अपना कार्य मौन रहकर करती है।" लेकिन वर्तमान समय में प्रकृति भी मानवीय क्रियाकलापों को सहन करने की सीमा लांघ चुकी है, अतः ये प्रभाव बड़ी आवाज के साथ प्रकट हो रहे हैं।

विभिन्न सम्भववादी विचारकों ने इस कथन का पुरजोर समर्थन किया है कि, "मानव एक महान् शक्ति है, जिससे वह प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकता है।" इस सन्दर्भ में प्रमुख सम्भववादी विचारक ब्रुंस ने कहा है कि क्योंकि मानव पृथ्वी पर निवास करता है, वह पृथ्वी पर निर्भर करता है। (Because man lives on the earth he depends on the earth)। इस प्रकार स्वयं सम्भववादी विचारकों ने ही यह स्वीकार कर लिया कि मानवीय क्रियाकलापों पर प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है, जिसको मद्देनजर रखते हुए ही मानव विकास करता है। अतः स्पष्ट है कि न तो प्राकृतिक शक्तियाँ ही सर्वप्रभावी हैं तथा न ही मानव प्रकृति का विजेता। दोनों के आपसी सम्बन्ध परस्पर सामंजस्य पर आधारित हैं तथा भूगोल का मूल उद्देश्य प्राकृतिक तथा मानवीय शक्तियों में

सामंजस्य स्थापित करना है। इस सम्बन्ध में श्राडर (Schrader) महोदय ने अपनी पुस्तक 'The Foundations of Geography in Twentieth Century' में लिखा है कि, "विज्ञान का आदर्श समन्वयवादी होना चाहिए, न कि दबाव वाला। मानव भूगोल का नारा न तो प्रकृति की विजय है और न ही उसकी अधीनता वरन् उसके साथ सहयोग होना चाहिए।"

नव-निश्चयवाद (Neo-Determinism)

वातावरण निश्चयवाद एवं सम्भववाद की विभिन्न दृष्टिकोण वाली विचारधाराओं के मध्य सामंजस्य स्वरूप नव-निश्चयवाद (Neo-Determinism) का विकास हुआ है, जिसे ग्रिफिथ टेलर ने 'Present day determinism' Neo & Determinism तथा Stop and Go Determinism आदि नामों से सम्बोधित किया है। वर्तमान समय में भूगोलवेत्ता इसी विचारधारा को मानते हैं अर्थात् वर्तमान में न तो कठोर वातावरणवाद (Crude Determinism) को पूरी मान्यता है और ना ही अरूप सम्भववाद (Formless Possibilism) को ही। इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए प्रो. ग्रिफिथ टेलर ने अपनी पुस्तक 'Geography in Twentieth Century' में बताया कि वातावरण के नियन्त्रण की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। प्रकृति किसी सीमा तक मानव के लिए योजना निर्धारित करती है तथा उस योजना का कार्यान्वयन मानव द्वारा होता है। प्रकृति का मनुष्य पर पूर्ण नियन्त्रण न होते हुए भी प्रभाव अवश्य है। मानव प्रकृति की सीमाओं की परिधि में ही तकनीकी द्वारा आर्थिक व सांस्कृतिक उन्नति करता है। मानव एवं प्रकृति का पारस्परिक क्रियात्मक सम्बन्ध होता है। अर्थात् प्रकृति का न तो मानव पर पूर्ण नियन्त्रण है और न ही मानव प्रकृति का विजेता है, किन्तु मानव को अपने आर्थिक सांस्कृतिक विकास के लिए प्रकृति के सहयोग की नितान्त आवश्यकता होती है। टेलर इसे ही नव-नियतिवाद कहता है, जिसमें मध्यवर्ती मार्ग अपनाया गया है। उन्होंने आगे इसे रुको एवं जाओ निश्चयवाद (Stop and Go Determinism) बताते हुए कहा कि प्रकृति कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करती है तथा शेष सब कुछ मनुष्य द्वारा निर्धारित होता है। यदि मनुष्य विवेकशील है तो उस वातावरण के अनुसार कार्य करेगा जिसमें सफलता मिलती है लेकिन वातावरण के विरुद्ध चलकर मनुष्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है। इस प्रकार टेलर ने नव निश्चयवाद को वैज्ञानिक निश्चयवाद (Scientific Determinism) भी कहा है, जिसमें मानवीय चयन का विचार प्रत्येक दशा में निहित है।

टेलर ने मानव द्वारा प्रगति के लिए प्रकृति का सहयोग प्राप्त करने का समर्थन किया – तथा बताया कि मानव भी प्रकृति को चुपचाप सहन न करके प्रकृति पर प्रभाव छोड़ता है। टेलर के अनुसार, मानव किसी देश के विकास की गति को तीव्र व मन्द या अवरुद्ध करने की योग्यता रखता है, लेकिन यदि वह बुद्धिमान है, तो उसे प्राकृतिक वातावरण के निर्देशों की अनुपालन के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। वह किसी बड़े शहर के यातायात नियन्त्रक की भाँति है, जो गति को परिवर्तित तो कर सकता है। लेकिन प्रगति की दिशा को नहीं और यह वाक्यांश रुको और जाओ निश्चयवाद लेखक के भौगोलिक दर्शन को अभिव्यक्त करता है।

टेलर ने कहा है कि वातावरण के द्वारा किये जाने वाले प्रमुख नियन्त्रणों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है तथा उदाहरण देकर समझाया कि कनाडा एवं साइबेरिया के सुदूर फैले टुण्ड्रा प्रदेशों में, सहारा तथा आस्ट्रेलिया के निर्जन मरुस्थलों में, अण्टार्कटिका के हिमावरित महाद्वीप में मानव को प्रकृति की आज्ञा माननी पड़ती है तथा ये प्रदेश बहुत-सी शताब्दियों तक आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रहेंगे। यद्यपि प्रकृति का मानव पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं किन्तु प्रभाव अवश्य है तथा मानव प्रकृति की सीमाओं के अन्दर तकनीकी की सहायता से आर्थिक सांस्कृतिक विकास कर सकता है। इस प्रकार प्रकृति एवं मानव के परस्पर क्रियात्मक सम्बन्ध हैं। मानव उन्नति के लिए प्रकृति का सहयोग प्राप्त करे। इसमें मानवीय छॉट (Human Choice) का महत्त्व प्रत्येक दशा में निहित होता है। जी. टेथम ने नव-निश्चयवाद को व्यावहारिक सम्भववाद (Pragmatic Possibilism) की संज्ञा दी है। ब्रिटिश भूगोलवेत्ता वूलरिज भी इस सम्बन्ध में टेलर के विचारों का समर्थन करता है। उन्होंने कहा कि भूगोल में निश्चयवाद किसी सीमा तक रहना अनिवार्य है, क्योंकि "यह सत्य है कि मानव एवं भू-तल की प्रक्रियायें पारस्परिक होती हैं।" (Reaction of Man and Land are mutual, this is evidently true)

आधुनिक भूगोल की ये प्रवृत्तियाँ

(1) परिमाणीकरण की प्रवृत्ति—

भौगोलिक आँकड़ों का आवश्यकतानुसार सांख्यिकीय विधियों द्वारा परिमाणीकरण करके विश्लेषण किया

जाने लगा है। इसका उपयोग सन् 1960 के दशक में ब्रिटेन में पीटर हैगेट तथा चोर्ले ने व अमेरिका में बी.जे.एल. बेरी ने सर्वप्रथम किया। इसके अन्तर्गत धरातल, मृदा, जलवायु, जनसंख्या, खनिज संसाधन आदि का सांख्यिकीय आँकड़ों द्वारा मापांकन किया जाने लगा। भू-दृश्यों को मापने में ढाल विश्लेषण (Slope Analysis) में भू-आकृति मापन में औद्योगिक उत्पादन तथा व्यापार आदि के आकलनों में भी सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग बढ़ गया।

(2) क्षेत्रों का समाकलित अध्ययन—

पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के संसाधनों के मूल्यांकन के लिए जिस प्रकार भू-वैज्ञानिक, मृदा वैज्ञानिक व वनस्पति विज्ञानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार क्षेत्रों के समाकलित अध्ययन हेतु एक भूगोलवेत्ता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस प्रकार वनस्पति वितरण सम्बन्धी अध्ययन को पादप भूगोल (Plant Geography), तथा जन्तुओं के भौगोलिक अध्ययन को जन्तु या प्राणी भूगोल (Zoo-Geography) में राजनैतिक परिदृश्य का भौगोलिक अध्ययन राजनीतिक भूगोल में किया जाने लगा तथा इसी प्रकार अन्य शाखाएँ विकसित हुईं। भूगोल की उपरोक्त सभी शाखाओं का उद्देश्य प्राकृतिक व मानवीय वातावरण का अध्ययन, वितरण की समानता व असमानता का अध्ययन करना, भौगोलिक कारकों तथा प्रभावों का अध्ययन करके भावी विकास की योजनाएँ प्रस्तावित करना है।

(3) क्षेत्रीय भिन्नताएँ—

क्षेत्रीय भिन्नताओं का सर्वप्रथम अध्ययन सन् 1925 में कार्ल सावर ने किया था लेकिन वास्तविक विकास हेटनर, रिचथोफेन तथा रिचार्ड हार्टशोर्न ने किया। हार्टशोर्न का विचार था कि भूगोल में प्राकृतिक वातावरण की क्षेत्रीय भिन्नताओं के कारण मानवीय व्यवसायों तथा उद्योगों में भिन्नता आती है। अतः इन भिन्नताओं को भूगोल विषय में सम्मिलित कर अध्ययन किया जाने लगा।

(4) समाकलित अन्तर्वैज्ञानिक विषय—

वर्तमान में यह माना जा रहा है कि भूगोल विभिन्न वैज्ञानिक विषयों को जोड़ने वाली कड़ी है तथा भूगोल के विषय क्षेत्र में उन सभी परिघटनाओं का अध्ययन करना चाहिए जो धरातल पर वितरित हैं।

(5) अनुप्रयुक्त भूगोल का विकास—

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अनुप्रयुक्त (व्यावहारिक) भूगोल का विकास तीव्र गति से हुआ है। इसमें पृथ्वी तल पर किसी क्षेत्र के मानव वातावरण की परस्पर अन्तर्क्रियाओं को समझकर उनकी व्याख्या की जाती है, तत्पश्चात् उस क्षेत्र में मानव कल्याण के लिए सुसमाकलित दृश्य भूमि का विकास करने के लिए मानव द्वारा किये गये ज्ञानपूर्वक सुदिष्ट प्रयत्नों का अध्ययन किया जाता है। व्यावहारिक भूगोल में सर्वेक्षण तथा विश्लेषण की विधियों द्वारा मानव-पर्यावरण की अन्योन्य क्रियाओं से सम्बन्धित समस्याओं को समझने तथा हल करने का प्रयास किया जाता है।

(6) प्रादेशीकरण—

भौगोलिक अध्ययनों का उद्देश्य किसी वृहद् या लघु प्रदेश की क्षेत्रीय भिन्नताओं के आधार पर प्रादेशीकरण करना होता है जैसे—कृषि भूगोल में एक फसली, दो फसली क्षेत्र निर्धारित करना या उत्पादकता के आधार पर लघु प्रदेश बनाना।

(7) मानचित्र विज्ञान—

वर्तमान समय में नवीन तकनीकों के द्वारा भूगोल के विभिन्न तत्त्वों के मानचित्रण, वस्तुमान चित्रण आदि की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

(8) गणितीय मॉडल —

भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति के साथ ही गणितीय मॉडल तथा सूत्रों का प्रयोग होने लगा। मॉडल के द्वारा क्षेत्र की प्रस्तावित योजनाओं का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है। इनके उपयोग द्वारा योजनाबद्ध विकास में सहायता मिलती है। किन्तु भौगोलिक कारकों के सदैव परिवर्तनशील होने से

उनकी प्रतिक्रियाएँ इतनी जटिल हैं कि सूत्रों तथा मॉडल के आधार पर की गई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती तथापि इनका प्रयोग सीमित क्षेत्रों में किया जाता है ।

(9) वायुफोटो चित्रों को प्रयोग—

वायुयानों से निश्चित ऊँचाई से निश्चित मापक पर फोटो लिये जाते हैं, जिनमें उस क्षेत्र के धरातल, मृदा, जल संसाधन, कृषि, यातायात तथा नगरों का भौगोलिक चित्रण होता है। इनकी सहायता से महासागरीय तथा महाद्वीपीय भागों का विस्तृत सर्वेक्षण तथा मानचित्रण विभिन्न मापनियों पर किया जा सकता है।

वर्तमान समय में भूगोल में विशेषीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिसके तहत भूगोल की स्वतंत्र शाखाओं का विकास हो रहा है, जैसे— नगरीय भूगोल, जलसंसाधन भूगोल आदि । क्षेत्र अध्ययन में नवीन यंत्रों, जैसे—सीस्मोग्राफ, थर्मोग्राफ, ध्वनि यंत्र आदि को सम्मिलित किया जा रहा है। फ्रीमेन (T-W- Freeman) ' ने भूगोल के बदलते हुए स्वरूप का वाल्टर फ्रीमेन उल्लेख करते हुए सन् 1861 से 1961 तक के 100 वर्षों में हुए भूगोल के विकास का अपनी पुस्तक भूगोल के सौ वर्ष (A Hundred Years of Geography) में उल्लेख किया है, जो सम्पूर्ण विकास की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं—

1. ज्ञानकोशीय प्रवृत्ति (Encyclopaedic Trend)
2. शैक्षणिक प्रवृत्ति (Educational Trend)
3. औपनिवेशिक प्रवृत्ति (Colonial Trend)
4. सामान्यीकरण प्रवृत्ति (Generalization Trend)
5. राजनैतिक प्रवृत्ति (Political Trend)
6. विशेषीकरण प्रवृत्ति (Specialization Trend)

1. ज्ञानकोशीय प्रवृत्ति (Encyclopaedic Trend)

विभिन्न यात्राओं के द्वारा भौगोलिक तथ्यों का अभिलेखन कर अधिकाधिक भौगोलिक ज्ञान का संचय करने की प्रवृत्ति ज्ञानकोशीय प्रवृत्ति थी ।

अनेक विद्वानों, जैसे—मार्कोपोलो ने जापान, चीन जैसे दूर स्थित देशों का भ्रमण किया तथा वहाँ के भौगोलिक तथ्यों का ज्ञान कराया। लिविंगस्टोन, स्टेनले ने अफ्रीका का भ्रमण कर वहाँ के विभिन्न भौगोलिक तथ्यों का वर्णन किया। मेकिण्डर सन् 1899 में अफ्रीका के कीनिया पर्वत पर चढ़कर वहाँ चढ़ने का अभियान पूरा किया। विभिन्न भ्रमणशील विद्वानों ने अपने यात्रा क्षेत्रों के रहन—सहन, खान—पान, वेशभूषा, जीवन—निर्वाह के विभिन्न साधनों आदि का विस्तृत एवं वास्तविक वर्णन किया। उस काल में उस व्यक्ति को ही भूगोलवेत्ता माना जाता था जो लम्बी—लम्बी यात्राएँ करता था तथा यात्रा क्षेत्रों का ज्ञान करता था ।

2. शिक्षा प्रवृत्ति (Educational Trend)

विभिन्न स्कूलों और कॉलेजों में अध्ययनरत छात्रों को भौगोलिक अध्ययन कराने की प्रवृत्ति, शिक्षा प्रवृत्ति थी। सर्वप्रथम जर्मन स्कूल में तत्पश्चात् फ्रांस के स्कूलों और कॉलेजों में भौगोलिक अध्ययन कराने की प्रवृत्ति प्रारम्भ की गई। सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी में बर्लिन विश्वविद्यालय में रिटर को भूगोल का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। रेटजेल ने जर्मनी के स्टटगार्ट में भूगोल की शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया। सन् 1893 में जर्मनी के प्रत्येक स्कूलों में भूगोल की शिक्षा का अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया गया। फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों की स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में भी भूगोल की शिक्षा दी जाने लगी। भूगोल के विद्यार्थियों को मानचित्रों के निर्माण का कार्य करवाया जाता था तथा आसपास के क्षेत्रों का भ्रमण करवाकर तथ्यात्मक अध्ययन करवाया जाता था।

3. औपनिवेशिक प्रवृत्ति (Colonial Trend)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय में यूरोपीय राष्ट्रों की प्रवृत्ति अफ्रीका के उपनिवेशित देशों की ओर

बढ़ने लगी। उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप विभिन्न उपनिवेशित देशों का क्षेत्रीय भूगोल लिखा जाने लगा। कई विकसित देशों ने अपने बिना बसे क्षेत्रों का विभिन्न विद्वानों के द्वारा अन्वेषण करवाया था।

4. सामान्यीकरण प्रवृत्ति (Generalization Trend)

भौगोलिक अध्ययन में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जनसंख्या वितरण, मौसम, वनस्पति, कृषि की फसलों के वितरण, जलवायु, वनस्पति आदि के अध्ययन को विशिष्टता से समावेशित किया गया। हरबर्टसन, मेकिन्डर, हंटिंगटन आदि विद्वानों ने भौतिक प्रदेशों तथा मानवीय क्रियाओं के आपसी सम्बन्धों एवं प्रक्रियाओं के आधार पर प्रदेशों के सीमांकन के सम्बन्ध में उत्कर्ष कार्य किये।

5. राजनीतिक प्रवृत्ति (Political Trend)

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् विभिन्न भूगोलवेत्ताओं के द्वारा राजनीतिक भूगोल के विकास की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा। इस प्रवृत्ति के विकास का श्रेय रेटजेल तथा मेकिन्डर को जाता है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रादेशिक भूगोल के विपरीत विभिन्न देशों का अध्ययन कराया जाने लगा। इसा बोमेन द्वारा रचित पुस्तक नया संसार सन् 1921 में प्रकाशित हुई और शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गई, क्योंकि राजनीतिक प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों में दूसरे देशों के अध्ययन के प्रति रुचि अधिक बढ़ गई थी।

6. विशेषीकरण प्रवृत्ति (Specialization Trend)

वर्तमान काल में भूगोल का अध्ययन विशेषीकरण प्रवृत्ति के अनुसार ही किया जा रहा है। अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं द्वारा लिखित पुस्तक अमेरिकन भूगोल – सूची तथा सर्वेक्षण विशेषीकरण प्रवृत्ति का ही एक उप-विषय है। वर्तमान में भौगोलिक अध्ययन में बस्तियाँ, नगर, संसाधन, बाजार, मनोरंजन, निर्माण, चिकित्सा, सैन्य भूगोल आदि उप-विषयों के अध्ययन पर अधिकाधिक बल दिया जाता है। प्रादेशिक, ऐतिहासिक भूगोल आदि के अध्ययन में सम्पूर्ण क्षेत्र व प्राचीन से वर्तमान काल तक सम्पूर्ण अध्ययन के बजाय किसी क्षेत्र विशेष का एक समय विशेष में अध्ययन करने पर अधिकाधिक बल दिया जाता है।

वर्तमान में किसी प्रदेश के प्रादेशिक अध्ययन में सम्पूर्ण प्राकृतिक सांस्कृतिक कारकों का एक साथ अध्ययन न करके किसी तत्त्व विशेष, जैसे—जलवायु या भू-आकृति अथवा जनसंख्या आदि तत्त्व विशेष के अध्ययन को महत्त्व दिया जाता है। अतः वर्तमान में भूगोल के अध्ययन में विशेषीकरण प्रवृत्ति पर भूगोलवेत्ताओं द्वारा अधिक बल दिया जाता है।

सारांश (Summary)–

मानव पर्यावरण सम्बन्धों का स्पष्ट करने वाले विचार मानव व पर्यावरण के बीच एक प्रकार का द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। जिसमें विभिन्न विद्वानों ने मानव एवं पर्यावरण को लेकर अलग-अलग मत प्रस्तुत किए। प्राचीन काल से ही मानव ने प्रकृति को सर्वोपरी माना है। मानव ने प्रकृति के उदारता को भी उदाहरण दिये हैं एवं प्रकृति के नियमों का पालन भी किया। निश्चयवाद के समर्थक विद्वानों पर उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव रहा। उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान में शिक्षा प्राप्त की है। इतिहास प्रशिक्षित विद्वान जिनमें फ्रांसीसी विद्वानों का नाम सर्वोपरे रहा है। उन्होंने पर्यावरणीय शक्तियों को धीरे-धीरे नकारना शुरू कर दिया। सम्भववादियों द्वारा नियतिवादियों द्वारा दिए गए कथन मनुष्य प्रकृति का दास है इसको नकार दिया। इसके साथ ही 16वीं सदी के अवसान काल में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने मानवीय क्षमताओं को उजागर करना प्रारम्भ कर दिया तथा सम्भववादियों ने नियतिवादियों के विपरीत अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि वातावरण कुछ सीमाएं व सम्भावनाएं प्रस्तुत करती है। जिनके आधार पर मानव अपने विकास का मार्ग सुनिश्चित करता है। वर्ष 1920 में ग्रीफिथ टेलर ने नियतिवाद व सम्भववाद के बीच द्वन्द्व को तोड़ते हुए एक नवीन विचार नव-नियतिवाद प्रस्तुत किया तथा बताया न तो मनुष्य प्रकृति का दास है और नही मनुष्य प्रकृति का स्वामी है दोनों में पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया और पारस्परिक सामंजस्य की स्थिति पाई जाती है। अतः नव-नियतिवाद की संकल्पना अपेक्षाकृत ज्यादा व्यावहारिक, वैज्ञानिक व लोकप्रिय है। जिसने प्रकृति और मानव को एक-दूसरे का शत्रु न मानकर अपितु पूरक माना गया है। इस प्रकार प्राचीन काल में मानव वातावरण सम्बन्धों में प्रधानता नहीं है जो 19वीं सदी तक आते-आते इसे जर्मन भूगोलवेत्ताओं द्वारा गहनता से लिया

गया। इसके बाद सन 1935 तक फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं द्वारा मानवीय पक्षों को प्रधानता दी गई। इसके उपरान्त अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं द्वारा दोनों पक्षों में समन्वय स्थापित किया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भूगोल में अभिनव प्रवृत्तियां विकसित की गई जिसके तहत भौगोलिक अध्ययन में मात्रात्मक विधियों व सैद्धान्तिक दृष्टिकोण अपनाया गया। सावर ने क्षेत्रीय अध्ययन पर जोर दिया। इस प्रकार अभिनव प्रवृत्तियों से भूगोल में द्वन्द की स्थिति हुई।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

नियतिवाद— मनुष्य प्रकृति का दास है।

सम्भववाद— मनुष्य वातावरण द्वारा प्रदत्त सीमाओं और सम्भावनाओं का उपयोग अपने विकास में कर सकता है।

नव नियतिवाद— मध्यमवर्गीय विचार जो पारस्परिक सामंजस्य की बात करता है।

4.9— बोध प्रश्न

3.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— निश्चयवादी विचारधारा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न-02— फ्रांस में विकसित सम्भववादी विचार को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-03— नव-निश्चयवादी विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-04— भूगोल में अभिनव प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

4.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— निश्चयवाद क्या है?

प्रश्न-02— निश्चयवाद के विकास में योगदान देने वाले प्रथम विद्वान

प्रश्न-03— निश्चयवाद के समर्थक फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता कौन-कौन है।

प्रश्न-04— सम्भववाद के जनक किसे कहते हैं।

प्रश्न-05— 20वीं शताब्दी में भूगोल पुस्तक के लेखक कौन है।

प्रश्न-06— क्षेत्रीय विभिन्नता किसे कहते हैं।

4.7.3 बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— ब्रिटिश भूगोलवेत्ता जिसने निश्चयवाद का समर्थन कियां

(क) ब्लांश

(ख) सेम्पुल

(ग) बकल

(घ) हम्बोल्ट

प्रश्न-02— सम्भववाद किसने दिया?

(क) फेब्र

(ख) ब्लांश

(ग) डिमांजिया

(घ) हम्बोल्ट

प्रश्न-03— नव-निश्चयवादी विचार किसकी देन है?

(क) ब्लांश

(ख) टेलर

(ग) हम्बोल्ट

(घ) रीटर

प्रश्न-04— निश्चयवाद व सम्भववाद के मध्य समन्वय स्थापित करने में किस देश के भूगोलवेत्ताओं का योगदान

है?

(क) अमेरिका

(ख) फ्रांस

(ग) ब्रिटेन

(घ) जर्मनी

उत्तर माला—

01—(ग), 02—(क), 03—(ख), 04—(क),

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- **Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London-**
- **Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.**
- **Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.**
- **Mastin G.F. All possible world. Oxford London.**
- **Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.**
- प्रो. माजिद हुसैन भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली—

ईकाई-05 : भूगोल का परिवर्तनशील चिंतन फलक (Changing Paradigm of Geography)

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 चिंतन फलक के प्रकार
- 5.4 चिंतन फलक के तत्व
- 5.5 भूगोल में परिवर्तनशील चिंतन फलक
- 5.6 सारांश
- 5.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 5.8 बोध प्रश्न
- 5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी विषय का चिंतन फलक परिवर्तनशील होता है। जो उस विषय के विद्वानों का दिशा-निर्देशन व मार्गदर्शन करता है। चिंतनफलक शब्द अंग्रेजी के पैराडाइम शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। पैराडाइम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कहन ने 1962 ई0 में अपनी पुस्तक *The Structure of Scientific Revolution* में किया था। उन्होंने पैराडाइम को परिभाषित करते हुए लिखा कि “किसी समाज में व्याप्त एवं स्वीकार्य, विश्वासों, मूल्यों एवं विधियों आदि का समुच्चय चिंतन फलक है। चिंतन फलक भूगोल में बदलते स्वरूपों की स्पष्ट करना है। कुहन ने लिखा है जब किसी विषय के सर्वमान्य सिद्धान्तों के तहत किसी नवीन खोज या आविष्कार को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। यह नियम केवल विज्ञान पर लागू होता है और इसे दूसरे मानव विज्ञान एवं समाज विज्ञान पर लागू नहीं करना चाहिए लेकिन विगत पाँच दशकों से सभी विषयों में न केवल पैराडाइम शिफ्ट का प्रयोग हो रहा है, वरन पैराडाइम शिफ्ट सिद्धान्त से नये निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। नवीन शोध प्रविधियाँ इत्यादि कर ली गई है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

- 20वीं सदी में भूगोल के परिवर्तनशील फलक स्वरूप को स्पष्ट करना।
- नवीन शोध विधियों को प्रकाश में लाना।
- भूगोल में नवीन विषयों को समाविष्ट करना।
- नवीन सिद्धान्तों को खोजना।
- उदाहरणों, उपागमों, सिद्धान्तों, आदि विषय के स्वरूप का स्पष्ट करना।

5.3 चिंतन फलक के प्रकार

मास्टरमान (1970) ने कूहन द्वारा प्रतिपादित चिंतन फलक को तीन प्रकारों में विभक्त किया—

(I) पराभौतिक (Metaphysical) फलक—

यह विज्ञान के वृहत स्वरूप को दर्शाता है तथा जिससे तीन प्रकार के दिशा-निर्देश मिलते हैं।

(अ) किसी वैज्ञानिक समुदाय विशेष द्वारा किन तत्वों का अध्ययन करना अथवा नहीं करना है।

- (ब) अपने मतलब का तत्व ढूढ़ने के लिए वैज्ञानिक कहां दृष्टि डालें।
- (स) अपने मतलब के तत्वों को प्राप्त कर लेने तथा उनका परीक्षण कर लेने के पश्चात सम्बन्धित वैज्ञानिक किस प्रकार के परिणाम की अपेक्षा करें।

इस प्रकार पराभौतिक-चिंतन फलक किसी विषय की सर्वाधिक आम सहमति का क्षेत्र निरूपित करता है तथा शोध के उपक्षेत्रों को सीमांकित करता है, हम्बोल्ट व रीटर की आगमनात्मक व निगमनात्मक अध्ययन विधियां इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार पराभौतिकी फलक विज्ञान के व्यापक स्वरूप के प्रदर्शन से संबंधित है।

(II) समाज वैज्ञानिक (Sociological) फलक—

यह सर्वमान्य एवं सुदृढ़ वैज्ञानिक मान्यताओं पर परिपेक्षित होता है। जो एक प्रकार से ठोस वैज्ञानिक उपलब्धियों पर आधारित है। जैसे— न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त, कापर निकस का सूर्य केन्द्रित विचार, ब्लांश की विशिष्ट जीवन पद्धति की संकल्पना आदि सिद्धान्त सामाजिक विकास के लिए दिये गये सिद्धान्त हैं। जिनके पीछे ठोस वैज्ञानिक आधार है। चिंतन फलक किसी सिद्धान्त या मान्यता के पीछे इसी प्रकार के ठोस आधार का समर्थन करता है। अतः ऊपर दिये गये उदाहरण ठोस आधार पर ही प्रस्तुत किये गये हैं। इसलिए इनकी प्रासंगिकता वर्तमान में भी है।

(III) सामान्य समाधान (Disciplinary Matrix) फलक—

इसे विषयगत मैट्रिक्स या उत्पादन चिन्तन फलक भी कहा गया है। यह किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थ या सूक्ष्मदर्शी मंत्र पर आधारित रहता है। जैसे— रेटजेल का एन्थ्रोपोज्योग्राफी ग्रन्थ, टालेमी का विश्व मानचित्र या सेटेलार्ड द्वारा प्रेषित मानचित्र जिनके आधार किसी विषय अध्ययन के नये आयाम उभरते हैं।

इन तीनों आयामों कूहन तीसरे प्रकार के आयाम या चिन्तन फलक को वास्तविक मानते थे। जिसे वे समस्या-समाधान या विषयगत में मैट्रिक्स भी कहते हैं। विषयगत मैट्रिक्स का तात्पर्य है— किसी विषय विशेष के उन संस्तरित तत्वों पर ध्यान केन्द्रित करना जिनके अलग-अलग अध्ययन भी आवश्यक हैं जैसे भूगोल में किसी क्षेत्र में उपलब्ध उच्चावच, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति, कृषि उत्खनन, उद्योग एवं इनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्ध के विभिन्न स्तर।

5.4 चिन्तन फलक के तत्व—

रिटर (Ritzer, 1975) किसी चिन्तनफलक समावेश में निम्न तत्वों को आवश्यक माना है—

1. दृष्टान्त (Exemplar)
2. विषयवस्तु की प्रतिष्ठा (Image of the Subject-matter)
3. सिद्धान्त (Theory)
4. विधि (Method)

उदाहरण के लिए रेटजेल की रचना 'Anthropogeographie' एक उपादान (Construct) चिन्तनफलक का उदाहरण प्रस्तुत करती है, क्योंकि इसमें उपरोक्त सभी चारों तत्व विद्यमान हैं। यह भूगोल में मानवीय क्रियाकलापों के क्रमबद्ध अध्ययन की प्रतिष्ठा (Image) बनी। मानव क्रियाकलाप के व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन तथा सम्बन्धित आधारभूत संकल्पनाओं का प्रतिपादन तथा प्राप्त परिणामों में महत्वपूर्ण अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करते हुए इसमें मानव सांस्कृतिक या मानव भूगोल के अध्ययन का लक्ष्य निश्चित हुआ है। यह अध्ययन सामाजिक डार्विनवाद के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें निगमनात्मक विधि का प्रयोग हुआ तथा न्यूटन के सदृश्य कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित हुए हैं। इस प्रकार इसी दृष्टान्त को आधार मानकर अमेरिका में वातावरण निश्चयवाद की मान्यता का विकास हुआ।

चिन्तनफलक में परिवर्तन भी होता रहता है, कुहन के अनुसार चिन्तन फलक में क्रान्तिकारी परिवर्तन

निम्न रूप में होता है। चिन्तन फलक **A** = सामान्य विज्ञान → विसंगतियाँ → संकट क्रान्ति → चिन्तन फलक **B**

विद्यमान चिन्तनफलक (**A**) के अन्दर किसी विज्ञान संकाय में सामान्यतः अध्ययन तब तक जारी रहते हैं जब तक कुछ विसंगतियाँ उत्पन्न करने वाले तथ्य दृष्टिगत नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए वातावरण निश्चयवाद तब तक चलता रहा जब तक कि उसके विरोधी तथ्यों का संग्रह नहीं हुआ। इस प्रकार की स्थिति में चिन्तन फलक पर वैचारिक प्रश्नचिह्न क्रमशः बड़ा हो गया और वैचारिक संकट उत्पन्न हुआ, तभी क्रान्तिकारी ढंग से सम्भवादी विचारधारा प्रकाश में आयी जो नवीन चिन्तन फलक (**B**) के रूप में स्थापित हुई। इस प्रकार विज्ञानों का विकास निरन्तर ज्ञान के संचय से नहीं वरन् क्रान्तिकारी चिन्तनफलक परिवर्तन से होता है।

सामान्य मान्यता के अनुसार समय-समय पर वैज्ञानिक परिवेश में अनेक चिन्तनफलक समानान्तर चलते रहते हैं, किन्तु समय-सारणी के अनुसार उनमें से कोई एक जो सर्वाधिक प्रभावशाली होता है, उसका वर्चस्व कुछ समय तक कायम रहता है। चिन्तनफलक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में इस दृष्टिकोण को यांत्रिक कहते हैं, जिसकी यह मान्यता है कि विज्ञानों का विकास रेखीय रूप में होता है, दूसरे चिन्तनफलक का आरम्भ यहीं से होता है जहाँ पूर्ववर्ती समुदाय का चिन्तनफलक समाप्त होता है। जबकि कुहन की चिन्तनफलक अवधारणा द्वन्द्वात्मक (Dialectic) कहलाती है।

5.5 भूगोल में परिवर्तनशील चिन्तन फलक

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही ज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति भूगोल का अध्ययन क्षेत्र भी व्यापक होता गया है। इसके परिणामस्वरूप भूगोल के अध्ययन फलक भी व्यापक होते गये हैं। तथा ये परिवर्तनशील भी रहे हैं। प्रारम्भ से लेकर अब तक भूगोल के फलक में हुए परिवर्तनों को निम्नरूप में चरणबद्ध किया जा सकता है।

5.5.1 डार्विन पूर्व का चिन्तन फलक या प्रारम्भिक चिंतन फलक—

कुहन ने डार्विन पूर्व के काल को भौगोलिक चिंतन फलक की दृष्टि से प्राक चिन्तन फलक या प्रारम्भिक चिन्तन फलक की अवस्था कहा है। इस काल में मानव का ज्ञान अत्यन्त ही सीमित था, साथ ही ज्ञान की शाखाओं का स्पष्ट विभाजन भी नहीं हो पाया था। इस समय तक एक विद्वान एक ही साथ भूगोलशास्त्री, वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा दार्शनिक आदि सब कुछ होता था। भूतल के विभिन्न स्वरूप, तत्व, क्षितिज पिंड तथा विभिन्न दृश्य घटनाएं विद्वानों को विद्वानों को चिंतन के लिए आकर्षित करती थी। इसलिए उस समय तक का प्रत्येक चिंतक भूगोलवेत्ता भी हुआ करता था। इसी कारण सिंधु घाटी, मिश्र, मेसोपोटामिया, यूनान व ग्रीक सदृश्य प्राचीन सभ्यताओं के ग्रन्थों में भौगोलिक तथ्यों का विवरण मिलता है। यह एक बहुत लम्बा समय था जब प्रारम्भिक अवस्था में भूगोल का अध्ययन क्षेत्र के विवरण तक ही सीमित था।

हेटनर के अनुसार, इस चरण में केवल तीन उद्देश्य ही थे पृथ्वी विषयक ज्ञान वृद्धि विभिन्न स्थानों का भूतल पर स्थिति का निर्धारण एवं विभिन्न क्षेत्रों के भौतिक तत्वों का आकलन।

प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साहसिक यात्राओं का आयोजन व संचालन किया गया। ये यात्राएं अत्यन्त ही जोखिमपूर्ण तथा दीर्घावधिक होते थे। इन अभियानों से प्राप्त विभिन्न स्थानों की जानकारीयों के आधार पर मानव चित्रांकन करके उनकी अवस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता था।

5.5.2 अन्धकार काल का चिंतन फलक—

ग्रीक एवं यूनान की सभ्यताओं के अवसान काल में बर्बर जातियों के आक्रमण होने लगे। जिससे सभ्यता संस्कृति के साथ ज्ञान का भी अवसान होने लगा इस दृष्टि से अन्धकार युग का प्रारम्भ ईसा पश्चात द्वितीय शताब्दी के काल को बताया। इसका विस्तार द्वितीय से आठवीं शताब्दी तक माना जाता है। भारत में इसे 900 ई0 तक विस्तृत बताया जाता है। यह मुख्यतया धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता का काल था।

5.5.3 पुनर्जागरण काल—

पुनर्जागरण काल का समय वैसे तो 14वीं सदी से 17वीं सदी तक माना जाता है। यह काल भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इसे खोज एवं अन्वेषण का काल भी कहा जाता है। इसकी शुरुआत कुछ धीमी रही। इस काल की खोजों व यात्राओं के पीछे का आधार ग्रीक विद्वानों द्वारा

लिखे गये ग्रन्थ रहे हैं। टालेमी की कृतियों का विशेष अध्ययन हुआ तथा गणितीय भूगोल के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इस काल में हुई भौगोलिक ज्ञान में प्रगति ने ली अन्य विद्वानों की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। इसी कारण भूगोल को अन्य विज्ञानों की जननी माना जाता है। 15वीं सदी में दो सागरीय मार्गों की खोज की गई जिसमें यूरोप से अमेरिका (1492 ई0) तथा भारत के समुद्री मार्ग (1498 ई0) थे। इसके अतिरिक्त भी कई यात्राओं का आयोजन होता रहा है। इन यात्राओं के परिणास्वरूप भूतल के अनेक क्षेत्रों को खोजा गया। इस समय ध्रुवीय प्रदेशों और महादेशों के आंतरिक भागों की जानकारी अब भी अपर्याप्त थी। इस काल के भूगोलवेत्ताओं ने पृथ्वी को गोलाकार माना है। सम्पूर्ण पृथ्वी व इसके अलग-अलग भागों का मानचित्र इस काल में बनाए गये सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मानचित्रांकन व गणितीय विश्लेषण भौगोलिक चिन्तन फलक पर उभरने लगे। सन 1543 में कापरनिकस ने इस काल में अपनी पुस्तक Heliocentric World System में इससे पूर्व प्रचलित पृथ्वी केन्द्रित ब्रह्माण्ड विचार का खण्डन किया तथा बताया कि सूर्य ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है और पृथ्वी सहित सभी ग्रह इसके चक्कर लगाते हैं। इसे सूर्य केन्द्रित विचार कहा जाता है।

गिराडस मर्केटर के प्रयासों से मानचित्र कला काफी विकसित हुई उसने 1559 ई0 में यथाकृतिक बेलनाकार प्रक्षेप बनाया जो संसार का मानचित्र बनाने के लिए आज भी लोकप्रिय है। इनके अतिरिक्त मार्टिन बाल्डसी मुलर (1507), निकालस सैन्सन (1650) जान प्लैमस्टीड (1700) आदि विद्वानों के मानचित्र प्रक्षेप भी लोकप्रिय हैं। इसी काल में दर्शनशास्त्र के संस्थापक बेकन व देकार्त का अभ्युदय हुआ जिन्होंने क्रमशः आगमनात्मक व निगमनात्मक तर्क पद्धतियों को विकसित किया गया तथा तत्वों के कार्य कारण विश्लेषण पर बल दिया। इस प्रकार मानव इतिहास में सर्वप्रथम वैज्ञानिक पद्धति पर चिन्तन प्रारम्भ हुआ तथा धर्मान्धता व चर्च की प्रमाणिकता से मुक्ति मिली। इसी काल में भू-सर्वेक्षण के लिए सन 1590 में प्लेनटेबल का आविष्कार हुआ। इसमें त्रिभुजीकरण विधि से भूतल के व्यापक भाग का मापन एवं चित्रांकन संभव हुआ। गैलेलियो ने दूरबीन (1609) की खोज करके भौतिक शास्त्र की नींव डाली।

भूतल के प्राकृतिक स्वरूपों के विवरण से संबन्धित पुस्तकों की रचना की गई क्लूवेरियस की विश्व का भूगोल सन 1626 में प्रकाशित हुई। इसके कुछ भाग में गणितीय भूगोल तथा अधिकांश भाग पर विश्व के विभिन्न देशों के प्रादेशिक भूगोल का विवरण है। इसी तरह वारेनियस के सामान्य भूगोल में भूगोल को एक क्रमबद्ध विषय के रूप में प्रकाशित किया। इस प्रकार इस काल में भूगोल में कई चिन्तन फलों का विकास किया गया।

18वीं व 19वीं शताब्दी में वैज्ञानिक भूगोल का आविर्भाव (The Emergence of Scientific Geography in the 18th and 19th Century)

पुनर्जागरण काल के अन्वेषण एवं खोजों सम्बन्धी कार्यों के उपरान्त का समय अठारहवीं शताब्दी के भूगोल के नाम से जाना जाता है। इसके ठीक बाद का काल आधुनिक शास्त्रीय काल माना गया है। 18वीं शताब्दी के इस संक्रमण काल में भौगोलिक दृष्टिकोण खोजों के उपरान्त काफी परिवर्तित हो गया था। पृथ्वी और मानव के बारे में जो पक्ष बदला वह 18वीं शताब्दी में तीव्र गति से विकसित हुआ। विभिन्न संस्कृतियों की खोज तथा दार्शनिक विचारों ने इसके विकास में प्रमुख योगदान दिया। इससे पूर्व भूगोल को केवल विवरण मात्र का विषय माना जाता था तथा इसकी उपयोगिता ऐतिहासिक घटनाओं के स्थानिक वर्णनों तक ही सीमित थी।

भूगोल विषय के विकास में इस युग में प्राकृतिक विज्ञानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनके विकास में यूरोपीय देशों में अधिक रुचि लेकर कार्य किये गये। यूरोपीय देशों— जर्मनी, फ्रांस, सोवियत रूस तथा ग्रेट ब्रिटेन में वैज्ञानिक अकादमियों की स्थापना हुई थी। प्राकृतिक विज्ञानों में भौमिकी (Geology), वनस्पति विज्ञान, भौतिकी, मौसम विज्ञान, जीव विज्ञान तथा मानव विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ। मौसम विज्ञान के क्षेत्र में डेम्पियर, एडमण्ड हैले तथा हैडले के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने पृथ्वी तल के विभिन्न क्षेत्रों से तापमान एवं वर्षा से सम्बन्धित आँकड़ों का संग्रह कर उन्हें प्रकाशित कराया। भू-विज्ञान में स्टेन, वुडवार्ड, स्टार्थी तथा जेम्स हट्टन आदि के लेखों एवं ग्रन्थों का प्रमुख योगदान रहा।

वनस्पतिशास्त्र के क्षेत्र में जान रे एवं लिनियस के कार्य महत्वपूर्ण हैं जबकि जन्तु विज्ञान के अन्तर्गत बफन का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने जन्तुओं का प्राकृतिक इतिहास (Natural History of Animals) नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस पुस्तक में बफन ने विश्व के अन्वेषण, यात्रियों के यात्रा वृत्तान्तों का लाभ उठाते हुए प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित अपने नियम प्रतिपादित किये। बफन सन् 1739 से 1788 तक पेरिस

के वानस्पतिक उद्यान के निदेशक रहे। इस प्रकार उन्हें पौधों एवं जन्तुओं के अनेक नमूने एवं विश्व भ्रमण के विस्तृत विवरण उपलब्ध रहे थे। बफन ने पृथ्वी के ठण्डे होने की प्रक्रिया में विश्वास करते हुए बताया कि पृथ्वी पर जो उष्मा व्याप्त है वह पृथ्वी के आन्तरिक भागों से निःसृत होने वाली उष्मा है। बफन ने मानव जीवन पर जलवायु के प्रभाव को स्पष्ट किया

1. एडमण्ड हैले (Halley E., 1656-1742) ने सर्वप्रथम सन् 1687 में मौसम मानचित्र बनाया था। वफन ही प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने मनुष्य को परिवर्तन के कारक (Agent of Change) के रूप में स्वीकार किया। अतः बफन को प्राकृतिक इतिहास (Natural History) का जन्मदाता माना जाता है। प्राकृतिक विज्ञान के साथ जनसंख्या का भी अध्ययन किया गया तथा मानव पर प्रकृति के प्रभाव से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ प्रकाश में आने लगीं। इस सम्बन्ध में मानव विज्ञान पर केम्पर तथा ब्लूमेन ने भी प्रमुख रचनाएँ प्रकाशित कीं। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक विद्वानों से भूगोल के क्षेत्र में हुई प्रगति को एकाकी विकास की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि इसमें मानव का स्थान नगण्य था, किन्तु सन् 1727 में सुसमिल्व एवं सन् 1748 में आचेनवाल के जनसंख्या के बारे में किये गये अध्ययनों के परिणामस्वरूप भूगोल को महत्त्व मिला। इस प्रकार भूगोल एक स्वतंत्र विषय का स्वरूप धारण करने लगा जिसका श्रेय जर्मन भूगोलवेत्ताओं को जाता है। जर्मनी में इस काल में विकसित भूगोल को क्रमबद्ध (Systematisch&Systematic) भूगोल कहा गया जिसके समर्थकों में वारेनियस, लुलोप्सा एवं बगमैन थे। जर्मन में विशिष्ट भूगोल को प्रादेशिक भूगोल या लाण्डेरकुण्डे कहा गया, जिसके विकास में रीनहाल्ड फॉर्स्टर तथा जॉर्ज फॉर्स्टर का प्रमुख योगदान था। इस प्रकार इस काल में भूगोल में द्वैतवाद का आरम्भ हो चुका था। द्वैतवाद की प्रवृत्ति के उपरान्त भूगोल की प्रमुख समस्या के रूप में भूगोल के अध्ययन के लिए राजनीतिक सीमाओं का निर्धारण भी उभरकर सामने आया, जिनके अनुसार भूगोल का अध्ययन राजनैतिक सीमाओं या प्राकृतिक सीमाओं के अन्तर्गत ही होना चाहिए। इस प्रकार इस युग में भूगोल में कार्य दो तरह से हुआ—प्रथम राजनीतिक सांख्यिकीय आधार तथा द्वितीय शुद्ध भूगोल था।

भूगोल की राजनीतिक—सांख्यिकीय विचारधारा (Politico&Statistical School of Geography)

राजनीतिक—सांख्यिकीय विचारधारा को मुख्य रूप से बुस्चिंग (Busching) ने विकसित किया। इनकी प्रारम्भिक रचनायें वर्णनात्मक (Descriptive) थी, जिनका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी तल का वर्णन प्रस्तुत करना था, लेकिन उनकी रचनाओं में भौगोलिक तथ्यों को समझाने का प्रयास नहीं किया गया था। बुस्चिंग महोदय ने प्रादेशिक वर्णनों के लिए राजनैतिक इकाइयों को आधार माना था। सन् 1754 से 1792 के मध्य 15 खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Neue Erdbes Schreibung* अर्थात् 'New Description of the Earth' में सभी स्रोतों से एकत्र भौगोलिक तथ्यों को प्रस्तुत किया। बुस्चिंग के शब्दों में इसका प्रमुख उद्देश्य ज्ञात भू-तल का विवरण प्रस्तुत करना था। इसमें राजनीतिक इकाइयों के आधार प्रत्येक प्रकार के आँकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रह था। आचेनवाल (Achenwall) तथा सुसमिल्व (Susmilch) के द्वारा और राष्ट्रीय जनगणनाओं द्वारा एकत्रित की गई सांख्यिकीय सामग्री का बुस्चिंग (Busching) ने व्यापक प्रयोग किया। इस प्रकार बुस्चिंग ने राजनीतिक सांख्यिकीय विचारधारा को स्पष्ट किया जिसका प्रयोग कठोर, मे तथा सांख्यिकीय ढाँचे का अनुसरण करते हुए अन्य भूगोलवेत्ताओं ने अपने प्रादेशिक विवरण लिखे। कुछ समय उपरान्त इस विचारधारा का विरोध होने लगा, जिसे महेनजर रखते हुए भूगोलवेत्ता राजनीतिक सीमा के स्थान पर प्राकृतिक सीमा को भौगोलिक वर्णनों के लिए प्रयुक्त करने लगे।

शुद्ध भूगोल (Reine or Pure Geography)

शुद्ध भूगोल के रूप में विकसित नवीन भूगोल का आधार राजनीतिक न होकर प्राकृतिक था। किन्तु इसने राजनीतिक भूगोल की विशिष्ट समस्याओं को अध्ययन से पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकाला फिर भी शुद्ध भूगोल ने पृथ्वी की स्थायी प्राकृतिक विशेषताओं को ही आधारशिला बनाया। शुद्ध भूगोल के समर्थकों में बुआचे (Buache), जे.सी. गट्टेरेर (J-C- Gatterer), होम्मेयर (Hommeyer) तथा ज्यूने Zeune प्रमुख हैं।

फिलिप बुआचे (Buache P., 1700-1773)

बुआचे जर्मन भूगोलवेत्ता था। उसने अपने लेख 'Essai De Geographic Physique' में प्राकृतिक सीमाओं का प्रयोग किया। उन्होंने बताया कि, पृथ्वी नैसर्गिक बेसिनों में विभाजित है तथा प्रत्येक बेसिन अपने चारों ओर सीमा पर स्थित पर्वत श्रेणियों द्वारा समीपवर्ती बेसिनों से विलग है। इनको पर्वतों की सतत् श्रृंखलाओं द्वारा

सीमाबद्ध प्रमुख बेसिनों के रूप में पृथ्वी के अंकन सम्बन्धी संकल्पना के लिए जाना जाता है। भूमि पर ये बेसिन नदी बेसिन के रूप में होते हैं तथा पर्यंत अपवाह तंत्रों को विभाजित करने का कार्य करता है। ये नदियाँ सागरों तक पहुँचती हैं। बुआचे प्रथम भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने स्थलीय गोलार्द्ध का अस्तित्व सिद्ध किया। इन पर्वत श्रेणियों के साथ ही अन्तः समुद्री कटकों Sub Marine Ridges का भी वर्णन किया है। उन्होंने तीन प्रकार की पर्वत श्रेणियाँ बतायी हैं— (1) सर्वोच्च पर्वत, जिसका विस्तार पूर्व-पश्चिमी अथवा उत्तर-दक्षिण में मिलता है (2) उच्च वर्ग की श्रेणियाँ, ये श्रेणियाँ प्रथम वर्ग की शाखायें हैं, जो मुख्य नदी बेसिनों को एक दूसरे से विलग करती हैं (3) निम्न श्रेणियाँ, ये मध्यम ऊँचाई की शाखायें हैं, जिनसे छोटी नदियाँ निकलती हैं। उसने शुद्ध समोच्च रेखाओं द्वारा उच्चावच (Relief) को मानचित्र पर प्रदर्शित करके अपने सिद्धान्त को स्पष्ट किया। बुआचे ने सन् 1737 में इंग्लिश चैनल के अध्ययन के लिए इसी प्रकार का उच्चावच मानचित्र बनाया था। इस प्रकार अन्य भूगोलवेत्ता तीव्रता से बुआचे का अनुसरण करने लगे। उनका विश्वास था कि राजनीतिक सीमाओं की अपेक्षा पर्वत श्रेणियों तथा अन्तः सागरीय कटकों द्वारा निश्चित की गई सीमाएँ अधिक स्थायी होती हैं। इसलिए प्राकृतिक सीमाओं के आधार पर किया गया प्रादेशिक आधार अधिक शुद्ध होता है।

बुश्चिंग (Anton Busching, 1724-1793)

फ्रेंच भूगोलविद् बुआचे का समकालीन जर्मन दार्शनिक एवं भूगोल के लेखक बुश्चिंग अठारहवीं सदी के प्रमुख भूगोलवेत्ताओं में से एक थे जिन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग (लेनिनग्राद) में एक चर्च में सन् 1761-66 तक लूथर्न मंत्री (पादरी) के रूप में कार्य किया। बुश्चिंग ने ही प्रथम बार रूस में दृश्यभूमि क्षेत्रों (Landscape Zones) के अध्ययन का सुझाव दिया था इसे 6 खण्डों में प्रकाशित पुस्तक विश्व भूगोल (1762) में सम्मिलित किया था। इन्होंने ही सर्वप्रथम यूरोपियन रूस का अक्षांशीय विभाजन किया तथा विभिन्न प्राकृतिक दशाओं को उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी, तीन भागों में विभाजित किया। रूसी भूगोलविदों ने बुश्चिंग के इस सुझाव को तुरन्त स्वीकार किया था तथा रूस को प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करने की योजना बनायी। बुश्चिंग ने सन् 1754 से 1792 तक 'New Erdbeschreibung' नामक पुस्तक ग्यारह भागों में प्रकाशित की भी, जिसमें पृथ्वी तल के ज्ञात धरातल का एक विवरण प्रस्तुत किया था। इन्होंने इस कृति में राजनीतिक इकाइयों को अपने प्रादेशिक आधार पर प्रयोग किया।

गट्टेरेर (Johann Christoph Gatterer, 1727&1799)

गट्टेरेर ने बुआचे की संकल्पना का अनुसरण करते हुए सन् 1775 में प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'Abriss der Geographie' (संक्षिप्त भूगोल) में नदी बेसिनों के आधार पर विवरण प्रस्तुत किया। प्राकृतिक प्रदेशों की संकल्पना को गट्टेरेर ने सन् 1773 में ही प्रभावोत्पादक ढंग से लागू कर दिया था, जिसे आगे बढ़ाते हुए एक प्राकृतिक इकाई के रूप में सन् 1805 तक होम्मेयर ने इस अभाव की पूर्ति की। गट्टेरेर के अनुसार, भूगोल पृथ्वी का वर्णन है जो इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि पृथ्वी तल का स्वरूप कैसा है तथा मानव ने इसे कैसे परिवर्तित किया है। इसमें ब्रह्माण्ड (Heavens) एवं पृथ्वी का पृथक-पृथक तथा परस्पर प्रभावों का वर्णन किया जाता है। सर्वप्रथम उसी के लेखों में प्राकृतिक क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। उसने पर्वतों, सागरों, नदी बेसिनों आदि के आधार पर क्षेत्रों का नामकरण किया था। उन्होंने अपने ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में प्रदेशों का प्राकृतिक वर्गीकरण (Natural Classification) किया गया है। गट्टेरेर पूर्ण रूप से राजनीतिक इकाइयों का खण्डन नहीं करता है। उनके ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में राजनीतिक इकाइयों का विवरण मिलता है, जो संक्षिप्त रूप से बुश्चिंग की शैली का अनुसरण है, तथापि इनका मुख्य उद्देश्य विशुद्ध भूगोल (Reine Geography) की प्रवृत्ति को विकसित करना था।

होम्मेयर (Hommeyer)

होम्मेयर ने बुआचे की संकल्पना का पूर्णरूपेण अनुसरण करते हुए सन् 1805 में पृथ्वी का प्राकृतिक विभाजन प्रस्तुत किया। होम्मेयर भू-आकृतियों की एकता में विश्वास करता था। इस सन्दर्भ में उन्होंने बताया कि राजनीतिक इकाइयाँ ऐतिहासिक घटनाओं का परिणाम होती हैं जो परिवर्तनशील हैं जबकि प्राकृतिक विभाग स्थायी एवं अपरिवर्तनशील हैं। इन्होंने प्राकृतिक प्रदेशों के पदानुक्रम को वर्णित करते हुए बताया कि सबसे ऊपर प्राकृतिक विभाग (Land) तथा उसके उपरान्त निम्न क्रम में क्रमशः प्रदेश (Landschaft), इलाका (Gegend) तथा स्थल (Ort) आते हैं। इन्होंने नदी बेसिनों के रूप में प्राकृतिक प्रदेशों को विभक्त किया। सन् 1810 में प्रकाशित अपने ग्रन्थ यूरोप का शुद्ध भूगोल (Reine Geographic Von Europe) में पृथ्वी तल के वर्तमान स्वरूप

(Gestalt) को दर्शाया है, जिसमें विभाजन का आधार मुख्यतः नदियों एवं बेसिनों को लिया है। इस ग्रन्थ में होम्मेयर महोदय ने पृथ्वी तल के वर्तमान रूप, प्राकृतिक प्रदेशों की स्थिति, आकार तथा विस्तार का विवरण दिया है। इस प्रकार शुद्ध भूगोल (Reine Geography) की विचारधारा को पूर्णरूपेण क्रियान्वित किया है।

ज्यूने Zeune

ज्यूने ने होम्मेयर की तरह नदियों के बेसिनों को प्राकृतिक इकाई मानकर शुद्ध भूगोल लिखा। ज्यूने बर्लिन में रीटर के पूर्ववर्ती प्राध्यापक थे। उनके द्वारा रचित पुस्तक, *Gea: Versuch Eine Wissenshat Liche Erdkunde* अर्थात् *Gea* एक वैज्ञानिक भू-विज्ञान का प्रयास। ज्यूने महोदय ने भौगोलिक विवरण में राजनीतिक इकाइयों को पूर्ण रूप से नजरअन्दाज किया है तथा प्राकृतिक विभागों को मद्देनजर रखा है। इन्होंने प्राकृतिक इकाई के रूप में प्रत्येक नदी बेसिन के पेड़-पौधों, जन्तुओं तथा मानव समुदाय का वर्णन किया है तथा बताया कि पर्वत श्रेणियाँ जल विभाजक होने के साथ-साथ वृक्षों, जन्तुओं तथा मानव वर्गों की भी प्राकृतिक सीमायें हैं। इसी विचारधारा के अनुसार पादप तथा जन्तु समुदाय का मानव वर्गों से अन्तर्सम्बन्ध होता है।

भूगोल में नवीन विज्ञान के विकास के रूप में विकसित शुद्ध भूगोल के समर्थकों ने उसके इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया कि भूगोल इतिहास की सेविका नहीं वरन् अनुज्ञा है। इन दोनों की स्पष्ट तुलना काण्ट ने की थी। रूहेल (1811) तथा बूखर ने भी इस बात को स्पष्ट किया था कि किस सीमा तक भौगोलिक अध्ययनों में ऐतिहासिक पुट देना चाहिए। लेकिन शुद्ध भूगोल का नया विज्ञान, उद्देश्य तथा आशाओं की अभिव्यक्ति मात्र था, न कि निष्पत्ति। सन् 1811 में बट ने प्रदेशों को जैविक बताया था किन्तु आज तक कोई भी भूगोलवेत्ता एक भी प्रदेश को जैविक रूप में स्थापित नहीं कर सका है। बूखर ने वैज्ञानिक ईमानदारी के आधार पर प्राकृतिक प्रदेशों के विभाजन की असफलता पर बल दिया था।

यद्यपि भूगोल का आधार राजनैतिक नहीं अपितु प्राकृतिक था, परन्तु उसने राजनैतिक भूगोल की विशिष्ट समस्याओं को अपने अध्ययन कक्ष से निकाल नहीं दिया। इसके विपरीत यह दावा किया कि उनके राजनैतिक भूगोल को अधिक ठोस आधार प्रदान किया है। विशेषकर इस काल में, राज्यों के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तनों ने भूगोलवेत्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया तथा प्राकृतिक सीमाओं का सिद्धान्त, जो प्राकृतिक भूगोल के सन्दर्भ में विकसित किया गया था, राजनैतिक भूगोल में प्रयुक्त किया गया। इसका एक उपजात परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक सीमा, शब्द के प्रति और भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी तथा भाषावार सीमा को भी प्राकृतिक सीमा कहा जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्वकाल में इस संकल्पना को एक यूरोपीय शासन ने बलपूर्वक रखा। यद्यपि भूगोल के नवीन विज्ञान ने पृथ्वी की स्थाई प्राकृतिक विशेषताओं को ही आधारशिला बनाया, परन्तु समय की गतिविधि के साथ उस मुख्यतः उनके मानवीय सम्बन्धों पर बल दिया। इस सम्पूर्ण काल में अधिकांश लेखकों ने ज्ञात-अज्ञात कांट का अनुसरण करके प्राकृतिक विशेषताओं के मानवीय महत्त्व को दोहराया। मूलर तथा कैसर ने विशिष्ट रूप से मानव गृह के रूप में पृथ्वी के अध्ययन पर बल दिया। दूसरी ओर होम्मेयर प्रभूति लेखकों ने शुद्ध भूगोल का मुख्य उद्देश्य भू-आकृतियों का वर्णन बताया, अन्य विशेषताएँ व्यावहारिक भूगोल की विषय सामग्री में सम्मिलित की जा सकती थीं। इस समय भूगोल की एक अन्य संकल्पना की भी चर्चा हुई जिसमें वस्तुओं के वितरण पर बल दिया गया। इसका प्रतिपादन लिंडनेर ने सन् 1806 में किया, परन्तु उसी वर्ष रिटर ने इसका कड़ा विरोध भी किया। अन्त में यह भी जोड़ देना आवश्यक होगा कि जिन विद्वानों ने भूगोल विज्ञान के निर्माण का प्रयास किया, उन्होंने बार-बार दो मौलिक सिद्धान्तों पर बल दिया। पहले उन्होंने वास्तविक तथ्यों को निर्धारित करने पर बल दिया, साथ ही सूचना स्रोतों को विशिष्ट रूप से इंगित करने की आवश्यकता भी बतायी। यह परिवर्तन निश्चय ही श्लाघनीय था, क्योंकि यह किसी भी वैज्ञानिक कार्य की शुद्धता के लिए अनिवार्य तथा पूर्वकालीन अंध-विश्वास एवं कल्पित तथ्यों से मुक्त करने का सक्रिय प्रयास था। परन्तु शुद्ध भूगोल का नया विज्ञान, उद्देश्यों तथा आशाओं की अभिव्यक्ति मात्र था, न कि निष्पत्ति। यद्यपि तथ्यों को स्थापित करने पर बल दिया जाता था, परन्तु इस काल के अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने बिना जाँच किये तथ्यों के क्रम स्थापित किये। इनकी बहुत-सी संकल्पनाएँ आज भी उत्तराधिकार स्वरूप उपलब्ध हैं अथवा उन्हें नया जामा पहना दिया जाता है।

क्रियात्मक एवं वैज्ञानिक विधि (Practical and Scientific Method)

भूगोल में क्रियात्मक एवं वैज्ञानिक विधि के विकास का श्रेय प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता रीनहोल्ड फॉर्स्टर तथा

उनके पुत्र जोहान जॉर्ज फॉर्स्टर को है। इनकी कार्यशैली राजनीतिक-सांख्यिकीय एवं शुद्ध भूगोल की विचारधारा से भिन्नता रखती है, क्रियात्मक एवं वैज्ञानिक विधि कहा गया। इनके भौगोलिक कार्यक्षेत्र में क्रियात्मकता, वैज्ञानिकता एवं उपयोगिता को विशेष महत्त्व दिया गया है। उनके अनुसार भूगोल को केवल विवरण मात्र का विषय न मानकर क्रियात्मक एवं उपयोगिता के दृष्टिकोण से विकसित करना चाहिए।

रीनहाल्ड फॉर्स्टर (Johann Reinhold Forster, 1729&1798)

इन्होंने भौगोलिक विवरणों के लिए क्रियात्मक शैली को अपनाया, जिस आधार पर पृथ्वी के विभिन्न भागों का भ्रमण कर एकत्रित की गई भौगोलिक सामग्रियों का व्यवस्थित विवेचन कर उनका वर्गीकरण किया है। ये जेम्स कुक की द्वितीय समुद्री यात्रा में उनके साथ गये थे। इनके द्वारा सन् 1772 से 1775 में की गई दक्षिणी सागरों की यात्रा जिसे छः प्रमुख शीर्षकों में प्रकाशित की गई जो अग्रलिखित हैं

1. पृथ्वी और भूमि
2. जल एवं महासागर
3. वायुमण्डल
4. ग्लोब की विभिन्नताएँ
5. जैविक वर्ग (जन्तु एवं वनस्पति)
6. मानव विकास, जाति, व्यवसाय एवं सम्भावनाएँ।

फॉर्स्टर महोदय ने अपने लेखों में सूक्ष्म वैज्ञानिक शैली को अपनाया था। इसके साथ ही उन्होंने मानव भूगोल भी लिखा। मानव एवं वातावरण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों को पहचाना। वे ही प्रथम भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने इन सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या की। लोगों की गतिशीलता एवं जनसंख्या के स्थानान्तरण का भी विवरण दिया। रीनहाल्ड फॉर्स्टर ने दक्षिणी महासागरीय द्वीपों के भौगोलिक वर्णनों में जनसंख्या घनत्व, पर्यावरणीय संसाधनों एवं जनसंख्या घनत्व में पारस्परिक सम्बन्धों एवं मानव आवासों का विश्लेषण किया था। मानव भूगोल के जन्मदाता फ्रेडरिक रेटजेल ने उनकी क्रमबद्ध वैज्ञानिक शैली तथा उनके द्वारा लिखित मानवीय भूगोल की प्रशंसा की। प्लेवे (Plewe) ने फॉर्स्टर के कार्यों की समीक्षा करते हुए लिखा है कि फॉर्स्टर प्रथम महान् जर्मन विधितंत्रीय भूगोलवेत्ता था।

जॉर्ज फॉर्स्टर (George Forster, 1729&1798)

जे. रिनहोल्ड फॉर्स्टर के पुत्र थे। जॉर्ज फॉर्स्टर अपने पिता की भाँति भौगोलिक पर्यवेक्षणों में कुशल, साहसी तथा प्रतिभावान् था। उन्होंने 11 वर्ष की अल्पायु में अपने पिता रीनहोल्ड के साथ रूस की यात्रा की तथा पुनः 18 वर्ष की आयु में दक्षिणी समुद्री भागों का विधिवत् निरीक्षण किया। इनकी साहित्यिक योग्यता बहुत ऊँची थी। उसका सम्बन्ध प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता हम्बोल्ट से हो गया था, जिसने जॉर्ज फॉर्स्टर की प्रशंसा की। इनकी प्रथम भेंट सन् 1789 में गोटिंगटन में हुई। हम्बोल्ट ने अपने ग्रन्थ कॉसमॉस Kosmos में जॉर्ज फॉर्स्टर का आभार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "I owe to the distinguished teacher & friend (Forster) whose name I can ever mention with feeling of heart felt gratitude-" वास्तविक रूप में जॉर्ज फॉर्स्टर ने भौगोलिक वर्णनों में ख्याति अर्जित की। पेशेल के अनुसार वह सबसे महान् लेखक था जिसने रमणीक दृश्यों के प्रति प्रेम उत्पन्न किया।

माल्टे बुन (Malte & Brun, Conrad, 1775&1826)

माल्टे बुन का जन्म डेनमार्क में हुआ जहाँ से सन् 1800 में देश निकाला दिया गया तथा फ्रांस के पेरिस में बस गये। यही उनका कार्य क्षेत्र रहा। उनकी प्रमुख पुस्तक 'Precis de la Geographie Universallie' (Geographic Universelle) छः खण्डों में सन् 1810 एवं 1829 में प्रकाशित हुई तथा इसका शेष कार्य उनकी मृत्यु के बाद उनके सहकर्मियों ने किया था। उनका यह महत्त्वपूर्ण कार्य फिलाडेल्फिया में सन् 1827 से 1832 तक अंग्रेजी में तीन खण्डों में 'Universal Geography' नाम से प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद जे.जी. पेरिसवाल ने किया। इसके प्रारम्भ में भूगोल के सामान्य सिद्धान्त दिये जिससे भूगोल के इतिहास पर प्रकाश डाला गया। इसके बाद प्राणी एवं पादपों का विवरण दिया गया। इसमें मानव व उसकी प्राकृतिक एवं राजनीतिक दशाओं,

प्रजातियों, भाषा, विश्वासों तथा सभ्यता की प्रगति के नियमों का भी विवरण सम्मिलित है।

इसके अन्य पाँच खण्डों में विश्व के प्रमुख खण्डों का विवरण दिया है। इन खण्डों का विभाजन दो हजार वर्ष पूर्व स्ट्रेबो द्वारा अपनायी गई योजना पर आधारित था उदाहरणार्थ एशिया को काकेशस देशों, तुर्की (एशिया माइनर, काला सागर तट, आर्मीनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया व पलेस्टाइन) अरब, फारस, केस्पियन सागर, अफगानिस्तान, टार्टरी साइबेरिया, मध्य एशिया, मंचूरिया एवं कोरिया, जापान, चीन, तिब्बत, हिन्दुस्तान तथा ओशोनिया। माल्टे बुन ने अपनी विवरण विधि को निम्नलिखित रूप में लिखा था जब हम एक विस्तृत देश के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं तो इसमें दो बिन्दु महत्वपूर्ण होते हैं जो उपविभाजन के दो सन्दर्भ मोड़ होते हैं। इसे सरकार, प्रान्त एवं जिलों में विभाजित किया जा सकता है इसको राष्ट्र तथा इसके निवासियों के अनुसार भी विभाजित किया जा सकता है। इनमें प्रथम विधि क्षेत्र वर्णनी (Chorography) तथा दूसरी नृजातिवर्णन (Ethnography) है। हम प्रायः प्रथम से प्रारम्भ करते हैं। इन्होंने यूरोप पर प्रकाशित खण्ड को भौतिक भूगोल के साथ प्रस्तुत किया था जिसमें सागरों, झीलों, नदियों, पर्वतों, जलवायु (समताप रेखाओं सहित) तथा प्राणी एवं पादपों को सम्मिलित किया गया राष्ट्रों, भाषा, धर्म, राजनीतिक विभाजन, सरकार तथा जनसंख्या विवरण को राजनीतिक भूगोल में सम्मिलित किया गया। माल्टे बुन का कार्य भौगोलिक विवरणों के इतिहास में पदचिह्न माना जाता है। इसकी पूर्णता ही इसको महत्व प्रदान करती है। इनके समकालीन रिटर भी पृथ्वी एवं इसके निवासियों का ऐसा विवरण प्रस्तुत करने में असफल रहे थे। यह कार्य आधुनिक भूगोल के विकास में केन्द्रीय महत्व रखते हैं तथा ऐसा द्वितीय कार्य एलिस रेक्लस द्वारा किया गया जिसमें यह परिलक्षित भी होता है।

माल्टे बुन ने अपनी पुस्तक के द्वितीय खण्ड में भूगोल की संकल्पनाओं की रूपरेखा को सम्मिलित की थी। जिसमें पृथ्वी की आकृति, पंक्षेपों के प्रकार तथा खगोलीय सम्बन्धों को भी सम्मिलित किया गया है। उन्होंने पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धान्तों की भी समीक्षा की जिनमें आकस्मिकतावादियों (Catastrophists) एवं एकरूपतावादियों (Uniformitarianists) में मतभेद थे। उनका मानना था कि मानवीय गतिविधियों पर जलवायु का नियंत्रण मानना असंगत है। पवन व्यवस्था पर किया गया उनका अध्ययन कुक की यात्राओं में सहयोगी रहा। माल्टे बुन ने अपनी पुस्तक में स्थल गोलार्द्ध सम्बन्धी संकल्पना पर भी विचार विमर्श प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि स्थलीय गोलार्द्ध का केन्द्र पेरिस में है। इस प्रकार ये पुस्तक तत्कालीन समय को अनुपम कृति थी जिसने सम सामायिक भौगोलिक अध्ययनों को प्रभावित किया इसको आधार मानकर बाद में अनेक अध्ययन हुए तथा इसे एक क्रमबद्ध पुस्तक माना गया।

भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास (Foundation of Philosophical Base of Geography)

इमेनुअल काण्ट (Immanuel Kant, 1724&1804)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में स्पिनोजा का दर्शन पर्याप्त लोकप्रिय था, जो दकातों की निगमनात्मक विवेचन पद्धति पर आधारित था। इसका अनुसरण करते हुए स्पिनोजा ने बताया कि मनुष्य की तार्किक क्षमता सार्वभौमिक एवं चिरन्तन सत्य का उद्घाटन करने में समर्थ है। जबकि इसके विपरीत काण्ट ने यह सिद्ध किया कि पदार्थ जगत् के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही तर्क आगे बढ़ सकता है। दार्शनिक भूगोलवेत्ता इमेनुअल काण्ट का जर्मन भूगोलवेत्ताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। फॉस्टर महोदय की तुलना में काण्ट एक आरामकुर्सी पर बैठने वाला (Armchair Geographer) था। काण्ट के भौतिक काल से ही आरम्भ हुआ लेकिन वास्तविक विभाजन वारेनियस को पुस्तक पॉग्राफिया जनरेलिस के उपरान्त हुआ। इसके कान्ट (Immanuel Kant) ने भौतिक भूगोल पर बल दिया। काण्ट जर्मनी के कोनिसर्ग विद्यालय में एक दार्शनिक भूगोलशास्त्री थे। उन्होंने बताया कि भूगोल भूतल का अध्ययन है। यह साल के भिन्न-भिन्न भागों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं की व्याख्या करता है। यह क्रियाशील सम्बन्धों को विशेष महत्व दिया जाता है। 19वीं शताब्दी तथा इससे पूर्व भूगोल के अध्ययन का तात्पर्य भौतिक भूगोल से लिया जाता था, इसका आशय यह नहीं कि मानवीय पक्षों की अवहेलना होती थी। वास्तविक रूप में भौतिक में ही मानव भूगोल के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने मानवीय पक्ष पर बल दिया। हम्बोल्ट भौतिक भूगोल का समर्थक था। यह स्वयं वनस्पति शास्त्री था, इसलिए उसके ऊपर प्रकृतिक विज्ञानों का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी का सतही भाग जिस पर मानव अधिवास है, का अध्ययन भूगोल

में होता है ये विभिन्नतायुक्त क्षेत्र अनेक परिघटनाओं के एकीकरण से तथा विभिन्न रूपों में मिलते हैं। सारांशतः भूगोल को भौतिक तथा मानवीय वर्गों में विभाजित करना अनुचित है। रिचार्ड हार्टशोर्न ने स्पष्ट किया कि यदि भूगोल को भौतिक तथा मानवीय परिघटनाओं में विभाजित किया जाये तो हम शेष कार्यों को अतार्किक बना देते हैं।

भूगोल के समग्र अध्ययन आवश्यकता (Need to Study of Geography as a Whole)

भूगोल के भौतिक भूगोल एवं मानव भूगोल के मध्य विभाजन का अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट हुआ है कि भूगोल का समग्र अध्ययन किया जाये तो पृथक् अस्तित्व स्वतः ही महत्वहीन हो जायेगा। भूगोल में भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार के तथ्यों के क्षेत्रीय वितरण का सम्मिलित रूप में अध्ययन किया जाता है। जिस आधार पर प्रो. वूलरिज महोदय ने बताया कि भूगोल को दो पक्षों, भौतिक एवं मानव में विभक्त करना उपयुक्त नहीं है। उनकी दृष्टि में इन दो पक्षों के आधार पर द्वैत मिथ्या है। वास्तव में भूगोल ऐसा संयोगी विषय है, जो भौतिक एवं मानवीय विज्ञानों के मध्य पुल (Bridge) की भूमिका रखता है, जिसके आधार पर ही भौतिक एवं मानवीय तथ्यों के मध्य सम्पर्क स्थापित होता है। हाल ही में पीटर हैगेट ने भूगोल को नवीन स्वरूप, भूगोल एक विश्वव्यापी संश्लेषण (Geography: A Global Synthesis) के रूप में प्रस्तुत किया है। वास्तव में भूगोल एक ऐसा एकीकृत क्षेत्र है, जिसकी कुछ विशेषताओं पर मानव मुक्त प्रकृति तथा अन्य पर मनुष्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी कारण हेटनर ने क्षेत्रीय एकता में प्रकृति तथा मानव को अभिन्न अंग माना था। उनके अनुसार प्रगति एवं मानव दोनों ही भू-सतही क्षेत्रों के विशेष लक्षणों के वास्तविक परिचायक हैं तथा अन्तरसम्बन्धों के आधार पर ही इन दोनों को भौगोलिक अध्ययन से पृथक् नहीं किया जा सकता है। हेटनर की तरह ही एन्ड्रयू जॉन हरबर्टसन ने स्पष्ट किया कि, भूगोल विषय में भौतिक एवं मानवीय पक्षों को पृथक् पृथक् रखकर अध्ययन करना उपयुक्त न होगा वरन् सम्पूर्ण को मानव तथा उसके पर्यावरण से पृथक् करना खूनी जुर्म है। आगे चलकर पाल विडाल-डि-ला ब्लाश ने लिखा था कि, मानव भूगोल का उस भूगोल से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिससे मानवीय हितों को निकाल दिया गया है। वास्तव में ऐसा कभी नहीं हुआ है। अतः यह तो विशेषज्ञों के मस्तिष्क की उपज है। वॉन रिचथोफेन ने भूगोल के इन दो विपरीत पक्षों के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य किया। उनके अनुसार भूगोल पृथ्वी के धरातल पर स्थित विभिन्न अन्तर्सम्बन्धित अध्ययन करता है। घटकों की विभिन्नता स्पष्ट है अध्ययन के लिए उत्पन्न किया गया यह द्वैत मिथ्या है, क्योंकि भूगोल में प्राकृतिक तत्त्व एवं मानवीय क्रियाएँ परस्पर अन्तर्सम्बद्ध हैं, जिनका स्वतंत्र रूप में अध्ययन करना उपयुक्त नहीं है।

भूगोल एक विज्ञान (Geography as a Science)

वर्तमान भौगोलिक विचार तथा व्यवहार में, भूगोल विषय को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से, महत्वपूर्ण अध्ययनगत अन्तरण दिखलाई पड़ता है। चूंकि विज्ञान ज्ञान का एक संगठित स्वरूप होता है, जो संकल्पनाओं, सिद्धान्तों, विधितंत्रों, तकनीकों तथा इन सबसे अधिक वैज्ञानिक विधियों तथा तर्क पर विकसित एवं आधारित होता है। अतएव भूगोल में भी इन प्रक्रियाओं को तीव्र गति से विकसित एवं प्रतिष्ठित करने का प्रयास जारी है। इस सन्दर्भ में शोरले (1971) भूगोल की भूज्यामितीय Geometrics पर बल देता है। हार्वे (1969) ने भूगोल में विशुद्ध विज्ञान के गुणों की मात्रा का परीक्षण किया। अमेडीयो तथा गलैज (Amedeo & Golledge, 1975) ने भूगोल को एक विशुद्ध विज्ञान बनाने वाले अन्वेषणों को इंगित करने के लिए भूगोल की स्थिति का संक्षेपण किया। भूगोल के वर्तमान स्तर को एक ऐसे विज्ञान के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जो पूर्व ऐतिहासिक से एक आद्य विज्ञान (Proto-Science) एवं एक विज्ञान होने की अवस्था से गुजर रहा है, किन्तु विज्ञान के स्तर को प्राप्त करने के लिए भूगोल में निम्न गुणों का होना आवश्यक है—

1. सिद्धान्तों के उत्पन्न करने की क्षमता,
2. उपयुक्त परिकल्पनाओं का निर्धारण,
3. आनुभाविक रीति से परिकल्पनाओं का परीक्षण,
4. नियम जैसे कथन के रूप में सामान्यीकरण करने तथा
5. प्रामुक्ति की योग्यता, आदि।

वर्तमान स्तर (Present Level)

भूगोल में वैज्ञानिक विधियों के बढ़ते चरण को दृष्टिगत कर पीट्स (1974) की यह परिभाषा अधिक समीचीन प्रतीत होती है—भूगोल वह विज्ञान है जो पृथ्वी पर विभिन्न विशेषताओं के भू-वैज्ञानिक वितरण एवं स्थिति का सिद्धान्तों के तार्किक विकास तथा परीक्षण द्वारा व्याख्या एवं प्रागुक्ति करने का प्रयास करते हैं। हार्वे (1969) ने वस्तुतः जब विज्ञान के रूप में भूगोल की भूमिका का विस्तृत विवेचन किया तो वह पूर्ववर्ती शॉफर (1953), हार्टशोर्न (1959), बूंगे (Bunge, 1962) आदि के विचारोत्तेजक सम्बन्धित कथनों से, निश्चय ही अत्यधिक प्रेरित हुआ था। इस परिप्रेक्ष्य में भूगोल सर्वाधिक प्रयुक्त शोध-उपागम अर्थात् वैज्ञानिक विधि के प्रयोग की ओर उन्मुख है। वैज्ञानिक विधि तर्कसंगत, समस्या पुनरावृत्ति तथा जाँच-पड़ताल कर सकने के लाभों से युक्त होने से भी अधिक, भूगोलविदों में वैज्ञानिक विद्या (Lingua Franca of Science) प्रतिस्थापित करती है। इस अन्तिम पक्ष पर अधिक बल इसलिए दिया जा रहा है, क्योंकि विषय की कोई भी शाखा और विशेषतः भूगोल, अन्य से अलग किये जाने पर अस्तित्वहीन हो सकता है और कोई भी सार्वभौम भाषा, चाहे वह समान शोध-प्रक्रियाओं, प्रविधियों अथवा उपकरणों (संगणक आदि) के प्रयोग का प्रतिफल हो, यदि विषयगत सीमाओं को तोड़ती है, अपने आप में महत्वपूर्ण होती है। तथापि ऐसी मान्यता है कि वैज्ञानिक विधियों का अति प्रयोग (गलत प्रयोग) किया जा सकता है। भूगोलज्ञों में, गॉल्ड (1970) ने इसे पहचानते हुए और ध्यान आकर्षित करते हुए सुझाव दिया है कि सांख्यिकी क्रियाविधि, जो इस निश्चित दार्शनिक विचार के प्रयोग के लिए विकसित किया गया है, के प्रयोग मात्र पर ही केन्द्रित शोध में वैज्ञानिक विधि का संकुचित प्रयोग प्रतिफलित होता है। उदाहरणार्थ, उसका कथन है कि प्राचन-सांख्यिकी की अनेकों परम्परागत क्रियाविधियाँ विगत सौ वर्षों में अनाश्रिता एवं यादृच्छिकता (Randomness) की कल्पना पर आधारित हो, विकसित हुई है और जब ये विधियाँ सामाजिक और व्यवहारगत आँकड़ों पर प्रयुक्त होती हैं तो परिणाम कुछ अर्थहीन हो ही सकते हैं। चूँकि प्रस्तुत अध्ययन में ऐसी प्रविधियों पर ही विचार किया जायेगा, अतः सावधानी के ये शब्द आवश्यक हैं।

क्षेत्रीय वितरण एवं विभिन्न विशेषताओं के मध्य अन्तर्सम्बन्धों के विश्लेषण के लिए प्रयुक्त वैज्ञानिक विधि या उपागम के दो मुख्य अंग हैं— प्रथम,—तथ्यों अथवा आँकड़ों का संग्रह और द्वितीय,— इन तथ्यों के अर्थपूर्ण सामान्य सम्बन्धों अर्थात् सिद्धान्तों का निर्धारण। किसी शोध-क्रिया विधि के अभिकल्पन (डिजाइन) एवं कार्यान्वयन में सैद्धान्तिक या वैश्लेषिक कारक, आनुभविक तथ्यों या आँकड़ों संग्रह से पूर्व ही निश्चित किए जाने चाहिए, क्योंकि सिद्धान्त सामान्यतः संग्रह किये जाने वाले आँकड़ों तथा शोध-दिशा की ओर प्रकाश डालते हैं। वस्तुतः भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति सांख्यिकी एवं गणितीय प्रविधियों के प्रयोग से युक्त एक नवाचारिता (Innovative) की स्थिति मात्र नहीं था, अपितु वास्तविक क्रान्ति ने भौगोलिक शोध-उपागम में पूर्ण परिवर्तन का सुझाव भी दिया। यह परिवर्तन एक वर्णनात्मक-आगमनात्मक उपागम (Descriptive&Inductive Approach) से सैद्धान्तिक-निगमनात्मक उपागम (Theoretical&Deductive Approach) पर अधिक महत्व देने की ओर स्थानान्तरण था। सैद्धान्तिक उपागम को स्वीकृत करने का, तथापि यह तात्पर्य नहीं होना चाहिए कि वर्णनात्मक उपागम को पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया जाए, अपितु इसकी तीक्ष्ण सीमाओं को पहचाना जाए। ध्यातव्य है कि आगमनात्मक शोध में दो या अधिक घटकों (तथ्यों) के बीच सम्बन्धों की जाँच, एक सैद्धान्तिक प्रक्रिया की क्रियाविधि को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है जबकि निगमनात्मक शोध में सैद्धान्तिक नियमों पर आधारित निष्कर्षों के सन्दर्भ में तथ्यों की व्याख्या होती है।

आलोचना (Criticism)

1. भूगोलशास्त्री बिना किसी अनुभव के तथा आवश्यकता के मात्रात्मक विधि का उपयोग करने लगे।
2. वहाँ वर्णनात्मक विधि का उपयोग अधिक उपयोगी था वहाँ भी इस विधि को अपनाया गया।
3. इसने अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह सीमाओं में जकड़ दिया।
4. स्टाम्प (L-D- Stamp) तथा मिंशुला (Minshul,R- के अनुसार, इन विधियों का अंधाधुंध उपयोग किया गया, जो अस्वीकार्य है।

5.5.4 आधुनिक काल—

18वीं सदी के मध्य से भूगोल का प्रारम्भिक स्वरूप परिवर्तित होने लगा। इसी सदी के अन्त तक भूगोल

को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाने लगा। जिसका मुख्य श्रेय काण्ट को दिया जाता है। इन्होंने भूगोल को अन्य विज्ञानों के समक्ष एक दार्शनिक आधार प्रदान किया। इसके साथ इस काल में जेम्स कुक जैसे विद्वानों द्वारा साहसिक समुद्री यात्राओं के द्वारा नये क्षेत्रों को एवं तथ्यों को प्रकाश में लाने का कार्य किया गया। पहले से ज्ञान भू-भागों में शोध के दृष्टिकोण से फोस्टर जैसे विद्वानों ने कई शोध यात्राएं की काण्ट जैसे विद्वानों ने पृथ्वी की उत्पत्ति, महाद्वीप व महाद्वीपों की उत्पत्ति, पर्वत निर्माण ज्वालामुखी, भूकम्प सम्बन्धी विवरण और सिद्धान्त प्रस्तुत किए। इसी प्रकार वनस्पति, जीव-जन्तु जलवायु आदि की विशेषताओं का गहन अध्ययन किया गया दूसरी और बफन ने मानव के उद्भेदों व प्रजातीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला इस तरह के विद्वानों (मानटेस्क्यू, पेस्टोलाजी, वोल्टेजर) ने एक स्वैतिक सामंती सामाजिक व्यवस्था को अस्वीकृत किया। इनके मतानुसार प्रत्येक समाज का अध्ययन उसके पर्यावरण तथा इतिहास के सन्दर्भ में होना चाहिए तथा सार्वभौमिक प्राकृतिक नियमों को समझने का प्रयास करना चाहिए ताकि समाज का सही नियमन हो सकें। अतः उन्होंने भौगोलिक पर्यावरण के अध्ययन पर विशेष बल दिया।

काण्ट इस समय का प्रमुख दार्शनिक भूगोलवेत्ता था जिसने भूगोल के समय के साथ बदलते चिंतन फलक में अपना प्रमुख योगदान दिया तथा भूगोल को एक दार्शनिक आधार प्रदान किया। काण्ट ने जगत की वास्तविकता की खोज में अन्य विज्ञानों के जो जगत को सम्पूर्णता प्रदान करने वाले विभिन्न तत्वों का अलग-अलग अध्ययन करते हैं (जैसे जलवायु विज्ञान, भौतिकी, भौमिकी, वनस्पतिशास्त्र, जन्तु विज्ञान आदि) के समानान्तर भूगोल की भूमिका स्पष्ट की। भूगोल जगत की सम्पूर्णता समाहित हर तत्व के क्षेत्रीय स्वरूप का अध्ययन करता है। इस प्रकार यह विषय जगत की वास्तविकता में एक अपेक्षित आयाम को स्पष्ट करता है।

19वीं शताब्दी में आधुनिक भूगोल का स्वरूप पूर्णरूपेण उभर चुका था। इस समय हम्बोल्ट व रीटर ने भूगोल को ठोस आधार प्रदान किया। भौगोलिक विचारधारा के इतिहास में प्रथम बार सम्पूर्ण पृथ्वी को जीवन्त इकाई मानकर इसके विभिन्न क्षेत्रों में तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध अन्तर्क्रिया एवं भूदृश्यों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इस समय अक्षांश-देशान्तर के सन्दर्भ में सही अवस्थिति निश्चित करने अथवा उसको मानचित्र पर प्रदर्शित करने से ऊंचे ऊठकर भू-तल पर अनेक तत्वों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं अन्तर्प्रक्रिया का विश्लेषण बन गया। इस प्रकार भूगोल मात्र विवरणात्मक अथवा अनुमानपरक न रहकर विश्लेषणात्मक विषय हो गया। इस विश्लेषण का अन्तिम उद्देश्य मात्र वास्तविक जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने तक सीमित नहीं था। इसका परम उद्देश्य प्रकृति अथवा जगत की चमत्कारिक रहस्यात्मक अथवा विराट सौन्दर्य को उद्घाटित करना था। इस प्रकार हम्बोल्ट व रीटर ने पृथ्वी को जड़ जगत के रूप में नहीं वरन जीवन्त समाप्त सृष्टि के रूप में देखा तथा उसकी विलक्षणता को समझने तथा समझाने का प्रयास किया। भौगोलिक चिंतन के इतिहास में इस युग को छायावादी युग कहा जा सकता है। इस प्रकार इस युग तक आते-आते भूगोल का वर्गीकरण किया जाने लगा तथा उनकी स्पष्ट व्याख्या की जाने लगी।

5.6 सारांश

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान या आधुनिक युग तक भूगोल का चिंतन फलक परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन शास्त्रीय काल में भूगोल की विषय-वस्तु को सभी विषयों के साथ सम्मिलित रूप से पढ़ा जाता था। लेकिन धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता गया और परिवर्तन के साथ यह अपने विकसित स्वरूप में पहुँच गया। जिसमें प्राचीन व मध्यकाल में भूगोल को पर्यावरण के सन्दर्भ में प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण व गणितीय आधार दिया गया। इसके बाद पुनर्जागरण काल में भूगोल में नये क्षेत्रों की खोज की गई। उनके मानचित्र बनाये गये तथा समुद्री मार्गों व नवीन खोजों से प्राप्त स्थलों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी। इसी समय वारेनियस व क्लूवेरियस जैसे विद्वानों ने भूगोल को सामान्य भूगोल व भौतिक भूगोल के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया। भौगोलिक चिंतन फलक के दौर में 18वीं सदी में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जब यूरोप के प्रमुख दार्शनिकों से प्रभावित होकर काण्ट ने पदार्थ जगत की महत्वता को प्रदर्शित करने का कार्य किया तथा भूगोल में दार्शनिक आधार का शिलान्यास किया तथा साथ पृथ्वी की उत्पत्ति, महाद्वीप, महासागर, जलवायु, जीव-जन्तु, वनस्पति जगत को भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित करने का प्रयास भूगोल को ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों की जननी कहा जाता है। 19वीं सदी के मध्य तक आते-आते भूगोल के विकास या इसके परिवर्तनशील फलक में अपना योगदान देने वाले विद्वानों में हम्बोल्ट व रीटर जैसे विद्वानों का प्रवेश हो चुका था। जिन्होंने भौगोलिक विषय-वस्तु को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया तथा ये प्राकृतिक दृश्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने

लगे तथा इनके बाद रेटजेल ने भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में मानव स्थान सुनिश्चित कर दिया।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

पैराडाइम— सम्बन्ध शास्त्र के प्रत्कर्मी तथा निष्कर्षों से सम्बन्धित होते हैं।

पराभौतिकी— विज्ञान के व्यापक स्वरूप के प्रदर्शन से सम्बन्धित

समाज वैज्ञानिक फलक— सर्वमान्य एवं सुदृढ़ वैज्ञानिक मान्यताओं पर परिपोषित होता है।

बोध प्रश्न

5.8 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— भूगोल के चिंतन फलक में समावेश तत्वों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न-02— भूगोल में परिवर्तनशील चिंतन फलक स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-03— आधुनिक काल के चिंतन फलक को स्पष्ट कीजिए।

5.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01— कूहन द्वारा प्रतिपादित चिंतन फलकों के प्रकार बताइए।

प्रश्न-02— पराभौतिकी फलक क्या है?

प्रश्न-03— समाज वैज्ञानिक फलक क्या है?

प्रश्न-04— समस्या समाधान फलक क्या है?

प्रश्न-05—अन्धकार युग के प्रमुख विद्वानों के नाम बताइए।

5.8.3 बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-01—पैराडाइम शब्द का प्रथम बार प्रयोग किस विद्वान ने किया।

(क) रीटर

(ख) काण्ट

(ग) कूहन

(घ)हम्बोल्ट

प्रश्न-02—पैराडाइम शब्द का प्रथम बार प्रयोग किस सन में किया गया?

(क) 1950

(ख) 1960

(ग) 1865

(घ)1966

प्रश्न-03—प्रो० हेटनर ने यूरोप में अन्धकार युग का प्रारम्भ किस सदी से माना है?

(क) द्वितीय

(ख) तृतीय

(ग) चतुर्थ

(घ)पंचम

प्रश्न-04—सूर्य केन्द्रित विचार किसने दिया?

(क) क्लूवेरियस

(ख) वारेनियस

(ग) कापरनिकस

(घ)हम्बोल्ट

उत्तर माला—

01—(ग),02—(घ),03—(क), 04—(ग),

5.8 सन्दर्भग्रन्थ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- **Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.**
- **Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.**
- **Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.**
- **Mastin G.F. All possible world. Oxford London.**
- **Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.**
- प्रो. माजिद हुसैन भौगोलिक चिन्तन का इतिहास रावत प्रकाशन नई दिल्ली

इकाई-6 : भूगोल-भू भौतिकी के रूप में

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 भूगोल भू-भौतिकी के रूप में
- 6.4 भू-भौतिकी के प्रति असंतोष
- 6.5 सारांश
- 6.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 6.7 बोध प्रश्न
- 6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

18वीं सदी तक आते-आते भूगोल का स्वरूप बहुत अधिक विकसित हो चुका था। जर्मन विद्वान कान्ट ने भूगोल के इस स्वरूप को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भूगोल के भू-भौतिकी-स्वरूप के पीछे भौतिक भूगोल के विषय क्षेत्र को आधार माना गया। इससे पहले भौतिक भूगोल को सामान्य भूगोल के नाम से संबोधित किया जाता। यह पृथ्वी तल का अध्ययन है तथा पृथ्वी पर पाये जाने वाले भौतिक स्वरूपों का अध्ययन किया जाता है। साथ ही इस पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु तथा वनस्पतियों का जलवायु तत्व के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करना। यह भूगोल का एक परिवर्तनशील चिंतन फलक माना जाता है जिसमें विद्वानों का एक वर्ग भू-भौतिकी को पराभौतिक प्रकार का एक विषय माना जाता है। रीटर ने Eardkunde अर्थात् सम्पूर्ण भू-विज्ञान के रूप में पृथ्वी का अध्ययन किया था और उनकी इस अवधारणा का समर्थन फोबेल, पेरोल व जरलैण्ड ने किया था परन्तु उन्होंने इसकी सोद्देश्यपूर्ण अवधारणा को स्वीकार नहीं किया था। फोबेल ने भूगोल को एक क्रमबद्ध भौतिक भूगोल कहा था। पैरोल ने अपने गहन भू-आकृतिक अनुसंधानों के आधार पर भौतिक भूगोल के क्षेत्र में एक क्रांति का सूत्रपात कर दिया था अर्थात् प्रारम्भिक दशकों में भौतिक भूगोल के अध्ययन काल के रूप में भूगोल का विकास हुआ।

6.2. उद्देश्य (Objectives)

- भूगोल के प्राकृतिक पक्ष को उजागर करना
- पृथ्वी में निहित पदार्थों को एकजुट रखने व उनमें परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट करना।
- भूगोल के प्रारम्भिक स्वरूप को भौतिक भूगोल में परिवर्तित करना।
- सम्पूर्ण पृथ्वी तल का एक ग्रह के रूप में अध्ययन करना।

6.3. भूगोल भू-भौतिकी के रूप में-

18वीं शताब्दी में भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में कुछ ठोस परिवर्तन किये गये जिसके साथ ही भूगोल में कई नवीन संकल्पनाओं का विकास हुआ। इनमें भू-भौतिकी रूप भी एक प्रकार है। काण्ट, हम्बोल्ट, हीटर गयोर्ट जैसे प्रसिद्ध विद्वानों के योगदान पराभौतिकी किस्म के थे। उन्होंने भूगोल को दार्शनिक आधार प्रदान किया क्योंकि इन पर उस समय जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिकों का प्रभाव था। उन्होंने ईश्वर की मनोद्देश्य सृष्टि अथवा प्रकृति में व्याप्त एकता एवं जीवन्त समाष्टि के रूप में पृथ्वी का भू-भौतिकीय अध्ययन किया था। रीटर ने अपने ग्रंथ Erdkunde अर्थात् सम्पूर्ण भू-विज्ञान के रूप में पृथ्वी का अध्ययन किया था और उनकी इस अवधारणा का

समर्थन फ्रोबेल, पेरोल, जरलैण्ड, जैसे विद्वानों ने किया था परन्तु साथ ही रीटर सोदेश्यपूर्ण अवधारणा को इन लोगों ने स्वीकार नहीं किया था। इस प्रकार किसी एक मत पर सभी विद्वानों की आम सहमति हो 18वीं सदी में यह कम देखने को मिलता है तथा ठोस वैज्ञानिक तर्क के आधार पर ही इस युग में किसी विचारधारा को समर्थन दिया जाता था।

फ्रोबेल भूगोल को एक प्राकृतिक विज्ञान मानते थे तथा मनुष्य को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते थे। मानवीय क्रियाकलापों को व्यावहारिक भूगोल अथवा ऐतिहासिक दार्शनिक भूगोल के रूप में एक गौण स्थान प्रदान करते थे। इस प्रकार दो अलग प्रकार के भूगोल को अस्वीकार करते थे।

जरलैण्ड ने भू-विज्ञान (Erdkunde) के शाब्दीक अर्थ को स्वीकार करते हुए। इसे 'पृथ्वी का विज्ञान' कहने पर जोर देते थे। जिसके अन्दर मानव व मानव के क्रियाकलापों के लिए कोई स्थान नहीं था। जरलैण्ड ने आगे बताया की पृथ्वी भौतिक तत्वों का एक ऐसा पुंज है जो सतत परिवर्तनशील है तथा जो विभिन्न शक्तियों द्वारा परस्पर जुड़े एवं अन्तर्सम्बन्धित होने के कारण एक सम्पूर्ण इकाई का निर्माण करते हैं। ब्रह्माण्ड की असंख्य ऐसी इकाईयों की भांति पृथ्वी है। अतः भूगोल के अध्ययन का उद्देश्य उन शक्तियों का अध्ययन करना है जो पृथ्वी में निहित पदार्थों को एकजुट करती है तथा उनमें परिवर्तन लाती है। इस प्रकार इससे यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण पृथ्वी का एक ग्रह के रूप में अध्ययन भूगोल का विषय क्षेत्र है। अतः भूगोल की विषय वस्तु में पृथ्वी की आकृति, विस्तार तथा सूर्य एवं अन्य ग्रहों से सापेक्षिक स्थिति का अनिवार्य रूप से विवरण दिया जाता था। इस प्रकार के प्रारम्भिक विकरण के पश्चात जिन अन्य भौतिक तत्वों का विवरण प्रस्तुत किया जाता था वे पृथ्वी की ऊपरी सतह पर मिलने वाले तत्वों तक ही सीमित होते थे।

शुद्ध भूगोल (Reine or Pure Geography)

शुद्ध भूगोल के रूप में विकसित नवीन भूगोल का आधार राजनीतिक न होकर प्राकृतिक था। किन्तु इसने राजनीतिक भूगोल की विशिष्ट समस्याओं को अध्ययन से पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकाला फिर भी शुद्ध भूगोल ने पृथ्वी की स्थायी प्राकृतिक विशेषताओं को ही आधारशिला बनाया। शुद्ध भूगोल के समर्थकों में बुआचे (Buache), जे.सी. गट्टेरेर (J-C- Gatterer), होम्मेयर (Hommeyer) तथा ज्यूने Zeune प्रमुख हैं।

फिलिप बुआचे (Buache P-, 1700–1773)

बुआचे जर्मन भूगोलवेत्ता था। उसने अपने लेख 'Essai De Geographic Physique' में प्राकृतिक सीमाओं का प्रयोग किया। उन्होंने बताया कि, पृथ्वी नैसर्गिक बेसिनों में विभाजित है तथा प्रत्येक बेसिन अपने चारों ओर सीमा पर स्थित पर्वत श्रेणियों द्वारा समीपवर्ती बेसिनों से विलग है। इनको पर्वत की सतत शृंखलाओं द्वारा सीमाबद्ध प्रमुख बेसिनों के रूप में पृथ्वी के अंकन सम्बन्धी संकल्पना के लिए जाना जाता है। भूमि पर ये बेसिन नदी बेसिन के रूप में होते हैं तथा पर्वत अपवाह तंत्रों को विभाजित करने का कार्य करता है। ये नदियाँ सागरों तक पहुँचती हैं। बुआचे प्रथम भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने स्थलीय गोलार्द्ध का अस्तित्व सिद्ध किया। इन पर्वत श्रेणियों के साथ ही अन्तः समुद्री कटकों Sub&Marine Ridges का भी वर्णन किया है। उन्होंने तीन प्रकार की पर्वत श्रेणियाँ बतायी हैं— (1) सर्वोच्च पर्वत, जिसका विस्तार पूर्व-पश्चिमी अथवा उत्तर-दक्षिण में मिलता है (2) उच्च वर्ग की श्रेणियाँ, ये बेणियाँ प्रथम वर्ग की शाखायें हैं, जो मुख्य नदी बेसिनों को एक दूसरे से विलग करती हैं (3) निम्न श्रेणियाँ, ये मध्यम ऊँचाई की शाखायें हैं, जिनसे छोटी नदियाँ निकलती हैं। उसने शुद्ध समोच्च रेखाओं द्वारा उच्चावच (Relief) को मानचित्र पर प्रदर्शित करके अपने सिद्धान्त को स्पष्ट किया। बुआचे ने सन् 1737 में इंग्लिश चैनल के अध्ययन के लिए इसी प्रकार का उच्चावच मानचित्र बनाया था। इस प्रकार अन्य भूगोलवेत्ता तीव्रता से बुआचे का अनुसरण करने लगे। उनका विश्वास था कि राजनीतिक सीमाओं की अपेक्षा पर्वत श्रेणियों तथा अन्तः सागरीय कटकों द्वारा निश्चित की गई सीमाएँ अधिक स्थायी होती हैं। इसलिए प्राकृतिक सीमाओं के आधार पर किया गया प्रादेशिक आधार अधिक शुद्ध होता है।

बुश्चिंग (Anton Busching, 1724–1793)

फ्रेंच भूगोलविद् बुआचे का समकालीन जर्मन दार्शनिक एवं भूगोल के लेखक बुश्चिंग अठारहवीं सदी के प्रमुख भूगोलवेत्ताओं में से एक थे जिन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग (लेनिनग्राद) में एक चर्च में सन् 1761–66 तक लूथर्न मंत्री (पादरी) के रूप में कार्य किया। बुश्चिंग ने ही प्रथम बार रूस में दृश्यभूमि क्षेत्रों (Landscape Zones) के अध्ययन का सुझाव दिया था इसे 6 खण्डों में प्रकाशित पुस्तक विश्व भूगोल (1762) में सम्मिलित किया था।

इन्होंने ही सर्वप्रथम यूरोपियन रूस का अक्षांशीय विभाजन किया तथा विभिन्न प्राकृतिक दशाओं को उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी, तीन भागों में विभाजित किया। रूसी भूगोलविदों ने बुश्चिंग के इस सुझाव को तुरन्त स्वीकार किया था तथा रूस को प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करने की योजना बनायी। बुश्चिंग ने सन् 1754 से 1792 तक 'New Erdbeschreibung' नामक पुस्तक ग्यारह भागों में प्रकाशित की भी, जिसमें पृथ्वी तल के ज्ञात धरातल का एक विवरण प्रस्तुत किया था। इन्होंने इस कृति में राजनीतिक इकाइयों को अपने प्रादेशिक आधार पर प्रयोग किया।

गट्टेरेर (Johann Christoph Gatterer, 1727–1799)

गट्टेरेर ने बुआचे की संकल्पना का अनुसरण करते हुए सन् 1775 में प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'Abriss der Geographie' (संक्षिप्त भूगोल) में नदी बेसिनों के आधार पर विवरण प्रस्तुत किया। प्राकृतिक प्रदेशों की संकल्पना को गट्टेरेर ने सन् 1773 में ही प्रभावोत्पादक ढंग से लागू कर दिया था, जिसे आगे बढ़ाते हुए एक प्राकृतिक इकाई के रूप में सन् 1805 तक होम्मेयर ने इस अभाव की पूर्ति की। गट्टेरेर के अनुसार, भूगोल पृथ्वी का वर्णन है जो इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि पृथ्वी तल का स्वरूप कैसा है तथा मानव ने इसे कैसे परिवर्तित किया है। इसमें ब्रह्माण्ड (Heaven) एवं पृथ्वी का पृथक्-पृथक् तथा परस्पर प्रभावों का वर्णन किया जाता है। सर्वप्रथम उसी के लेखों में प्राकृतिक क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। उसने पर्वतों, सागरों, नदी बेसिनों आदि के आधार पर क्षेत्रों का नामकरण किया था। उन्होंने अपने ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में प्रदेशों का प्राकृतिक वर्गीकरण (Natural Classification) किया गया है। गट्टेरेर पूर्ण रूप से राजनीतिक इकाइयों का खण्डन नहीं करता है। उनके ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में राजनीतिक इकाइयों का विवरण मिलता है, जो संक्षिप्त रूप से बुश्चिंग की शैली का अनुसरण है, तथापि इनका मुख्य उद्देश्य विशुद्ध भूगोल (Reine Geography) की प्रवृत्ति को विकसित करना था।

होम्मेयर (Hommeyer)

होम्मेयर ने बुआचे की संकल्पना का पूर्णरूपेण अनुसरण करते हुए सन् 1805 में पृथ्वी का प्राकृतिक विभाजन प्रस्तुत किया। होम्मेयर भू-आकृतियों की एकता में विश्वास करता था। इस सन्दर्भ में उन्होंने बताया कि राजनीतिक इकाइयाँ ऐतिहासिक घटनाओं का परिणाम होती हैं जो परिवर्तनशील हैं जबकि प्राकृतिक विभाग स्थायी एवं अपरिवर्तनशील हैं। इन्होंने प्राकृतिक प्रदेशों के पदानुक्रम को वर्णित करते हुए बताया कि सबसे ऊपर प्राकृतिक विभाग (Land) तथा उसके उपरान्त निम्न क्रम में क्रमशः प्रदेश (Landschaft), इलाका (Gegend) तथा स्थल (Ort) आते हैं। इन्होंने नदी बेसिनों के रूप में प्राकृतिक प्रदेशों को विभक्त किया।

सन् 1810 में प्रकाशित अपने ग्रन्थ यूरोप का शुद्ध भूगोल (Reine Geographic Von Europe) में पृथ्वी तल के वर्तमान स्वरूप (Gestalt) को दर्शाया है, जिसमें विभाजन का आधार मुख्यतः नदियों एवं बेसिनों को लिया है। इस ग्रन्थ में होम्मेयर महोदय ने पृथ्वी तल के वर्तमान रूप, प्राकृतिक प्रदेशों की स्थिति, आकार तथा विस्तार का विवरण दिया है। इस प्रकार शुद्ध भूगोल (Reine Geography) की विचारधारा को पूर्णरूपेण क्रियान्वित किया है।

ज्यूने Zeune

ज्यूने ने होम्मेयर की तरह नदियों के बेसिनों को प्राकृतिक इकाई मानकर शुद्ध भूगोल लिखा। ज्यूने बर्लिन में रोटर के पूर्ववर्ती प्राध्यापक थे। उनके द्वारा रचित पुस्तक, Gea: Versuch Eine Wissenshat Liche Erdkunde अर्थात् Gea एक वैज्ञानिक भू-विज्ञान का प्रयास। ज्यूने महोदय ने भौगोलिक विवरण में राजनीतिक इकाइयों को पूर्ण रूप से नजरअन्दाज किया है तथा प्राकृतिक विभागों को मद्देनजर रखा है। इन्होंने प्राकृतिक इकाई के रूप में प्रत्येक नदी बेसिन के पेड़-पौधों, जन्तुओं तथा मानव समुदाय का वर्णन किया है तथा बताया कि पर्वत श्रेणियाँ जल विभाजक होने के साथ-साथ वृक्षों, जन्तुओं तथा मानव वर्गों की भी प्राकृतिक सीमायें हैं। इसी विचारधारा के अनुसार पादप तथा जन्तु समुदाय का मानव वर्गों से अन्तर्सम्बन्ध होता है।

भूगोल में नवीन विज्ञान के विकास के रूप में विकसित शुद्ध भूगोल के समर्थकों ने उसके इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया कि भूगोल इतिहास की सेविका नहीं वरन् अनुजा है। इन दोनों की स्पष्ट तुलना काण्ट ने की थी। रुहेल (1811) तथा बूखर ने भी इस बात को स्पष्ट किया था कि किस सीमा तक भौगोलिक अध्ययनों में ऐतिहासिक पुट देना चाहिए। लेकिन

शुद्ध भूगोल का नया विज्ञान, उद्देश्य तथा आशाओं की अभिव्यक्ति मात्र था, न कि निष्पत्ति। सन् 1811 में बट ने प्रदेशों को जैविक बताया था किन्तु आज तक कोई भी भूगोलवेत्ता एक भी प्रदेश को जैविक रूप में स्थापित नहीं कर सका है। बूखर ने वैज्ञानिक ईमानदारी के आधार पर प्राकृतिक प्रदेशों के विभाजन की असफलता पर बल दिया था।।

यद्यपि भूगोल का आधार राजनैतिक नहीं अपितु प्राकृतिक था, परन्तु उसने राजनैतिक भूगोल की विशिष्ट समस्याओं को अपने अध्ययन कक्ष से निकाल नहीं दिया। इसके विपरीत यह दावा किया कि उनके राजनैतिक भूगोल को अधिक ठोस आधार प्रदान किया है विशेषकर इस काल में, राज्यों के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तनों ने भूगोलवेत्ताओं का ध्यान आकृष्ट किया तथा प्राकृतिक सीमाओं का सिद्धान्त, जो प्राकृतिक भूगोल के सन्दर्भ में विकसित किया गया था, राजनैतिक भूगोल में प्रयुक्त किया गया। इसका एक उपजात परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक सीमा, शब्द के प्रति और सम्मानित उत्पन्न हो गयी तथा भाषावार सीमा को भी प्राकृतिक सीमा कहा जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पूर्वकाल में इस संकल्पना को एक यूरोपीय शासन ने बलपूर्वक रखा।

यद्यपि भूगोल के नवीन विज्ञान ने पृथ्वी की स्थाई प्राकृतिक विशेषताओं को ही आधारशिला बनाया, परन्तु समय की गतिविधि के साथ उस मुख्यतः उनके मानवीय सम्बन्धों पर बल दिया। इस सम्पूर्ण काल में अधिकांश लेखकों ने ज्ञात-अज्ञात कांट का अनुसरण करके प्राकृतिक विशेषताओं के मानवीय महत्त्व को दोहराया। मूलर तथा कैसर ने विशिष्ट रूप से मानव गृह के रूप में पृथ्वी के अध्ययन पर बल दिया। दूसरी ओर होमेयर प्रभृति लेखकों ने शुद्ध भूगोल का मुख्य उद्देश्य भू-आकृतियों का वर्णन बताया, अन्य विशेषताएँ व्यावहारिक भूगोल की विषय सामग्री में सम्मिलित की जा सकती थीं। इस समय भूगोल की एक अन्य संकल्पना की भी चर्चा हुई जिसमें वस्तुओं के वितरण पर बल दिया गया। इसका प्रतिपादन लिंडनेर ने सन् 1806 में किया, परन्तु उसी वर्ष रिटर ने इसका कड़ा विरोध भी किया। अन्त में यह भी जोड़ देना आवश्यक होगा कि जिन विद्वानों ने भूगोल विज्ञान के निर्माण का प्रयास किया, उन्होंने बार-बार दो मौलिक सिद्धान्तों पर बल दिया पहले उन्होंने वास्तविक तथ्यों को निर्धारित करने पर बल दिया, साथ ही सूचना स्रोतों को विशिष्ट रूप से इंगित करने की आवश्यकता भी बतायी। यह परिवर्तन निश्चय ही श्लाघनीय था, क्योंकि यह किसी भी वैज्ञानिक कार्य की शुद्धता के लिए अनिवार्य तथा पूर्वकालीन अंध-विश्वास एवं कल्पित तथ्यों से मुक्त करने का सक्रिय प्रयास था।

परन्तु शुद्ध भूगोल का नया विज्ञान, उद्देश्यों तथा आशाओं की अभिव्यक्ति मात्र था, न कि निष्पत्ति। यद्यपि तथ्यों को स्थापित करने पर बल दिया जाता था, परन्तु इस काल के अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने बिना जाँच किये तथ्यों के क्रम स्थापित किये। इनकी बहुत-सी संकल्पनाएँ आज भी उत्तराधिकार स्वरूप उपलब्ध हैं अथवा उन्हें नया जामा पहना दिया जाता है।

6.4. भू-भौतिकी स्वरूप के प्रति असंतोष

भूगोल के परिवर्तनशील चिन्तन फलक में भूगोल में कई विचारधाराओं का विकास हुआ तथा समय के साथ कई भूगोलवेत्ताओं ने इसके प्रति असंतोष भी प्रकट किया है। इसी तरह रिटर के Eardkunde की शाब्दिक व्याख्या पर आधारित भूगोल की इस संकल्पना के प्रति कई विद्वानों ने असंतोष प्रकट किया तथा इसे भूगोल का चिन्तन फलक बताया। इसके प्रति असंतोष निम्न बिन्दुओं को लेकर बताया जाता है।

- 1) शुद्ध तार्किक आधार पर विज्ञान की एक विशेष प्रकार की व्याख्या पर आधारित था न कि भूगोल के ऐतिहासिक विकास पर जो भूगोल को किसी एक ही क्षेत्र तक सीमित करने का प्रयास करता है। जहां ऐसा नहीं है।
- 2) जरलैण्ड की विज्ञान की परिभाषा सिर्फ प्राकृतिक विज्ञानों तक ही सीमित थी। इनके अनुसार विज्ञान वही है जिसके निश्चित परिणाम निकलते हो जिसके नियम अकारण हो तथा सम्भावनाओं की किसी प्रकार की कोई गुंजाइश नहीं थी। इसी तरह मानवीय तत्वों में अनेक संभावनाएं निहित है भूगोल में शामिल नहीं किये जा सकते। विज्ञान की यह संकल्पना अब प्राकृतिक विज्ञानों में भी मान्य नहीं है। जिसे भूगोलवेत्ताओं ने अस्वीकारा।
- 3) जरलैण्ड द्वारा प्रस्तुत पृथ्वी के तल की व्याख्या को अतार्किक बताया गया। यदि पृथ्वी में सन्निहित

पदार्थ जो परस्पर सम्बन्धित विकास की प्रक्रिया में हैं' के अन्तर्गत चट्टान, जल एवं वायु को सम्मिलित करते हैं तो इसका पौधों के रूप में रूपान्तरण उससे बाहर कैसे हो सकता है, उसी प्रकार क्या मानव भी भौतिक पदार्थों का रूपान्तरण नहीं है। क्या मानव ऊर्जा को पृथ्वी के स्वरूप से काफी हद तक बदल सकता है। पृथ्वी की रूपान्तरणकारी शक्तियों में से एक नहीं है। इस आधार पर मानव एवं उनके कार्यकलापों को पृथ्वी के विज्ञान से बाहर रखना तर्कसंगत नहीं है।

यदि पृथ्वी के सतत परिवर्तनशील पदार्थों का अध्ययन भूगोल का उद्देश्य मान लिया जाए तो भी मानव एवं मानवकृत तत्वों का अध्ययन करना पड़ेगा क्योंकि सतत परिवर्तनशील पदार्थ, चट्टान, जल, वायु से सम्बन्धित है। इन पदार्थों के अंश ही पौधों एवं जन्तुओं के रूप में परिणत होते हैं। उसी प्रकार मानव शरीर तथा उनके सांस्कृतिक तत्व भी पृथ्वी के उक्त पदार्थों के ही परिवर्तित रूप हैं। इस प्रकार भूगोल का भू-भौतिकी स्वरूप भूगोल में प्राकृतिक तत्वों के अध्ययन पर जोर देता है। यह मानव के स्थान को गौण मानता है। जबकि मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर प्राकृतिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है। प्रकृति में मानव का स्थान सर्वोपरी है मानव ही प्राकृतिक पदार्थों की उपयोगिता का जानकार है। इसलिए भूगोल के पराभौतिकी स्वरूप को अस्वीकार किया गया।

- 4) जिस पृथ्वी पर प्राकृतिक दृश्यों के परिवर्तन के पीछे प्रकृति का स्वयं का हाथ आज मानव भी इन प्रकार के रूपान्तरण में अपना योगदान दे रहा है। इसलिए मानव एवं मानव ऊर्जा को पृथ्वी का अंश मानना तर्कसंगत नहीं है। जरलैण्डने इस पर कहा है 'पृथ्वी के सभी पदार्थ एवं ऊर्जा मिलकर एक सम्पूर्ण इकाई का निर्माण करते हैं तो मानव एवं मानवीय ऊर्जा जो पदार्थों को रूपान्तरित करने वाली शक्तियों के अंश के रूप में है उसे निकाल देने से वह इकाई सम्पूर्ण कैसे रह जायेगी? जरलैण्ड का यह तर्क भूगोल के भू-भौतिकी स्वरूप का खंडन करता है।
- 5) यदि भूगोल को पृथ्वी के भू-भौतिकी तक ही सीमित मान लिया जाए तो भी इनमें अपेक्षित एकात्मकता नहीं प्राप्त होगी। इसमें जलवायु विज्ञान, भूकम्प विज्ञान ज्वालामुखी क्रिया, भूकम्प, चुम्बकत्व, जल विज्ञान का भी समावेश जरूरी है। शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से ये सभी भौतिक शास्त्र की अनेक शाखाएं हैं इनके अध्ययन की अलग विधियां हैं। इसका योग एक विज्ञान से न होकर कई भौतिक, भू-विज्ञान से सम्बद्ध है। भूगोल की प्रकृति को एक विषय-वस्तु से नहीं बांधा जा सकता है।
- 6) भूगोल के भू-भौतिकी स्वरूप के प्रति असंतोष उभरने के कई कारण हैं तथा इस पर कई विद्वानों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं। इसी तरह के एक तर्क में बताया गया है कि यदि भूगोल को सिर्फ पृथ्वी के भौतिक पक्ष तक सीमित भी कर दिया जाए, तब भी इनमें एकसूत्रता अथवा विशिष्टता नहीं होगी क्योंकि वह सम्पूर्ण भौतिक शास्त्र के समानान्तर अध्ययन होगा।
- 7) भूगोल को भू-भौतिकी का अध्ययन मान लेने से न सिर्फ हम्बोल्ट एवं रीटर के कार्य वरन् सभी विगत भौगोलिक कार्य जो अधिकतर मानवकृत कार्यों से संबंधित रहे हैं व्यर्थ हो जायेंगे।

6.5 सारांश (Summary)

इस प्रकार भूगोल का भू-भौतिकी स्वरूप एक दिगभ्रम करने वाला स्वरूप है। जो अपनी स्पष्ट व्याख्या कर पाने में असक्षम रहा है। इनकी विषय-वस्तु भूगोल में अत्यन्त ही सीमित प्रकार की है। इनके नाम ही यह एक प्रकार की दुविधा या द्वन्द की स्थिति भी प्रकट करता है। जो मानव एवं भौतिक स्वरूप के मध्य है। यह पूरी तरह भ्रम की स्थिति उत्पन्न करता है। क्योंकि इसने भौतिकी स्वरूप को पराभौतिकी दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। यह 17वीं सदी के समय का भूगोल का स्वरूप जिस समय भूगोल अपने स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर तथा मूल रूप को लेकर जूझता जान पड़ता है। इसमें ना ही किसी प्रकार की संकल्पना है और ना ही स्पष्ट दृष्टिकोण है। एक प्रकार के विद्वानों का वर्ग जिसमें काण्ट, फ्रोबेल, जरलैण्ड हैं जो भू-भौतिकी को भूगोल में समाविष्ट करने का प्रयास करते हैं। परन्तु अन्य विद्वानों द्वारा अपने हिसाब से कही गई बातें सामने आने के बाद विद्वानों का यह वर्ग संशय की स्थिति में पड़ गया तथा वे भी इसमें परिवर्तन की बात करने लगे। इसके बाद हम्बोल्ट व रीटर ने भी इसमें अपने ढंग से व्याख्यायित करते दिखे। परन्तु सबसे ज्यादा रीटर के अर्डकुण्डे को जो केवल पृथ्वी तल की व्याख्या की बात करते हैं उसे इस आलोचना का सामना करना पड़ा है। इस समय जब विभ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई तब भूगोल में एक नये चिंतन फलक की आवश्यकता प्रबल हो

गई। सन 1882 में रेटजेल की पुस्तक एन्थ्रोपोज्योग्राफी प्रकाशित हुई, जो अपने आप में मानव भूगोल का पर्याय थी। इसी से मानव भूगोल नामक भूगोल की दूसरी शाखा ने जन्म लिया इसमें भूगोल की नवीन संकल्पनाओं तथा चिन्तन फलकों का समावेश हुआ। इन्होंने मानव एवं भौतिक पक्षों को अलग-अलग करने का कार्य किया, जिसने मुख्य रूप से भौतिक पक्षों के साथ मानव की जो व्याख्या अब को पहले सही ढंग से उजागर नहीं की गई थी। उसे एक अलग रूप तथा उसे स्पष्ट करने का कार्य किया है। यहां से मानव का एक अलग व ठोस स्थान सुनिश्चित हुआ तथा विभ्रम की स्थिति को काफी हद तक सुलझा लिया गया। रेटजेल चिंतन फलक को साथ लेकर आगे बढ़े तथा उन्होंने नियतिवाद तथा प्रकृति— मानव अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन का मार्ग प्रस्तुत किया। रेटजेल के बाद फ्रांस व अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं ने भी मानव की प्रकृति को अपने ढंग से स्पष्ट करने का कार्य किया तथा विद्वानों ने तो पूरी तरह से प्रकृति के प्रभाव को नकार दिया क्योंकि इन तक आधुनिक तकनीकों का विकास हो चुका था जिनके प्रयोग से मानव प्रकृति में कुछ हद तक परिवर्तन करने में सफल होने लगा था। इससे प्रभावित होकर फ्रांसीसी विद्वानों ने तो प्रकृति की जगह मानव को ही सर्वोपरी मान लिया। परन्तु रेटजेल भले ही मानव भूगोल के पोषक रहे हो परन्तु उन्होंने कभी मानव को ऊपर नहीं माना बल्कि प्रकृति को ही सर्वोच्च माना।

इस प्रकार भू-भौतिकी पर इतने पक्ष-विपक्ष की बात करने के बावजूद कहा जा सकता है। कि यह संकल्पना कभी अपना स्पष्ट रूप नहीं पा सकी तथा स्पष्ट रूप प्राप्त करने से पहले ही यह आलोचनाओं का और अपनी प्रकृति पर सवाल होते देख इस विचारधारा से विचारक पलायन करने लगे जिससे यह अधर में रही।

6.6. पारिभाषिक शब्दावली

- **भू-भौतिकी**— सम्पूर्ण भू-विज्ञान के रूप में पृथ्वी का अध्ययन
- **अर्डकुण्डे**— रीटर का प्रमुख ग्रंथ, जिसमें पृथ्वी तल का विस्तृत विवरण दिया गया है?
- **नियतिवाद**— रेटजेल द्वारा प्रतिपादित मानव-पर्यावरण संबंधों पर विचार

6.7 बोध प्रश्न

6.7.1 दीर्घ उत्तीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 भूगोल में भू-भौतिकी स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या कीजिए

प्रश्न 2. भूगोल के परिवर्तनशील चिंतन फलक में भू-भौतिकी के प्रति उत्पन्न असंतोष की व्याख्या कीजिए।

6.7.2 लघु उत्तीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न- 1— भू-भौतिकी स्वरूप क्या है?

प्रश्न 2. पराभौतिकी का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 3. रीटर के अर्डकुण्डे का शाब्दिक अर्थ बताईए ।

प्रश्न 4. फ्रोबेल की भू-भौतिकी की परिभाषा बताईए।

प्रश्न 5. नियतिवाद किसे कहते हैं?

6.7.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 भू-भौतिकी की स्पष्ट परिभाषा किसने दी ?

(क) जरलैण्ड

(ख) हम्बोल्ट

(ग) काण्ट

(घ) गायोट

प्रश्न 2. Erd Kunde किस विद्वान की रचना है ?

- | | |
|-------------|--------------|
| (क) जरलैण्ड | (ख) हम्बोल्ट |
| (ग) कान्ट | (घ) रीटर |

प्रश्न 3. Anthropogeographic ग्रंथ किस विद्वान की है?

- | | |
|--------------|------------|
| (क) कान्ट | (ख) रेटजेल |
| (ग) हम्बोल्ट | (घ) रीटर |

प्रश्न 4 Anthropogeographic ग्रन्थ किस सन में प्रकाशित की गई।

- | | |
|----------|----------|
| (क) 1881 | (ख) 1882 |
| (ग) 1883 | (घ) 1884 |

प्रश्न 5 रीटर के अर्डकुण्डे का किसने अनुसरण किया?

- (क) फ्रोबेल, पेशल, जरलैण्ड
(ख) फ्रोबेल, रेटजेल हम्बोल्ट
(ग) फ्रोबेल, ब्लास, जरलैण्ड
(घ) इनमें से कोई नहीं,

उत्तरमाला— 1— (क) 2 (ख), ३(ख), 4—(ख), 5—(क)

6.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- **Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.**
- **Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.**
- **Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.**
- **Mastin G.F. All possible world. Oxford London.**
- **Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.**
- प्रो. माजिद हुसैन, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
- यस डी मौर्या, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, प्रवालिका प्रकाशन, प्रयागराज।

इकाई-7 : भूगोल प्रकृति मानव अन्तर्सम्बन्ध के रूप में

इकाई की रूपरेखा

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 भूगोल प्रकृति-मानव अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन
- 7.4 आलोचना
- 7.5 सारांश
- 7.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 7.7 बोध प्रश्न
- 7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल में सर्वप्रथम कार्ल रिटर ने मानव केन्द्रित दृष्टिकोण पर जोर दिया है परन्तु साथ ही उसने नियतिवाद का प्रबल समर्थन भी किया है। रेटजेल के एन्थ्रोपोज्योग्राफी ग्रंथ ने भूगोल की विषय-वस्तु को पूरी तरह से हिला कर रख दिया है। इसके साथ ही भूगोल में एक नये युग या नवीन अध्ययन फलक का प्रारम्भ हुआ। यह अध्ययन फलक प्रकृति तथा मानव के अन्तर्सम्बन्धों पर आधारित थी। यह चिंतन फलक यह दर्शाता है कि मानव किस हद तक प्रकृति के अधीन है। रेटजेल की यह धारणा प्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर के सामाजिक डार्विनवाद के सिद्धान्त की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जिसमें सांस्कृतिक स्वरूपों को प्राकृतिक दशाओं द्वारा नियन्त्रित एवं समायोजित होना प्रदर्शित बताया गया है। यह प्रत्येक जीव के प्रकृति के साथ के अन्तर्सम्बन्धों या प्राकृतिक चयन या सशक्तम के वर्चस्व की संकल्पना पर आधारित है। मनुष्य द्वारा पृथ्वी पर विभिन्न सांस्कृतिक स्वरूपों का निर्माण किया गया है। इन स्वरूपों में कई प्रकार की विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। ये विभिन्नताएँ पृथ्वी पर पाई जाने वाली जलवायुगत विभिन्नताओं के अनुरूप ही अपना स्वरूप लिए हुए हैं। अतः यह भूगोल में एक महत्वपूर्ण चिंतन फलक है जिनके अन्तर्गत प्रकृति मानव के बीच अन्तर्सम्बन्ध विद्यमान है और इसके पीछे रिटर व रेटजेल का योगदान सर्वोत्तम है। जिन्होंने मानव भूगोल की वकालत करते हुए भी मानव को प्रकृति के साथ जोड़कर इसकी विषय वस्तु का निर्माण किया तथा इसे विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया।

7.2. उद्देश्य (Objectives)

- प्रकृति-मानव अन्तर्सम्बन्ध को रूपष्ट करना।
- पृथ्वी पर जैव-अजैव तत्वों की अनुक्रिया को स्पष्ट करना।
- प्रकृति मानव अन्तर्सम्बन्धों की विचारधाराओं को स्पष्ट करना।
- प्रकृति के नियम ढूँढना

7.3. भूगोल प्रकृति-मानव अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन-

जैसा की पहले अध्ययन से स्पष्ट की यह भूगोल का चिंतन फलक है। भूगोल के अध्ययन में पहले प्राकृतिक पक्षों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। जिससे भूगोल में द्वैतवाद का एक लम्बा दौर चला है। रिटर ने भूगोल में मानव भूगोल को स्थान दिलाने का कार्य किया तथा इसे ठोस आधार प्रदान करने का कार्य रेटजेल के प्रमुख ग्रन्थ एन्थ्रोपोज्योग्राफी ने किया। जिसके बाद से भूगोल से द्वैतवाद लगभग खत्म सा हो गया, रेटजेल के विचारों पर हरबर्ट स्पेंसर के सामाजिक डार्विनवाद के सिद्धान्त का प्रभाव था। स्पेंसर का

विश्वास था कि जीव-जन्तुओं व मानव को प्रकृति से अपना स्थान पाने के लिए प्रकृति से संघर्ष करना पड़ता है। 1859 में प्रकाशित डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त की प्रमुखता भी इस युग में मौजूद थी। जिसके तहत हर जैविक तत्वों का अध्ययन प्राकृतिक वातावरण के संदर्भ में किया जाता है। रेटजेल की एक और प्रकाशित पुस्तक राजनीतिक भूगोल में भी जैविक राज्य की संकल्पना दी गई जिसका अर्थ है रहने के लिए स्थान। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जीव-जगत के निवास के लिए रहने के लिए प्रकृति द्वारा कुछ अनुकूल स्थान उपलब्ध कराए गए हैं। जहां जीवन जगत अपने विकास क्रम में आगे बढ़ता है।

रेटजेल से पहले लिप्ले व गैडिस भी इस अन्तर्सम्बन्ध पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्थान→ कार्य-लोग का त्रिसूत्र दिया। जिसमें डार्विन के विचारों की झलक देखी जा सकती है। रेटजेल के ये विचार जर्मनी से आगे बढ़कर अमेरिका पहुँचे जहां डेविस व सेम्पुल ने इनका स्वागत किया तथा निश्चयवादी विचारों को कई तरह उदाहरणों के माध्यम से सुसज्जित किया। इस प्रकार अब तक आते-आते भूगोल विषय क्षेत्र जैविक व अजैविक तत्वों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने वाला हो गया या प्रकृति एवं मानव कार्य-कलाप के मध्य अन्तर्सम्बन्ध लम्बे समय तक भूगोल का विषय क्षेत्र बना रहा परन्तु इनमें फिर प्रकृति व मानव की सापेक्ष भूमिका को लेकर द्वैतता की स्थिति उत्पन्न हो गई तथा यह विवाद नियतिवाद, सम्भववाद एवं नव-निश्चयवाद के रूप में प्रकट हुआ।

7.3.1 नियतिवाद

19वीं शताब्दी में यूरोप में नियतिवाद का प्रचार-प्रसार जोर शोर से किया गया तथा इन संकल्पनाओं का प्रभाव अमेरिका में डेविस पर पड़ा। डेविस ने भूगोल में प्रचलित द्वन्द समाप्त करने तथा प्राकृतिक एवं मानव भूगोल को एक सूत्र में जोड़ने के लिए डार्विन की विकासवादी संकल्पना का सहारा लिया। इन्होंने प्रकृति एवं मानव के कारण-कार्य की अनवरत श्रृंखला में आबद्ध मानते हुए भूगोल के अजैव तत्वों के नियंत्रक एवं जैव तत्वों को अनुक्रियात्मक अन्तर्सम्बन्ध करने वाला विषय बताया। डेविस के अनुसार भूगोल का अध्ययन क्षेत्र सिर्फ प्राकृतिक वातावरण एवं मानव कार्यकलाप के अन्तर्सम्बन्ध तक सीमित नहीं है उनके मतानुसार भू-स्वरूपीय नियंत्रण तथा जीव स्वरूपीय अनुक्रिया का काल क्रमिक विकास भूगोल का अध्ययन क्षेत्र है। अर्थात् पृथ्वी पर कोई भी जीव हो उस पर किसी भी भू-स्वरूप के नियन्त्रण का ऐतिहासिक विवेचन भूगोल की अध्ययन परिधि में आता है। पृथ्वी पर भू-स्वरूप में विभिन्नता पाई जाती है। अन्तर्सम्बन्धों के विज्ञान के रूप में भूगोल का यह नियतिवादी दृष्टिकोण है। इसी प्रकार नियतिवाद की यह विचारधारा यूरोप में विकसित हुई। जिसे अमेरिका में सेम्पुल द्वारा विस्तारित किया गया। सेम्पुल ने भूगोल का विषय क्षेत्र वातावरण-मानव अन्तर्सम्बन्ध तक सीमित किया, उसने मानव की शारीरिक विशेषताएं उसके कार्य कलाप उसके विचार, रीति रिवाज, रहन-सहन आदि प्रत्येक लक्षण पर प्रकृति के नियंत्रण की बात कही। उन्होंने बताया कि प्रकृति के नियंत्रण के बाहर जाकर मनुष्य कुछ भी कर सकने में असक्षम है। मनुष्य की हड्डी, मांस, मस्तिष्क तथा आत्मा में प्रकृति व्याप्त है जो मानव को पृथ्वी पर पाये जाने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के भौगोलिक वातावरण के लिए तैयार करती है जैसे पहाड़ी क्षेत्र को निवासियों को मजबूत टांगे, समुद्रतट पर बसे लोगों को नाव खेने के लिए चौड़ा सीना और मजबूत भुजायें प्रदान करती है। मैदानी क्षेत्रों के लोगों को संकुचित दृष्टिकोण तथा विस्तृत चरागाहों में घूमने वाले लोगों को चिन्तनशीलता का स्तर प्रकृति द्वारा ही प्रदान किया जाता है। पठारों और मैदानों में निवास करने वाले लोगों में ईश्वर के प्रति गहन आस्था देखने को मिलती है। ये सब उदाहरण प्रकृतिवाद को प्रभाव को इंगित करते हैं। सेम्पुल ने भूगोल को प्रमुखतया मानव भूगोल तक सीमित करते हुए इसे अस्थिर पृथ्वी तथा सतत क्रियाशील मानव के परिवर्तनशील सम्बन्धों का अध्ययन माना है। अन्तर्सम्बन्धों के इस दृष्टिकोण को एल्सवर्थ हंटिंगटन ने भी अपना दृष्टिकोण प्रदान किया है। इन्होंने बताया कि मानव भूगोल को भौगोलिक वातावरण तथा मानव कार्यकलाप एवं गुण के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति एवं वितरण के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हंटिंगटन ने अपने लेखों में मानव कार्यकलापों के साथ ही उसकी सभ्यता एवं संस्कृति को भी प्राकृतिक वातावरण, को भी जलवायु से नियंत्रित होना बताया है। हंटिंगटन सभ्यता एवं संस्कृति पर विचार रखने वाले विद्वान माने गये हैं। जो जलवायु के प्रभावों को अपने आप को मुक्त नहीं रक्त पाये तथा नियतिवाद पर वे खुलकर विचार रखने वाले भूगोलवेत्ता के रूप में जाने गये।

7.3.2. सम्भववाद

अन्तर्सम्बन्धों पर चर्चा करने वाली यह दूसरी विचारधारा है नियतिवादी दृष्टिकोण का प्रचलन अमेरिका में

हुआ वही सम्भववादी दृष्टिकोण फ्रांस में पनपा। फ्रांस में सम्भववाद के जनक विडाल-डि-ला-ब्लाश को माना जाता है तथा सम्भववाद शब्द का प्रयोग फ्रांस के ही एक विद्वान ला फेब्रे ने दिया। ब्लाश ने प्राकृतिक जगत तथा मानव के अन्तर्सम्बन्धों में कालक्रमिक परिवर्तन की बात स्वीकार की तथा इस परिवर्तनशील अन्तर्सम्बन्ध को मानव भूगोल का अध्ययन क्षेत्र बताया तथा इस बात पर बल दिया कि किसी भी क्षेत्र में भौगोलिक वातावरण जितनी विषमताएं व विभिन्नताएँ मिलती है उतनी ही भौगोलिक सम्भावनाएँ पाई जाती है। मानव समुदाय इन सम्भावनाओं का स्वामी है वह अपनी क्षमता के अनुसार भौगोलिक वातावरण का उपयोग कर सकता है। इस दृष्टिकोण का कई भूगोलवेत्ताओं ने समर्थन किया तथा इसे अपने अनुसार प्रस्तुत करने का कार्य किया तथा नियतिवाद के विरुद्ध कई तर्क प्रस्तुत किए।

- (i) पृथ्वी पर मानव ने कुछ ऐसे विशिष्ट प्रकार के कार्य किए हैं जिनकी व्याख्या सिर्फ पर्यावरण की शक्तियों से नहीं की जा सकती है। जैसा एक ही भौगोलिक वातावरण का उदाहरण ले टुण्ड्रा क्षेत्र में एस्किमों और साइबेरिया की जनजातियाँ कई रूपों में भिन्न हैं मध्य अफ्रीका के जंगलों में ही पिग्मी आखेट द्वारा जीवन यापन करते हैं जबकि नीग्रों कृषि द्वारा अपना जीवनयापन करते हैं। जो मानव की ली गई सम्भावनाओं को प्रस्तुत करती है।
- (ii) पर्यावरण मनुष्य को प्रभावित करता है जबकि मनुष्य भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। यह अन्तर्क्रिया इतनी जटिल है कि यह तय कर पाना कठिन है कि कब किसने किस पर प्रभाव डाला है। कुछ विशुद्ध पर्यावरण मानव के कार्यों के परिणाम है। जैसे— भूमध्यसागरीय क्षेत्र में जैतुन या अंगूर की लताएं उस क्षेत्र को मानव द्वारा दी गई अनुपम भेंट है जो एक प्राकृतिक सम्भावना है और मानव द्वारा विकसित है।
- (iii) किसी क्षेत्र में मानवीय गतिविधियों द्वारा वहां के भौतिक पर्यावरण को बदला जाए तो फिर उसे यदि छोड़ दिया जाए तो वहां पुनः वापस पहले जैसी प्राकृतिक वनस्पति का उग पाना सम्भव नहीं है कई आर्थिक व्यवसाय पर्यावरण में प्रभावित नहीं होते वरन् अन्य कारणों से भी प्रभावित होते हैं। जैसे भारत में मांस हेतु पशुपालन नहीं किया जाता। सीमा शुल्क कई आर्थिक कार्यों को पर्यावरण से अधिक प्रभावित करता है। जैसे अमेरिकी महाद्वीप में सस्ते खाद्य पदार्थ के आयात के कारण इंग्लैण्ड में कृषि कार्य समाप्त हो गया और वहां उद्योगों पर अधिक ध्यान दिया गया।
- (iv) मानव एक सक्रिय जीव है जो पर्यावरण के तत्वों से प्रतिक्रिया करके उन्हें परिवर्तित करता है। मानव की क्रियाशीलता पृथ्वी के अजैविक व जैविक सभी स्वरूपों में परिष्कार करती है। ईसा बोमेन ने सिद्ध किया कि मानव प्रकृति की विविधता को एकरूपता में परिणत करता है। इन सब उदाहरणों से सिद्ध है कि प्रकृति मानव को एक ही रास्ते पर आबद्ध नहीं करती है उसके सामने अनेक अवसर प्रस्तुत करती है जिसमें से अपनी राह चुनने को मनुष्य स्वतंत्र है। यह अवसर मानव अपनी इच्छानुसार चुनता है। बरोज ने इस पर कहा है मनुष्य द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया का अध्ययन ही भूगोल को एक सूत्रता प्रदान कर सकता है।

ठीक उतनी ही थी जितनी कि रिचथोकेन द्वारा प्रस्तुत भूगोल की क्षेत्र-विश्लेषण (Chatology) की संकल्पना थी जिसकी विस्तृत व्याख्या हेटनर द्वारा की गई। भूगोल के इस विश्लेषण की आलोचना में जर्मनी में हेटनर तथा अमेरिका में सावर प्रमुख रहे हैं उन्होंने प्राकृतिक दशाओं का मानव समुदाय या मानव कार्य-कलाप पर प्रभाव का भूगोल विषय वस्तु मानने पर निम्न आपत्तियाँ उठाई।

- i. हेटनर के अनुसार, विषयवस्तु को प्राकृतिक कारकों से प्रारम्भ करके मानवकृत तत्वों की व्याख्या तक जाना सही नहीं है। सही ढंग तो यह होता कि मानवकृत तत्वों को वर्गीकृत करने के पश्चात उनके भौतिक कारकों को ढूंढा जाता। एच बैरोज ने भी सन 1922 में अपने लेख पर जोर दिया कि भूगोल में अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या मानव द्वारा पर्यावरण से समायोजन से प्रारम्भ करके की जानी चाहिए न कि विपरीत विधि से अर्थात् पर्यावरण के मानव पर प्रभाव से।
- ii. पर्यावरण का मानव पर नियन्त्रण अथवा प्रभाव के अध्ययन में पर्यावरण का विवेचन विशुद्ध भूगोल मान लिया जाता है और कई विद्वानों ने प्राकृतिक पर्यावरण को भौगोलिक कारक मान लिया। मानव भूगोल को, इस कारक का मानव पर प्रभाव के रूप में मान लिया। इस प्रकार इस विचारधारा में स्पष्टता और

सही समझ विकसित नहीं होने के कारण इसका भूगोल के एकात्मक स्वरूप पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

- iii. इस विचार को लेकर सबसे बड़ी आपत्ति यह उठाई गई जिसमें विद्वानों का एक वर्ग जिनमें लेटनर, स्ल्यूटर, मिशाले तथा सावर ने बड़े कड़े शब्दों में कहा के एक स्वतंत्र विज्ञान का लक्ष्य सिर्फ कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना नहीं हो सकता वरन् किसी विज्ञान का अध्ययन विशेष तथ्य कृत होना चाहिए जिसकी विशेषताओं का विवरण देने के पश्चात ही कारण-कार्य अन्तर्सम्बन्ध ढूँढने की बात उठती है। सावर ने कहा कि अध्ययन करने वाले विषय के रूप में भूगोल के पास अध्ययन हेतु कोई ठोस उद्देश्य नहीं रह जाता ना ही भूगोल की कोई विशिष्ट एवं संतोष प्रद विधि बच पाती है।

हेटनर ने इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि किसी विशिष्ट तथ्य –समूह के संदर्भ में परिभाषित न होकर मात्र कल्पित कार्य-कारण सम्बन्ध के सन्दर्भ में परिभाषित न होकर, भूगोल मात्र पराश्रित होकर रह जाता है।

- iv. मात्र कार्य, कारण अन्तर्सम्बन्ध के सन्दर्भ में किसी विज्ञान को परिभाषित करना इसके विद्यार्थियों को यह निर्देश देने जैसा है कि वे इस प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध अवश्य स्थापित करें। इससे निष्पक्षता के स्थान पर अन्ध विश्वास का प्रश्न मिलता है क्योंकि वही सरल समझा जाता है जो पर्यावरण से मानव का समायोजन दर्शाये।
- v. किसी भी विज्ञान में तत्व विशेष के अध्ययन में अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण अन्तर्निहित रहता है। भूगोल में अन्तर्सम्बन्ध विविध प्रकार के असम्बद्ध तत्वों को सूत्रबद्ध करने का कार्य करते हैं परन्तु ध्यान किसी क्षेत्र में तत्वों की सम्पूर्णता पर न केन्द्रित करके सिर्फ जोड़ने पर केन्द्रित करने से किसी ठोस योगदान की सम्भावना नहीं रहती है।

7.3.3. नव-निश्चयवाद—

मानव-पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण ग्रिफिथ टेलर नव-विश्चयवाद के रूप में किया। इसे रुको-और-जाओ निश्चयवाद या वैज्ञानिक नियतिवाद भी कहा गया है। टेलर ने नव-निश्चयवाद की व्याख्या के सम्बन्ध में कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जिनके माध्यम से इसे व्यक्त किया है। उन्होंने बताया की सम्भववादी सिद्धान्त के प्रवर्तक सम्बन्धित क्षेत्र के उपयोग में मानव का नियंत्रण दर्शाने हेतु उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी घास क्षेत्र में गेहूँ की फसल की पैदावार बढ़ाने हेतु ऊर्वरको का उपयोग किया गया। इसी तरह उत्तरी डेनमार्क के बंजर सदृश्य भूमि में उल्लेखनीय विकास का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं टेलर इसमें मानव की भूमिका के होने से जरा भी इनकार नहीं करते हैं। मनुष्य एक स्वतंत्र कारक नहीं है। किसी देश का विकास तेज करने, मन्द करते अथवा रोकने में सक्षम है, परन्तु यदि वह बुद्धिमान है तो उसे प्राकृतिक वातावरण द्वारा इंगित दिशा से विमुख नहीं होना चाहिए। वह एक नगर के में ट्राफिक पुलिस की तरह है जो यातायात प्रवाह की गति बदल सकता है दिशा नहीं। इस तरह प्रकृति-मानव समिश्र में नव-निश्चयवाद एक नवीन विचार है जो मध्यम मार्ग की बात करता है। इसकी समीक्षा करते हुए जार्ज टैथम कहते हैं इस संकल्पना के अनुसार प्रकृति ने सिर्फ सामान्यतया प्रोग्राम निर्धारित किया है बाकी का कार्य या इसे पूरा करना मनुष्य का काम है, जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य बुद्धिमत्ता से काम करे तभी वह प्रकृति की योजना को पूरा करेगा। कोई कार्य बुद्धिमत्तापूर्ण या मुखर्तापूर्ण इसका निर्णय मनुष्य ही वांछित उद्देश्य के संदर्भ में करता है। टेलर के अनुसार यह उद्देश्य प्रकृति की योजना से ही समायोजित हो सकता है परन्तु मनुष्य इस योजना को कैसे जान सकेगा ? अतः एक बार मनुष्य द्वारा चयन की स्वतंत्रता मान लेने पर यह कहना कठिन है कि मनुष्य स्वतंत्र कारक नहीं है। सम्भववादी विचारकों ने भी माना की वातावरण में असीम सम्भावनाएं नहीं हैं और सम्भावना चयन के लिए कुछ कीमत चुकाना पड़ती है। इस प्रकार किसी भी वातावरण में विभिन्न सम्भावनाओं की सीमा, पर्यावरण द्वारा नहीं वरन मनुष्य की कीमत चुकाने की सीमा या इच्छा द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार नव-निश्चयवाद व सम्भववाद में कोई भेद नहीं रह जाता।

इस प्रकार वातावरण- मानव अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करने वाले विषय के रूप में भूगोल की मान्यता सर्वव्यापी हो गयी थी तथा इसकी मान्यता न्यूनाधिक बीसवीं सदी के सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध में बनी रही। इसमें सम्बन्ध के प्रतिरूप व स्तर को लेकर मतभेद बना रहा। जिसमें सबसे पहले मानव पर पर्यावरण का नियंत्रता माना गया

फिर नियंत्रण के स्थान पर प्रभाव और फिर समायोजन का प्रयोग किया जाने लगा। भूगोल की इस संकल्पना को पारिस्थितिकी सम्प्रदाय की देन माना गया है।

7.4. आलोचना—

वातावरण— मानव अन्तर्सम्बन्ध को भूगोल का विषय क्षेत्र मानने के प्रति 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही आलोचना प्रारम्भ हो गई थी। जिसका आधार सन 1925 में कार्ल सावर की पुस्तक *Morphology of Landscape* के प्रकाशन के साथ आरम्भ हो गई थी। मानव-पर्यावरण सम्बन्धों के इन विचारों की शुरुआत जर्मनी हुई जहाँ रेटजेल ने इसे अपने ग्रंथ मानव-भूगोल में स्थान दिया तथा जर्मनी में इसकी लोकप्रियताहार्टशोर्न ने पर्यावरण— मानव अन्तर्सम्बन्धों की आलोचना अपने हिसाब से की है तथा कहा कि भूगोल को अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन वाला विषय उस समय बताया गया जब विषय अपना सन्तुलन खो चुका था अर्थात् सिर्फ प्राकृतिक तत्वों के अध्ययन को भूगोल की विषय-वस्तु मानने का आग्रह किया गया। उस समय भूगोल की परिसीमा में मानवकृत तत्वों को शामिल करने के लिए अन्तर्सम्बन्ध पर बल देना अनिवार्य हो गया था। अतः इसके बीच संतुलन स्थापित करना अनिवार्य हो गया था।

7.5. सारांश

भूगोल के परिवर्तनशील चिंतन फलक का ही एक रूप पर्यावरण—मानव का अन्तर्सम्बन्ध है। इस दिशा में रेटजेल के कार्य महत्वपूर्ण माने जाते हैं। रेटजेल के शोध का प्रमुख उद्देश्य प्रकृति के नियम ढूँढना रहा। प्रकृति का अध्ययन खुले दिमाग से होने लगा तथा उन प्रक्रियाओं एवं शक्तियों की खोज की जाने लगी जो प्राकृतिक स्वरूपों को रूपायित करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक भूगोल विशेषतया भू-प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन प्रमुख हो गया। ब्रिटेन में टामस टक्सले की जियोग्राफी तथा अमेरिका में मारिस डेविस जर्मनी में फेंक व रिचथोफेन द्वारा भू-आकृतिक विज्ञान में योगदान सर्वविदित है। इन अध्ययनों में प्राकृतिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त प्राक्कल्पना—निगमनात्मक विधि का प्रमुखतया उपयोग होने लगा। इस विधि को ही एक मात्र वैज्ञानिक विधि की मान्यता प्राप्त हुई। इसके अन्तर्गत बाह्य स्वरूपों के मूल कारक को ढूँढने हेतु कुछ प्राक्कल्पनाओं के सहारे वास्तविकता की जांच परख की जाती है। यदि प्राक्कल्पना क्षेत्रीय अध्ययन से पुष्ट होती है तो उसे नियम का दर्जा मिल जाता है जैसा की डेविस का कथन है भूदृश्य, संरचना तथा प्रक्रम समय का प्रतिफल होता है, के सन्दर्भ में विभिन्न परिस्थितियों में भू-आकृतियों का अध्ययन किया जाता है। इसी के साथ मानव भूगोल में मानवीय पक्ष को पुरजोर तरीके से स्थापित करने का कार्य किया है। मानव भूगोल के क्षेत्र में हटिंगटन ने विभिन्न परिकल्पनाएं प्रस्तुत की गईं जैसे सभ्यता के विशिष्ट स्तर, विशिष्ट जलवायु प्रदेशों से सम्बन्धित है एवं उनकी प्रत्यक्षता पुष्टि सिद्धान्त के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसी तरह भौगोलिक चिंतन फलक में प्राकृतिक विज्ञान के नियम प्रस्तुत किए गये हैं। इन नियमों के पीछे डार्विन के नियमों की गहरी छाप है जो निम्न प्रकार से है—

- (i) किसी भी तत्व का निम्न, साधारण से उच्च जटिल स्तरों तक उद्विकास होता है।
- (ii) विभिन्न तत्वों के मध्य साहचर्य एवं संगठन मिलता है— मानव भी जीवन्त पारिस्थितिकी का एक अंग है।
- (iii) संघर्ष एवं प्राकृतिक चयन, जिसके द्वारा सशक्ततम का ही अस्तित्व सुरक्षित रहता है।
- (iv) संयोग भी प्रकृति में विभिन्नता के लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है।

इन अवधारणाओं का प्रभाव डेविस के भू-आकृति के विकास तथा फ्रांस के विद्वानों के सांस्कृतिक भूदृश्य विकास में देखने को मिलता है। इस प्रकार प्रकृति— मानव अन्तर्सम्बन्ध में रेटजेल, डेविस, ब्लांश जैसे विद्वानों ने इसे स्पष्ट रूप को व्याख्यायित करने का कार्य किया है।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **जैविक राज्य**— रेटजेल का एक विचार जिसमें जीवित जीव निवास करते हैं।
- **सामाजिक डार्विनवाद**— हरबर्ट स्पेन्सर का सिद्धांत जिसमें सांस्कृतिक स्वरूपों को प्राकृतिक दशाओं

द्वारा नियोजित व समायोजित दर्शाया गया।

- **नियतिवाद** – प्रकृति मानव अन्तर्सम्बन्धों के विज्ञान के रूप में भूगोल का एक दृष्टिकोण जो मानव पर प्रकृति का पूर्ण नियंत्रण मानता है। जो जर्मनी में विकसित तथा अमेरिका में प्रचलित रहा।
- **सम्भववाद**— प्रकृति मानव अन्तर्सम्बन्धों का एक दृष्टिकोण जो नियतिवाद के विपरीत विकसित हुआ तथा फ्रांस में इसे अपनाया गया।
- **नव-निश्चयवाद** – पर्यावरण मानव अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण ग्रिफिथ टेलर ने 1938 ई. में नव-निश्चयवाद के माध्यम से किया।

7.7. बोध प्रश्न

7.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न-1— पर्यावरण मानव अन्तर्सम्बन्धों के नियतिवादी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2—पर्यावरण मानव अन्तर्सम्बन्धों के विश्लेषण के रूप में नव-निश्चयवाद की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 3—सम्भववादी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4—पर्यावरण मानव अन्तर्सम्बन्धों की आलोचना कीजिए।

7.7.2—लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. जैविक राज्य की संकल्पना क्या है?

प्रश्न 2. सामाजिक डार्विनवाद क्या है?

प्रश्न 3. अनुकूलन क्या है?

प्रश्न 4. बैरोज की भूगोल की परिभाषा, की व्याख्या कीजिए

7.7.3—बहु वैकल्पिक प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. सामाजिक डार्विनवाद का विचार किसका है।

(क) रेटजेल (ख) स्पेसर

(ग) डार्विन (घ) ब्लाश

प्रश्न 2. एन्थ्रोपोज्योग्राफी ग्रंथ किस विद्वान का है?

(क) रेटजेल (ख) ब्लाश

(ग) बैरोज (ख) स्पेसर

प्रश्न 3. मानव पारिस्थितिकी संकल्पना किसने दी?

(क) ब्लाश (ख) डार्विन

(51) रेटजेल (ख) बैरोज

प्रश्न 4. भूदृश्य, संरचना, प्रक्रम व समय का प्रतिफल है किसने कहा ?

(क) डार्विन (ख) डेविस

(ग) रेटजेल (घ) टेलर

प्रश्न 5. डेविस किस देश के भूगोलवेत्ता थे?

- (क) अमेरिका (ख) जर्मनी
(ग) फ्रांस (घ) ब्रिटेन

उत्तरमाला

1—ख, 2—क, 3—घ, 4—ख, 5—क,

7.8— संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- **Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.**
- **Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.**
- **Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.**
- **Mastin G.F. All possible world. Oxford London.**
- **Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage**
- प्रो. माजिद हुसैन, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई-08 : भू-वैन्यासिक संगठन व समाजवादी भूगोल की संकल्पना-पर्यावरण कारणवाद संविकास

इकाई की रूपरेखा

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 भू-वैन्यासिक भूगोल
- 8.4 भू-वैन्यासिक संगठन का विश्लेषण
- 8.5 समाजवादी भूगोल की संकल्पना
- 8.6 पर्यावरण कारणवाद
- 8.7 संविकास
- 8.8 सारांश
- 8.9 पारिभाषिक शब्दावली
- 8.10 बोध प्रश्न
- 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल के परिवर्तनशील चिंतन फलक का दौर 20वीं शताब्दी के मध्य के बाद के समय में भी जारी रहा। इसमें 1950 के दशक में भूगोल को वैज्ञानिक बनाने के प्रयास में भू-वैन्यासिक संगठन के रूप में एक नवीन विचार भूगोलवेत्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया। एक ओर प्रत्यक्षवाद प्रेरित भूगोल की वैज्ञानिकता से सुसज्जित करने के प्रयास में मॉडल निर्माण एवं सिद्धान्त निरूपण पर जोर दिया गया तो दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात साम्राज्यवाद के पतन एवं आर्थिक पुनर्निर्माण की समस्या के निराकरण के लिए दुनिया के सभी देशों में आर्थिक विकास के लिए प्रादेशिक नियोजन पर बल दिया जाने लगा। प्रदेश विशेष के प्राकृतिक संसाधनों के विकास पर तथा उनके उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार की कार्य योजनाएं बनाई जिसके तहत भूतल पर पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों को मानव विकास में उपयोग लिया जा सके। इस दिशा में भूगोलवेत्ताओं ने भी भूतल के संसाधनों को उपयोग में लेने तथा लाभ की स्थिति को बनाए रखने के लिए कई प्रकार के मॉडल प्रस्तुत किए, जिनमें वान थ्यूनेन का कृषि अवस्थिति मॉडल, वेबर, इजार्ड, ब्लांश का औद्योगिक अवस्थिति, क्रिस्टलर का केन्द्रिय स्थल सिद्धान्त आदि इस दिशा में किए गए सराहनीय प्रयास हैं। इनमें फसलों, उद्योगों व नगरों की आदर्श स्थिति विश्लेषण का प्रतिरूप प्रस्तुत किया गया। सन 1955 ई. में हैंगेट की पुस्तक *Locational Analysis in Geography* ने सभी सिद्धान्तों एवं मॉडलों का समन्वय करते हुए एक सामान्य मॉडल आधारित चिंतन फलक का मार्ग प्रशस्त किया। इसमें सांख्यिकीय विधियों एवं कम्प्यूटरों का व्यापक उपयोग होने लगा। किसी भूविन्यास के आदर्श स्वरूप एवं उसके विभिन्न घटकों की अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप के आदर्श मॉडल के निरूपण में जटिल सांख्यिकीय विधियों, ज्यामितिक सूत्रों एवं प्राकृतिक विज्ञान के नियमों का अधिकाधिक सहारा लिया जाने लगा। भूगोल के इस नवीन चिंतन फलक को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि भूगोल भूवैन्यासिक संगठन के प्रतिरूप एवं प्रक्रिया का अध्ययन करने वाला विषय है।

8.2. उद्देश्य—

- भूगोल के परिवर्तनशील चिंतन फलक में 1950 के दशक के बाद के भूगोल के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- भू-विन्यास कि विषय वस्तु को स्पष्ट करना।

- भू-विन्यास के तहत अध्ययन किये जाने वाले प्रादेशिक अध्ययन को स्पष्ट करना।
- मानव के विकास के नवीन मार्ग खोजना।
- बदलते सामाजिक बदलावों को उजागर करना।
- विकास का पर्यावरण पर प्रभाव को स्पष्ट करना।
- पर्यावरण के विकास व संरक्षण का प्रबन्ध करना।
- संविकास की विचारधारा को स्पष्ट करना।

8.3. भू-वैन्यासिक संगठन का अर्थ—

भूवैन्यासिक संगठन का तात्पर्य है— विभिन्न मानव कार्यकलाप की परस्पर अन्तर्सम्बन्धित अवस्थिति से लिया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रदेश विशेष की परिसीमा में मानव कार्यकलापों एवं तज्जनित मूर्त तत्वों की अन्तर्सम्बन्धित अवस्थिति से है। जैसे किसी क्षेत्र में नगरों के आसपास मार्गों का संगम हो जाता है। मार्ग संगम एवं नगर सुविधाओं से आकर्षित होकर वहां कई उद्योग स्थापित कर लेते हैं। इन उद्योगों में काम करने वाले एवं नगर में रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नगर के समीवर्ती देहात में शाक सब्जी, दूध व अन्य आवश्यक फसलों के उत्पादन पर जोर दिया जाता है। इसके बाद जैसे-जैसे नगर से दूर जाने लगते हैं जनसंख्या का दबाव कम होने लगता है तथा अनाज की फसलों का उत्पादन करना शुरू हो जाता है जैसे जैसे इनके नगर का प्रभाव क्षेत्र समीप आने लगता है आर्थिक कार्यों की गहनता बढ़ने लगती है जहां भूमि उपयोग प्रतिरूप में नगर के क्षेत्र व दूसरे नगर के क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इस तरह इस संकल्पना में भूगोल की सभी पूर्ववर्ती संकल्पनाओं को शामिल करने का प्रयास हुआ है। किसी एक भौगोलिक तत्व की अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप का मॉडल निर्मित करके उसके आधार पर विद्यमान प्रादेशिक प्रतिरूप के जांच की गुंजाइश है तथा आदर्श एवं वास्तविक प्रतिरूपों में अन्तर की व्याख्या प्राकृतिक पर्यावरण तथा सांस्कृतिक वातावरण के तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध के अलोक में करना भी अनिवार्य हो जाता है। भू-वैन्यासिक संगठन की प्रक्रिया की व्याख्या में उस प्रदेश के ऐतिहासिक पक्षों पर भी ध्यान देना पड़ता है। कार्ल सावर द्वारा प्रस्तुत भूदृश्य एवं भूवैन्यासिक संगठनों में बहुत कम अन्तर रह जाता है। भूदृश्य में विभिन्न तत्वों के जो भूदृश्य के अन्तर्गत शामिल होते हैं। पारस्परिक सम्बन्ध पर कमजोर तथा उसमें ऐतिहासिकतावाद का अधिक पुष्ट था। भूवैन्यासिक संगठन में प्रत्यक्षवाद का दृष्टिकोण प्रमुख हो जाता है।

8.3.1 भू-वैन्यासिक संगठन की विशेषताएँ —

भूगोल के इस नवीन चिंतन फलक को एकरमेन ने 1958 ई० में अपने शोध प्रबन्ध में निम्न रूपों में विस्तारित करने का कार्य किया है।

- 1) अमूर्त वितरण स्वरूपों का अध्ययन, जिसके लिए क्षेत्रीय वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तों का विकास अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में किसी तत्व या तत्व समिश्र के पृथ्वी तल पर विद्यमान वास्तविक वितरण का विवेचन न करके कुछ पूर्व मान्यताओं के अन्तर्गत उनके काल्पनिक आदर्श वितरण प्रतिरूप की रूपरेखा प्रस्तुत करने की आवश्यकता पर बल दिया जाए ऐसा जलवायु के संदर्भ में किया भी गया है जिसके अन्तर्गत यह मानकर की पृथ्वी तल पर उच्चावच परक विभेद नहीं है और सूर्याताप में सिर्फ अक्षांशानुसार अंतर आता है काल्पनिक वायुदाब पेटियों तथा वायु की प्रचलित दिशाओं का निरूपण किया जाता है। ऐसी की स्थिति मानव एवं आर्थिक भूगोल के अन्य तत्वों जैसे जनसंख्या, अधिवास औद्योगिक अवस्थिति आदि के संदर्भ में भी किया जा सकता है।
- 2) प्रेक्षण तकनीक का पूर्ण विकास जिसके तत्वों की अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप की यथार्थ स्थिति ज्ञात हो सके, मात्र अनुमानपरक नहीं। दूरस्थ संवेदन माध्यमों तथा वायुयानों या सेटेलाइट द्वारा प्रस्तुत फोटो चित्रों से अब यह सरल हो गया।
- 3) विशिष्ट तथ्य समूहों के वितरण पर प्रक्रियात्मक प्रभावों का अध्ययन, अर्थात् किस प्रकार किसी तत्व

का वितरण उनकी उद्भव विकास प्रक्रिया से जुड़ा। हैगरस्टैण्ड ने 1952 ई. में ही अभिज्ञानों के प्रसार की प्रक्रिया का विवेचन करके इस प्रकार के अध्ययन में एक नया आयाम जोड़ दिया था। किसी तत्व के वितरण प्रतिरूप का अध्ययन करने मात्र से या व्याख्या मात्र से ही उसका सहसम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाता है उससे सम्मानित करने वाले आविष्कार तथा उसके क्षेत्रीय प्रसार की प्रक्रिया से भी प्रभावित होती है। अर्थात् जैसे किसी क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसलों का उस क्षेत्र की जलवायु से सहसम्बन्ध तथा उसमें काम ली गई तकनीकी सहायता का अध्ययन होना आवश्यक है, अर्थात् भू-वैन्यासिक संगठन के विकास में योगदान देने वाले सभी कारकों की जानकारी भलीभांति होना आवश्यक है।

- 4) क्षेत्रीय सहसम्बन्धों में प्रतिबिम्बित प्रतिक्रियाओं के सह विचरण का अध्ययन अर्थात् किस प्रकार विभिन्न प्रक्रियाओं में समानान्तर परन्तु असमान प्रगति से विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों के अवस्थितिक स्वरूप बदलते हैं। किसी क्षेत्र में स्थापित की गई औद्योगिक ईकाई का उस क्षेत्र विशेष के संसाधनों से गहन सम्बन्ध होता है। यदि उद्योग स्थापना के समय सम्बन्धित संसाधनों को ध्यान नहीं रखा जाए तो उद्योग के असफल होने की सम्भावना प्रबल हो जाती है।
- 5) क्षेत्र विशेष में क्षेत्रीय सहसम्बन्धों के पूर्ण विकास क्रमिक प्रतिरूप को दर्शाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रक्रियाओं से सहसम्बन्धित आंकड़ों एवं अवस्थितिगत तथ्यों का समन्वयन, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में गेहूँ की कृषि हेतु जलवायु, मिट्टी आदि अवस्थितिगत तत्व एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में यूरोपीय लोगों के आगमन के साथ तकनीकी भी आई जिससे संयुक्त राज्य के विस्तृत गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों को लाभ मिली तथा भू-विन्यास का एक नया स्वरूप सामने आया। जिसका एक समन्वित विवेचन आवश्यक है।

8.3.2. भूवैन्यासिक संगठन की आलोचना—

भूगोल में 1960 के दशक तक आते-आते प्रत्यक्षवाद दृष्टिकोण आलोचना का शिकार होने लगा तथा भू-वैन्यासिक संगठन में भी परिवर्तन अपरिहार्य हो गया। भूवैन्यासिक संगठन के प्रति निराशा के मूल में प्रत्यक्षवाद की निरर्थकता तथा सांख्यिकीय विधियों का अधिकाधिक प्रयोग प्रमुख कारण है। भूगोल में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग सभी की पहुँच से परे है। इस चिंतन फलक को लेकर निम्न प्रकार से आलोचना की गई है।

(1) मूल्य निरपेक्ष अध्ययन की व्यर्थता—

यह अध्ययन सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा करके सिर्फ भू-विन्यास के ज्यामितिक प्रतिरूप का विश्लेषण करता है जो भूगोल के मूल अध्ययन पद्धति से दूर जाता प्रतीत होता है।

(2) मानव के तर्कसंगत निर्णय का अवास्तविक आधार—

भू-विन्यास संगठन का मानक प्रतिरूप इस मान्यता पर आधारित है कि मानव अपने कार्यकलाप सम्पूर्ण सूचना से अवगत रहते हुए सर्वथा तर्कसम्मत निर्णय करते हुए संचालित करता है परन्तु किसी भी व्यक्ति को किसी कार्यकलाप की अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप सम्बन्धी न तो सम्पूर्ण सूचना उपलब्ध हो पाती है न ही वह सर्वथा तर्कसंगत निर्णय करता है। किसी व्यक्ति के आर्थिक सामाजिक कार्यकलाप सम्बन्धी निर्णय बहुधा भावात्मक संवेग प्रेरित होते हैं। वह एक संतोषप्रद निर्णय लेता है न कि अभीष्ट। अतः मूल्य निरपेक्ष आदर्श भू-वैज्ञानिक संगठन मात्र काल्पनिक अवधारणा है। यह वास्तविकता की सही व्याख्या नहीं कर पाती है यह अव्यावहारिक है यह जिन पूर्व मान्यताओं पर आधारित है वह वास्तविक जगत के चरितार्थ नहीं है। जैसे वेबर, क्रिस्टलर, वान थ्यूनेन जैसे विद्वानों ने जो मॉडल बताए हैं वे कल्पना के अधिक नजदीक और वास्तविक धरातल पर मिलने की कम सम्भावना है।

(3) विपरीत विधितन्त्र —

भूगोल में हुए नवीन परिवर्तनों का प्रमुख स्तम्भ सांख्यिकीय विधियों का भूगोल में समावेश और उनके अनुसार भूगोल का विश्लेषण करना है। भू-वैन्यासिक विश्लेषण का आधार स्तम्भ इसी सांख्यिकीय दृष्टिकोण पर खड़ा किया गया है। सुदूर संवेदन तथा संगणकों का भी इसमें समावेश किया गया है।

इसे नवीन विधितन्त्र कहा गया है जो इससे पहले के भूगोल से विपरीत प्रकार का विविधता है। किस प्रकार की समस्या को शोध का विषय बनाया जाए या किस सैद्धान्तिक मापदण्ड के आधार पर शोध अग्रसर हो, इसका निर्णय उपलब्ध आंकड़ों एवं उनके विश्लेषण हेतु प्रयुक्त की जाने वाली विधियों के आधार पर किया जाता है किसी सांख्यिकीय विधि की सार्थकता सिद्ध करने हेतु जितना अधिक एवं जिस प्रकार के आंकड़ों को इकट्ठा करने की आवश्यकता है वे मिल पाना उतना आसान नहीं है।

(4) सामाजिक-आर्थिक वास्तविकता का यन्त्रवत सामान्यीकरण—

वास्तविक स्थिति के आदर्श स्वरूप का निरूपण करने के प्रयास में भूगोल कुछ तत्वों या विशेषताओं को अभिव्यक्त करने वाले ऐसे आंकड़ों का उपयोग करता है जो समस्या या तत्व का उसके सम्पूर्ण सन्दर्भ में विलग कर देता है जैसे सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा मात्र यह सिद्ध करना कि किसी नगर में आब्रजकों की संख्या उससे दूरी के अनुपात में घटती जाती है जबकि आवजकों की संख्या इस बात पर निर्भर करती है। उनके मूल स्थान पर रोजगार आश्रय स्थल की समस्या के चलते उनको अपना मूल स्थान छोड़ना पड़ता है ऐसी स्थिति में आब्रजकों की तलाश नगर के निकट भी पूरी हो सकती है और दूर भी। अतः आंकड़ों के आधार पर प्रवास का सटिक विश्लेषण कर पाना असम्भव है।

(5) बाह्य स्वरूप या आकृति के मापन एवं विवरण पर ध्यान केन्द्रित करना तथा अंतर्निहित प्रक्रियाओं की अवहेलना—

भू-वैन्यासिक संगठन ने भूगोल को नवीन रूप प्रदान किया है जिनकी सबसे बड़ी खामी यही है कि इनके बाह्य स्वरूप जैसे केन्द्र स्थलों का पदानुक्रम एवं वितरण प्रतिरूप अथवा परिवहन मार्गों एवं यातायात की सघनता एवं आयतन आदि पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है जबकि इसमें अन्तर्निहित प्रक्रियाओं की उपेक्षा की जाती है। इसके पक्षधर यह स्वीकारते हैं कि प्रतिरूप की पहचान प्रक्रियात्मक विश्लेषण की दिशा में महज एक कदम है जबकि वास्तविक भौगोलिक अध्ययन में अधिकतर भूगोलवेत्ता पहले कदम पर ही उलझे रह जाते हैं जटिल प्रतिरूपों का गणितीय विधियों में निरूपण करना सर्वथा सम्भव है।

(6) अन्य विषयों से व्युत्पन्न सिद्धांतों का अन्धाधुन्ध अनुप्रयोग—

आदर्श अमूर्त अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप को स्थापित करने के उत्साह में जिसे भूविन्यास पूजन की संज्ञा दी गई है। अन्य सामाजिक विज्ञानों यथा अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान द्वारा अवास्तविक मान्यताओं पर विकसित सिद्धांतों का बिना जांच परख के अन्धाधुन्ध प्रयोग किया गया। औद्योगिक अवस्थिति सम्बन्धी सिद्धान्त इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ये सिद्धान्त सामाजिक तन्त्र से निरपेक्षता की मान्यता पर आधारित हैं। जिसमें उद्योगपति की अधिकतम लाभ प्राप्त करने की इच्छा का दायित्व पूरा करना समाज का प्रमुख उद्देश्य है। इसके साथ ही ये सभी सिद्धान्त पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं तथा इसमें पूंजीवाद के आर्थिक प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उसके क्षेत्रीय पक्ष पर नहीं जैसे विकासशील देशों में नगरीय सिद्धान्त उन्ही मान्यताओं के आधार पर प्रतिपादित किये गये हैं जो पूंजीवादी देशों में नगरीयकरण की व्याख्या करते हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूंजीवादी व्यवस्था की मान्यताओं पर आधारित अन्य विषयों में प्रतिपादित क्षेत्र-विभिन्नता निरपेक्ष सिद्धांतों में अन्धानुकरण से भूगोल में विवेचन का कतरा मात्र सही रह गया है।

8.4. भू-वैन्यासिक संगठन का विश्लेषण—

भू-वैन्यासिक संगठन के विश्लेषण में निम्न दो बातें कही जा सकती हैं।

- भू-वैन्यासिक संगठन के विश्लेषण में भूवैन्यासिक संरचना तथा राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्सम्बन्ध पर ध्यान नहीं दिया जाता है अर्थात् राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था की प्रेरणा से किस प्रकार कालक्रम में भू-वैन्यासिक संरचना में परिवर्तन होता है इसे नजरअन्दाज कर दिया जाता है। जैसे-हैगेट ने भू-वैन्यासिक संगठन के मूल तत्वों- गमनागमन, मार्गजाल, संगम केन्द्र, पदानुक्रम एवं प्रवणता सतह का निरूपण तो किया, परन्तु किसी क्षेत्र विशेष की भू-वैन्यासिक संरचना में वैकल्पिक

राजनीतिक-आर्थिक दशा के अनुसार ऐतिहासिक तत्वों में किस प्रकार का परिवर्तन होता है। इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। अधिकतर देशों भूवैज्ञानिक संगठन घटक तत्वों के स्वायत्त विकास का परिणाम नहीं है। प्रत्येक विकासशील देश के शासक को पूंजीवादी देश की साम्राज्यवादी व्यवस्था में एक विशेष प्रकार की भूमिका निभानी थी। उसे औपनिवेशिक साम्राज्य के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम विभाजन के परिवेश में अपने अर्थतन्त्र को ढालना पड़ता था। शासक देश की, उपनिवेश के संसाधन शोषण एवं आधिक्य दोहन की नीति के सन्दर्भ में औपनिवेशिक देश में परिवर्तन मार्ग, नगर केन्द्र आदि का उद्भव विकास हुआ। अतः बिना ऐतिहासिक परिपेक्ष में एवं सम्पूर्ण राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में उक्त प्रकार का विवेचन किया, किसी भू-वैज्ञानिक संगठन का अध्ययन, मात्र उसकी बाह्यकृति तक ही सीमित रह जाता है।

- ii. भू-वैज्ञानिक संगठन मात्र राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था के कालक्रमिक परिवर्तन एवं विकास का ही प्रतिफल नहीं होता, अपितु समाज की आन्तरिक संरचना एवं अन्तर्द्वन्द का भी परिचायक होता है परन्तु भूवैज्ञानिक संगठन का विवेचन यह मानकर किया जाता है कि किसी विकसित तथा अविकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आन्तरिक अन्तर्विरोध नहीं है तथा सौहार्द्रपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। विशेषतया, विकासशील देशों के भू वैज्ञानिक संगठन का स्वरूप तब तक स्पष्ट नहीं हो सकता, जब तक समाज के प्रभावशाली वर्ग के आचरण तथा उनके विश्व की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से ताल मेल का प्रारूप नहीं ज्ञात हो जाता।

8.5 समाजवादी भूगोल की संकल्पना—

सन 1969 में भौगोलिक चिंतन फलक में परिवर्तन के क्रम में नवीन स्वरूप देखने को मिला। जब भूगोल में मानवीय मूल्यों की महत्वता को समझा गया एवं सामाजिक सार्थकता पर बल दिया गया। अर्थात् मानवतापरक भूगोल प्रमुख चिन्तन फलक बन गया। जिसकी आगे चलकर कई शाखाएं विकसित हुईं जिनमें क्रांतिकारी भूगोल, आचारपरक भूगोल, काल-क्षेत्र भूगोल, कल्याणपरक भूगोल तथा मानव-पारिस्थिति का उल्लेखनीय है। समाजवादी भूगोल की यह मान्यता है कि समाज को राजनीति मूलक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। राजनीति मूलक अर्थव्यवस्था का तात्पर्य है — ऐसा सामाजिक अर्थतन्त्र या जीवन पद्धति जिसकी जड़े उत्पादन पद्धति में लगी हुई होती है। सामाजिक उत्पादन तटस्थ लोगों द्वारा तटस्थ कार्यों का प्रतिफल नहीं होता वरन् किसी समाज में विभिन्न वर्गों द्वारा सम्पादित राजनीति प्रेरित कार्यों का परिणाम है। अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया को राजनीतिक निर्णयों से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। राजनीतिक निर्णय पूंजीपतियों का पोषण करते हैं जिसमें विभिन्न राजनीतिक निर्णयों के चलते औद्योगिक इकाइयों को पोषित किया जाता है उनके लिए अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों के चलते पूंजीपति विकास के पथ पर बढ़ते चले जाते हैं परन्तु मजदूर वर्ग का किसी प्रकार का कोई विकास नहीं हो पाता है ऐसी स्थिति में पूंजीपति और मजदूर वर्ग के बीच अन्तर बढ़ता चला जाता है। यह चिंतन फलक संरचनात्मक मार्क्सवाद पर आधारित है। मार्क्सवाद द्वन्दात्मक भौतिकवाद की पद्धति से सामाजिक-आर्थिक विकास को समझने का प्रयास करता है। द्वन्दात्मक वह विधि है जो सैद्धान्तिक स्तर पर परिवर्तन एवं अन्तर्क्रिया को परस्पर विरोधी तत्वों के संघर्ष का प्रतिफल मानती है। मार्क्सवाद द्वारा प्रतिपादित द्वन्दात्मक विधि प्रत्यक्षानुभवों एवं तथ्यों को परिवर्तन एवं प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में समझने की चेष्टा करती है एवं इनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्ध एवं गत्यात्मकता पर प्रकाश डालती है। परिवर्तन को समाज की गत्यात्मकता का प्रतिफल माना जाता है। राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था में अन्तर्निहित द्वन्द के कारण ही कोई उत्पादन व्यवस्था को अनुषंगी सामाजिक सम्बन्ध, समस्थिति में कायम नहीं रहता, जैसे पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था में उत्पादन अतिरेक ही उनमें अन्तर्विरोध पैदा करता है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पूंजीपति के लाभ अर्जन तथा उत्पादन के लिए अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है। क्योंकि पूंजीपति अधिकतम लाभ अर्जन के लिए मजदूरों को कम परिलाभ देकर अधिक उत्पादन करने की चेष्टा रखता है एवं इनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्ध एवं गत्यात्मकता पर प्रकाश डालती है। परिवर्तन को समाज की गत्यात्मकता का प्रतिफल माना जाता है। राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था में अन्तर्निहित द्वन्द के कारण ही कोई उत्पादन व्यवस्था एवं अनुसंगी सामाजिक सम्बन्ध, समस्थिति में कायम नहीं रहता। जैसे पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था में उत्पादन अतिरेक ही उनमें अन्तर्विरोध पैदा करता है। लाभार्जन प्रमुख लक्ष्य होने के कारण पूंजीपति उत्पादन परिणाम को उत्पादन के आर्थिक लाभकारी पैमाने से समायोजित करता है न कि पैमाने को वांछित परिमाण से होता है। पूंजीवाद में

उत्पादन अतिरिक्त की समस्या प्रकट होती है जिसका निराकरण करने हेतु पूंजीपति आन्तरिक एवं विदेशी बाजारों का सतत विस्तार करता है तथा ऐसे भूवैज्ञानिक संरचना का निर्माण करने को स्पष्ट रहता है जो ज्यादा से ज्यादा मांग रखे। क्योंकि ज्यादा मांग होगी तब उत्पादन बढ़ेगा। इससे पूंजीपति को मुनाफा भी अधिक होगा परन्तु मुनाफे का लाभ केवल पूंजीपति तक ही सीमित रहेगा, यह लाभ मजदूर वर्ग तक नहीं पहुँचेगा जिससे मजदूर एवं पूंजीपतियों के बीच की खाई और भी बढ़ती जाएगी। जिससे अन्तर्द्वन्द की प्रवृत्ति और बढ़ेगी। पूंजीवादी समाज में सामाजिक सम्बन्ध मधुर नहीं रह पाते क्योंकि पूंजीपतियों के क्रियाकलाप केवल पूंजी के विस्तार से है जिससे उनके व श्रमिकों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करते हैं।

भौतिकवाद की मूल अवधारणा यह है कि पदार्थ जगत की समझ मानव मतिष्क में पहले से विद्यमान है तथा चेतना अनुभव से पैदा होती है। अनुभव जीवन के भौतिक पुनर्जनन की उपज है। मार्क्स के अनुसार पूंजीपतियों का वस्तुओं के उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण होता है और इसलिए जीवन के पुनर्जनन पर भी उनका नियन्त्रण हो जाता है। परन्तु यह स्थिति सर्वकालिक नहीं है वरन् मनुष्य के उदभव— विकास क्रम में काल विशेष में शक्ति एवं सम्पत्ति सम्बन्धों की उपज है जो स्वयं परिवर्तनशील है प्रकृति एक और वस्तुओं एवं मुद्रा के स्वामी तथा दूसरी ओर श्रमिक, नहीं उत्पन्न करती। यह व्यवस्था ऐतिहासिक— सामाजिक घटनाओं एवं व्यवस्थाओं की उपज है। मनुष्य अपने भौतिक अस्तित्व के लिए इनमें परिवर्तन करता है। किसी काल विशेष में मिलले वाली अर्थव्यवस्था को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्लेषण द्वारा समझा जा सकता है।

8.5.1. समाज निर्माण—

समाज निर्माण का तात्पर्य है ऐसी सामाजिक समष्टि जो विशिष्ट परन्तु अन्तर्सम्बन्धित घटकों का पुंज है। सामाजिक समष्टि के ये घटक बहुस्तरीय होते हैं जिन्हें उत्पादन पद्धति में राजनीतिक—प्राविधिक तथा सांस्कृतिक विचारधारात्मक वर्गों में रखा जा सकता है। इन विभिन्न स्तरीय सामाजिक घटकों का परस्पर अन्तर्सम्बन्ध जटिल होता है। मार्क्स के अनुसार आधुनिक युग में उत्पादन विधि सामान्यतया सामाजिक राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन स्वरूप निर्धारित करती है जबकि प्राचीन युग में राजनीति व मध्य युग में धर्म अन्य सबको अनुशासित करते थे। मार्क्सवादी दर्शन मानव को प्रकृति में समाहित मानता है परन्तु प्रकृति में व्याप्त होते हुए भी मानव एक चेतन तत्व के रूप में प्रकृति से विलग भी है।

मानव एवं प्रकृति में अन्तर्सम्बन्ध का माध्यम श्रम है। श्रम में प्रकृति एवं मानव दोनों ही प्रतिभागिता होती है। मानव स्वयं अपने एवं प्रकृति के मध्य भौतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करता है तथा उनका नियमन करता है। प्रकृति के संसाधनों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढालने एवं उपयोग करने के लिए वह प्रकृति के विपक्षी के रूप में अपने हाथ—पैर एवं मस्तिष्क का प्रयोग करता है प्रकृति से संसाधनों को ग्रहण करने का माध्यम श्रम है जबकि श्रम प्रकृति से पोषक तत्वों के रूप में प्राप्त ऊर्जा का प्रतिफल है। प्रकृति का कुछ अंश मानव में भी समाहित है जो इस उत्पादन की प्रक्रिया को निरन्तर बनाए रखती है श्रम की इस प्रक्रिया में मानव भी परिवर्तित होता रहता है तथा उसकी प्रकृति मानवीय हो जाती है। समाज निर्माण एवं संरचना की नींव में मानव एवं वातावरण के मध्य यही मेटाबोलिज्म है जो श्रम के रूप में प्रकट होती है किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रक्रिया निर्माण में मानव अपनी अमिट छाप छोड़ता है। श्रम की उत्पादकता प्राकृतिक दशाओं पर निर्भर करती है। प्रकृति जितनी कठोर होगी उत्पादन दशाएं उतनी ही कम हो जाती हैं। जहां प्रकृति में लचिलेपन का गुण पाया जाता है नहीं पर उत्पादन दशाओं का जोर बढ़ने लगता है। मानव भी इन दशाओं के अनुसार अपनी आजीविका का स्तर बढ़ाता रहता है। साथ ही सुलभ दशाओं में श्रम भी सुलभ हो जाता है अर्थात् उत्पादन का स्तर कम होता चला जाता है। श्रम करना आसान हो जाता है। ऐसी दशाओं में मनुष्य की आवश्यकताएं भी बढ़ने लगती हैं उसकी क्षमताएं, श्रम के साधन व उत्पत्ति के साधनों के विकास के साथ—साथ सामाजिक विकास भी होता रहता है।

किसी स्थान विशेष का क्षेत्रीय स्वरूप सामाजिक संरचना की ही अभिव्यक्ति है क्योंकि व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध क्षेत्र विशेष के स्वरूप, कार्य एवं सामाजिक महत्व प्रदान करते हैं। अतएव क्षेत्र विशेष की विशेषताओं का अध्ययन आर्थिक तन्त्र, राजनीतिक तन्त्र, वैचारिक पद्धति एवं इनकी संयुक्तियों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है आर्थिक तन्त्र की क्षेत्रीय अभिव्यक्ति उत्पादन केन्द्रों उपभोग स्थलों एवं विनिमय साधनों—सुविधाओं में होती है। पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था की विशिष्टता यह है कि इसके अन्तर्गत उत्पादन का लाभ उत्पादकों के हाथ से निकलकर उत्पादन के साधनों एवं उत्पादन की दशाओं पर नियंत्रण करने वाले स्वामियों

के पास चला जाता है। उत्पादन और उत्पादन साधन का स्वामित्व किसी क्षेत्रीय शून्य में नहीं रहता वरन दोनों ही कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में होता है ऐसी स्थिति में उत्पादन के लाभ का भी स्थानान्तरण होता रहता है जो स्थानिक स्थानान्तरिक गांव में नगर, प्रदेशान्तरिक कृषि या उत्खन्न क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्रों में या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर जैसे विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर हो सकता है। इस प्रकार स्थानान्तरण की यह प्रक्रिया चलती रहती है। जिसमें स्वामित्व का स्तर बदलता रहता है। बदलते स्तर के अनुरूप पूंजी के स्तर में भी परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि स्वामित्व स्तर पर ही पूंजी का अधिकतम संकेंद्रण होता है। पूंजीपति या पूंजीवादी व्यवस्था का उदय होता है समाज में वर्ग व्यवस्था का उदय होता है। जिसे मार्क्स ने पूंजीवादी तथा मजदूर वर्ग बताया है यह विकास की एक अवस्था है। इनमें एक तरफ विकास निरन्तर बढ़ता चला जाता है तथा दूसरी ओर विकास का स्तर निम्नस्तरीय रह जाता है। दुनिया में विकसित देशों के विकास को आधार ही अविकसित देशों के अविकसित रहना है। क्योंकि विकसित देशों ने पूंजी के बल पर अविकसित देशों के संसाधनों का दोहन किया है इन संसाधनों के बल पर विकसित देशों ने उत्पादन के स्तर को बहुत अधिक बढ़ाया है तथा अविकसित देशों को बाजार के रूप में काम लिए हैं। जहां से वे संसाधनों की खरीद की लागत को वस्तुओं को बेचकर निकालते हैं। यह एक अन्तर्द्वन्द की स्थिति को जन्म देता है। उत्पादन पद्धति के कालक्रमानुसार समाज में पूंजीवादी, सामान्तवादी तथा समाजवादी पद्धति विकसित होती है। परम्परावादी मार्क्सवाद की यह मान्यता थी कि सम्पूर्ण मानव इतिहास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है। नव-मार्क्सवाद प्राकृतिक एवं मानवीय जगत की एकात्मकता को नकारता है ऐसी एकात्मकता मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता एवं व्यक्तिनिष्ठता को कोई महत्व प्रदान नहीं करती है और इस प्रकार मनुष्य को क्रान्तिकारी आत्मोत्थान के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती है। फ्रेंच दार्शनिक एलथूस व उनके सहयोगी बालीवार के अनुसार उत्पादन पद्धति की सामाजिक व्यवस्था में दो विशिष्ट भूमिकाएं होती हैं।

1. यह समाज के आर्थिक, राजनीतिक एवं वैचारिक स्तरों के अन्तर्सम्बन्ध को समझने में सहायक है।
2. प्रभुत्व एवं पराभव के पदानुक्रम में उत्पादन पद्धति हर सामाजिक तत्व का विशिष्ट स्थान निर्धारित करती है। इस परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक भौतिकवाद, समाज के प्रमुख तत्वों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध एवं अभिव्यक्त का सिद्धान्त बन जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में, आर्थिक तन्त्र का बोलबाला होता है तथा यही क्षेत्रीय विन्यास का मूल संगठनकर्ता होता है। सामाजिक वर्गों का निर्माण विभिन्न स्थानों पर होता है तथा किसी क्षेत्र के विभिन्न वर्गों में उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों में भिन्नता होती है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक संरचना में भी विभिन्नता उत्पन्न होती है। सामाजिक वर्गों में पूंजीपति व मजदूर वर्गों के लोग रहते हैं जिनके बीच सीधा सम्बन्ध रहता है तथा इनके बीच अन्तर की स्थिति देखने को मिलती है। डेविड हार्वे ने इसी आधार पर क्रान्तिकारी भूगोल के विकास की नींव रखी। यह तर्क आगे द्वन्द्वात्मक विश्लेषण की ओर आगे बढ़ता है कि किसी भी तत्व या कार्य में अन्तर्विरोध अन्तर्निहित होता है। अन्तर्विरोध का सहारा लेकर मार्क्स ने राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था में श्रम द्वारा संसाधनों में मूल्यवृद्धि का पूंजीपति द्वारा क्रमशः अपहरण एवं इस प्रकार पूंजी संचय एवं उसी उत्तरोत्तर बुद्धिमान पूंजी संचय से श्रम के शोषण की प्रक्रिया का गहन विवेचन किया। इस अन्तर्विरोध का विश्लेषण तभी होगा जब साम्यवादी व्यवस्था स्थापित होगी। जिसमें संसाधनों पर प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार होगा। इस उपागम से ये सिद्धान्त सामाजिक प्रक्रिया के भावी वैकल्पिक स्वरूपों में से चयन की गुंजाइश रखते हुए सत्य का मार्ग सृजित किया।

8.5.2. समाजवादी भूगोल का विधितन्त्रात्मक औचित्य—

विधितन्त्र का तात्पर्य, विश्लेषण की विधि नहीं, अपितु विषय की सम्पूर्ण विज्ञान के सन्दर्भ में क्या स्थिति एवं महत्व है, अर्थात् वास्तविकता के आंकलन में संकल्पनात्मक स्तर पर इसका विशिष्ट स्थान एवं योगदान है इसकी समीक्षा से है समाजवादी भूगोल के स्वरूप के विवेचन से प्रकट है कि यह सामाजिक संरचना तथा सामाजिक परिवर्तन की अन्तर्प्रक्रिया से सम्बन्धित है लोग किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों का सृजन एवं रूपान्तरण होता है, यही समाजवादी भूगोल का अध्ययन तन्त्र है। इसमें लोगों को सक्रिय कारक के रूप में देखा जो विगत काल में सृजित विशिष्ट सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था की परिसीमा में रहते हुए भी, उसमें परिवर्तन भी करने को सचेष्ट रहते हैं। समाज के अन्तर्गत समाज विशेष का भू विन्यास भी समाहित है, लोगों

द्वारा सृजित होता है और स्वभावतया लोगों द्वारा परिवर्तनीय भी है। इस प्रकार सामाजिक एवं भूवैज्ञानिक स्वरूप कालक्रम में विकसित होते हैं। भूवैज्ञानिक विशेष का किस प्रकार सृजन—रूपान्तरण हुआ है, इसके लिए विद्यमान स्वरूप का आकलन भी अनिवार्य हो गया है। इसके बाद सामाजिक—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उसके क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला जाता है जिससे वैकल्पिक स्वरूपों का निरूपण सम्भव हो जाता है। निरपेक्ष वैज्ञानिकतावादी भूगोल में इस सामाजिक—ऐतिहासिक, गत्यात्मक दृष्टि का सर्वथा अभाव है क्योंकि भूवैज्ञानिक का सम्बन्धित मानव समुदाय से विलग निरपेक्ष अध्ययन किया जाता है समाजवादी भूगोल, भूवैज्ञानिक विश्लेषण को सम्पूर्ण सामाजिक विश्लेषण का एक अंश मात्र मानता है। यह एक समय सामाजिक सिद्धान्त प्रस्तुत है न कि मानव समुदाय निरपेक्ष भूवैज्ञानिक के प्रतिबन्ध की मात्र व्याख्या करना।

एसहाइम ने समाजवादी भूगोल का विधितन्त्रात्मक औचित्य स्थापित करने के लिए इसका परीक्षण चार दृष्टिकोणों से किया है जो परम्परागत स्वरूप न होकर क्रांतिकारी भूगोल है—

- (1) विचारों का इतिहास
- (2) विज्ञान का दर्शन
- (3) सिद्धान्त का विकास
- (4) व्यावहारिक परिपेक्ष्य।

प्रथम दृष्टिकोण से समाजवादी भूगोल का परीक्षण करने के पूर्व यह माना कि विज्ञान एवं समाज परस्पर गत्यात्मक ढंग से प्रभावित होते हैं अर्थात् एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है और इस प्रकार दोनों आगे बढ़ने हेतु परस्पर प्रेरित होते हैं।

1960 के दशक में मानव भूगोल को सामाजिक दृष्टि से सार्थकता प्रदान करने की जोरदार मांग की गई जिसके चलते समाजवादी भूगोल में विचारों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस मांग के पीछे भूगोल की आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियाँ भी थी। भूगोल की आन्तरिक स्थिति यह थी कि प्रत्यक्षवादी भूगोल के मूल्य निरपेक्ष शोध के आग्रह से सामाजिक समस्याओं की ओर से भूगोलवेत्ता विरत हो गया था। दूसरी ओर निरन्तर विकट में विकटतर होती हुई सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में परिष्कृत सांख्यिकीय विश्लेषण विधियाँ सर्वथा निरर्थक थी। इसके समानान्तर नव—उपनिवेशवाद तथा तीसरी दुनिया के मध्य अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता जा रहा था। पूँजीवादी व्यवस्था युक्त देशों में भी आर्थिक विकास की सामाजिक लागत, संसाधन अभाव, वायु—प्रदूषण तथा प्रादेशिक असंतुलन के रूप में प्रकट हो रही थी तथा जन कल्याण के लिए किए गए सभी प्रयासों के बावजूद ऐसे सामाजिक वर्ग का अस्तित्व बना हुआ था जो राष्ट्रीय सम्पत्ति का समुचित भाव पाने में वंचित था इन नयी पुरानी सामाजिक समस्याओं तथा वृहद पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के विषय में अधिक ज्ञापन की अपेक्षा की। परिणामस्वरूप 1970 के दशक के प्रारम्भ में मानव भूगोल सजग होकर कई दिशाओं में सक्रिय हुआ।

सामाजिक भूगोल में सामाजिक विषयों पर प्रश्न उठाया गया है विश्व के विकास की दिशा निर्देश करने वाली राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं सामाजिक नीतियों में गहरी अभिरुचि प्रदर्शित की गई। इस प्रकार मानव पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध अथवा भूवैज्ञानिक संगठन प्रतिरूप तक भूगोल के विवेचन को सीमित करने की परम्परा तोड़ दी गई। सामाजिक मूल्यों का प्रश्न समाजवादी भूगोल का कोड है परम्परागत, प्राकृतिक विज्ञानों के उपागम पर आधारित मूल्य निरपेक्ष विश्लेषण का बांध तोड़कर, भिन्न दार्शनिक धरातल से भूगोल को सामाजिक मूल्यों से सम्बद्ध किया गया। अब किसी सामाजिक तथ्य, जैसे वर्ग विशेष की साधन विहीनता की सत्यता—असत्यता मात्र पर विवाद न करके उसके सृजन हेतु उत्तरदायी सामाजिक प्रक्रियाओं का विवेचन अधिक सार्थक माना गया। संक्षेप में समाजवादी भूगोल सामाजिक समस्याओं के संरचनात्मक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इस दृष्टि से सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्वों को सम्बन्धित लोगों द्वारा जीवन यापन के साधन, उत्पादन एवं वितरण पद्धति तथा समाज निर्माण के ढंग से विलग करके नहीं देखा जा सकता, दार्शनिक दृष्टिकोण के आधार पर समाजवादी भूगोल प्रत्यक्षवादी दर्शन अर्थात् सभी विज्ञानों की एकात्मकता और अध्ययन तत्व एवं विषय की स्वतंत्रता को नकारता है। प्रत्यक्षवादी दर्शन के अनुसार एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के रूप में समाज तथा सैद्धान्तिक स्तर पर, सामाजिक विज्ञान एक इसके से सर्वथा भिन्न है।

समाजवादी एवं प्रत्यक्षवादी भूगोल में सैद्धान्तिक स्तर पर तीन प्रमुख विभेद हैं जो निम्न हैं।

(I) उत्पादन बनाम वितरण—

समाजवादी भूगोल के अन्तर्गत उत्पादन एवं वितरण को परस्पर श्रृंखलाबद्ध मानने पर जोर दिया गया है। जबकि पूर्ववर्ती भूगोल में दोनों को दो विलग तत्व के रूप में माना जाता था। इसी कारण पूर्ववर्ती भूगोल में आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उत्पादन का एक विशुद्ध प्राविधिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाता था जबकि वितरण का विश्लेषण सामाजिक भूगोल के लिए छोड़ दिया जाता था सामाजिक भूगोल क्षेत्रीय असमानता का विश्लेषण मात्र वस्तुओं और सेवाओं के असमान वितरण उत्पादन स्थलों के सन्दर्भ में करता था जैसे उद्योगों की अवस्थिति वितरण प्रतिरूप के संदर्भ में देखी जाती है। समाजवादी भूगोल वितरण और प्रतिरूप को एक ही संदर्भ में देखते हैं, क्योंकि उत्पादन व वितरण का स्तर दोनों सामाजिक स्तर पर ही किए जाते हैं दोनों क्रियाओं का समाज विशेष से सीधा सम्बन्ध है।

(II) व्यक्ति बनाम समाज—

उत्पादन एवं वितरण की श्रृंखलाबद्धता की तरह ही सामाजिक भूगोल में व्यक्ति एवं समाज को एक दूसरे से अभिन्न जाना जाता है जबकि प्रत्यक्षवादी, व्यक्तिगत निर्णय को विश्लेषण का आधार मानते हैं। वास्तव में व्यक्तिगत स्तर पर लिए गये निर्णय सम्पूर्ण समाज के लिए सार्थक नहीं होते हैं। क्योंकि इसमें सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों, प्रक्रियाओं की अवहेलना की जाती है। समाजवादी भूगोल सामाजिक संरचना में परिवर्तन के सिद्धान्त पर आगे बढ़ता है।

(III) भू विन्यास की कल्पना—

प्रत्यक्षवादी एवं सामाजिक भूगोलवेत्ताओं में एक मतभेद यह है कि प्रथम वर्ग भूविन्यास को प्रमुख एवं समाज को गौण तत्व मानता है जबकि समाजवादी, सामाजिक प्रक्रिया को प्रमुख एवं भूविन्यास को उसका प्रतिफल मानता है जैसे कोटेशन प्रभृति क्षेत्रीय असमता का कारण सामाजिक संरचना को मानते हैं जिसकी अभिव्यक्ति भूविन्यासिक संगठन में होती है।

एण्डरसन के शब्दों में “सामाजिक असमानता को क्षेत्रीय असमता से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि पृथक से पृथक कर देने पर दूसरा अर्थहीन हो जाता है। सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमता एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक क्षेत्रीय असमता के निवारण हेतु हार्वे ने तीन प्रकार के सिद्धान्तों में विधेद बताया।

(I) प्रतिक्रान्तिकारी

(II) यथास्थितिपरक

(III) क्रान्तिकारी ।

प्रतिक्रान्तिकारी सिद्धान्त, समस्या के व्यक्तिगत स्तर पर निराकरण पर बल देता है। इसमें समाज का व्यक्तिपरक विश्लेषण होता है। संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य में नहीं है। यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति के लिए संसाधन उपलब्ध करवाने पर बल देता है यदि व्यक्तिगत स्तर पर संसाधन, की पहुँच बने तब सामाजिक विकास का स्तर अपने आप ही बढ़ने लगता है। इससे समस्या के प्रति जागरूकता बिखर जाती है तथा लोगों का ध्यान आधारभूत समस्या से हटकर आंशिक का काल्पनिक प्रश्नों की ओर लग जाता है तथा इस तथ्य पर परदा डाला जाता है कि किन सामाजिक प्रक्रियाओं से विभिन्न सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं तथा इस प्रकार अवांछित सामाजिक विकास में दिशा परिवर्तन का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

यथास्थितिपरक सिद्धान्त, सामाजिक समस्याओं का निराकरण सरकारी तन्त्र के माध्यम से करने का उपक्रम करता है। इसके अनुसार आर्थिक प्रखण्डों या प्रदेशों या सामाजिक वर्गों में समता को पनपाना सरकारी तन्त्र का कार्य है। इसमें सामाजिक प्रक्रियाओं की पुनर्व्यवस्था की बात तो की जाती है पर यह कार्य राजनीतिक व्यवस्था के जिम्मे कर दिया जाता है। अब राजनीतिक तन्त्र किस प्रकार का है। यह समाज का विकास करेगा

या नहीं या इस बात की इसमें क्षमता है या नहीं यह दो बातों पर निर्भर करती है पहली राजनीतिक तन्त्र सामाजिक समस्याओं को उन्हीं परिप्रेक्ष्य में देख सके तथा दूसरी समस्याएं ऐसी हो जिनका समाधान मात्र नियामक-व्यवस्था में परिवर्तन से हो सके।

ये दोनों सिद्धान्त समस्या के गुणात्मक स्वरूप को परिवर्तित नहीं कर सकते सिर्फ उसमें मात्रात्मक परिवर्तन कर सकते हैं। इसका कारण है कि ये समाज के आधारभूत संरचनात्मक अन्तर्विरोधों पर आक्रमण नहीं करते। जब एक व्यक्ति मालिक और दूसरा मजदूर रहेगा तब तक उनमें व्यक्ति असमानताएं बनी रहेगी। उनमें अन्तर्विरोध की स्थिति बनी रहेगी। क्रान्तिकारी भूगोल इसी अन्तर्विशेष को ऊजागर करने का कार्य करता है। इस तरह समाजवादी भूगोल ही क्षेत्रीय सामाजिक असमानता के रचनात्मक आधार पर विश्लेषण करके इस असमानता को समाप्त करने का दिशा निर्देश करता है।

इस प्रकार समाजवादी भूगोल के विषय में कहा जा सकता है समाजवादी भूगोल जीवन के गुणात्मक स्तर में क्षेत्रीय असमानता के भूवैज्ञानिक स्वरूप संरचनात्मक आधार तथा मौलिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करके उसे न्यूनतम करने का दिशा निर्देश देता है। इस उद्देश्य से वह किसी क्षेत्र के भूवैज्ञानिक संगठन को वहां रहने वाले लोगों की सामाजिक संरचना, से अलग करके नहीं देखता। वह दोनों को परस्पर प्रेरक मानता है साथ ही समाजवादी भूगोल भूवैज्ञानिक संगठन तथा सामाजिक संरचना के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध का यथास्थितिक अध्ययन करके संतुष्ट नहीं होता। यह इस परस्पर सम्बन्ध का सम्बन्धित मानव समाज के कल्याण की दृष्टि से मूल्यांकन करता है। यदि विद्यमान स्थिति जीवन के गुणात्मक स्तर में मात्रात्मक अर्थात् उपभोग योग्य वस्तुओं का अधिक या कम मात्रा ही नहीं वरन् सुख-संतोष एवं प्रगति के अवसर वर्गानुसार या एक क्षेत्र की तुलना में दूसरे क्षेत्र में असमता को प्रश्रय देता है। इस उद्देश्य से समाजवादी भूगोल उन क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्धों एवं प्रक्रियाओं का गहन विश्लेषण करता है जिसमें क्षेत्रीय गुणात्मक जीवन स्तर में असमानता उत्पन्न होती है तथा बढ़ती है। मार्क्सवादी दर्शन का अनुसरण करते हुए समाजवादी भूगोलवेत्ता इस असमानता में अभिवृद्धि हेतु उस बाजार में प्रतिस्पर्धात्मक प्रक्रिया को उत्तरदायी मानते हैं जिसके द्वारा संसाधनों का स्वामित्व कुछ व्यक्ति या वर्गों तथा क्षेत्रों तक सीमित रहता है। मार्क्सवादी दर्शन का अनुसरण करते हुए समाजवादी भूगोलवेत्ता इस असमता में अभिवृद्धि हेतु उस बाजार – प्रतिस्पर्धात्मक प्रक्रिया को उत्तरदायी मानते हैं जिसके द्वारा संसाधनों का स्वामित्व कुछ व्यक्तियों वर्गों अथवा क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाती है तथा अन्य मात्र श्रम विक्रेता बनकर रह जाते हैं। इस प्रकार विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य जीवनस्तर में अधिक असमता व्याप्त है। बड़े महानगरों में रहने वाले मानव समाज के कुछ वर्गों में राजनेता उद्योगपति हैं तथा जन साधारण के मध्य विषमता पाई जाती हो इन सब तथ्यों व उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है कि किसी व्यक्ति का जीवन स्तर एवं प्रगति का अवसर इस तथ्य से परिसीमित हो जाता है कि उसका जन्म कहां और किस परिवार में हुआ है। जैसा की हाईमर ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है कि लोगों की आय एवं उपयोग की संरचना, पद एवं शक्ति की संरचना के अनुरूप होती है। किसी नगर के क्रोड स्थल के समीप रहने वाले लोगों को वहां के नवाचार का लाभ मिलता रहता है। उनके समक्ष रोजगार की समस्या नहीं रहती है उनके आय का उत्तर ऊँचा रहता है। क्रोड क्षेत्र से जैसे जैसे बाहर की ओर निकलेंगे नवाचार के स्रोतों में कमी आती जाती है। लोगों को नई वस्तुओं की जानकारी या तो होती नहीं है या देरी से मिलती है जिसका वे लाभ नहीं ले पाते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था प्रतिस्पर्धात्मक बाजार प्रक्रिया का परिणाम है। जिसमें देशों की बाजार व्यवस्था एक दूसरे पर निर्भर होने लगे हैं। आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता के केन्द्रीकरण के मूल में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की दो मौलिक त्रुटियां हैं पहली व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार की मान्यता जो बाजार में व्यक्ति विशेष की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को बहुत बढ़ा देती है। जिसका पूँजी एवं भूमि पर नियंत्रण हो जाता है। वह श्रमिक वर्ग का शोषण करने एवं पूँजी के एकत्रीकरण एवं इसके प्रस्तार की अपनी क्षमता में वृद्धि करता रहता है। वह प्रारम्भ में ही संसाधनों पर अपना अधिकार स्थापित कर लेता है और श्रमिक वर्ग उसकी बराबरी कर पाने में असक्षम हो जाता है। दूसरी- भौगोलिक संदर्भ में बाजार प्रक्रिया द्वारा सभी उत्पादन के साधन वहीं एकत्रित होने लगते हैं जहां अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो। पूँजी का प्रवाह एक नगर या क्षेत्र से दूसरे में लाभ के अवसर के अनुपात में होता है परन्तु व्यावहारिक धरातल पर श्रम की गतिशीलता विविध कारणों से कम होती है। इस प्रक्रिया में पूँजी तथा श्रम दोनों ही बड़े नगरों में अवस्थिति के लाभ को बढ़ा-चढ़ा कर देखते हैं उसका परिणाम यह होता है कि सम्पूर्ण सवैज्ञानिक तन्त्र कोड उपान्त-तन्त्र में परिणत हो जाता है और क्षेत्रीय असमानता की समस्या हर स्तर पर प्रकट हो जाती है। समाजवादी भूगोल-पूँजीवादी व्यवस्था में निहित इसी अन्तर्द्वन्द्व एवं प्रक्रिया पर चोट करता है इस प्रकार यह पूर्ववर्ती भौगोलिक संकल्पनाओं

से इस अर्थ में भिन्न हैं कि पूर्ववर्ती संकल्पनाएं मात्र कहां क्या अवस्थित है पर ध्यान केन्द्रित करती हैं जबकि क्रान्तिकारी या समाजवादी भूगोल कहां क्या कौन पाता है और कैसे का विश्लेषण करने को प्रवृत्त है।

8.6 पर्यावरण कारणवाद (Environmental Causation)-

पर्यावरण कारणवाद या कारकवाद मानवीय समस्याओं पर ध्यान दिया है जिसमें एक ओर जहां प्रत्यक्षवाद जो यथार्थता का दिखावा करता है तथा दूसरी ओर मानवीय समस्याएं जिनमें वृहद स्तरीय दरिद्रता, बढ़ती सामाजिक विषमता तथा पर्यावरण आक्रमण को भली प्रकार समझने एवं सुलझाने में समाजवादी या आचारपरक भूगोल की असमर्थता ने भूगोलवेत्ताओं को पुनः पर्यावरण—मानव अन्तर्सम्बन्ध के स्वरूप को नये सिरे से समीक्षा करने पर विवश किया। समाज विज्ञान के सभी विषयों में भूगोल विषय ने ही पर्यावरण—मानव तन्त्र का अध्ययन किया है 19वीं सदी के उत्तरार्ध से ही मानव—पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध भौगोलिक अध्ययन का मूल आधार रहा है। इस अवधि में कभी—कभी क्षेत्र विश्लेषण अवस्थिति विश्लेषण, भू—वैज्ञानिक संगठन आदि पर विशेष बल देने के कारण यह भ्रम हुआ की यही भूगोल के मूल तत्व है। अमेरिकी भूगोलवेत्ता परिषद के प्रथम अध्यक्ष की यह घोषणा है कि कोई भी वक्तव्य भौगोलिक महत्व का है यदि इसमें किसी अजैव तत्व के नियन्त्रण तथा जैविक तत्व की अनुक्रिया में कोई सम्बन्ध झलकता है जिसमें भूगोल के नियतिवादी स्वर के बावजूद भूगोल के स्वरूप या इसकी संश्लेषणात्मक संस्कृति को रेखांकित करता है। सेम्पुल, हंटिंग्टन जैसे नियतिवादी विचारक तथा अनुयायीयों के पर्यावरण—मानव समन्वय विषयक अति सामान्यीकृत वक्तव्य वास्तविकता की कसौटी पर खरे नहीं उतर सके। पर्यावरण मानव सम्बन्ध के विश्लेषण की दिशा में किए गए— उनके प्रयत्न नितान्त निरर्थक भी नहीं माने जा सकते। लैबरनेट ने नियतिवाद का विश्लेषण किया है तथा कहा है कि सेम्पुल को अवस्थिति सिद्धान्त का प्रवर्तक, हंटिंग्टन को वातावरण की गुणवत्ता मापने हेतु निर्देशांक विकसित करने वाला तथा टेलर को विकास की सीमा का प्रतिपादक माना जा सकता है वातावरणवाद कभी नितान्त अवास्तविक सिद्ध नहीं हुआ, यह मात्र अस्वीकृत हुआ है। नियतिवाद के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप भूगोलवेत्ताओं ने थोड़े समय लिए पर्यावरण से मुँह मोड़ा तथा वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को साथ लेकर अधिक लम्बे समय तक विषयवस्तु की वास्तविकता की खोज में भटकते रहे किन्तु उन्हें एक ओर पहले से ही जमे जमाये विषयों जैसे भौतिकी, जलवायु विज्ञान, भौमिकी मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से प्रतिस्पर्धा न कर पाने की विवशता तथा दूसरी ओर अपने मूल विषय के विघटन की प्रबल आशंकाजनित घोर निराशा ही हाथ लगी। इसके बाद भूगोल अपने मूल विषय में वापस लौटा तथा अपने मूल स्वरूप का पुनर्मूल्यांकन करते हुए प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के मध्यस्थ स्थिति को अधिक लाभप्रद एवं प्रेरक समझने लगे हैं।

1970 के दशक में पारिस्थितिकी संतुलन की लहर तथा पर्यावरण ह्रास के विरुद्ध विश्वस्तरीय अभियान ने भूगोल वेत्ताओं की घर वापसी को अनिवार्य एवं साथ ही सुगम भी कर दिया। जान चैपेल (1689) ने डेविस के पश्चात पर्यावरण कारकवाद की लोकप्रियता घटने के लिए विश्व में बढ़ती कृत्रिमता के व्यक्तिनिष्ठ प्रत्यक्षीकरण को उत्तरदायी माना है। प्राकृतिक पर्यावरण पर औद्योगिक क्रान्ति तथा इलेक्ट्रानिक एवं साइबरनेटिक क्षेत्रों में प्रगति के चलते स्वचालित मशीनों कम्प्यूटरों, रोबोट, तीव्रगामी परिवहन एवं प्रकृति से प्राप्त कच्ची सामग्रियों के स्थान पर कृत्रिम वस्तुओं के अधिकाधिक प्रयोग से यह भ्रम उत्पन्न हो गया कि आधुनिक मानव प्रकृति पर कर्त्तई निर्भर नहीं है, तथा मानव कार्य—कलाप पर प्राकृतिक अंकुश सर्वथा विलुप्त हो गये हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि दीर्घकाल में तकनीकी विकास पर निर्भर मनुष्य अधिक लाचार एवं पर्यावरण पर आश्रित हो गया है। यदि विश्व में भोजन व ईंधन की व्यवस्था अल्पकाल के लिए बाधित हो जाए तो आधुनिक औद्योगिक महानगरों का जीवन तंत्र कुछ ही समय में चरमरा जाएगा। पर्यावरणीय प्रक्रियाओं एवं अंकुशों को नजर अन्दाज करके मानव तकनीकी प्रगति भी नहीं कर सकता क्योंकि विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति मानवकृत नियमों से नहीं वरन प्राकृतिक नियमों के अन्वेषण से ही अग्रसर होती है। बेकन के अनुसार प्रकृति पर विजय उनकी आज्ञा का अनुसरण करके ही प्राप्त किया जा सकता है यह आज भी उतना ही सार्थक है। पर्यावरण कारकवाद निम्न निर्देशित सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है—

1. प्रकृति मानव को सम्मिलित रूप से प्रभावित करती है। प्रकृति का एक घटक मानवीय क्रिया—कलापों को प्रभावित करता है। जैसे जलवायु, उच्चावच आदि सभी का अलग—अलग रूपों में प्रभाव डालता है। जो मानव जीवन पद्धति पर प्रभाव डालते हैं। नियतिवाद अपने प्रारम्भिक समय में इसे समझा नहीं पाया। पर्यावरण का प्रभाव समवेत होता है। किसी भी महत्वपूर्ण विचारक ने अलग—अलग प्रभाव को

स्वीकार नहीं किया था। हटिंगटन ने प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभाव की व्याख्या में “गिलफिनाल सिद्धान्त” के इस तथ्य को कि यूरोपीय सभ्यता को केन्द्र भूमध्यसागरीय क्षेत्र से खिसक कर उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में तभी जा सका जब शीत का प्रभाव न्यून करने की प्राविधि प्राप्त हो सकी।

2. सम्पूर्ण प्रकृति की एकात्मकता इसके विभिन्न अवयवों एवं परस्पर अन्तर्सम्बन्ध के विलग-विलग विश्लेषण में बाधक नहीं है। प्रकृति की समष्टि रूपी अवधारणा के कुछ विद्वानों की मान्यता है कि विश्व को खण्डों में विभक्त करना अथवा द्विधात्मक मानना मानसिक दिवालियापन है। यह मान्यता निराधार है क्योंकि ज्ञान अभिवृद्धि तत्वों के द्विधात्मक विश्लेषण से ही सम्भव है। प्रकृति के विभिन्न घटक तत्वों का अलग-अलग कार्य कारण ढूँढना व्यावहारिक धरातल पर सार्थक है। पृथ्वी के सभी भाग परस्पर सम्बन्धित हैं परन्तु इसका यह अर्थ कतई नहीं कि विश्व सर्वत्र एक समान है। भूगोल का प्रमुख लक्ष्य यह ज्ञात करना है कि धरातल का एक भाग दूसरे से किस प्रकार भिन्न है।
3. एक वर्ग के विद्वान नियतिवाद की आलोचना इसलिए करते हैं कि यह डार्विन के कार्य कारण सिद्धान्त पर आधारित है। सांस्कृतिक निश्चयवाद का अर्थ है कि मानव संस्कृति या प्राविधिकी से ही सब कुछ निर्धारित होता है। इसके अनुसार समर्थक कारकवाद की संकल्पना को ही अस्वीकार करते हैं। कारण सदैव क्षेत्र एवं काल के संदर्भ में ही निश्चित किये जाते हैं। किसी क्षेत्र में जो तत्व पहले प्रकट होते हैं उसे कारण एवं जो बाद में जाता है उसे प्रभाव मान लिया जाता है इस प्रकार मूल कारण जैसा कोई तत्व है ही नहीं चैपल के अनुसार सहसम्बन्ध अर्थात् दो तत्वों में क्षेत्रीय कालिक संयोग को ही कारक का दर्जा दिया जाता है। अन्य विद्वान डार्विन के उद्भव-विकास सिद्धान्त में जो कार्य-कारण विश्लेषण पर आधारित है, उन अंतरालों की ओर इंगित करते हैं जो उद्भव विकास श्रृंखला में दिखाई पड़ता है और इसलिए इसे अस्वीकार कर देते हैं। ठीक उसी प्रकार एक पर्यावरणीय तत्व जैसे, जन्मायु तथा सांस्कृतिक तत्व जैसे लोगों आचार-व्यवहार में कार्य कारण श्रृंखला की सभी कड़ियां जुड़ नहीं पायी जलवायु एवं मानव के क्रियाकलापों में जैतिक प्रक्रियाओं की प्रधानता पाई जाती है।
4. पर्यावरण-मानव अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन इसलिए भी अवैज्ञानिक करार दिया गया क्योंकि इन सम्बन्धों को सांख्यिकीय सूत्रों में नहीं बांधा जा सकता। कम्प्यूटर भी अतिवृहत् सहसम्बन्धों को सही ढंग से उजागर करने में अक्षम है।
5. नियतिवाद में एक नियमपरकता तथा दूरदृष्टि का पुट था जिसे कालान्तर में नजरअन्दाज कर दिया गया व्यक्तिनिष्ठ आकलन व नियम महत्वपूर्ण होते हैं, वस्तुनिष्ठ सत्य दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में अधिक प्रभावी होते हैं जैसे- एक व्यक्ति जब मैदानी क्षेत्र में अपना आवास स्थापित करता है तो उसे बाढ़ के बारे में जानकारी नहीं होती परन्तु भविष्य में उसे इस प्राकृतिक आपदा का सामना करना पड़ सकता है।
6. पर्यावरण स्थिर तत्व नहीं है अतः किसी क्षेत्र की परिवर्तित संस्कृति पर्यावरणीय प्रभाव के अभाव का प्रमाण नहीं है। सम्भववादी इस बात को मानते हैं कि किसी क्षेत्र विशेष की परिवर्तनशील संस्कृति इस बात का द्योतक है कि उन पर पर्यावरण का कोई प्रभाव नहीं है उनकी सोच स्थिर पर्यावरण की मान्यता पर आधारित है। जबकि पर्यावरण के तत्व स्थिर नहीं रहते मानव इतिहास में भी जलवायु में व्यापक एवं प्रभावकारी परिवर्तन हुए हैं।
7. सांस्कृतिक प्रसार, पर्यावरण कारकवाद का तार्किक विलोम नहीं है अनेक भूगोलवेत्ताओं ने संस्कृति पर पर्यावरण का प्रभाव मानने से इनकार कर दिया कि एक ही प्रकार के पर्यावरण जैसे नील घाटी एवं कोलोरेडो घाटी में भिन्न प्रकार की संस्कृतियां विकसित हुई हैं। इसके लिए दो तर्क प्रस्तुत किए गए जिनमें दोनों पर्यावरण सर्वथा समान हैं तथा संस्कृतियों के विकास की अवस्था एक है। ये दोनों तर्क उचित नहीं हैं। कहीं पर दो अलग-अलग क्षेत्रों का पर्यावरण समान नहीं हो सकता।
8. दो समान प्राकृतिक पर्यावरण युक्त क्षेत्रों में सांस्कृतिक भिन्नता हो सकती है जब एक क्षेत्र के पर्यावरण में बाह्य लोगों का आगमन हुआ हो और दूसरे में नहीं हुआ हो बाहर से आए हुए लोगों को पर्यावरण से समायोजित करने में समय लगता है।
9. पर्यावरण का प्रभाव मानव जीवन के भौतिक स्वरूप ही नहीं वरन आदतों एवं आचार विचार में भी देखने

को मिलता है। हटिंगटन के इस मत को सम्भववादियों द्वारा तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। परन्तु कई शोध संस्थानों ने इस मत को सही ठहराया। डार्विन के इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं कि मानव कुछ निश्चित वायुमण्डलीय दशाओं को समायोजन स्थापित करके विकसित हुआ है। और यही उसके जीवन के लिए उपयुक्त है। हटिंगटन के मत को आलोचना का सामना इसलिए करना पड़ा कि उन्होंने मात्र कुछ सहसम्बन्ध स्थापित किए थे। उनका कोई परीक्षण नहीं किया था।

10. पर्यावरण कारकवाद बृहत् व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में सहायक है। इसे मात्र प्रतिक्रियात्मक राजनीतिक दर्शन नहीं कहा जा सकता है। रोम के विद्वानों ने विकास की सीमा दर्शाकर पर्यावरण कारकवाद की सत्यता प्रमाणित कर दी है। विकासशील देशों में खाद्यान्न की समस्या का समाधान केवल भूमि का न्यायोचित आवंटन करके ही नहीं किया जा सकता इसके साथ पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं को भी मद्देनजर रखा जाता है। तथा इनका समाधान पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण से ही हो सकती है

8.7. संविकास (Ecodevelopment)-

संविकास का विचार पर्यावरण से जुड़ा हुआ विचार ही है। सन 1972 ई में विश्व पर्यावरण सम्मेलन के पश्चात् विश्व स्तर पर पर्यावरणीय अवक्रमण में अभिवृद्धि के प्रति जागरूकता एवं आर्थिक विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता ने एक नये चिंतन फलक को उभारा जिसे संविकास की संज्ञा दी गई। UNEP के महासचिव ने कहा कि विगत वर्षों में पर्यावरण एवं विकास के अन्तर्सम्बन्ध के प्रति हमारी अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। 1960 के दशक के अन्त तक यह माना जाता था कि पर्यावरण संरक्षण एवं विकास एक दूसरे के विलोम है। जिसका अर्थ समझा जाता था कि यदि विकास करता है, तो पर्यावरण की गुणवत्ता के रूप में उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी अर्थात् बिना पर्यावरण को क्षति पहुंचाए विकास नहीं किया जा सकता है। परन्तु इसके बाद यह समझा जाने लगा कि दोनों तत्व आपस में प्रतिलोम नहीं होकर अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण संरक्षण के बिना विकास नहीं हो सकता। जहां विकसित देशों में पर्यावरण का विनाश सम्पन्नता का परिणाम है अल्पविकसित देशों में पर्यावरण का ह्रास विपन्नता की देन है। संविकास का अर्थ है बिना विनाश किये विकास संविकास को समझाने के लिए निम्न तथ्यों का सहारा लिया जा सकता है—

(1) समन्वित विकास — ऐसा विकास जो पारिस्थितिकी की समग्रता को ध्यान में रखकर किया जाता है। दुनिया का कोई भी देश समन्वित विकास के नाम पर अपना स्वतंत्र रास्ता चुन सकता है। किसी भी देश के ऊर्जा, कृषि, वनोत्पादन, उद्योग आदि सब विकास के क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से स्वतंत्र माने जाते हैं। इन पर्यावरणपरक आर्थिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों को एक दूसरे से भिन्न-भिन्न समझा जाता है। परन्तु विश्वव्यापी अर्थतन्त्र एवं विश्व व्यापी पारिस्थितिकी एक दूसरे से आबद्ध है। समय के साथ जैसे-जैसे विकास का स्वरूप बढ़ता जाता है। पर्यावरण पर दबाव भी बढ़ता जाता है और पर्यावरण संकट की स्थिति हमारे समक्ष उत्पन्न होती है। उसने किसी भी स्थानीय पर्यावरण में ह्रास का प्रभाव विश्वव्यापी होने लगा है। विकसित देश यह मानकर चलते हैं कि दुनिया के किसी विकासशील देश में होने वाले पर्यावरण ह्रास का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता है। ब्राजील के अमेजन घाटी में काटे जाने वनों का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व की जलवायु पर पड़ता है।

हानिकारक गैस की मात्रा बढ़ाने में जिन देशों का हाथ है उनके साथ पूरे विश्व को इसका असर भुगतना पड़ता है। इस प्रकार संविकास की संकल्पना आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी में किसी को प्रधान एवं किसी को गौण न मानकर दोनों को अन्योन्याश्रित मानते हुए समन्वित विकास पर ध्यान केन्द्रित करती है।

(2) संतुलित विकास—

संविकास का दूसरा तत्व है संतुलित विकास, इसका तात्पर्य है ऐसा विकास जिसमें समाज के सभी वर्गों को समुचित लाभ मिले। विश्व में पर्यावरण ह्रास के एक कारण के पीछे विकास का लाभ का वितरण असमान होना है। विकास के स्तर एवं जीवों के भौतिक स्तर में बड़ी असमानता पायी जाती है जहां एक और विकसित देशों के निवासी भौतिक वस्तुओं का अत्यधिक मात्रा में उपयोग करते हैं वही दूसरी ओर विकासशील देशों के लोगों में इनका असमान वितरण के साथ-साथ कमी भी पाई जाती है। पर्यावरण क्षरण का सीधा प्रभाव वहां के भौतिक पर्यावरण पर देखने को मिलता है। विपन्नता एवं पारिस्थितिकी अवक्रमण का यह दृश्यक्रम विपन्नता में सतत अभिवृद्धि ही करता है निर्धनता को विश्व की अनेक समस्याओं की जड़ माना है यह पर्यावरण

के विनाश की भी जड़ है। निर्धन लोग ज्यादातर सीमांत भूमि का प्रयोग करते हैं, पोषक तत्व विहीन भूमि पर अधिक दबाव डालते हैं तथा वृक्षों को काट डालते हैं इस प्रकार के कार्यों से प्राकृतिक संसाधनों का विनाश होता है, जिसके क्षरण वनों के ह्रास, मरुभूमि प्रसार, मिट्टी की उत्पादकता में ह्रास तथा बीमारियों के प्रसार के रूप में स्थानीय स्तर पर प्रकट होते हैं। ये समस्याएँ औद्योगीकरण अथवा उपयोग अतिरेक से उत्पन्न समस्याओं से कई गुना अधिक विकट हैं। इस दुश्चक्र को संतुलित विकास द्वारा तोड़ा जा सकता है। ऐसा विकास, जो मानव समाज के निर्धन एवं धनी हर वर्ग को समुचित लाभ प्रदान करें, संतुलित विकास है, जैसा W.C.E.D. के प्रकाशन *Our Common Future* में जोर देकर कहा गया है— असमानता विश्व की सबसे बड़ी पारिस्थितिक समस्या है। यही विकास की भी सबसे बड़ी समस्या है। अतः संविकास की संकल्पना ऐसे आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी संरक्षण पर बल देता है। जिससे विश्व के विकसित एवं अल्पविकसित देशों के बीच का अन्तराल क्रमशः संकुचित हो तथा अल्पविकसित देशों में निर्धन लोगों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(3) संघृत विकास—

संविकास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व संघृत विकास है। इसका तात्पर्य यह है कि विकास ऐसा होना चाहिए जो न सिर्फ मानव समाज के तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे वरन् स्थाई तौर पर भविष्य के लिए भी निर्बाध विकास का आधार प्रस्तुत करे। विकास मानव की जरूरतों तथा मानव जीवन की गुणवत्ता के लिए जैव-अजैव संसाधनों का ऐसा उपयोग तथा जैव मण्डल का ऐसा परिस्कार है जो वैकल्पिक कार्यों के अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक लाभ व हानि ध्यान में रखे। संघृत विकास का उद्देश्य है— मानव समाज की विद्यमान मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति को बिना भावी पीढ़ियों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता को किसी प्रकार नुकसान पहुंचाये सुनिश्चित करना है। इस दृष्टि से संघृत विकास ऐसे संरक्षण पर बल देता है जो मानव द्वारा उपयोग में लिए संसाधनों का इस प्रकार से उपयोग सुनिश्चित करें की उन्हें भावी पीढ़ियों के लिए भी सुनिश्चित किया जा सके। संघृत विकास, पारिस्थितिकी तंत्र के उपयोग की कोई निरपेक्ष सीमा स्वीकार करता है। संघृत विकास यह मानता है कि उपयुक्त प्राविधिकी एवं सामाजिक एवं सामाजिक व्यवस्था द्वारा पारिस्थितिक तंत्र से इतने संसाधन प्राप्त किये जा सकते हैं, कि मानव समाज के विद्यमान एवं आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके इस प्रकार संविकास मात्र ऐसा पर्यावरण संरक्षण नहीं है जो पर्यावरण से संसाधन दोहन पर अंकुश लगाने के रुझान को दर्शाता है। वरन् पारिस्थितिक तन्त्र के संसाधनों में अभिवृद्धि पर जोर देता है।

8.7.1. संविकास के सिद्धान्त (Principles of Eco- Development)

संविकास की संकल्पना दो विकासपरक मूल दर्शन पर आधारित है पहला— संतुलित स्वास्थ्यप्रद भोजन, पर्याप्त समुचित वस्त्र एवं आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, विकल्प चयन की स्वायतता तथा आत्मोत्कर्ष की आकांक्षा की पूर्ति करना है न कि विकसित तथा अल्पविकसित देशों या प्रदेशों में निवास करने वाले विशिष्ट वर्ग के लोगों के असीमित प्रलोभन को संतुष्ट करना। आज विश्व की आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी असंतुलन सम्बन्धी अनेकानेक समस्याओं की जड़ में उपयोग परक् प्रवृत्ति है। पृथ्वी के पास सभी लोगों के भरण-पोषण के संसाधन हैं, परन्तु कुछ लोगों के प्रलोभन के लिए नहीं है संविकास की संकल्पना इसी मूल दर्शन पर आधारित है।

दूसरा— संविकास न तो पारिस्थितिकी तंत्र के मानव द्वारा किंचित छेड़-छाड़ का विरोधी है, और न विकास की कोई सीमा निश्चित करने का समर्थक है। यह एक ऐसे आर्थिक तंत्र के निर्माण की संकल्पना करता है जो जैव-प्राविधिकी का अधिकाधिक उपयोग करके पारिस्थितिकी का अनुकूलित उत्पादन करे।

W.C.E.D ने विकास के निम्न सिद्धान्त बताए हैं—

- 1) एक ऐसा राजनीतिक प्रशासनिक तंत्र जो निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों के प्रभावी भागीदारी को सुनिश्चित करे। बिना इस प्रकार के सार्वजनिक भागेदारी के न तो पारिस्थितिक तंत्र के स्थायित्व, न आर्थिक विकास के प्रयास सफल हो सकते हैं। अल्पविकसित देशों में पर्यावरण के व्यापक ह्रास का यही कारण है। वहां किसी भी प्रकार के कार्य जो जन कल्याण के लिए किए जा रहे हो उनमें आम जनता की भागीदारी न के बराबर होती है। बिना जन सहयोग के पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ने वाले कुप्रभावों को नहीं रोका जा उनकता है जैसे कोई व्यक्ति अपने घरेलू जरूरत के

लिए वृक्ष को काट लेता है परन्तु उसके पारिस्थितिक तंत्र पर पहुंचने वाले दूरगामी प्रभावों को वह नहीं जानता और उसे जब तक ईंधन के वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध नहीं होंगे वह वृक्ष काटने से भी नहीं रुकेगा।

- 2) ऐसे सामाजिक तंत्र का निर्माण जो असंतुलित विकास से उत्पन्न होने वाले तनावों को दूर करने में समर्थ हो। जिस समाज में उत्पादन में मिलने वाले लाभ का समुचित वितरण नहीं होता है वहां तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है जिससे युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती है और आर्थिक विकास भी रुक जाता है तथा पारिस्थितिक तंत्र का संरक्षण हो जाता है इसी कारण सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था वाले देशों या क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति रुक जाती है तथा वातावरण का ह्रास भी नहीं रुकता है।
- 3) एक ऐसी उत्पादन व्यवस्था जो सिर्फ आर्थिक विकास पर ही ध्यान नहीं देती परन्तु पारिस्थितिकी तंत्र को भी सुदृढ़ बनाने में कटिबद्ध रहती है।
- 4) एक ऐसा प्राविधिक तंत्र जो सतत आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी समस्याओं के नये हल ढूँढने में सक्षम एवं तत्पर रहता है जैसे जैव प्राविधि से एक और हरित क्रांति उत्पन्न हुई जिसने विकासशील देशों की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न लिए संकट को दूर किया वहीं दूसरी ओर इसने नई पारिस्थितिकीय समस्याओं को भी जन्म दिया कीटनाशक दवाओं के प्रयोग जल, मृदा व वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार समय के साथ नवीन प्रकार की संभावनाओं ने जन्म लिया।
- 5) एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था जो संघृत विकास को प्रश्रय देता हो, ध्यान देने योग्य बात है, कि पारिस्थितिकी तंत्र की स्थानीय स्तर पर प्रकट होने वाली अनेक समस्याएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न होती हैं। वायुमण्डल में कारखानों से निकलकर प्रविष्ट होने वाले अनेक हानिकारक गैसें कार्बनडाई आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन जो क्रमशः कांच गृह प्रभाव, तेजाबी वर्षा तथा ओजोन परत में क्षय के लिए जिम्मेदार हैं। यह औद्योगिक देशों से निःसृत होती है परन्तु इसका कुप्रभाव समान रूप से दूर देश पर देखने को मिलता है इस तरह के कई प्रदूषक तत्वों का बहिःस्त्राव देखने को मिलता है जिसके दुष्परिणाम सभी को भुगतने पड़ते हैं। अतः संविकास का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है विश्व स्तर पर विचार एवं स्थानीय स्तर पर कार्य ऐसा तभी सम्भव है जब एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्माण हो जो सम्पूर्ण विश्व में संघृत विकास की दृष्टि से कार्य करे।

8.8. सारांश—

भूगोल के परिवर्तनशील चिंतन फलक में भूगोल समाज विज्ञान के अन्य विषयों से भी प्रभावित रहा है। इसके उपरान्त भूगोल में कई नवीन विचारधाराओं का समावेश किया गया है भूवैज्ञानिक भूगोल में क्षेत्रीय अध्ययन पर बल देता है। इस अध्ययन के दृष्टिकोण में एक क्षेत्र विशेष का दूसरे क्षेत्र विशेष से प्रारूपीय अध्ययन किया गया तथा क्षेत्र की महत्ता का विचार लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। क्षेत्रीय अध्ययन की रूपरेखा प्रस्तुत करने के साथ भूगोल में भूतल के विभिन्न विषयों की जानकारी उपलब्ध करवाई गई तथा यह भी जाना गया कि भले ही भूतल पर क्षेत्रीय विभिन्नता पाई जाती है। परन्तु सभी क्षेत्रों में परस्पर समरूपता पाई जाती है सभी में आपस में सहसम्बन्ध पाया जाता है। धरातल पर पाये जाने वाले संसाधनों के अध्ययन की रूपरेखा पर समाजवादी भूगोल के रूप में चिंतन फलक को आगे बढ़ाया गया जो इस बात का पुरजोर समर्थन करता है कि पृथ्वी पर पाये जाने वाले संसाधनों पर सभी वर्गों के लोगों का समान अधिकार होना चाहिए। यह विचार मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित जिसने भूगोल में सभी प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोणों को नकारते हुए समाजीकरण पर जोर दिया है। इसी से क्रांतिकारी भूगोल का विकास हुआ। इन सबके बाद 1960. के दशक के बाद भूगोलवेत्ताओं व नीति निर्माताओं को पुनः एक बार पर्यावरण का ख्याल आया जब नियतिवाद व सम्भववाद के सिद्धांतों को पुनः कसौटी पर परखा गया तथा उनमें व्याप्त खामियों को दूर कर इसे सुधारा गया। इसके बाद 1970 के दशक के आस-पास संविकास की बात की जाने लगी क्योंकि अब तक आते-आते मानव को विकास बहुत अधिक लुभाने लगा था परन्तु इन विकास की कीमत पर्यावरण को चुकानी पड़ी जब पर्यावरण में

असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई । अब मानव के समय दो स्थिति बन चुकी थी कि कि मानव व दुनिया के देश किसी भी कीमत पर विकास में पिछड़ना नहीं चाहते थे और पर्यावरण को बचाना एक चुनौती पूर्ण कार्य बन चुका है जिसके लिए संविकास का विचार आया परन्तु वर्तमान में भी कई क्षेत्रों में पर्यावरण की अनदेखी की जा रही है जिसकी कीमत मानव चुका रहा है।

8.9. पारिभाषिक शब्दावली—

- **भूवैन्यासिक संगठन**— मानव कार्य कलाप की परस्पर अन्तर्सम्बन्धित अवस्थिति।
- **समाजवादी भूगोल**— समाज को राजनीति मूलक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। राजनीति मूलक अर्थव्यवस्था का तात्पर्य है ऐसा सामाजिक अर्थतन्त्र अथवा जीवन पद्धति जिसकी जड़े उत्पादन पद्धति में होती है
- **मार्क्सवाद** — द्वन्दात्मक भौतिकवाद की पद्धति से सामाजिक आर्थिक विकास को समझने का प्रयास करता है।
- **क्रान्तिकारी या मार्क्सवादी भूगोल** — यह समन्वित विज्ञान का वह भाग है जो एक ओर सामाजिक प्रक्रियाओं एवं दूसरी ओर प्राकृतिक पर्यावरण एवं भूवैन्यासिक संगठन के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करता है।
- **पर्यावरण कारकवाद**— प्रत्यक्षवाद अपना उद्देश्य पूरा न कर सका। दूसरी ओर मानवीय समस्याओं को सुलझाने में समाजवादी या आचारपरक भूगोल की असमर्थता ने भूगोलवेत्ताओं ने पुनः पर्यावरण—मानव अन्तर्सम्बन्ध के स्वरूप को नये सिरे से समीक्षा करने पर विवश कर दिया।
- **संविकास**— पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास किये बिना विकास करना।

8.10. बोध प्रश्न

8.10.1.— दीर्घ उत्तरीय प्रश्न—

प्रश्न 1. भूवैन्यासिक संगठन क्या है? विस्तृत रूप में व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. समाजवादी भूगोल का विधितंत्रात्मक औचित्य स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. समाजवाद के तीन सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4. पर्यावरण कारणवाद के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5. संविकास के तीन प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए।

8.10.2, लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न—1. संविकास किसे कहते हैं?

प्रश्न 2. संतुलित विकास किसे कहते हैं?

प्रश्न 3. संघृत विकास किसे कहते हैं।

प्रश्न 4. पर्यावरण कारकवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 5. समाजवादी भूगोल क्या है?

प्रश्न 6. मार्क्सवाद क्या है?

8.10.3. — बहु विकल्पिय प्रश्नोत्तर

1. 1950 के दशक में भूगोल के स्वरूप को वैज्ञानिक बनाने के लिए कौनसा नवीन चिंतन फलक उभरा।

- (क) भूवैज्ञानिक संगठन (ख) समाजवादी भूगोल
(ग) पर्यावरण कारकवाद (ख) संविकास

2. 1969 ई० में प्रकाशित **Antipode** पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन के साथ भूगोल में कौन सा नवीन चिंतन फलक उभरा।

- (क) क्रांतिकारी भूगोल (ख) नियतिवाद
(ग) सम्भववाद (ख) संविकास

3. संविकास किस सन में प्रकाश में आया।

- (क) 1970 (ख) 1971
(ग) 1972 (ख) 1973

उत्तर माला— (1)— (क) (2)— (क) (3)— (ग)

8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.
- प्रो. माजिद हुसैन, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई— 09— भूतल की अवधारणा, भूदृश्य की संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 भूतल की अवधारणा
- 9.4 भू दृश्य की संकल्पना
- 9.5 सारांश
- 9.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 9.7 बोध प्रश्न
- 9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल का अध्ययन भूतल या पृथ्वीतल से जुड़ा हुआ है, 19वीं सदी तक इसके अध्ययन को यहीं तक सीमित रखा गया। समय के साथ भूतल का अर्थ और परिभाषा दोनों बदलते रहे और भूगोल का विषय क्षेत्र भी संकुचित से विस्तृत होता गया। 18वीं सदी में विकसित भूगोल में भूतल का तात्पर्य या विश्व के वे तत्व जिनका ज्ञान मनुष्य को था। इस अर्थ में भूतल के अन्तर्गत वायुमण्डल एवं ठोस पृथ्वी के अन्दर का वह अंश शामिल था जिसमें मनुष्य का प्रवेश हो चुका था। रिचथोफेन से पूर्व अधिकतर भूगोल की पुस्तकों में भूतल को सम्पूर्ण पृथ्वी का समानार्थी माना जाता था, 19वीं सदी से पूर्वार्द्ध में रीटर ने भूगोल को पृथ्वी के उस भाग तक सीमित माना, जो मनुष्य का निवास क्षेत्र है। रीटर ने अपनी पुस्तक का नाम भूविज्ञान रखा था तथा इसी आधार पर उनके समानार्थी व अन्य भूगोलवेत्ताओं ने सम्पूर्ण पृथ्वी तथा उसके भौगोलिक तत्वों का अध्ययन माना है। इनका यदि भूगोल के प्रति कोई ठोस कार्य देखें तो वह पृथ्वी के वाह्य तल तक ही सीमित है। इसी कारण रिचथोफेन में 1883 ई में भूगोल का अध्ययन क्षेत्र पृथ्वी के ऊपरी तल तक ही सीमित किया है। तब से भूगोलवेत्ता अध्ययन क्षेत्र की इस भौतिक सीमा को स्वीकार करते आये हैं। तथापि इसके वास्तविक सीमान्त के विषय में अस्पष्टता समाप्त नहीं हुई। रिचथोफेन ने सर्वप्रथम पृथ्वी के ठोस भाग के बाहरी परत को 'भूतल' माना है परन्तु बाद में रिचथोफेन ने इसमें सुधार किया और भूतल को परिभाषित करने और भूगोल के विषय क्षेत्र के निर्धारण में एक नया बिन्दु जोड़ते हुए इसे बाहरी परत के ऊपर और नीचे विस्तृत एक पेटी तक ले गये। इस प्रकार भूतल या पृथ्वी तल का अध्ययन सन 1883 में विस्तारित रूप में किया जाने लगा तथा इसके विषय क्षेत्र में नये-नये आयाम जोड़े गये।

9.2 उद्देश्य

- भूगोल को भूतल के अध्ययन के रूप में मानना।
- भूगोल का विषय क्षेत्र का निर्धारण करना।
- भूतल पर विद्यमान सम्पूर्ण प्राकृतिक दृश्यों को अध्ययन की विषय-वस्तु में सम्मिलित करना।
- भूतल व भूदृश्य की संकल्पना को स्पष्ट करना
- भूतल अर्थात् पृथ्वी के ऊपरी भाग का विस्तृत विवेचन करना।
- भूगोल में स्थान व स्पेश की संकल्पना को व्याख्यायित करना।
- सांस्कृतिक भूदृश्य के बारे में जानकारी देना।

9.3. भूतल की अवधारणा

हम्बोल्ट और रीटर को भूगोल को स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है। इसके बाद भूगोल विषय की रूपरेखा का निर्धारण करने का समय आया जिनमें, हेटनर रिचथोफेन, मेकिन्डर जैसे विद्वानों ने अपनी-अपनी राय प्रस्तुत की तथा अपने विचारों से भूगोल में कई नवीन संकल्पनाएँ लेकर आये। ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं की शब्दावली समिति ने यह मत व्यक्त किया कि भूगोल का अध्ययन तत्त्व भूतल है इसके अन्तर्गत वायुमण्डलीय आवरण तथा पृथ्वी के आन्तरिक ठोस भाग को सम्मिलित किया जाता है। इसका अर्थ यह समझा जाने लगा कि भूतल के अन्तर्गत जलवायु तत्वों की अपेक्षा भू आकृतिक तत्वों का अधिक समावेश है। हेटनर ने भूतल को अर्थात् पृथ्वी की खोल की संज्ञा दी है। इसी क्रम में अगले विद्वान ट्राल व कैरोल ने भी भूतल की इस संकल्पना को स्वीकारते हुए इसे पांच विभिन्न मण्डलो, थल, वायु, जल, जीव व मानव मण्डलों का समिश्र बताया है। मैकिन्डर ने इसे जलमण्डल का समानार्थक माना है। उनका मानना था कि विश्व का वह भाग जिसमें जल का परिसंचरण होता है वो भूतल है। इस परिभाषा में वायुमण्डल के जलवाष्प का सम्मिलित होना संदेहास्पद है। अन्य भूगोलवेत्ता उसे जीवमण्डल का समानार्थक मानते हैं। परन्तु यहां पर भी यह कठिनाई है कि वायुमण्डल का कितना भाग जीवमण्डल में सम्मिलित होगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मानव मण्डल अर्थात् भूतल के नीचे ऊपर का उतना भाग जिसमें मानव सक्रिय रहकर अपने कार्य सम्पादित करता है भूतल की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं जीव मण्डल जैविक पदार्थ एवं खनिज तत्वों को जो जीव निर्माण परिधि के अन्तर्गत आते हैं एकसूत्र में बांधते हैं। सोवियत वैज्ञानिक इसे भूतल या जीवमण्डल की अपेक्षा चेतन मण्डल कहना अधिक श्रेयस्कर मानते हैं।

चेतन मण्डल की संकल्पना सर्वप्रथम फ्रेंच दार्शनिक की राय ने सन 1927 में प्रस्तुत की। जिसने विस्तारित रूप से प्रस्तुत करने का कार्य चार्डिन ने सन 1959 में प्रस्तुत किया। संचेतन मानव क्रिया कलाप द्वारा जीवमण्डल के प्रत्यावर्तन की ओर सम्यक ध्यान दिया। इसी तरह से मन चेतन विचार भी आया जिसने विकास प्रक्रिया को मानव एवं प्रकृति के मध्य सम्बन्धों का सम्यक नियमन माना। यह अवधारणा मानव की परिष्कृत प्राविधिकी द्वारा जीवमण्डल के सचेत नियन्त्रण को मान्यता प्रदान करता है यदि इसमें यह माना जाता तो अन्तरिक्ष में मानव की सक्रियता में अभिवृद्धि को देखते हुए कम से कम चन्द्रमा को भी जहां पर मानव पहुँच चुका है। मुझे भी भूतल में शामिल करना पड़ेगा और भविष्य में यदि मानव अन्य ग्रहों पर भी अपनी पहुँच बनाता है तो उन्हें भी 'भूतल' की परिधि में लाना होगा। इस प्रकार यह तो है कि भूतल का सीमा निर्धारण करना कठिन कार्य है। इसे शाब्दिक रूप से परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है। जितना भूतल की सीमा का निर्धारण करना है इस पर कान्ट एवं लेहमान ने कुछ विचार सुझाए हैं तथा उन्होंने बताया कि भूतल को विश्व का सामाजिक मानना चाहिए। जिसमें धरातल के ऊपर व नीचे जहां तक घटित होने वाली घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव कार्यकलाप पर पड़ता है भूतल है।

9.4 भूदृश्य की संकल्पना

भूतल की तरह ही भूदृश्य, जो साधारणतया भूतल के एक खण्ड से सम्बन्ध माना जाता है, परम्परागत भूगोल के अध्ययन का एक अभिन्न अंग रहा है। हम्बोल्ट से लेकर हार्टशोर्न तक इसका विवेचन भूगोल की एक मूलभूत संकल्पना के रूप में हुआ है। भूदृश्य की कल्पना कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं हुई। हार्टशोर्न ने बताया कि 20वीं शताब्दी के दूसरे, दशक भौगोलिक शब्दावली में भूदृश्य शब्द सर्वाधिक प्रचलित हो गया था तथा इसके स्पष्ट अर्थ को लेकर भूगोल विषय में भ्रम की स्थिति बनी रही। भूदृश्य शब्द की स्पष्टता का मुख्य कारण जर्मन भाषा में प्रयुक्त *Landschaft* (लैण्ड शाफ्ट) शब्द को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करना रहा है इस शब्द के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्दों को भी इनके अर्थों के अनुसार पहचानना आवश्यक हो जाता है।

जर्मनी में लैण्डशाफ्ट शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम किसी क्षेत्र का दृष्टव्य सामान्य स्वरूप तथा द्वितीय – कोई परिसीमित क्षेत्र से है। अंग्रेजी भाषा में सिर्फ प्रथम की अभिव्यक्ति *Landscape* शब्द द्वारा होती है जबकि दूसरे के लिए क्षेत्र या प्रदेश शब्द का व्यवहार किया जाता है

वाइबेल के अनुसार लैण्डशाफ्ट भूतल एवं आकाश का वह खण्ड है जो एक विशेष बिन्दु पर स्थित होने के कारण दृष्टि की परिधि में आता है। ग्रेनो नामक विद्वान ने लैण्डशाफ्ट के अन्तर्गत सिर्फ दृष्टिगत

भूदृश्य ही नहीं अपितु सभी इन्द्रिय तत्वों को भी सम्मिलित करते हैं। यह वह सम्पूर्ण छाप है जो कोई भूतल खण्ड एवं सम्बद्ध आकाश मानव आकाश पर डालता है। इस प्रकार इसमें न सिर्फ दृष्टिगत एवं इन्द्रियगत अनुभूति करनेवाले तत्वों को भी सम्मिलित करते हैं। भूदृश्य में सम्मिलित होने वाले तत्वों को लेकर जर्मन भूगोलवेत्ताओं में पर्याप्त मतभेद रहा है। हम्बोल्ट प्रकृति के सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण के समर्थक थे। जिसे ही उन्होंने लैण्डशाफ्ट कहा है। प्रकृति की एकता में विश्वास रखने वाले हम्बोल्ट का भूगोल के विषयक्षेत्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जबकि वाल्टर पेंक इसके अन्तर्गत उन्ही तत्वों को सम्मिलित करते हैं जो दृष्टिगत हो सके। परन्तु वे भूदृश्य को मनुष्य को नहीं, सिर्फ मनुष्य के भूतल पर प्रभाव को अभिव्यक्त करने वाले तत्वों तक ही सीमित करना चाहते थे दूसरी ओर स्ल्यूटर का मत था कि मानव लैण्डशाफ्ट का अभिन्न अंग ही नहीं महत्वपूर्ण घटक भी है। पसार्गे मानव के साथ ही जन्तुओं को भी भूदृश्य से अलग रखना चाहते थे वे इसके अन्तर्गत सिर्फ प्राकृतिक, मानवोत्तर तत्वों का तथा यहां तक की ऐसी प्राकृतिक वनस्पति का जिसका अस्तित्व वर्तमान में नहीं है उनको भी सम्मिलित करना चाहते थे तथा अधिकतर भूगोलवेत्ता इस मत को महत्वहीन मानते थे जो लैण्डशाफ्ट को दृष्टव्य भौतिक पदार्थों का पुंज मानते थे कुछ विद्वानों ने प्रजातिगत एवं भाषा परक दशाओं जैसे अमूर्त तत्वों को भी भूदृश्य का अंग समझते थे। अतः यहां इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि जो भूगोलवेत्ताओं का समुदाय लैण्डशाफ्ट का तात्पर्य भूतल के किसी खण्ड एवं उनसे जुड़े आकाश की परिसीमा में आने वाले अनुभूति परक तत्वों का पुंज मानता था, इसके अन्तर्गत शामिल किये जाने वाले तत्वों को, जिनका अध्ययन वह भूगोल की परिसीमा में करना चाहता था 'लैण्डशाफ्ट' का अभिन्न अंग मानता था यहां तक की कुछ भूगोलवेत्ता राज्य को भी इसका एक अंग मानते थे। वो इसलिए नहीं की राज्य एक दृष्टव्य तत्व है या दृष्टव्य तत्वों को प्रभावित करता है अपितु इसके भी कि 'राज्य' भी लैण्डशाफ्ट के किसी तत्व से सम्बन्धित है। इस अर्थ में लैण्डशाफ्ट मात्र भौगोलिक क्षेत्र का समानार्थक बना जाता है।

लैण्डशाफ्ट शब्द का व्यवहार एक निश्चित आचार विचार के क्षेत्र हेतु भी किया गया था। होम्मेयर ने इसे गेगेन्द (Gegend) अर्थात् किसी व्यक्ति के निवास स्थल के आस-पास का सुपरिचित क्षेत्र तथा देश के मध्यवर्ती विस्तार का क्षेत्र माना था। ग्रिब्स शब्दकोश के अनुसार लैण्डशाफ्ट एक ऐसी राजनीतिक इकाई है जिनका विस्तार देश से छोटा होता है जिसमें सम्बन्धित क्षेत्र की जनसंख्या को भी सम्मिलित किया जाता है। इसमें कहीं भी प्राकृतिक भूदृश्य को लैण्डशाफ्ट की विशेषता नहीं बतायी गई है अर्थात् प्राकृतिक भूदृश्यों का समावेश इसमें कम किया गया या उसे अनदेखा किया गया। इस तरह क्रेब्स की मान्यता थी कि Land और Landschaft में मौलिक अन्तर क्षेत्रीय विस्तार का नहीं है। Land शब्द देश के लिए प्रयुक्त हुआ जैसे England, या Deutschland (जर्मनी का मूल नाम) जैसे राष्ट्रीय इकाईयों के लिए ही नहीं बल्कि Saverland जैसे लघु अराजनीतिक क्षेत्रों के लिए भी होता है। लैण्डशाफ्ट किसी क्षेत्र विशेष, चाहे वह छोटा हो या बड़ा उस क्षेत्र के उन स्वरूपों का बोधक है जो क्षेत्र विशेष की विशेषता की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे अल्पाइन लैण्डशाफ्ट आल्प्स क्षेत्र का बोधक नहीं है। आल्प्स एक ऐसा प्रदेश है जो अपनी विशेषताओं में दुनिया के ऊंचे प्रदेशों से समानता रखता है। परन्तु एक विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति रखने से इसमें द्वन्द्व की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। तथा दूसरी ओर यह भूतल की विशेषताओं को भी प्रकट करता है। इस प्रकार भूदृश्य भूत शब्द के समान ही विस्तारित अर्थ रखने वाला शब्द है।

इस विचारधारा से कुछ कठिनाईयां भी उत्पन्न हो जाती हैं। जब कुछ भूगोलवेत्ता बिना किसी संकेत दिए विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थों में इसका प्रयोग करता है। इस पर क्रोच ने कहा है कि लैण्डशाफ्ट ने कल्पना के ईर्द-गिर्द ऐसा शब्दों का जाल बुन डाला जिसमें उनको भूगोल को कुछ भी साबित करना असम्भव नहीं रहा जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने भूदृश्य को इस प्रकार परिभाषित किया है कि यह प्रत्यक्ष दृष्टव्य तत्वों के अतिरिक्त, भौगोलिक अध्ययन की परीधि में आने वाले सभी तत्वों को समाहित कर ले। इसलिए प्रत्येक भूगोलवेत्ता की भूदृश्य की संकल्पना भूगोल में किन तत्वों का अध्ययन होना चाहिए इनको अभिव्यक्ति है।

जर्मनी के बाद भूदृश्य की संकल्पना अमेरिका पहुंची जहां कार्ल सावर ने इसे अपने हिसाब से व्याख्यायित किया। कार्लसावर ने अपनी चर्चित पुस्तक *Motphology of the handscape* में भी क्षेत्र एवं भूदृश्य का विभेद स्पष्ट नहीं हो पाया। कभी इन दो शब्दों का समानार्थक उपयोग हुआ है तो कभी इनमें किंचित विभेद का संकेत किया गया है सावर के अनुसार भूदृश्य स्वरूपगत सहसम्बन्ध की विशिष्टता युक्त

क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत प्राकृतिक क्षेत्र के स्वरूप तथा प्राकृतिक भूदृश्य पर मानव कार्यकलाप जनित आरोपित स्वरूप अर्थात् सांस्कृतिक भूदृश्य दोनों ही सम्मिलित है। प्राकृतिक क्षेत्र जिसे प्रकटतः (Natural area) तथा प्राकृतिक भूदृश्य (Physical landscape) समानार्थक है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक भूदृश्य तथा सांस्कृतिक भूदृश्य का योग मात्र भूदृश्य नहीं है क्योंकि मनुष्य प्राकृतिक क्षेत्र में कुछ जोड़ता ही नहीं है उसमें से कुछ निकाल भी लेता है और इस प्रकार प्राकृतिक भूदृश्य के कुछ अंश या तत्त्वविशेष को परिवर्तित कर देते हैं। इसका निष्कर्ष यह है कि उक्त दो वर्गों का संयोग क्षेत्र विशेष में उपलब्ध सभी तत्वों को समाहित नहीं करता और इस प्रकार क्षेत्र तथा भूदृश्य समान नहीं है। सावर की भूदृश्य की संकल्पना के अनुसार भूदृश्य अमूर्त, तत्व विहीन क्षेत्र नहीं है अर्थात् भूदृश्य किसी देश के मूर्त तत्वों का समुच्चय है भूदृश्य की यही संकल्पना सावर तथा उनके शिष्यों को मान्य नहीं है। इन्होंने भूदृश्य को क्षेत्रीय इकाई विशेष से जोड़ा है भूतल की विशेषता से नहीं जोड़ा है। भौगोलिक क्षेत्र या भूदृश्य एक भौतिक तत्व है जिसकी स्वरूपगत विशिष्टता का आकलन, संरचना की पहचान तथा उद्भव विकास एवं कार्यशीलता का विवेचन किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सावर ने भूदृश्य एवं क्षेत्र में पूर्ण अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाए इसमें भ्रम की स्थिति बनी रही। विद्यार्थी सावर के लेखों को पढ़ने के बाद भूदृश्य व क्षेत्र में अन्तर नहीं कर पाए। सन 1934 ई. में जेम्स नामक विद्वान ने इसे अपने हिसाब से स्पष्ट करते हुए कहा की भूदृश्य एक ऐसे भूखण्ड का द्योतक है जिसका स्वरूप चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए वस्तुतः एक ही रहता है। अमेरिकी भूगोलवेत्ता भी भूदृश्य को किसी क्षेत्र का सामान्य स्वरूप तथा प्रदेश में प्रयोग करते रहे हैं जिसके प्रथम खण्ड में किसी क्षेत्र के दृष्टव्य तत्वों के समुच्चय को भूदृश्य कहा है तथा दूसरे अर्थ में भूदृश्य एक ऐसा प्रदेश है जिसकी आकारिकी में कुछ विशेष समरूपता मिलती है। भूदृश्य को लेकर इस प्रकार का द्वन्द्व ग्रेट ब्रिटेन में हुआ। इस प्रकार सटीक वैज्ञानिक शब्द के अर्थ के रूप में भूदृश्य विवादास्पद ही रहा है। भूदृश्य के प्रथम अर्थ के रूप में इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया।

1. यह एक बाह्य वास्तविकता है जो पृथ्वी तल पर दृश्यापित है।
2. यह क्षेत्र या प्रदेश के समानार्थक नहीं है इसका क्षेत्र विस्तृत है।
3. यह भूतल का बाह्य दृष्टव्य भाग है जिस पर मानव निवास करता है तथा विभिन्न प्रकार की क्रियाएं सम्पन्न करता है।
4. यह विश्वव्यापी सतत सम्पूर्ण इकाई है जिसमें सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई के रूप में देखा जाता है।
5. यह पृथ्वी तल है या पृथ्वी के दृश्य है जिसे दूर से देखा या अनुभव किया जा सकता है।
6. इसके दृश्य सर्वत्र समतल नहीं है। इस पर कई भिन्न व विचित्र प्रकार की आकृतियां प्रतीत होती हैं।
7. भूदृश्य के कुछ भाग पर अधिवास व मार्ग निर्मित जिसे सांस्कृतिक महत्व कहा जा सकता

9.5 सारांश—

भूतल का अर्थ पृथ्वी तल के संदर्भ में लिया जाता है। भूगोल विषय का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत है जिसमें भूतल पर विद्यमान विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत पृथ्वीतल पर पाये जाने वाले विभिन्न प्राकृतिक विवरणों को सम्मिलित किया जाता है। कभी-कभी कुछ विद्वानों ने इसे क्षेत्र के संदर्भ में भी बताने की कोशिश की है। यदि और गहराई में जाकर देखा जाए तो भूतल का अर्थ सम्पूर्ण पृथ्वी से लिया जा सकता है और क्षेत्र भूतल की इकाई हो सकती है क्षेत्र एक समान भौगोलिक विशेषता रखने वाला होता है एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से भिन्न विशेषताएं रखता है। रिचथोफेन ने सन 1883 ई. भूगोल का अध्ययन क्षेत्र “पृथ्वी के ऊपरी तल” तक ही सीमित रखा है तब से भूगोलवेत्ता अध्ययन क्षेत्र की इस भौतिक सीमा को स्वीकार करते आये हैं। इसके बाद जैसे-जैसे का दायरा बढ़ता गया भूतल की अवधारणा का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया तथा मानव को क्रिया-कलापों के साथ धरातल के ऊपर तथा नीचे जहां तक घटित होने वाली घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव कार्यकलाप पर पड़ता है। भूतल कहा गया है इस प्रकार भूतल के बारे में विस्तृत वर्गीकरण किया गया है। जिसमें धीरे-धीरे सभी भौगोलिक तत्वों को सम्मिलित कर लिया गया है। भूतल की तरह ही भूदृश्य को भी साधारणतया भूतल के एक खण्ड

मे सम्बद्ध माना गया है। यह परम्परागत भूगोल के अध्ययन का अभिन्न अंग रहा है। हम्बोल्ट से लेकर हार्टशोर्न तक इसका विवेचन भूगोल की एक मूलभूत संकल्पना के रूप में हुआ है। भूदृश्य की संकल्पना पर हार्टशोर्न ने अपने व्याख्यान दिए हैं तथा यह संकल्पना जर्मनी की *Landschaft* का पर्याय मानी गई है। जिसको जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है। भूदृश्य को साधारण अर्थों में किसी क्षेत्र के दृष्टव्य स्वरूप के संदर्भ में समझा जाता है। अब भूदृश्य का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो सकता है उस पर वहां की भौगोलिक दशाओं का प्रभाव भी स्पष्टतः अंकित किया जा सकता है। भूदृश्य में समय के साथ परिवर्तन भी होते रहते हैं। वो बनते रहते हैं तथा हटते रहते हैं। जैसा की डेविस ने अपनी भूदृश्य की संकल्पना में बताया है, कि भूदृश्य संरचना, प्रक्रम व समय का प्रतिफल होता है। जिसमें समय के साथ भूदृश्य में कई प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। तथा अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग प्रक्रमों द्वारा भूदृश्य को प्रभावित किया जाता है। भूदृश्य शब्द भी भूतल शब्द की तरह स्पष्ट अर्थ लिए हुए नहीं है। जिसका मुख्य कारण इनके लिए जर्मनी व अमेरिका में प्रयुक्त किए गए दो अलग शब्द जिनका हिन्दी अनुवाद तो भूदृश्य ही है। परन्तु इसे कभी-कभी प्रदेश शब्द का समानार्थी मान लिया जाता है। अमेरिकी व जर्मनी के भूगोलवेत्ता दोनों ही इसे अपने हिसाब से मान्यता दिलवाने में लगे। इस पर एक जगह ग्रेट ब्रिटेन में भी द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हुई है। कुछ स्थानों पर भूदृश्य को प्राकृतिक भूदृश्य तथा सांस्कृतिक भूदृश्य का योग मात्र मान लिया जाता है परन्तु इसे भी सही नहीं माना गया क्योंकि मनुष्य इसके केवल एक पक्ष सांस्कृतिक भूदृश्य के विकास के पीछे पड़ा रहता है और इस स्थिति में वह प्रकृति से कुछ न कुछ लेता ही रहता है उसमें – कुछ जोड़ नहीं पाता है। सावर का नाम भूदृश्य पर विचार प्रकट करने तथा इसे स्पष्ट रूप से व्याख्यापित करने वाले विद्वानों में नाम आता है परन्तु वे भी इसे स्पष्टता नहीं दे पाए और उनके विचारों में सांस्कृतिक भूदृश्य को लेकर अधिक रुचि उत्पन्न हो गई और वे इसे ही लेकर आगे बढ़ गये। उनकी पुस्तक “भूदृश्य” की आकृति की प्रसिद्ध पुस्तक है। जिसमें वे क्षेत्र एवं ‘भूदृश्य’ में स्पष्ट अंतर नहीं कर पाए हैं। इस प्रकार भूगोल की स्पष्टता के लिए भूतल एवं भूदृश्य की संकल्पना सामने आई है जिसे जब-जब भी व्याख्यापित करते आये हैं तब-तब वे क्षेत्र शब्द के अधिक निकट जाते दिखे ऐसी स्थिति में एक नये शब्द के रूप में भूगोल को परिबद्ध करने का जो कार्य भूगोलवेत्ताओं ने किया। उसे संशय की स्थिति में लाकर उन्होंने छोड़ दिया। जो भूगोल पढ़ने वाले विद्यार्थियों के समक्ष एक दुविधा की स्थिति बनकर रह गई है।

पारिभाषिक शब्दावली

- **भूतल**— रिचथोफेन ने सर्वप्रथम पृथ्वी के ठोस भाग के बाहरी परत को ‘भूतल’ माना परन्तु बाद में उन्होंने इस परत का विस्तार, परत के ऊपर और नीचे विस्तृत, एक पेटी तक किया।
- **भूदृश्य**— भूतल की तरह ही भूदृश्य है जो साधारणतया भूतल के एक खण्ड से सम्बन्धित माना जाता है।
- **लैन्डशाफ्ट**—भूदृश्य की संकल्पना का जर्मन पर्याय, जिसे जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है।
- **सांस्कृतिक भूदृश्य**— अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं का विचार जो किसी भी मानव निवसित क्षेत्र को सांस्कृतिक भूदृश्य मानते हैं।
- **प्राकृतिक भूदृश्य**— इसका अर्थ है जिन पर मानव निवास का प्रभाव न पड़ा हो। इस प्रकार प्राकृतिक भूदृश्य एक काल्पनिक भूदृश्य है। जहां मनुष्य अवतरित हुआ वहां प्राकृतिक भूदृश्य समाप्त हो जाता है।

9.7 बोध प्रश्न

9.7.1. दीर्घ उत्तनीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 भूदृश्य की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न-2. भूतल की अवधारणा का वर्णन कीजिए।

9.7.2 लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. लैण्डशाफ्ट का अर्थ बताईए

प्रश्न-2. भूदृश्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-3. प्राकृतिक भूदृश्य क्या है?

प्रश्न-4. सांस्कृतिक भूदृश्य का अर्थ बताईए।

9.7.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 Motphology of the Landscape पुस्तक के लेखक कौन है?

- | | |
|----------|--------------|
| (क) सावर | (ग) हम्बोल्ट |
| (ज) पेंक | (घ) वीटर |

प्रश्न 2. ट्रॉल व कैरोल ने भूतल को कितने मण्डलो में बांटा है?

- | | |
|-------|-------|
| (क) 3 | (ख) 4 |
| (ग) 5 | (घ) 6 |

उत्तरमाला- 1 – (क)2- (ग)

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.
- प्रो. माजिद हुसैन, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।

इकाई-10 : प्रादेशिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य, केन्द्र स्थल सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 प्रादेशिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य
- 10.4 भू केन्द्रिय स्थल सिद्धान्त
- 10.5 सारांश
- 10.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 10.7 बोध प्रश्न
- 10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल में 19वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में भूदृश्य पर विस्तृत विवेचन किया गया। जिस पर जर्मन व अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं ने अपने विचार प्रस्तुत किए। भूदृश्य या दृश्यभूमि की संकल्पना पर अमेरिकन विद्वान सावर ने विस्तृत विचार प्रस्तुत किए हैं उन्होंने मानव व प्रकृति के सहयोग से विकसित नवीन भूदृश्यों को सांस्कृतिक भूदृश्य संज्ञा दी है। वहां प्रादेशिक भूदृश्य को प्राकृतिक भूदृश्य के रूप में सम्बोधित किया गया है। प्राकृतिक या प्रादेशिक भूदृश्य का विचार क्षेत्र या स्पेश से भी मिलता जुलता है। भूगोल विषय के ये प्रमुख दार्शनिक पहलू हैं जो भूगोल को एक निश्चित शब्दावलियों में बांधने का प्रयत्न करते हैं। अमेरिका में भूदृश्य पर बहुत से कार्य किये गये हैं। जहां इसे प्रकृति व मानव दोनों से जोड़कर समझाने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु जब से सावर ने इसको व्याख्यायित करने का कार्य किया है। तब से उन्होंने सांस्कृतिक भूदृश्य के रूप में इतने परिभाषित करने का कार्य किया है। इसी के साथ केन्द्र स्थल सिद्धान्त का आगमन भूगोल विषय में 1933 में हुआ इससे पहले इतने 1826 में वान थ्यूनेन का कृषि अवस्थिति सिद्धान्त केन्द्र स्थल सिद्धान्तों की शुरुआत मानी जाती है। केन्द्रस्थल सिद्धान्त भूदृश्य से सम्बंधित ही एक विचार माना जाता है जिसमें प्रादेशिक दृश्यों पर मानव द्वारा किये गये क्रियाकलापों को व्यक्त करने का कार्य करते हैं। ये सिद्धान्त मानव के द्वारा किये गये भूमि उपयोग के प्रतिरूपों को स्पष्ट करने का कार्य करते हैं जिनमें ग्रामीण या कृषि प्रतिरूप तथा नगरीय भूमि के उपयोग के प्रतिरूप को स्पष्ट किया गया है जिसमें किसी स्थान की केन्द्रियता पर विचार व्यक्त किए गए हैं। इस सिद्धान्त के उपरान्त मानव को भूमि उपयोग के प्रतिरूप तथा उनकी महत्वता के बारे में भी जानने का अवसर मिला है। मानव द्वारा किये गये कार्य प्रादेशिक स्तर पर होते हैं। प्रादेशिक व सांस्कृतिक विकास की भी इन्हें शुरुआत माना जाता है। क्योंकि इन्हीं के बदौलत मानव को आर्थिक विकास के लिए आधार मिलता है मानव प्राकृतिक संसाधनों के महत्व को समझता है। उसे इस बात का भी आभास होती है कि प्रदेशों का क्या महत्व है क्योंकि संसाधनों का विवरण प्रादेशिक आधार पर ही मिलता है जो पृथ्वी के कुछ निश्चित क्षेत्रों पर ही बंटे हुए हैं इनका वर्गीकरण भी इसी आधार पर है।

10.2 उद्देश्य

- प्रादेशिक व सांस्कृतिक भूदृश्य की संकल्पना को स्पष्ट करना।
- केन्द्रीय स्थल क्या सिद्धान्तों का अर्थ जानना।
- प्रादेशिक व सांस्कृतिक भूदृश्य के महत्व को जानना।
- केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का महत्व व उपयोगिता को पहचानना।
- भूमि उपयोग के प्रतिरूप को पहचानना।
- संसाधनों की उपयोगिता को जानना।

- भूदृश्यों की विषमांगता की मानव मस्तिष्क में समझ विकसित करना ।

10.3—प्रादेशिक एवं सांस्कृतिक भूदृश्य

दृश्यभूमि की संकल्पना का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी में हुआ जब लैण्डशाफ्ट (Landschaft) को भू-दृश्य (Landscape) का समानार्थी माना गया लेकिन बाद में इनकी भिन्नता को स्पष्ट कर पृथक् रूप में परिभाषित किया गया। सामान्यतया मनुष्य द्वारा अपनी इन्द्रियों के माध्यम से देखे गये भूमि के किसी विशेष भाग को दृश्यभूमि कहा जाता है। प्रो. फिंच के अनुसार “एक ऐसा क्षेत्र जैसा वह किसी दर्शक को दृष्टिगत होता है अर्थात् किसी भी क्षेत्र को हम जिस रूप में देख रहे हैं उसे दृश्यभूमि कहते हैं।”

जर्मन भाषा में दृश्यभूमि के लिए प्रयुक्त Landschaft की तरह ही फ्रांस में Paysage एवं इटली में Paesaggio इसी अर्थ में प्रयुक्त किये गये। फ्रेंच शब्द Paysage शब्द ब्लाश द्वारा प्रयुक्त Physiognomy शब्द का समानार्थी माना गया जिसमें भू-तल के बाह्य एवं दृश्य विवरणों को सम्मिलित किया जाता है। इस तरह लम्बे समय तक अनेक भूगोलवेत्ताओं ने अपनी उपयोगिता के अनुसार दृश्यभूमि शब्द को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया लेकिन किसी ने भी इसे वास्तविक अर्थ में स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया। इस सन्दर्भ में जेम्स ने कहा था कि जो भूगोलवेत्ता इस शब्द का प्रयोग करता है, बिना कारण ही इसे नई परिभाषा दे देता है (P.E. James, 1934: 29)। आगे चलकर अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं ने इसे प्रदेश के अर्थ में परिभाषित किया। इस तरह परिभाषाएँ तो विविध रूप में सामने आयीं लेकिन यह तय नहीं कर पाये कि दृश्यभूमि की संकल्पना में किन तत्त्वों को सम्मिलित किया जाये।

वास्तव में भू-दृश्य (Landscape) सर्वप्रथम अमेरिकी भूगोल में सन् 1925 में कार्ल सावर द्वारा भौगोलिक अर्थों में परिभाषित किया गया। इसकी परिभाषा उनके विश्व प्रसिद्ध प्रकाशन 'Morphology of Landscape' में दी गई। इस लेख में पसार्गे एवं श्लूटर नामक जर्मन भूगोलविदों द्वारा प्रस्तुत शब्द लेण्डशाफ्ट से भिन्न भू-दृश्य की स्पष्ट व्याख्या सम्भव हो सकी। सूक्ष्म अध्ययन के बाद यह कहा गया कि “दृश्यभूमि भौतिक एवं सांस्कृतिक दृश्य रूपों के विशिष्ट सम्बन्ध से निर्मित क्षेत्र है।” (Landscape was defined as an area made up of a distinct association of forms both physical and cultural) बाद में भू-दृश्य की संरचना में प्राकृतिक क्षेत्र की विशेषताओं एवं उन पर होने वाली मानवीय क्रियाओं को भी सम्मिलित किया गया जिन्हें सांस्कृतिक दृश्यभूमि कहा जाता है।

दृश्यभूमि पर विभिन्न विद्वानों के चिन्तन के बाद इसके दो पक्ष सामने आये हैं, प्रथम प्राकृतिक तथा दूसरा मानवीय प्राकृतिक पक्ष में भौतिक दृश्यभूमि तथा मानवीय पक्ष में सांस्कृतिक दृश्यभूमि सम्मिलित करते हैं। रिचार्ड हार्टशोने एवं काल सायर ने भू-दृश्य की संकल्पना की विस्तृत रूप में व्याख्या की है। कार्ल सावर ने अपनी बहुचर्चित विचारधारा Cultural Landscape को ही भू-दृश्य की समानार्थी मानकर स्पष्ट किया कि किसी क्षेत्र की दृश्यभूमि की व्याख्या में प्राकृतिक लक्षणों एवं उस पर आच्छादित मानवीय क्रिया-कलापों दोनों को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। कार्ल सावर ने दृश्यभूमि संकल्पना की सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में की है। सर्वप्रथम इन्होंने ही दृश्यभूमि को प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में विभाजित किया था।

रिचार्ड हार्टशान ने अपनी पुस्तक भूगोल की प्रकृति में दृश्यभूमि की संकल्पना को स्पष्ट रूप में समझाया है। उनके अनुसार दृश्यभूमि की संकल्पना से उत्पन्न भ्रांतियों का सबसे बड़ा कारण भूगोल को ही दृश्यभूमियों का अध्ययन मानना है जबकि डिकिन्सन ने भूगोल एवं दृश्यभूमि की संकल्पना को भिन्न माना है, क्योंकि भूगोल मात्र दृश्यभूमि का ही अध्ययन नहीं है वरन् इसमें क्षेत्रों के मानव समाज उनसे सृजित स्वरूप तथा इनका जीव जगत् से सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है जो परस्पर विभिन्नताओं के विश्लेषण पर आधारित होती है।

इस प्रकार भू-दृश्य पृथ्वी तल की संक्षिप्त अभिव्यक्ति है, जिसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों भू-दृश्यों के स्वरूपों, उनके विन्यास एवं पृष्ठभूमि का विवरण सम्मिलित है। किसी क्षेत्र विशेष में मानव, वनस्पति तथा अन्य जीवों में एक या एक से अधिक तत्त्वों की कमी मिल सकती है। ऐसा तत्त्वों का परस्पर अभाव भी विशिष्ट दृश्यभूमि के रूप में दृष्टिगत होता है। ऐसी दृश्यभूमि हिमावरित क्षेत्रों या उष्ण मरुस्थलों में देखने को मिलती है। उष्ण मरुस्थल अपने आप में विशिष्ट प्राकृतिक दृश्यभूमि होती है जहाँ विशिष्ट प्राकृतिक तत्त्वों का ही संयोग देखने को मिलता है, जैसे—उच्च तापमान, न्यून वर्षा, वनस्पति आवरण में कमी आदि। इसी प्रकार ऐसी प्राकृतिक दृश्यभूमि पर निर्भर मानव द्वारा निर्मित सांस्कृतिक दृश्यभूमि भी विशिष्ट होती है। ऐसा कृषि दृश्यभूमि (Agrarian

Landscape) में देख सकते हैं ।

हार्टशोर्न ने दृश्यभूमि की संकल्पना के बारे में व्याप्त भ्रांति के निराकरण पर बल दिया तथा इसकी सम्पूर्णता को किसी क्षेत्र की समस्त विशेषताओं के योग के रूप में परिभाषित किया। इस तरह यह एक एकीकृत विचार है जिसमें आकाश के नीचे भू-तल का वह बाह्य भाग सम्मिलित है जिसे हम देख सकते हैं। यह स्थिर एवं गतिशील दोनों रूपों में होती है इसलिए एक भूगोलवेत्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह इन परिवर्तनों पर ध्यान दें। पृथ्वी तल को ही भू-दृश्य का अंग मानने के सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट है कि भूगर्भ में पड़े खनिज दृश्यभूमि के अंग नहीं हैं जबकि खनिजों को खुली खदान दृश्यभूमि का अंग है।

इसी तरह सघन वनस्पति के नीचे पड़ी अदृश्य मिट्टी दृश्यभूमि का अंग नहीं है लेकिन वनस्पति के कटते ही यह दृश्यभूमि का अंग बन जाएगी, क्योंकि अब इसे हम ज्ञानेन्द्रियों से पहचान सकते हैं। इस प्रकार दृश्यभूमि को यहाँ पृथ्वी तल की अभिव्यक्ति के रूप में लिया गया है जिसमें उच्चावच, वनस्पति एवं मानव विन्यास को प्रमुख घटक माना गया है। दृश्यभूमि की सार प्रकृति की अभिव्यक्ति तथा उसके रंग व रूप से है जिसे हम देख सकते हैं तथा अनुभव किया जा सकता है। यहाँ एक बात महत्वपूर्ण है कि यदि हम भू-दृश्य में भौगोलिक तत्त्व सम्मिलित नहीं करते हैं तो हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भूगोल एवं दृश्यभूमि की संकल्पनाओं को अलग-अलग ही रखना चाहिए। भूगोल संसार के क्षेत्रों का अध्ययन करता है जबकि दृश्यभूमि किसी एक क्षेत्र का इसलिए दृश्यभूमि भूगोल का एक पटक है। भूगोल में दृश्यभूमि की संकल्पना का महत्व इसलिए भी है कि इसमें उन सभी तथ्यों का समावेश है जिनका क्षेत्रीय सन्दर्भ में महत्व है इसलिए भौगोलिक अध्ययनों में दृश्यभूमि की संकल्पना की व्याख्या आवश्यक है तथा इसी कारण वर्तमान में भूगोल का अध्ययन एक भू-दृश्य विज्ञान (Geography as a Science of Landscape) के रूप में किया जा रहा है।

10.3.1 प्राकृतिक दृश्यभूमि (Natural Landscape)

कार्ल सावर ने दृश्यभूमि को दो भागों में विभक्त किया है—प्रथम, प्राकृतिक तथा दूसरी, सांस्कृतिक दृश्यभूमि प्राकृतिक दृश्यभूमि किसी क्षेत्र के दृष्टिगत प्राकृतिक तत्त्वों का समूह होती है जिनकी अभिव्यक्ति एक साथ प्राकृतिक दृश्य के रूप में होती है लेकिन अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं का मानना है कि किसी भी क्षेत्र में एक ही प्रकार की दृश्यभूमि हो सकती है। यदि किसी क्षेत्र में मनुष्य नहीं रहता है तो वहाँ प्राकृतिक दृश्यभूमि होगी लेकिन वहाँ एक बार मनुष्य रहने लग जाएगा तो सांस्कृतिक भू-दृश्य बन जाएगा। इस दृष्टि से वास्तव में दुनिया के बसे हुए क्षेत्रों के लिए प्राकृतिक दृश्यभूमि की संकल्पना केवल सैद्धान्तिक ही है, क्योंकि उसमें विविध रूपों में मानवीय हस्तक्षेप रहता है। समय के साथ सभी जगह परिवर्तन होता रहता है। भू-तल पर किसी भी क्षेत्र की वास्तविक स्थिति क्या रही है, यह आसानी से स्पष्ट नहीं कर सकते हैं, क्योंकि भूगर्भिक इतिहास में पृथ्वीतल पर अनेक बदलाव आये हैं। इस सन्दर्भ में रिचार्ड हार्टशोर्न ने प्राकृतिक दृश्यभूमि को निम्नलिखित तीन रूपों में व्यक्त किया है—

1. **आदि भू-दृश्य (Prime Real Landscape)**- वास्तव में यह प्रारम्भिक दृश्यभूमि रही है जो किसी क्षेत्र विशेष में मनुष्य के प्रवेश के पूर्व में थी।
2. **वन्य दृश्यभूमि (Wild Landscape)**— इसमें मनुष्य ने संशोधन तो किया लेकिन नियंत्रण नहीं रखपाया।
3. **वर्तमान प्राकृतिक दृश्यभूमि (Present Natural Landscape)**—यह एक सैद्धान्तिक विचारधारा है, क्योंकि ऐसी दृश्यभूमि वर्तमान में बसे हुए क्षेत्रों में देखने को नहीं मिलती है। वर्तमान में भू-तल पर अधिकांश जगह कृषि की जा रही है जो मानवकृत दृश्यभूमि बन गई है।

10.3.2 सांस्कृतिक दृश्यभूमि (Cultural Landscape)-

वर्तमान में भू-तल का अधिकांश भाग सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में ही अभिव्यक्त हो रहा है। वास्तव में भूगोल में दृश्यभूमि की संकल्पना की व्याख्या सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में ही की गई है। जिसका श्रेय अमेरिकी भूगोलवेत्ता कार्ल सावर को है, उनके अनुसार पृथ्वी तल के मानव निर्मित भू-दृश्य को सांस्कृतिक दृश्यभूमि कहते हैं। यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राकृतिक परिवेश में जहाँ मानव की पहुँच सम्भव हो पायी है वहाँ तक सांस्कृतिक दृश्यभूमि की रचना मानव ने की है तथा वहाँ मानव की पहुँच के उपरान्त प्राकृतिक दृश्यभूमि का अस्तित्व खत्म हो गया है। सावर महोदय ने इस सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि इस तरह प्राकृ

तिक दृश्यभूमि केवल कल्पना ही रह गई है। सांस्कृतिक दृश्यभूमि केवल मानव की पहुँच मात्र से नहीं बनती वरन् उस प्राकृतिक परिवेश में मानवीय क्रिया—कलापों द्वारा परिवर्तन होना आवश्यक है। इस दृष्टि से वातावरण खत्म कर कृषि विकास करना, खनन कार्य, उद्योगों का विकास, यातायात के मार्ग बनाना, सिंचाई के लिए नहरी तंत्र विकसित करना आदि ऐसी प्रक्रियायें हैं जो सांस्कृतिक दृश्यभूमि का निर्माण करती हैं। ऐसे परिवर्तन मानव द्वारा निम्नलिखित रूप में किये जाते हैं—

1. **वनोन्मूलन करके**— मानव भू-तल पर विभिन्न उद्देश्यों के लिए वनोन्मूलन करता है, जिनमें खनन एवं कृषि मुख्य हैं। इन प्रक्रिया से सांस्कृतिक दृश्यभूमि निर्मित होती है।
2. **विकास की प्रक्रिया**— मानव निरन्तर परिवर्तन करके विकास करता रहता है। खनन के उपरान्त औद्योगिक विकास, अधिवासों का निर्माण, नगरीयकरण, सड़क एवं रेलमार्गों का निर्माण आदि प्रमुख क्रियायें हैं जो विकास के लिए करते हैं तथा इनसे सांस्कृतिक दृश्यभूमि निर्मित होती है।
3. **परिवर्तन**— मनुष्य विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परिवर्तन करता रहता है जिनमें सांस्कृतिक दृश्यभूमि अस्तित्व में आती है।

सांस्कृतिक दृश्यभूमि के तत्त्व (Elements Cultural Landscape)

पृथ्वी तल को विभिन्न प्रक्रियाओं के अन्तर्गत मनुष्य परिवर्तित करके सांस्कृतिक दृश्यभूमि निर्मित करता है, इसमें निम्नलिखित तत्त्व सम्मिलित किये जा सकते हैं—

1. **जनसंख्या** —मानव सांस्कृतिक दृश्यभूमि का मुख्य तत्त्व है, जो प्रकृति में अनेक परिवर्तन कर इसे बनाता है। जनसंख्या मानव के प्रकृति में उद्भव के बाद से निरन्तर बढ़ती रही है।
2. **मानव अधिवास**—मानव रहने के लिए आवास का निर्माण करता है। ये अधिवास एक ग्रामीण पुरवा (Hamlet) से लेकर शहरी महानगर के रूप में विकसित कर लिए जाते हैं। मानव अधिवास प्राकृतिक परिवेश एवं मानवीय क्रिया—कलापों से प्रभावित होते हैं।
3. **यातायात का विकास**— इसमें यातायात के साधनों एवं मार्गों का विकास किया गया है। मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार यातायात मार्ग बनाये हैं जो परस्पर मकानों एवं बड़ी बस्तियों से जुड़े हैं। इनमें पगडण्डी, कच्ची सड़क, पक्की सड़क, राज्य पथ राष्ट्रीय राजमार्ग, रेलमार्ग, जलमार्ग तथा वायुमार्ग आदि प्रमुख हैं। ये सभी सांस्कृतिक दृश्यभूमि के अभिन्न तत्त्व हैं।
4. **कृषि** — जब से मानव ने प्रकृति में स्थायी रूप से रहना प्रारम्भ किया है, कृषि कार्य कर रहा है। भू-तल पर कृषि कार्य ने सांस्कृतिक दृश्यभूमि के रूप में सर्वाधिक परिवर्तन किये हैं। इसके लिए मनुष्य ने वनोन्मूलन कर भूमि विकसित की सिंचाई विकास, अन्न भण्डार, कृषि कार्य हेतु पशुधन व अन्य यंत्रों का प्रयोग, दुग्धशालाओं का निर्माण आदि सभी ने सांस्कृतिक दृश्यभूमि के विकास में सहयोग किया है। ये सभी इस दृश्यभूमि के महत्वपूर्ण अंग हैं।
5. **खनन, उद्योग एवं व्यापार**— भूगर्भ में खनिजों का खनन कर उन पर आधारित उद्योगों का विकास किया गया। खनन, कृषि एवं वनों पर आधारित उद्योगों से प्राप्त उत्पादों का व्यापार किया जा रहा है। इन सभी ने सांस्कृतिक भू-दृश्य विकसित करने में सहयोग किया है, क्योंकि इनके लिए भवन, कारखानों, आर्थिक उत्पादन एवं विनिमय एवं वितरण व्यवस्था, खनिज उत्पादक स्थलों का विकास, गोदाम, दुकान, बाजार, बैंक, बन्दरगाह आदि का विकास किया गया, जो सांस्कृतिक दृश्यभूमि के प्रमुख तत्त्व हैं।
6. **शक्ति के साधनों का विकास** —सांस्कृतिक दृश्यभूमि के विभिन्न तत्त्वों के लिए शक्ति के साधनों का भी प्रमुख तत्त्व के रूप में विकास किया गया जिन पर यातायात एवं संचार के साधन, खनन, व्यापार, वितरण जैसी अन्य प्रक्रियायें पूर्णतया निर्भर हैं। इसलिए सांस्कृतिक दृश्यभूमि के सभी तत्त्व परस्पर स्वतंत्र न होकर अन्तर्निर्भर हैं तथा इनकी निर्भरता पूर्णतया शक्ति के साधनों पर आधारित है।
7. **संचार के साधनों का विकास**—प्रारम्भ में मानव के पास कोई ऐसा साधन नहीं था जिससे वे परस्पर एक-दूसरे से सम्पर्क बना पाते लेकिन वर्तमान वैज्ञानिक युग में डाक, तार, टेलिफोन, मोबाइल,

कम्प्यूटर, इन्टरनेट, टेलीविजन एवं उपग्रह व्यवस्था विकसित हो गई है। इस व्यवस्था ने भू-तल पर बसे लोगों को एक वैश्विक गाँव के रूप में जोड़ दिया है। यही कार्ल सावर की यह बात सत्य लगती है कि अब प्रकृति में प्राकृतिक दृश्यभूमि नहीं बची है।

8. **सामाजिक-सांस्कृतिक विकास** मानव ने स्थायी रूप से निवास करने के साथ ही अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था विकसित करना प्रारम्भ किया तथा आज यह व्यवस्था पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी है। इसमें मनुष्य ने शिक्षण संस्थाओं का विकास, मनोरंजन के साधनों का विकास, धार्मिक स्थलों एवं संस्थाओं का विकास, स्वास्थ्य सेवा संस्थाओं का विकास, प्रशासनिक संस्थाओं का विकास प्रमुख है। मनुष्य ने समय के साथ इनको अपनी आवश्यकता मानते हुए विकसित किया है। ये सभी सांस्कृतिक दृश्यभूमि के प्रमुख घटक हैं। इन संस्थाओं ने मनुष्य में अनेक भावनायें भी विकसित की, जिससे हम परस्पर भावनात्मक लगाव के कारण एक-दूसरे से समरसता बढ़ा पाये हैं जो कि सामाजिक सांस्कृतिक विकास का मूल है।

मनुष्य जैसे ही स्थायी रूप से रहने लगा उसमें अपने निवास स्थान के प्रति अपनापन महसूस हुआ। धीरे-धीरे वह इन भू-भागों पर अपना अधिकार मानने लगा तथा एक समय हमें भू-तल पर राजनीतिक सीमाओं का निर्धारण करना पड़ा। इस तरह भू-भागों का गाँव, जिला, राज्य, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बँटवारा सीमाओं द्वारा हुआ जिसने भी सांस्कृतिक दृश्यभूमि के विकास में योगदान दिया। इन सभी तत्वों के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा सांस्कृतिक दृश्यभूमि निर्धारण निरन्तर किया जाता रहा है। अब तो हम पृथ्वी से बाहर भी सांस्कृतिक दृश्यभूमि के विकास का सपना देखने लगे हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि ये सभी तत्व मिलकर एक सांस्कृतिक दृश्यभूमि का विकास करते हैं।

भूगोल में वर्तमान में दृश्यभूमि की संकल्पना को लगातार महत्त्व दिया जा रहा है जिसमें सर्वाधिक योगदान तो कार्ल सावर एवं रिचार्ड हार्टशोर्न का ही रहा है लेकिन बाद में इस संकल्पना को भौगोलिक अध्ययन का आधार बना लिया गया जिसमें भूगोल के विभिन्न क्षेत्रों का वहाँ की दृश्यभूमि के स्वरूप के आधार पर अध्ययन किया जाने लगा जिसके कारण वर्तमान में भूगोल को एक भू-दृश्य विज्ञान (Geography as a Science of Landscape) के रूप में माना जाने लगा। भूगोलवेत्ताओं का मानना है कि भू-तल के विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक व्याख्या उनकी विशिष्ट दृश्यभूमि के आधार पर की जानी चाहिए।

इस विचारधारा को यद्यपि रिचथोफेन ने वैज्ञानिक महत्त्व दिया लेकिन उनके अनुसार भूगोल अन्य विज्ञानों की तरह विशिष्ट (Nomothetic) एवं सामान्य लक्षणों वाला (Ideographic) दोनों ही रूप में है। इसलिए भूगोल में क्षेत्र वर्णनी विचार के आधार पर द्वैतवाद नहीं लाना चाहिए।

हेटनर रिचथोफेन के सहयोगी एवं शिष्य रहे थे। इन्हें भूगोल में क्षेत्रीय परिदृष्टि की प्रेरणा रिचथोफेन से ही मिली थी, लेकिन उनको रिचथोफेन द्वारा प्रतिपादित विचार कि भूगोल पृथ्वी तल का विज्ञान है, अस्पष्ट लगा। इसलिए उन्होंने इसे संशोधित कर लिखा कि 'भूगोल वास्तव में पृथ्वी तल की स्थानिक परिवर्तनशीलता (Areal Variability) पर केन्द्रित अध्ययन है।' इसलिए भूगोल यह जानने का प्रयास करता है कि पृथ्वी की विभिन्न इकाइयाँ (महाद्वीप, बड़े प्रदेश, जनपद व अधिवास) एक-दूसरे से कैसे भिन्न हैं। इनको समझने के लिए इनका क्षेत्र वर्णनी विवरण द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार हेटनर ने क्षेत्र विवरण संकल्पना को अपना दर्शन एवं विधि प्रदान किया। उसके इस चिन्तन का पश्चिमी यूरोपीय विद्वानों पर प्रभाव पड़ा, जिसके फलस्वरूप आगामी दशकों में प्रादेशिक भूगोल, प्रदेश एवं प्रदेशों के दर्शन तत्कालीन जर्मन भूगोलवेत्ताओं के लिए चिन्तन महत्त्वपूर्ण विषय बन गये। फ्रेंच भूगोलवेत्ता ब्लाश ने भी प्रादेशिक चिन्तन में क्षेत्र विवरण संकल्पना को भूगोल का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए सर्वव्यापी रूप में प्रस्तुत किया। कार्ल सावर ने भी अपनी दृश्यभूमि संकल्पना के साथ-साथ क्षेत्र विवरण संकल्पना पर प्रकाश डाला है। जहाँ उसने अनेक स्थानों पर हेटनर एवं हम्बोल्ट के मतों का सहारा लिया।

10.4 केन्द्र स्थल सिद्धान्त

वॉन थ्यूनेन का सिद्धान्त (Von Theunen's Theory)-

प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता वॉन थ्यूनेन ने बाजार या शहर केन्द्र के चारों ओर भूमि उपयोग आवर्त तथा

दूरी सम्बन्धों का अध्ययन किया। जॉन हेनरिच वॉन थ्यूनेन (1783–1850) जर्मनी में रोस्टोक शहर के मेक्लेनबर्ग में फार्म मैनेजर था। उसने अपने बहुत वर्षों के अनुभव के पश्चात् सन् 1826 में भूमि उपयोग पर अपना अवस्थिति सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

वॉन थ्यूनेन ने अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए निम्नलिखित मान्यताओं का सहारा लिया—

1. इन्होंने सर्वप्रथम एक ऐसे एकाकी प्रदेश की कल्पना की जिसमें एक ही नगर स्थित हो, जिसके चारों ओर विस्तृत कृषि क्षेत्र हो जिससे होने वाली कृषि उपज के विपणन यही मात्र बाजार है।
2. प्रदेश में जलवायु, धरातल, मृदा की उत्पादन क्षमता समान हो अर्थात् सभी जगह एक-सा प्राकृतिक वातावरण हो।
3. यहाँ नगर के अतिरिक्त शेष ग्रामीण आबादी हो व अधिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए फसलों के फेरबदल में सक्षम हैं।
4. यहाँ एक ही प्रकार का परिवहन साधन उपलब्ध हो। (घोड़ागाड़ी)
5. परिवहन व्यय दूरी तथा भार के अनुपात में बढ़ता हो।

वॉन थ्यूनेन की उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर इस प्रकार के विलग प्रदेश में केन्द्रीय बाजार के चारों ओर नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार विभिन्न फसलों का उत्पादन क्षेत्र संकेन्द्रीय वृत्त खण्डों में होगा। ये खण्ड निम्नलिखित हैं—

1. नगर के समीपतम पृथक् खण्डों में शाक-सब्जी की कृषि एवं दुग्धोत्पादन होगा, क्योंकि इन पदार्थों की नगर में माँग अधिक रहती है तथा इनको जल्दी खराब होने के कारण अधिक दूर तक ले जाया भी नहीं जा सकता है। इस पेटी का क्षेत्रीय विस्तार नगर की आवश्यकताओं की पूर्ति पर निर्भर करेगा। यदि नगरीय जनसंख्या में दूध की माँग अधिक होगी तो यह पेटी दूर तक विस्तृत हो जायेगी। शाक, सब्जियों तथा दूध आदि पर परिवहन व्यय अधिक लगने के कारण इसे नगर की समीपवर्ती पेटी में रखा गया है।
2. दूसरी पेटी में ईंधन के लिए लकड़ी का उत्पादन होगा। लकड़ी के भारी होने के कारण इसका परिवहन व्यय अधिक होगा, किन्तु यह शाक-सब्जी तथा दूध आदि पर लगने वाले परिवहन व्यय से कम होगा। थ्यूनेन के द्वारा दूसरी पेटी में ईंधन को इसलिए वरीयता दी गई है कि उसके समय में ईंधन का अन्य विकल्प न होने के कारण, घरों के निर्माण के उपयोग में आने के कारण इमारती लकड़ी भी आवश्यक होती थी। इसलिए बाजार में माँग अधिक रहती थी, क्योंकि उसे जलाकर उस समय लोग घर भी गर्म रखते थे। अतः ईंधन का बाजार मूल्य अधिक था।
3. जलावन्त लकड़ी के बाद तीसरी पेटी के अन्तर्गत भूमि में अन्न का उत्पादन किया जाता था। गहन कृषि के कारण परती भूमि नहीं छोड़ी जाती थी। 6 वर्ष में फसल चक्र को अपनाया जायेगा।
4. चतुर्थ पेटी में कृषि कम सघन होगी और किसान सात वर्षीय फसल चक्र को अपनायेगा तथा किसान भूमि को एक वर्ष परती भूमि के रूप में छोड़ता था, इसमें पशुपालन भी होता था।
5. पाँचवीं पेटी में किसान तीन खेती प्रणाली को अपनाते हैं। यह एक फसल चक्री व्यवस्था है, जिसमें किसान खेत के एक-तिहाई भाग पर फसलें उगाते हैं और दूसरे एक-तिहाई भाग पर चरागाह रखते हैं तथा शेष एक-तिहाई को परती छोड़ देते हैं।
6. अन्त में छठे खण्ड में मांस एवं दूध के लिए पशुपालन होता था। मांस वाले पशुओं को पैदल नगर भेज दिया जायेगा तथा दूध से निर्मित पनीर को परिवहन की कम लागत द्वारा नगर में पहुँचाया जाता था। अन्न की फसल के उत्पादन तथा पशुओं पर होने वाले परिवहन व्यय क्रमशः कम होंगे।

इस प्रकार नगर के चारों ओर कृषि उत्पादन की 6 केन्द्रीय पेटियाँ विभिन्न फसलों का उत्पादन करेंगी। इन पेटियों की सीमाओं की व्याख्या अधिकतम लगान के सिद्धान्त के आधार पर की जायेगी। नगर से बढ़ती दूरी के अनुसार प्रदेश की विभिन्न कृषि की संकेन्द्रीय पेटियों में विभिन्न फसलों का उत्पादन मुख्यतः परिवहन

व्यय के अनुसार किया जायेगा।

वॉन थ्यूनेन के सिद्धान्त में संशोधन (Amendment in Theory of Von Theunen)

वॉन थ्यूनेन के सिद्धान्त का पुनर्निरीक्षण गोरेवाल (1959), चिशोल्म (1962) तथा हाल (1966), हुवर, डन, लॉश, इजार्ड, ओलविसो गेरीसन, होखथ द्वारा किया गया। इसन तथा फिरगन गैराल्ड (1960) ने बस्तियों के प्रतिरूप की परिकल्पना का विवरण देते हुए थ्यूनेन के सिद्धान्त को ग्रामीण भूमि के उपयोग के लिए उपयुक्त बताया। उनके अनुसार ग्रामीण बस्ती की भूमि उपयोग पेटियाँ इस प्रकार हैं—

1. केन्द्र में मानवीय निवास की बस्ती।
2. दूध देने वाले कृषि के पशुओं के घर एवं चारे के खेत।
3. कृषि के खेत समीपवर्ती खेतों में मुद्रादायिनी तथा दूरवर्ती खेतों में अनाज की फसलें।
4. चरागाह तथा खेतों की मिली-जुली पेटि।

इस प्रकार नगर के चारों ओर 6 संकेन्द्रित पेटियों में विभिन्न तरह का भूमि उपयोग मिलता है। इनकी सीमाओं की व्याख्या अधिकतम लगान के आधार पर बढ़ती दूरी के अनुसार की जाती है।

आलोचना (Criticism)

1. इनके द्वारा कथित मान्यताएँ वास्तविकता से परे हैं। फलस्वरूप ये वृत्तखण्ड कहीं भी इस रूप में नहीं मिलते हैं।
2. नदी या यातायात विकसित होने पर इसका रूप वृत्तों में न होकर नदी के दोनों ओर समानान्तर खण्डों में होगा।
3. प्राकृतिक वातावरण समान मिलना।
4. अगर बड़े नगर के पास छोटा उपनगर होगा तो उसकी स्वतंत्र भूमि में संकेन्द्रीय वृत्त खण्डों का विकास होगा।

महत्व (Importance)

वान थ्यूनेन ने कृषि के स्थानीकरण का विवेचन वैज्ञानिक ढंग से किया है। इस सिद्धान्त ने कृषि भूगोल अध्ययन में नये अध्याय का शुभारम्भ कर अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। आगे चल अधिवासों के विशेष अध्ययन में भी इसने आधारभूत भूमिका अदा की है।

वाल्टर क्रिस्टालर का केन्द्र स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory of Walter Christaller) सन 1933 में वाल्टर क्रिस्टालर नामक जर्मन अर्थशास्त्री द्वारा ग्रामीण नगरीय अधिवासों के वितरण के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या क्रिस्टालर की पुस्तक 'Central Places in Southern Germany' के तृतीय भाग में की गई है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का विकास निम्न मान्यताओं के आधार पर विकसित होता है—

1. प्रदेश, जिसमें केन्द्र स्थल सिद्धान्त लागू होता है, एक समतल मैदान है जिसमें धरातल, मृदा की उत्पादकता आदि में समरूपता मिलती है।
2. ग्रामीण जनसंख्या समान रूप से वितरित है, फलस्वरूप उसकी क्रय शक्ति का निरन्तर तथा समानरूप से सम्पूर्ण प्रदेश में वितरण है।
3. जनसंख्या केन्द्र त्रिभुजाकार रूप में वितरित हैं।
4. उक्त प्रदेश में प्रत्येक कार्य की बाजार सीमा निश्चित है।
5. यहाँ गमनागमन स्वतंत्र तथा समान रूप से किसी भी दिशा में सम्भव है।
6. जनसंख्या का निश्चित स्थानिक व्यवहार दृष्टिगोचर होता है।

उपर्युक्त वर्णित दशाओं में किसी भी प्रदेश के बाजार क्षेत्र का केन्द्र मध्य में होगा तथा बाजार क्षेत्र वृत्ताकार होगा। इस बाजार क्षेत्र की बाहरी सीमा का निर्धारण उस दूरी से होगा जहाँ बड़ी दूरी के कारण वस्तुओं की माँग समाप्त हो जायेगी, इसे ऊपरी या बाह्य सीमा कहते हैं। वस्तु की न्यूनतम माँग जहाँ होती है, उसे निचली सीमा कहते हैं।

किसी भी भौगोलिक प्रदेश में वृत्ताकार व्यापार केन्द्रों (सेवा क्षेत्रों) का व्यवस्थापन दो प्रकार से हो सकता है—प्रथम स्थिति में एक—दूसरे वृत्ताकार सेवा क्षेत्रों को स्पर्श करें तो इनके मध्य असेवित क्षेत्र बच जाता है तथा इनके बाहर इसी प्रकार छूटे हुए क्षेत्रों में सम्बन्धित सेवा उपलब्ध नहीं हो पाती है। दूसरी स्थिति में सम्पूर्ण क्षेत्र को वृत्तों के भीतर सम्मिलित करने पर उनके सेवा क्षेत्र परस्पर काटने लगेंगे जिससेकुछ ऐसे उभयनिष्ठ क्षेत्र दृष्टिगत होंगे जो समीपवर्ती दोनों केन्द्रों से सेवा प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्ध करेंगे। इस समस्या के समाधान के लिए क्रिस्टेलर ने बाजार क्षेत्रों की कल्पना वृत्ताकार के स्थान पर षट्कोणाकार रूप में की है। ज्यामितीय दृष्टि से षट्कोणीय दशा ही वृत्त के सर्वाधिक समीप होती है, जिसमें समान स्तर के सभी केन्द्रीय स्थान परस्पर एक—दूसरे से समान दूरी पर स्थित होते हैं तथा उनका बाजार क्षेत्र भी समरूपता लिए होता है।

क्रिस्टेलर ने बताया कि उत्पादक भूमि का निश्चित क्षेत्र प्रत्येक नगरीय केन्द्र को आधार प्रदान करता है तथा वह केन्द्र उस क्षेत्र को निश्चित सेवाएँ प्रदान करता है। आधार प्रदान करने वाला क्षेत्र पूरक क्षेत्र (Complementary Region) तथा सेवायें प्रदान करने वाला केन्द्र, केन्द्र स्थल (Central Place) होता है। सेवाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यापार होता है, जो एक केन्द्र में स्थित होकर केन्द्रीय कार्यों को पूर्ण करता है। इसके लिए न्यूनतम जनसंख्या की आवश्यकता होती है जिसे कार्याधार जनसंख्या (Threshold Population) कहते हैं।

केन्द्र स्थल व्यवस्था में केन्द्र स्थलों की स्थिति व उनका वितरण वहाँ बताया है, जहाँ उसे लाभ बाजार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इन केन्द्रों में कार्यों का पदानुक्रम पाया जाता है। निम्न सेवा केन्द्र उच्च सेवा केन्द्रों की तुलना में दूर—दूर स्थित होते हैं, जिनके मध्य केन्द्रीय कार्य अधिक विकसित होते हैं। इसी प्रकार क्रिस्टेलर ने परिवहन लागत को ज्ञात करने के लिए यातायात नियम निर्धारित किया तथा प्रशासनिक नियंत्रण के लिए प्रशासनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। क्रिस्टेलर ने अपने मॉडल में 'K' संकेत का प्रयोग किया है, जिसे सबसे बड़े केन्द्र स्थल के लिए प्रयुक्त किया गया है। अर्थात् किसी प्रदेश के बड़ी श्रेणी के केन्द्रों की संख्या तथा उससे एकदम नीचे छोटी श्रेणी के केन्द्रों की कुल संख्या के बीच अनुपात को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने वाली संख्या को 'K' मूल्य (k-value) कहते हैं।

क्रिस्टेलर महोदय ने निम्नांकित तीन प्रकार के 'K' मूल्य बताये हैं—

1. **बाजार सिद्धान्त**—क्रिस्टेलर के केन्द्र स्थल सिद्धान्त में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाजार सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त पर आधारित केन्द्र स्थलों की व्यवस्था या जाल को $k=3$ कहा गया है, इसमें k सबसे बड़ा केन्द्र स्थल होता है, जो अपने से ठीक नीचे के पदानुक्रम में तीन केन्द्र स्थलों के बराबर होता है। नगरीय पदानुक्रम में 1, 3, 9, 27, 81, 243, 729... की उत्तरोत्तर वृद्धि पायी जाती है।
2. **यातायात नियम**—यातायात व्यवस्था (परिवहन लागत महत्वपूर्ण होने पर वहाँ केन्द्र स्थलों का विकास यातायात सिद्धान्त के अनुसार रेखात्मक तरीके से होता है। इसमें मुख्य केन्द्र के चारों ओर गौण केन्द्र सीमा रेखा के किनारे मुख्य केन्द्रों के मध्य स्थित होंगे। इस प्रकार प्रत्येक दो केन्द्रों के ठीक मध्य में द्वितीय श्रेणी का केन्द्र स्थित होता है। इसमें तीन बड़े केन्द्र तथा उस प्रदेश के साथ पायी जाती है। मिलकर $k = 4$ पदानुक्रम का निर्माण करते हैं। जिसमें 1, 4, 16, 64, 256... की उत्तरोत्तर वृद्धि।
3. **प्रशासकीय सिद्धान्त**—जहाँ प्रशासकीय तत्त्व निर्णायक भूमिका निभाते हैं, वहाँ निचली श्रेणी के सभी छः केन्द्र बड़ी श्रेणी के केन्द्र के षट्भुजाकार प्रदेश में इस तरह स्थित होते हैं कि वे पूर्णरूपेण एक ही बड़े केन्द्र व उसके प्रदेश से संयोजित रहते हैं। इस व्यवस्था के लिए $k = 7$ पदानुक्रम प्रयुक्त होता है, जिसमें 1, 7, 49... के अनुपात में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

आलोचना (Criticism)

1. यह सिद्धान्त इतना अधिक सैद्धान्तिक व आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इसे वास्तविक परिस्थितियों में प्रयोग करना जटिल कार्य है।
2. उनका सिद्धान्त मान्यताओं पर आधारित न होकर अनुभाविक तथ्यों पर आधारित है।
3. केन्द्रीय स्थानों की व्यवस्था न तो निश्चित है तथा न ही स्थायी है।
4. केन्द्रीय स्थल को निर्धारित करने का मापदण्ड पर्याप्त नहीं है।
5. प्रस्तुत मॉडल स्थिर प्रकृति का है, जबकि समयानुसार विभिन्न परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

लॉश का केन्द्र स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory of Losch)

जर्मन अर्थशास्त्री आगस्ट लॉश ने सन् 1940 में जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक का सन् 1954 में 'The Economics of the Location' के नाम से अनुवाद किया, जिसमें अपना केन्द्र स्थल सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इन्होंने क्रिस्टेलेर के सिद्धान्त को संशोधित कर नवीन रूप में प्रतिपादित किया। इसका अध्ययन क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका का आयोवा प्रान्त था इन्होंने क्रिस्टेलेर के समान ही षट्कोणीय व्यवस्था का प्रयोग किया, लेकिन जनसंख्या वितरण सतत् रूप में समान नहीं माना है। लॉश ने माना कि कृषि ग्रामों का केन्द्रीयकृत बस्ती प्रतिरूप पाया जाता है। लॉश ने अधिवासों के पदानुक्रम निर्मित करने की शुरुआत ग्रामीण स्तर के अधिवासों या कृषि ग्रामों से ऊपर की तरफ बढ़ते क्रम में माना है, जबकि क्रिस्टेलेर सर्वप्रथम महानगर की कल्पना की है। इस प्रकार लॉश द्वारा प्रस्तुत आर्थिक भू-दृश्य की संकल्पना आंशिक रूप से जटिल है, किन्तु अधिक वास्तविक है।

लॉश का केन्द्रीय स्थल पदानुक्रम विशिष्टीकृत है, जिसमें 'K' मूल्य क्रिस्टेलेर की तरह स्थिर न रहकर परिवर्तनशील रहता है जो 3, 4, 7, 9, 12, 13, 16, 19, 21, व 25 है। अधिवासों की संख्या व मात्रा दूरी के विचार से $K=7$, $K=13$ तथा $K=19$ की दशाएँ सामान्य हैं, जो राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से स्थायी हैं। इस प्रकार लॉश ने मूल्य को परिवर्तित पदानुक्रम रूप में प्रस्तुत करते हुए बताया कि विभिन्न आकारों के षट्कोणों की एक बिन्दु पर ऊपर नीचे रखकर सभी जालों का इस बिन्दु के चारों ओर घुमाकर "K" मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार लॉश ने अपने सिद्धान्त में माना कि इसमें

- (1) उपभोक्ताओं का गमनागमन न्यूनतम होना चाहिए।
- (2) किसी आर्थिक उद्यम द्वारा अतिरिक्त लाभअर्जित करना चाहिए।
- (3) केन्द्रों के मध्य यातायात मार्गों की व्यवस्था को भी इस सिद्धान्त से सम्बद्ध किया है।

इसमें यदि केन्द्रीय महानगर के चारों ओर षट्कोणीय जालों को घुमाया जाये तो वह 60° के 6 खण्डों में विभक्त हो जायेगा, जिसके प्रत्येक खण्ड में केन्द्र स्थलों का प्रतिरूप एक समान होगा लेकिन कार्यों तथा बाजार क्षेत्रों की संख्या में अन्तर के कारण प्रत्येक खण्ड 30° के दो समान खण्डों में विभक्त हो जायेगा, जिसमें एक भाग में अधिक विकसित और तीव्रतर विशिष्टीकरण वाले केन्द्र होंगे तथा दूसरे में इनका अभाव मिलता है। इनमें प्रथम को नगर का सम्पन्न क्षेत्र (Rich Sector of City) तथा दूसरे को नगर का निर्धन क्षेत्र (Poor Sector of City) कहा गया है।

आलोचना (Criticism)

1. यह सिद्धान्त सामान्यीकृत होते हुए भी जटिल है।
2. इसमें लागत तत्त्व को मद्देनजर नहीं रखा गया है।
3. भौगोलिक चिन्तन का इतिहास
4. सामयिक परिवर्तन के प्रभाव को ध्यान में नहीं रखते हुए नगरीय समूहन के प्रभाव को भी अस्वीकार किया गया है।

5. यह औद्योगिक उत्पादन के स्थानीयकरण की व्यवस्था में सहायक नहीं है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त जटिलता एवं अन्य आपत्तियों के बाद भी वास्तविकताओं के सर्वाधिक समीप है तथा भारतीय परिस्थितियों में क्रिस्टलर के सिद्धान्त की तुलना में अधिक उपयुक्त है।

उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि लॉश का 'बहुषट्कोणीय सिद्धान्त' भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त है।

10.5. सारांश

20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों से ही दुनिया में जहां-जहां भूगोल का विकास हुआ वहां-वहां दृश्यभूमि की संकल्पना का प्रसार जोरो से हुआ। इसे जर्मनी व अमेरिका के भूगोलवेत्ताओं ने अपने शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया है जो अलग-अलग थे। इसके बाद प्रादेशिक व सांस्कृतिक दृश्यभूमि की बात कहीं जाने लगी, कार्ल सावर ने भूदृश्य को प्रकारों में विभक्त किया था जिसे प्रादेशिक या प्राकृतिक भूदृश्य तथा सांस्कृतिक दृश्य कहा जाने लगा था। प्राकृतिक भूदृश्य सम्पूर्ण भूदृश्य में प्राकृतिक तत्वों के सामुच्चयिक स्वरूप का बोधक है। इस प्रकार सावर ने बताया की मानव बिना प्राकृतिक तत्वों के सहयोग में से सांस्कृतिक भूदृश्यों का निर्माण नहीं कर सकता है। सांस्कृतिक भूदृश्य पृथ्वीतल पर निर्मित मानव का अनुपम कृतियां हैं। जिनके लिए मानव के बहुत सारे संसाधनों को लिया हो उनके उपयोग करने के तरीकों का वह जानकार है। इनके लिए मानव अब भी लगातार प्रयासरत रहता है। मानव द्वारा किये इन भूदृश्यों, को मानव विकास का घोटक भी मानता है। जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने भूदृश्य के इन दो प्रकारों में विभेद भी किया है। उनके विभेद का आधार सांस्कृतिक विकास की सापेक्षिक दशा को माना गया है। यदि कही मानव का सांस्कृतिक विकास नगण्य है तो वह प्राकृतिक भूदृश्य है और यदि सांस्कृतिक विकास की स्पष्ट छाप नजर आती है तो यह सांस्कृतिक भूदृश्य है। इसका अर्थ यह कि किसी मानव निवासित क्षेत्र में प्राकृतिक भूदृश्य की संकल्पना मात्र सैद्धान्तिक है भूदृश्य की संकल्पना के आधार पर ही भूगोल में कई क्षेत्रों का विकास किया गया। लगभग इसी समय भूगोल में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार की गई जिसमें वाल्टर क्रिस्टलर व लॉश का नाम आता है। इन्होंने किसी स्थान की महत्ववता को लेकर उसके चारों ओर के भूमि उपयोग के प्रतिरूप को प्रदर्शित करने का कार्य किया है। इस दिशा में इनसे भी पहले प्रयास किए गए जब सन 1826 में वान थ्यूनेन ने बाजार या शहर के चारों ओर के भूमि उपयोग के आंकड़ों को और प्रतिरूप को प्रदर्शित किया। ये सभी सिद्धान्त किसी प्रदेश या क्षेत्र की भूदृश्य की संरचना को स्पष्ट करने का कार्य करते हैं। साथ ही प्राकृतिक भूदृश्यों के उपयोग के आधार पर निर्मित सांस्कृतिक भूदृश्यों के स्वरूप को भी ये स्पष्ट करते नजर आते हैं केन्द्रीयता किसी स्थान के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार इस अध्याय में भूदृश्य की संकल्पना के परिणाम के रूप में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्तों को देखा जा सकता है।

10.6. पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक भूदृश्य— यह सम्पूर्ण भूदृश्य में प्राकृतिक तत्वों के सामुच्चयिक स्वरूप का बोधक है।

सांस्कृतिक भूदृश्य— मानवकृत सभी तत्वों के सामुच्चयिक स्वरूप का बोध जो प्राकृतिक भूदृश्यों के सहयोग से निर्मित होते हैं।

केन्द्र स्थल सिद्धान्त— मानव कार्य कलाप में केन्द्राभिमुखता को मूल में रखकर प्रतिपादित किया गया सिद्धान्त।

10.7. बोध प्रश्न

10.7.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 प्राकृतिक दृश्यभूमि की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न-2. सांस्कृतिक दृश्यभूमि क्या है इसके प्रमुख तत्वों समझाइए।

प्रश्न-3 क्रिस्टलर के केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न-4— लाश के केन्द्रीय स्थल सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

10.7.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1 भूदृश्य किसे कहते हैं।

प्रश्न 2. भूदृश्य कितने प्रकार के होते हैं।

प्रश्न 3— सांस्कृतिक भूदृश्य को परिभाषित कीजिए

प्रश्न 4. केन्द्रीयता किसे कहते हैं?

प्रश्न 5. प्राकृतिक भूदृश्य को परिभाषित कीजिए

10.7.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. कार्ल सावर किस देश के भूगोलवेत्ता हैं?

(क) अमेरिका (ख) जर्मनी (ग) जर्मनी (घ) सोवियत रूस

प्रश्न-2. Morphology of Landscape पुस्तक के लेखक कौन हैं।

(क) हार्टशोर्न (ख) सावर (ग) हम्बोल्ट (घ) रेटजेल

प्रश्न-3, क्रिस्टलर का बाजार सिद्धान्त है

(क) K=3 (ख) K=4 (ग) K=7 (घ) K=9

प्रश्न-4 क्रिस्टलर का यातायात नियम है।

(क) K=3 (ख) K=4 (ग) K=7(घ)K=9

प्रश्न-5 क्रिस्टलर का प्रशासकीय सिद्धान्त है।

(क) K=3(ख) K=4 (ग) K=7(घ)K=9

उत्तरमाला— 1— (क) 2— (ख) 3— (क) 4— (ख) 5— (ग)

10.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई-11 : भूगोल में मॉडल एवं प्रतिरूप, मात्रात्मक क्रांति

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 प्रस्तावना
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 प्रतिरूप एवं अनुरूप (Models and Analogues)
- 11.3 प्रतिरूप के प्रकार (Types of Model)
- 11.4 भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग (Use of Models in Geography)
- 11.5 मानव भूगोल में मॉडल (Models in Human Geography)
- 11.6 भूगोल में मात्रात्मक क्रांति (Quantitative Revolution in Geography)
- 11.7 भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की दिशा
- 11.8 सारांश
- 11.9 शब्द सूची
- 11.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 11.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 11.12 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

11.0 प्रस्तावना

भूगोल में मॉडल एवं मात्रात्मक क्रांति नामक इस इकाई में पर परस्नातक स्तर पर शिक्षार्थी को मॉडल क्या है, मॉडल कितने प्रकार का होता है, मॉडल की विशेषताएं क्या हैं, मॉडल का प्रयोग भूगोल में किस-किस क्षेत्र में किया जाता है, मॉडल कितने प्रतिरूप में होते हैं, मानव भूगोल में मॉडल को विस्तार से समझाया गया है इसके अलावा इस इकाई में कंप्यूटर मानचित्र मॉडल स्थानिक वितरण संबंधी कारलो मॉडल का भी सविस्तार वर्णन किया गया है परस्नातक स्तर पर इस इकाई में मॉडल के साथ मात्रात्मक क्रांति को भी शामिल किया गया है मात्रात्मक क्रांति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भूगोल में चरमोत्कर्ष पर पहुंची मात्रात्मक क्रांति में भूगोलवेत्ता यह मानते थे कि गणितीय सूत्रों के द्वारा हम विषय को और अधिक तर्कसंगत, शुद्ध, क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान कर सकते हैं ब्रिटेन स्वीडन फ्रांस अमेरिका जर्मनी आदि अनेक देशों में भूगोलवेत्ताओं ने मॉडल और मात्रात्मक क्रांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया प्रस्तुत इकाई में मात्रात्मक क्रांति के गुण दोष मात्रात्मक क्रांति के पीछे क्या कारण थे तथा मात्रात्मक क्रांति की आलोचनाओं का वर्णन किया गया है जिससे शिक्षार्थी अपने स्तर से मॉडल और मात्रात्मक क्रांति दोनों सविस्तार व्याख्या कर सकें।

11.1 उद्देश्य

- भूगोल में प्रतिरूपों के पक्ष को उजागर करना
- भूगोल में प्रतिरूपों में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट करना।
- भूगोल के प्रतिरूप के प्रकार स्पष्ट करना।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का अध्ययन करना।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की दिशा स्पष्ट करना।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की गुणों को स्पष्ट करना।

11.2 प्रतिरूप एवं अनुरूप (Models and Analogues)

भूगोल में प्रतिमान निष्ठापन के सन्दर्भ में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त मात्रात्मक क्रान्ति के रूप में प्रतिरूपों का प्रयोग आरम्भ हुआ। प्रतिमान विस्थापन (Paradigm Shift) के सम्बन्ध में टी.एस. कुहन ने अपनी पुस्तक 'वैज्ञानिक क्रान्तियों की संरचना' में बताया है कि वैज्ञानिक क्रान्तियाँ किसी स्थापित प्रतिमान को नये प्रतिमान द्वारा विस्थापित करने के उपरान्त होती हैं। ये नये प्रतिमान अधिक सूचनापूर्ण एवं आकर्षक होते हैं। उदाहरण के लिए पृथ्वी की संरचना से सम्बन्धित पूर्व सिद्धान्त कमजोर पड़ते जा रहे हैं, जिनमें जीव-जन्तुओं के प्रवास को बताया गया था, क्योंकि प्लेट विवर्तिनिकी सिद्धान्त के अनुसार स्वयं महासागर भी वृहद् प्लेटों से बने हैं। इस प्रकार नवीन प्रतिमान के रूप में स्थानीयकरण के सिद्धान्त एवं मात्रात्मक विधियों तथा प्रतिमानों (मॉडल) के प्रयोग पर बल दिया जाने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सन् 1960 के दशक में भूगोल में प्रतिरूपों (Models) का प्रयोग होने लगा। थॉमस कुहन के प्रभाव से विभिन्न मॉडलों का विकास किया गया। इस दिशा में पीटर हैगेट, चोर्ले, बेरी तथा हार्वे का प्रयास महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रतिरूप या मॉडल वास्तविकता का आदर्शकृत प्रतीक है, जो अनुसंधान के क्षेत्र में दृष्टि पथ का कार्य करते हैं। प्रतिरूप सिद्धान्त हो सकता है उसके द्वारा आँकड़ों का संश्लेषण किया जा सकता है। भौगोलिक अध्ययन में प्रतिरूप अवस्थितिक विश्लेषण करने, अधिवासों के प्रभाव क्षेत्र के सीमांकन में सहायक सिद्ध होते हैं। अतः मॉडल के सिद्धान्त, नियम एवं समीकरण होते हैं, जिनके द्वारा भौगोलिक अध्ययन को प्रभावी बनाकर सरलतम स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। मॉडल के द्वारा किसी भौगोलिक स्थिति की वास्तविकता को आसानी से समझा जा सकता है।

हैगेट (1967) के अनुसार, "प्रतिरूप एक ऐसी वैज्ञानिक विधि है, जिसमें वास्तविकता में विद्यमान जटिल अन्तर्सम्बन्धों की सरल झलक मिलती है।" चोर्ले के अनुसार "प्रतिरूप सिद्धान्त तभी हो सकता है, जब वह वास्तविक संसार के किसी भाग का उसमें चित्रण करे।" कैम्पबेल के मतानुसार, "प्रतिरूप किसी न किसी रूप में सिद्धान्तों के विकास एवं निर्माण में सहायता करते हैं। प्रतिरूप किसी भी भू-क्षेत्र (Terrestrial Area) या भूखण्ड (Part of the Earth) का विभिन्न मापनियों पर छोटे पिण्ड द्वारा प्रदर्शन करता है, जिसमें उस क्षेत्र की विशिष्टताओं का निरूपण किया जाता है।"

प्रतिरूप (Model) की अग्रांकित विशेषतायें होती हैं :-

1. प्रतिरूप चयनात्मक होते हैं। वास्तविक दुनिया के अवांछित महत्वपूर्ण तत्त्वों के अतिरिक्त प्रतिरूप उन घटकों चयन तत्त्वों का चयन करता है, जो वास्तविक दर्शन के सार्थक पक्ष को निरूपित करते हैं।
2. प्रतिरूप का निर्माण निश्चित मापनियों पर होता है।
3. प्रतिरूप संरचनापरक होता है तथा Overline 46 अपने वास्तविक क्षेत्र के चयनित गुणों का प्रदर्शन समुचित ढंग से करता है।
4. इस प्रकार प्रतिरूप वास्तविकता के प्रतीक होते हैं।
5. प्रतिरूपों की विशेषताओं के आधार पर वास्तविक भौगोलिक जगत् की विशेषतायें तलाश कर सकते हैं।
6. प्रतिरूपों के आधार पर वास्तविक जगत् के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है। वर्तमान समय में बढ़ते तकनीकी विकास के साथ कम्प्यूटर पर विभिन्न प्रकार के त्रिआयामी (3-Dimensional) प्रतिरूपों का निर्माण किया जा रहा है, जिनकी सहायता से सटीक परीणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही प्रतिरूप शोध कार्य में परिकल्पना की भूमिका का निर्वाह भी करते हैं।

11.3. प्रतिरूप के प्रकार (Types of Model)

भू-तल पर पायी जाने वाली भौगोलिक विविधताओं के अनुसार भौगोलिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के प्रतिरूपों का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः प्रतिरूपों को वर्णनात्मक (Descriptive) एवं मानकी (Normative) दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। वर्णात्मक प्रतिरूपों द्वारा वास्तविकता का व्यवस्थित

(क्रमबद्ध) विवरण दिया जाता है, जबकि मानकी प्रतिरूपों द्वारा नमूने के तौर पर प्रमुख दशाओं को कथनात्मक ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है। वर्णात्मक प्रतिरूप आनुभाविक सूचनाओं तथा तथ्यों से सम्बन्धित होते हैं तथा ये आँकड़ों एवं प्रयोगों पर आधारित होते हैं। मानकी प्रतिरूपों द्वारा किसी तथ्य का ज्ञान इस प्रकार प्रदर्शित होता है कि उस तथ्य की जानकारी प्रभावात्मक रूप से प्रकट होने के कारण वास्तविकता से अधिक प्रतीत होनी है (त्रिपाठी एवं विरले)।

'एकाफ' ने प्रतिरूपों के अग्रांकित तीन प्रकार बताये हैं।—

1. **मूर्तिदर्शी प्रतिरूप (Irony Models)** :— ये प्रतिरूप किसी वास्तविकता के लक्षणों, विशेषताओं या गुणधर्मों का उल्लेख विभिन्न मापनियों पर करते हैं।
2. **अनुरूप प्रतिरूप (Analogue Models)** :— ये वास्तविकता के लक्षणों या गुणधर्मों को दूसरे गुणधर्म द्वारा निरूपित करते हैं।
3. **प्रतीकात्मक मॉडल (Symbolic Models)** :— ये प्रतिरूप लक्षणों को प्रतीकों (Symbols) द्वारा निरूपित करते हैं।

11.4. भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग (Use of Models in Geography)

किसी भी विषय में उसकी विषय सामग्री को प्रस्तुत करने, समझने तथा प्रत्यक्ष अनुभवों से प्राप्त सूचनाओं एवं आँकड़ों से सार्थक निष्कर्ष तक पहुँचने में प्रतिरूप बहुत सहायक होते हैं। इसे मददेनजर रखते हुए नवीन शोधों के उपरान्त सन् 1960 के दशक में भूगोल में प्रतिरूपों का प्रयोग होने लगा, जिसका प्रमुख रूप से पीटर हैगेट, रिचर्ड चोर्ले, बेरी, हार्वे आदि को है। इस प्रकार भौगोलिक वास्तविकताओं की जटिलता का स्पष्ट निरूपण प्रतिरूपों के द्वारा किया जाने लगा। इससे भौगोलिक स्थिति को भी सरल रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा ताकि भौगोलिक तथ्यों का तर्कपूर्ण विवेचन करने के लिए गणितीय प्रतिरूपों का निर्माण किया जाता है। भौगोलिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के प्रतिरूपों का प्रयोग किया जा रहा है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :—

मापनी प्रतिरूप (Scale Model)

इन प्रतिरूपों की सहायता से किसी भौगोलिक क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई का त्रिआयामी (3-Dimensional) निरूपण किया जाता है। इसके द्वारा भौतिक एवं मानवीय प्रक्रमों का भी त्रिविम रूप में सरल प्रदर्शन करके सटीक (Exact) निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है।

मानचित्र प्रतिरूप (Map Model)

मापनी प्रतिरूप का विकसित रूप मानचित्र प्रतिरूप होते हैं। मानचित्र प्रतिरूप में मानचित्रों पर भौगोलिक तथ्यों को सांकेतिक चिह्नों द्वारा निरूपित करते हैं। इनका उपयोग प्रधानतः उच्चावच निरूपण करने में किया जाता है।

छद्म या अनुकार प्रतिरूप (Simulation Models)

अनुकार प्रतिरूप को विकसित करने का श्रेय स्वीडन के भूगोलवेत्ता टी. हैगरस्ट्रेण्ड (Trosten Hagerstrand) को है। अनुकार प्रतिरूप को प्रदर्शित करके भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाया जाता है। इस प्रतिरूप द्वारा नवीन विचारों के स्थानिक प्रसार (Spatial Diffusion) का अध्ययन किया जाता है। इस प्रतिरूप द्वारा परिवहन विकास, नगरीकरण तथा औद्योगिक विकास के पारस्परिक प्रभावों को समझकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। हैगरस्ट्रेण्ड ने ही काल-स्थान भूगोल (Time-Space Geography) की अवधारणा दी।

स्वीडन के भूगोलवेत्ता टी. हैगरस्ट्रेण्ड ने अनुकार (छद्म) प्रतिरूप की सहायता से स्वीडन में सरकार द्वारा कृषि फार्मों को धनराशि सहायताओं की स्वीकृति का, पशुओं में यक्ष्मा रोग नियंत्रण का, एक विशेष प्रकार के चर्च संगठन के प्रकार का तथा मोटर-कारों के स्वामित्व का अध्ययन किया था। उन्होंने सर्वप्रथम सम्बन्धित तथ्यों के वास्तविक वितरण की जानकारी प्राप्त की, तत्पश्चात् अनुकार प्रतिरूप में विसरण के छद्म परिणामों

को समान रेखा (Isopleth) मानचित्र पर निरूपित करके समझाया तथा उनकी वास्तविक भौगोलिक स्थिति (वितरणों) से तुलना करके देखा था।

अनुकार विधि द्वारा विचारों के प्रसार का अध्ययन किया जाता है। भारत में आर.पी. मिश्रा ने मैसूर जनपद की कृषि सहकारी समितियों के प्रसार का अध्ययन 'अनुकार प्रतिरूप' का प्रयोग करके किया था। इसके साथ ही भारत में परिवहन नियोजन के प्रसार का, जापान में हाथ ट्रेक्टरों के प्रसार का, पूर्वी अफ्रीका में राजनीतिक संगठनों के प्रसार का अध्ययन छद्म मॉडल निर्माण द्वारा किया गया है।

मारिल (Morrill R. 1962, 1965) ने संयुक्त राज्य अमेरिका के सिएटल क्षेत्र के नगरों में घेटी क्षेत्र (नीग्रो लोगों की बस्तियाँ) के प्रसार का विश्लेषण अनुकार प्रतिरूप के द्वारा किया है। इस प्रकार इस विधि से भौतिक एवं मानवीय तथ्यों के तथा राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। छद्म प्रतिरूप निम्नांकित प्रकार के होते हैं—

1. भौतिक प्रतिरूप (Physical Models)
2. मानवीय तथ्यों के प्रतिरूप (Models of Human Facts)
3. राजनीतिक तथ्यों के प्रतिरूप (Models of Political Facts)

इन प्रतिरूपों की रचना द्वारा किसी तल के बिन्दुओं का यादृच्छिक वितरण (Random Distribution of Points on a Surface), किसी रेखा पर बिन्दुओं का यादृच्छिक वितरण (Random Distribution of Points on a Line) तथा यादृच्छिक आकृति (Random Shape) व यादृच्छिक विसरण (Random Diffusion) का वितरण भी निरूपित किया जाता है। इनकी विस्तृत विवेचना कोल एवं किंग (1967) ने की है।

गणितीय प्रतिरूप (Mathematical Models)

गणितीय प्रतिरूप दो प्रकार के होते हैं— (i) भौतिक तथ्यों के प्रतिरूप, एवं (ii) मानवीय तथ्यों के प्रतिरूप। इन प्रतिरूपों का भूगोल में प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भूगोलवेत्ता इनका प्रयोग करके ढाल विकास, प्रवाहित जल के कार्यों, हिमानी के कार्यों आदि का विश्लेषण कर रहे हैं। जे.एफ. न्ये ने हिमानी को प्लास्टिक पदार्थ के रूप में मानकर गणितीय प्रतिरूप द्वारा उसके हिम प्रवाह की गणना की है।

मानवीय तथ्यों का विश्लेषण करने में जी.के. ज़िफ, सिमान, बेरी (B.J.L. Berry), गैरीसन, हैगेट, मार्कोव, ग्रेनर एवं इलियट तथा बार्टलेट आदि भूगोलवेत्ताओं ने गणितीय प्रतिरूपों का प्रयोग किया है। विलियम गैरीसन तथा वाल्टर इज़ाई ने रेखीय कार्यक्रम तथा अनुकूलतम प्रतिरूपों का प्रयोग स्थानिक समस्याओं के समाधान के लिए किया है। हार्वे (1967) एवं कोलिन (1970) गणितीय प्रतिरूपों द्वारा जनसंख्या एवं औद्योगिक प्रवसन का विश्लेषण किया है। मार्कोव ने इस तकनीकी द्वारा स्थानिक निर्भरता की गतिशीलता पर चर्चा की है। ग्रेगर एवं इलियट (1967) ने इंग्लैण्ड में गेहूँ के बाजारों की प्रादेशिक अन्तर्निर्भरता का अध्ययन किया है। पीटर हैगेट (1972) ने दक्षिणी पश्चिमी इंग्लैण्ड के आठ खण्डों में बेरोजगारी का अन्तर प्रादेशिक अध्ययन किया है। साथ ही हैगेट ने मानव भूगोल में अवस्थिति विश्लेषण के लिए ग्राफ सैद्धान्तिक विधि को अपनाते हुए गणितीय प्रतिरूपों का निर्माण किया है। इस प्रकार भूगोल में सटीक एवं स्पष्ट परिणामों को प्राप्त निर्माण करने के लिए गणितीय प्रतिरूपों का प्रयोग बढ़ रहा है।

संकल्पनात्मक प्रतिरूप (Conceptual Model)

इन्हें सैद्धान्तिक प्रतिरूप भी कहते हैं। केन्द्रीय स्थान तथा अवस्थिति सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। जैसाकि सन् 1933 में वाल्टर क्रिस्टालर ने अपने 'केन्द्रीय स्थान सिद्धान्त' (Central Place Theory) को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए षट्कोणीय प्रतिरूप (Hexagonal Models) का प्रयोग किया था जिसका अनुसरण लॉश ने भी किया था।

अनुरूप प्रतिरूप (Analogue Model)

अनुरूप प्रतिरूप सैद्धान्तिक प्रतिरूपों के निर्माण का ऐसा प्रयास है, जिसके द्वारा भौतिक एवं मानवीय तथ्यों को स्पष्ट किया जा सकता है। अनुरूप (Analogues) एवं प्रतिरूप (Models) परस्पर भिन्न होते हैं। प्रतिरूप के द्वारा 'आकारों या लक्षणों को मूल रूप से प्रदर्शित करने के लिए प्रतीकात्मक' (Symbolic) छोटी या

बड़ी प्रतिकृतियों का उपयोग किया जाता है, ये त्रिविम होते हैं। जबकि अनुरूप (Analogies) की सहायता से आकारों या लक्षणों को प्रत्येक दशा के विभिन्न रूपों में निरूपित किया जाता है, ये त्रिविम नहीं होते हैं।

गुरुत्व प्रतिरूप (Gravity Model)

गुरुत्व प्रतिरूप विभिन्न केन्द्रों के प्रभाव क्षेत्रों के आकार का आकलन करने का सर्वाधिक उपयुक्त प्रतिरूप है, जिसे भौतिक विज्ञान से लिया गया है। यह न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार "The potential power of attraction between two bodies increase with the product of their masses and decrease with distance between them." अर्थात् दो पदार्थों (उत्पादों) के मध्य आकर्षण संहतियों (Masses) के गुणनफल के अनुपात में होता है। इस प्रतिरूप को सर्वप्रथम भूगोल में दूरी और अन्तः क्रियाओं के मध्य सम्बन्धों को दर्शाने के लिए सामान के संचलन एवं प्रवास सन्दर्भ में बिशप जॉर्ज वर्कले (1913), हेनरी कैरी (H.C. Carey, 1858), रेवन्स्टीन (Ernst G. Ravenstein, 1885), तथा हर्बर्ट स्पेन्सर (1892) लिखा है। ये कार्य भूगोल में दूरी क्षय (Distance Decay) तथा गुरुत्व मॉडल के बारे में माने जाते हैं। रायली (Reilly, William J., 1899–1970) ने खुदरा बाजार सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करते हुए सन् 1929 में यह अभिगृहित किया कि किसी स्थान के द्वारा नगरीय केन्द्र से प्राप्त किये गये फुटकर व्यापार की मात्रा उस नगर की जनसंख्या के प्रत्यक्ष अनुपात में तथा उस स्थान एवं नगर के मध्य की दूरी में वर्ग के विपरीत अनुपात में होती है। उन्होंने इसके आधार पर व्यापारिक क्षेत्रों की पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया था। रैली ने जनसंख्या प्रवास सूचकांक का अध्ययन भी किया था जिसका सूत्र निम्न था—

$$\text{प्र.सू.} = \text{अ} = \frac{J_1 J_2}{d^2}$$

यहाँ प्र. सू. = प्रवास सूचकांक,
अ = अचल समानुपाती,
 J_1 = प्रथम अधिवास की जनसंख्या,
 J_2 = द्वितीय अधिवास की जनसंख्या, तथा
 d^2 = दो अधिवासों के मध्य की दूरी।

गुरुत्व मॉडल के आधार पर दो स्थानों के मध्य अन्तःक्रिया का आकलन निम्न सूत्र से भी किया जा सकता है—

यहाँ **I** = अन्तःक्रिया (**Interaction**),

P_1 = एक स्थान की जनसंख्या (**Population of one of the Places**)

P_2 = दूसरे स्थान की जनसंख्या (**Population of the other Place**)

d = दानों स्थानों के मध्य की दूरी (**Distance between them**)

इस प्रकार गुरुत्व मॉडल द्वारा अधिवासों के जनसंख्या का आकार उनके प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार, जनसंख्या के प्रवास तथा व्यापारिक क्षेत्रों के मध्य सीमा निर्धारण आदि का अध्ययन किया जा सकता है। सन् 1949 में जिफ (G.K. Zipf, 1902–1950) ने मानवीय व्यवहार में न्यूनतम प्रयास के सिद्धान्त (Principle of Least Effort) का प्रतिपादन किया। लेकिन जेम्स एवं मार्टिन के अनुसार न्यूटन के गुरुत्व के नियम पर आधारित समाआकारिकी सिद्धान्तों (Isomorphic Relationship) पर प्रथम बार विवेचन स्टीवर्ट (Stewart, J.Q.) ने सन् 1947 में किया था।

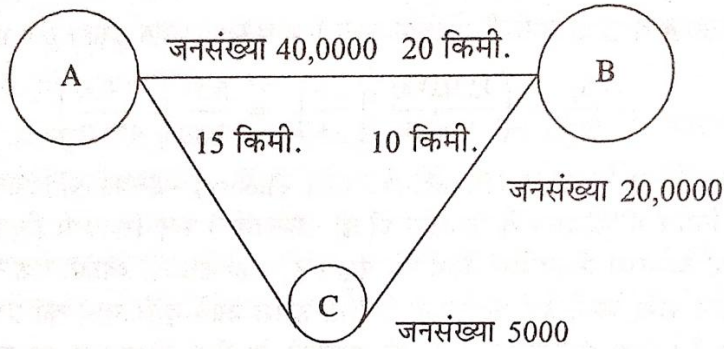
- i. **नगर प्रभाव क्षेत्र के सीमांकन से सम्बन्धित गुरुत्व सिद्धान्त** — इसका प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री हेनरी चार्ल्स कैरी (H.C. Carey, 1793–1879) ने सन् 1858 में किया जिसका आधार न्यूटन द्वारा भौतिकशास्त्र में प्रयुक्त गुरुत्व मॉडल का प्रभाव है। इसे अन्तर्क्रिया नियम (Intraction Model) भी कहते हैं। ये मॉडल दो क्षेत्रों के मध्य के सम्बन्धों को तर्कसंगत तरीके से जाँचने का कार्य करता है, जो निम्न सूत्र पर आधारित है—

यहाँ **I** = दो स्थानों के मध्य सापेक्षिक अन्तरसम्बन्ध

P_1 = दो स्थानों में से बड़े स्थान की जनसंख्या

P_2 = दो स्थानों में से छोटे स्थान की जनसंख्या

d = दोनों स्थानों के मध्य की दूरी।



साधारण गुरुत्व मॉडल का परिकल्पित रूप

चित्र के अनुसार **A, B, C** तीन नगरीय केन्द्र हैं। इनके प्रभाव क्षेत्र का सीमांकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

$$I(A, B) = \frac{(40,000)(20,000)}{20} = 40.0$$

$$I(A, C) = \frac{(40,000)(5,000)}{15} = 13.5$$

$$I(B, C) = \frac{(20,000)(5,000)}{10} = 10.0$$

केरी के अनुसार नगरीय जनसंख्या आकार तथा दूरी के अनुपात में ही उसका प्रभाव क्षेत्र होगा।

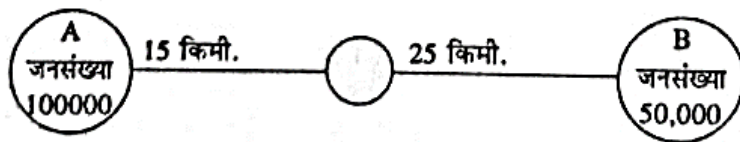
- ii. **फुटकर गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Retail Gravitation)** – टेक्सास विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डब्ल्यू.जे. रैली ने 1931 में यह नियम प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार किस स्थान के द्वारा नगरीय केन्द्र से प्राप्त किये गये फुटकर व्यापार की मात्रा उस नगर की जनसंख्या के प्रत्यक्ष अनुपात में तथा उस स्थान एवं नगर के मध्य की दूरी में वर्ग के विपरीत अनुपात में होती है, इसे रैली ने निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट किया है—

$$\frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{P_1}{P_2} \right) \left(\frac{D_2}{D_1} \right)^2$$

यहाँ S_1, S_2 = दिये गये दो नगरों के सापेक्षिक फुटकर विक्रय का भाग जो कि उनके मध्य स्थित किसी नगर या कस्बे को प्राप्त होता है।

P_1, P_2 = दोनों दिये गये नगरों की जनसंख्या

D_1, D_2 = मध्यवर्ती कस्बे या गाँव से दोनों नगरों की दूरियाँ



रैली का फुटकर गुरुत्व नियम

चित्र के अनुसार **A** व **B** दो नगर हैं, जिनके मध्य एक कस्बा, इनके प्रभाव क्षेत्र सीमा निम्न होगी—

$$\frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{1,00,000}{50,00} \right) \left(\frac{25}{15} \right)^2 = \frac{5.58}{1.00} \frac{S_1}{S_2} = \left(\frac{P_1}{P_2} \right) \left(\frac{\text{नगर A}}{\text{नगर B}} \right)$$

- iii. **अलगाव बिन्दु सिद्धान्त (Breaking Point Theory)**— इसका प्रतिपादन रैली के फुटकर गुरुत्व नियम में संशोधन के उपरान्त पी.डी. कनवर्स ने सन् 1949 में किया। अलगाव बिन्दु दो नगरों के मध्य स्थित उस बिन्दु को कहते हैं, जहाँ तक के व्यक्ति एक नगर में सेवा कार्यों का लाभ प्राप्त करने हेतु आ सकते हैं तथा उससे आगे दूसरे नगर का प्रभाव क्षेत्र वृद्धि कर सकता है। कनवर्स महोदय ने इसको समझाने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया है —

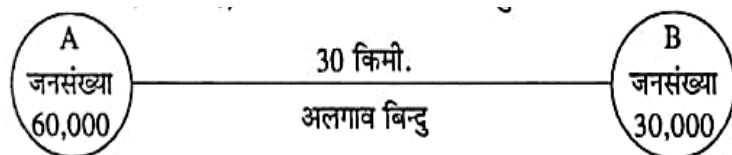
$$B = \frac{d}{1 + \sqrt{\frac{P_1}{P_2}}}$$

यहाँ B = दो नगरों के मध्य अलगाव बिन्दु,

d = दोनों नगरों के मध्य की दूरी,

P_1, P_2 = क्रमशः दोनों नगरों की जनसंख्या।

चित्रानुसार **A** व **B** दो नगर हैं, जिनके मध्य अलगाव बिन्दु की स्थिति निम्न प्रकार होगी—



केनवर्स का अलगाव बिन्दु नियम

एवरट ली (Everett Lee) ने प्रवास का सिद्धान्त सन् 1966 में दिया था, जिसमें उन्होंने किसी क्षेत्र से जनसंख्या की स्थानिक गतिशीलता (Spatial Mobility of Population) को एक सकारात्मक एवं नकारात्मक कारकों के समूह से नियंत्रित माना है। ली के अनुसार इन कारकों में उत्पत्ति क्षेत्र में क्रियाशील कारक, गन्तव्य स्थान पर क्रियाशील कारक, वे कारक जो अन्तःस्थ के रूप में क्रियाशील है व व्यक्तिगत कारक, जो व्यक्तियों के लिए विशिष्ट हैं आदि प्रमुख हैं।

भूगोल में अन्तराल मापन (Spacing in Geography)

भूगोल में अन्तराल (Spacing) का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। बस्तियों एवं सेवा केन्द्रों के मध्य अन्तराल उनके आकार तथा कार्यों पर निर्भर करता है। अधिवासों के सेवा केन्द्रों के आकार का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अक्सर यह देखा जाता है कि बड़े आकार के सेवा केन्द्र अधिक अन्तर पर स्थित (दूरी पर) होते हैं तथा लघु सेवा केन्द्र पास-पास स्थित होते हैं। बड़े सेवा केन्द्र अनेक कार्यों के कारण प्रमुख आकर्षण के केन्द्र होते हैं। केन्द्रों के आकार व उनकी संख्या में सतत् परिवर्तन होता है, जिसका प्रभाव उनके मध्य की दूरी पर पड़ता है।

अधिवासों के आकार तथा अन्तराल (Spacing) सन्दर्भ में सन् 1933 में क्रिस्टालर ने बताया कि सेवा

केन्द्रों के मध्य की दूरी प्रमुखतः उनके जनसंख्या पर निर्भर करती है (Spacing of service centres is largely a matter of their population)। एल.जे. किंग के अनुसार, सेवा केन्द्रों का अन्तराल उनके आकार, व्यावसायिक, संरचना और निकटवर्ती क्षेत्र की विशेषता का परिणाम होती हैं। सेवा केन्द्रों का अन्तरण एक मिश्रित तथ्य है जो विभिन्न भू-आर्थिक कारकों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम होता है।

अन्तरण को मापने के लिए समय-समय पर विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने प्रयास किया है। वेलेन्टी विनिड नामक पोलिश भूगोलवेत्ता ने बताया कि आयताकार रेखाजाल के प्रतिच्छेदन बिन्दुओं पर स्थित अधिवासों की पारस्परिक दूरी को परिगणित (**Calculate**) करने की सबसे उपयुक्त विधि सकल क्षेत्र को अधिवासों की संख्या से विभाजित करके उसके वर्गमूल द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, इसे निम्न सूत्र में परिणाम ज्ञात किया जा सकता है –

$$D = \sqrt{\frac{N}{A}}$$

यहाँ **D** = अधिवासों के मध्य औसत अन्तराल

A = अध्ययन क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल

N = अधिवासों की कुल संख्या

सन् 1940 में वारनेस तथा रॉबिन्सन ने बताया कि किसी क्षेत्र के क्षेत्रफल तथा उसमें स्थित अधिवासों की संख्या ज्ञात करके निम्न सूत्र द्वारा दो अधिवासों के मध्य समीपवर्ती औसत दूरी का निर्धारण किया जा सकता है –

$$Hd = 1.11 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

यहाँ **Hd** = क्षैतिजीय दूरी (**Horizontal Distance**)

A = क्षेत्रफल (**Area**)

N = अधिवासों की संख्या (**Number of Settlements**)

इस सूत्र में **A/N** एक अधिवास में स्थित औसत क्षेत्र को प्रदर्शित करता है।

सन् 1944 में मेथर (**Mather, E.C.**) ने अधिवासों के मध्य अन्तरण (**Spacing**) ज्ञात करने का एक नवीन सूत्र प्रस्तुत किया, जो इस प्रकार है—

$$D = 1.07 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

D = एक अधिवास की अपने समीपवर्ती छः अधिवासों से औसत दूरी,

A = क्षेत्रफल, **N** = अधिवासों की संख्या।

ए.बी. मुकर्जी ने षट्कोण के स्थान पर अधिवास के सेवा क्षेत्र का आकार वृत्ताकार माना है। इन वृत्ताकार आकृतियों के मध्य में कुछ स्थान रिक्त रह जाता है। उन्होंने बताया कि ऐसी स्थिति में अधिवास का क्षेत्रफल होगा। इस आधार पर ए.बी. मुखर्जी से निम्न सूत्र द्वारा राजस्थान के ग्रामीण अधिवासों के अन्तरण का अध्ययन किया है –

$$\pi r^2 = \frac{A}{N}$$

$$r^2 = \frac{A}{N\pi} \text{ अथवा } r = 1.1284 \sqrt{\frac{N}{A}}$$

अधिवासों के स्थानिक वितरण के माप के रूप में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण (Nearest Neighbour Analysis) विधि

किसी भी प्रदेश में अधिवासों के क्षेत्रीय या स्थानिक वितरण को ज्ञात करने के लिए यह सर्वोत्तम उपयुक्त विधि है। इस विधि का प्रयोग अधिवासों के क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के साथ अन्य विभिन्न प्रकार की सुविधाओं के क्षेत्रीय वितरण को भी ज्ञात किया जाता है। इसका सर्वप्रथम उपयोग प्रसिद्ध पादप पारिस्थितिज्ञ **क्लार्क एवं ईवान्स** (Clark J.P. and Evans, F.C., Ecology, 1954) ने विभिन्न प्रकार के पौधों के स्थानिक या क्षेत्रीय वितरण को ज्ञात करने के लिए किया। ईवान्स के अनुसार, "यह विधि किसी भी क्षेत्र में अनियत दशा से बस्तियों की अन्तरालन (Spacing) की विचलन दशा को दर्शाने में सहायक है।" इसका भूगोल में सर्वप्रथम उपयोग **डेसी** (Dacy M.P.) ने सन् 1960 में अधिवासों के क्षेत्र को ज्ञात करने के लिए किया था। उन्होंने बताया कि यह विधि किसी भी क्षेत्र को अनियत दशा में बस्तियों की अन्तरण (Spacing) की विचलन दशा को स्पष्ट करने में सहायक है।

यह एक मात्रात्मक विश्लेषण विधि है, जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के विभिन्न अधिवासों के मध्य साधारण वस्तुनिष्ठ तुलना की जाती है, जिसके अन्तर्गत किसी यादृच्छिक वितरण प्रतिरूप में विभिन्न बिन्दुओं के मध्य की अवक्षेपित दूरी (Observed Spacing) तथा उनके मध्य की अपेक्षित दूरी (Expected Spacing) के मध्य तुलना की जाती है, अतः अपेक्षित दूरी एक यादृच्छिक (Random) प्रतिदर्श की गहनता (Intensity) की जानकारी देती है। अवक्षेपित दूरी सभी बिन्दुओं या स्थानों के मध्य की दूरी को स्पष्ट करती है। इनमें बिन्दुओं को उनके निकटतम बिन्दु से परस्पर एक रेखा द्वारा संयोजित करके औसत दूरी ज्ञात की जा सकती है।

अधिवासों के स्थानिक वितरण की सैद्धान्तिक विचारधारा को उनके अन्तरण या दूरी (Spacing) के मापन द्वारा अच्छी तरह से व्यक्त किया जा सकता है। यह सैद्धान्तिक अन्तरण प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिवासों के घनत्व पर निर्भर करती है। प्रति इकाई क्षेत्र की गणना N/A के सूत्र पर निर्भर करती है। A का तात्पर्य है प्रदेश का क्षेत्रफल तथा N का तात्पर्य उस प्रदेश में स्थित कुल अधिवासों से है। निकटवर्ती पड़ोसी विश्लेषण की विचारधारा अधिवासों के स्थानिक वितरण, को परिकलित करने का प्रयास करती है, जो दो निकटवर्ती अधिवासों के मध्य एक सीधी रेखीय दूरी के माप पर निर्भर करती है। यह माप वास्तविक दूरी (Actual Distance) होती है, जिसे कहते हैं। जब अधिवास यादृच्छिक रूप में वितरित होते हैं तो इसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$R = \frac{r^0}{r^e}$$

यहाँ R = निकटतम पड़ोसी सांख्यिकी

R = दूरी

r^0 = औसत अवलोकित दूरी

r^e = औसत सम्भावित दूरी

$$r^0 = \frac{\sum d}{N}$$

यहाँ d – एक अधिवास से निकटतम अधिवास के मध्य की दूरी (दिशा के ज्ञान के बिना)

N = अधिवासों की कुल संख्या

A = कुल क्षेत्रफल

$$A = \frac{1}{\sqrt{2\sqrt{\frac{N}{A}}}}$$

इस प्रकार r^0 सम्भावित दूरी को व्यक्त करती है जो निकलता है। यहाँ अधिवासों के बिन्दुओं के घनत्व का वर्गमूल से R मापनी प्राप्त होगी जो अधिवासों के स्थानिक वितरण को स्पष्ट करेगी। यह R मापनी सदैव 0 से 2.1491 के मध्य प्राप्त होता है जो अधिवासों के स्थानिक वितरण प्रारूप में झुकाव की प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इस प्रारूप को विभिन्न अनियत मानों में अधिवासों के स्थानिक वितरण की प्रकृति को समझने के लिए निम्न वर्गों में रखा जा सकता है, जो विभिन्न अवलोकनों से प्राप्त सूचकांक मापनी (R) से प्राप्त होता है—

क्र.सं.	'R' का मान	स्थानिक वितरण की प्रकृति
1.	0—0.09	पूर्ण संकेन्द्रण (Absolute Concentration)
2.	0.1—0.50	उच्च संकेन्द्रण (High Concentration)
3.	0.51—0.99	पूँजित प्रतिरूप (Clustered Pattern)
4.	1.00—1.19	यादृच्छिक प्रतिरूप (Random Pattern)
5.	1.20—1.49	समरूपीय प्रारूप (Uniform Pattern)
6.	1.50—2.14	प्रकीर्ण प्रतिरूप (Dispersed Pattern)
7.	2.1491	पूर्ण षट्कोण प्रतिरूप (Perfect Hexagon Pattern)
8.	2.1491 < (अधिकतम 3.00)	उच्च प्रकीर्ण (Highly Dispersed) ®

न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Principle of Least Effort)

अनेक प्रवसन शोधों में जनसंख्या आकार एवं दूरी सम्बन्ध निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। सन् 1940 में जिफ द्वारा प्रस्तुत 'न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त' की व्याख्या में एक समाज व्यवस्था में वस्तुओं, सूचनाओं तथा लोगों के परिसंचरण को अंकित किया गया। इसमें विभिन्न समुदायों का पारस्परिक संचरण इस तरह होता है, जिससे सम्पूर्ण व्यवस्था का कुल कार्य न्यूनतम हो सके। इस आधार पर दो विभिन्न समुदायों के बीच में प्रवास की मात्रा निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की जा सकती है—

$$\frac{J_1 J_2}{d} = \text{दो समुदायों के मध्य संचरण की मात्रा,}$$

अ = अचल समानुपाती,

J_1 = प्रथम समुदाय की जनसंख्या,

J_2 = द्वितीय समुदाय की जनसंख्या, तथा

d = दो समुदायों के मध्य की दूरी।

इस प्रकार जिफ महोदय ने दूरी व प्रवास में विपरीत सहसम्बन्ध स्पष्ट किया है। उनके अनुसार दो नगरों के मध्य प्रवास की मात्रा उनके मध्य की दूरी का प्रतिफल होती है। दूरी जितनी अधिक होगी, उसके रास्ते की कठिनाइयों को पार करने के लिए उतना ही अधिक प्रयास करना होगा। इस प्रकार उतनी ही प्रयास की मात्रा कम होगी।

अन्तरालयी अवसर मॉडल (Intervening Opportunity Model)

अन्तरालयी अवसर मॉडल को सन् 1940 में एस. स्टोफर ने प्रस्तुत किया। उनके अनुसार संचरण के निर्धारण में रेखीय दूरी का स्थानिक (क्षेत्रीय) प्रकृति की अपेक्षा कम महत्त्व होता है। अतः ज्यामितीय दूरी की जगह सामाजिक-आर्थिक दूरी को मद्देनजर रखना चाहिए। इस प्रकार वास्तविक दूरी का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना अन्तरालयी सुविधाओं का होता है। स्टोफर महोदय की संकल्पना यह थी कि एक दी हुई दूरी में प्रवास करने वाले लोगों की मात्रा उस दूरी पर उपलब्ध अवसरों की समानुपाती तथा विद्यमान अन्तरालयी अवसरों की परस्पर विपरीत समानुपाती होती है। अन्तरालयी अवसरों का आशय दो स्थानों के मध्य स्थित बिन्दुओं पर उपलब्ध अवसर (Opportunities) से है। इस मॉडल को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

$$Y = k \frac{\Delta X}{X}$$

यहाँ Y = एक स्थान से एक केन्द्रीय क्षेत्र में प्रवासियों की मात्रा,

ΔX = उस क्षेत्र में विद्यमान अवसरों की मात्रा,

X = उस क्षेत्र (Zone) से उत्पत्ति बिन्दु से कटिबन्ध के अन्तरालयी क्षेत्र में उपलब्ध अवसर, तथा

K = अचल समानुपाती।

इस प्रकार वास्तविक अवसरों में रोजगार के अवसर, वातावरण, आवास आदि को सम्मिलित किया जाता है, जिनके कारण प्रवासियों के आकर्षण में वृद्धि होती है।

लॉश का सिद्धान्त (Theory of Losch)

लॉश का पूर्व में प्रस्तुत सिद्धान्त अधिवासों एवं जनसंख्या के वितरण के बारे में केन्द्र स्थल सिद्धान्त था तथा यह उद्योगों की अवस्थिति के बारे में दिया गया है। लॉश के सिद्धान्त का प्रमुख आधार आर्थिक इकाई की स्थापना (Economics of Location) था। यद्यपि प्रो. वेबर ने अपने सिद्धान्त में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के सन्दर्भ में उल्लेख किया है, परन्तु किसी भी व्यापारिक केन्द्र की स्थापना के सन्दर्भ में अपने विचार लॉश ने व्यक्त किये थे।

प्रो. लॉश (Losch) उन परिस्थितियों में इस विचारधारा में पड़े जबकि संसार के कई देशों में आर्थिक उथल-पुथल हो रही थी। इन परिस्थितियों में इन्होंने न केवल औद्योगिक इकाई की स्थापना वरन् उसका क्षेत्रीय विकास पर भी अध्ययन किया। लॉश ने अपने सिद्धान्त में जनसंख्या विकास (Demographic Development) एवं आर्थिक चक्र (Economic Cycles) के सहसम्बन्ध का अध्ययन किया है।

जनसंख्या प्रवासन से सम्बन्धित सिद्धान्त (Theories Related to Migration of Population)

रेवेन्स्टीन का प्रवास सिद्धान्त (Ravenstein's Laws of Migration)

प्रवास के सम्बन्ध में सर्वप्रथम रेवेन्स्टीन ने सन् 1885 में यह नियम प्रतिपादित किया जो इस प्रकार है—

1. स्थानान्तरण (प्रवास) और दूरी—अधिकांश प्रवासी छोटी दूरी तक प्रवास (संचरण) करते हैं। फलस्वरूप जनसंख्या में स्थानीय परिवर्तन होता है, जिससे प्रवास प्रवाह का जन्म होता है, जिसकी दिशा विस्तृत व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों की ओर होती है।
2. पदानुक्रम प्रवास—तीव्रता से वृद्धि करते हुए नगरों में उनके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में जो रिक्तियाँ विद्यमान होती हैं, उन्हें पूर्ण करने के लिए सुदूर क्षेत्रों से प्रवासी आते हैं। यह क्रिया नगरीय प्रभाव के दूरस्थ क्षेत्रों में पहुँचने तक सक्रिय रहती है।

3. धारा एवं प्रतिधारा—प्रत्येक प्रवास की मुख्य धारा क्षतिपूर्ति के लिए प्रतिधारा को उत्पन्न करती है।
4. ग्राम—नगर विभेदन—ग्रामीण लोगों की अपेक्षा नगरीय लोगों में प्रवास की भावना भिन्न होती है।
5. स्त्रियों की अधिकता—न्यूनतम दूरियों के प्रवास में स्त्रियों का बाहुल्य होता है।
6. तकनीकी विकास एवं प्रवास—तकनीकी विकास के साथ प्रवास की मात्रा में वृद्धि होती है।
7. प्रवास के प्रेरक—प्रवास की मात्रा को निर्धारित करने वाले घटकों में आर्थिक उद्देश्य भी प्राथमिक होती है।

रैवेन्स्टीन के अधिकांश सिद्धान्तों को प्रापर (1969) ने अपने मलेशिया तथा अन्य देशों के प्रवास के अध्ययन में मान्य पाया है।

संक्रियात्मक खेल प्रतिरूप (Operational Game Model)

संक्रियात्मक खेल प्रतिरूपों का निर्माण मानव भूगोल सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। कोल तथा किंग ने रेलवे निर्माण खेल प्रतिरूप का प्रयोग करते हुए किसी भौगोलिक क्षेत्र में रेलवे निर्माण की लागत का आकलन किया है।

सन् 1950 के दशक के उपरान्त भूगोल में मॉडल निर्माण में तीव्रता आयी है, जिसके तहत कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है। आर्थिक भूगोल, परिवहन भूगोल तथा नगरीय भूगोल के क्षेत्र में अवस्थिति विश्लेषण मॉडलों का प्रयोग किया जा रहा है। इनमें वॉन थ्यूनेन (Von Thunen, 1826), क्रिस्टालर (Christaller, 1933), लॉश (स्वेबी, 1954), वेबर (Weber, 1909) आदि का प्रयास सराहनीय रहा है। एडवर्ड एल. उलमेन (Ullman)' ने स्थानिक अन्योन्य-क्रिया (Spatial Interaction) के अन्तर्गत पत्तन-पश्चभूमि (Port-hinterland) सम्बन्धों, रेलमार्ग जालों (Railway Network) एवं वस्तु-प्रवाह (Commodity Flow) का अध्ययन गुरुत्व मॉडल के आधार पर किया है। इसे प्रवाह सिद्धान्त (Flow Theory) भी कहते हैं। उन्होंने अपने मॉडल में तीन आधार-पूरकता, स्थानान्तरणशीलता एवं अन्तरवर्ती अवसर को माना था। उलमेन का 1957 में प्रतिपादित स्थानिक अन्तर्क्रिया एवं क्षेत्रीय आर्थिक संरचना का अध्ययन करने के लिए वस्तु प्रवाह सम्बन्धी अध्ययन संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थव्यवस्था पर आधारित था। भूगोल में स्थानिक समस्याओं के लिए गैरीसन (Garrison) तथा इजार्ड (Isard) ने रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming) तथा इष्टतम मॉडलों (Optimizing Models) का प्रयोग किया है।

11.5. मानव भूगोल में मॉडल (Models in Human Geography)

मॉडल निर्माण की आवश्यकता को पुष्ट करते हुए पीटर हैगेट (P. Haggett)' ने इस सम्बन्ध में निम्नांकित तीन तर्क प्रस्तुत किये हैं—

1. मॉडल के सिद्धान्त, नियम व समीकरण इस प्रकार के होते हैं, जो हमारे द्वारा दृष्टिगत एवं सविचारित विश्व (Universe) के बारे में हमारे विश्वासों का कथन करते हैं।
2. मॉडल निर्माण करना मितव्ययी है, क्योंकि इसके द्वारा सामान्यीकृत सूचना को बहुत संक्षिप्त संपीडित (Compressed) रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।
3. मॉडल निर्माण करना उद्दीप्त (Stimulate) करने वाला होता है।

कौशिक महोदय ने बताया है कि मॉडल के द्वारा वास्तविकता (Reality) के कुछ निर्धारित लक्षणों एवं गुणों (Properties) का आदर्श निरूपण होता है। इनसे सम्पूर्ण सत्य का तो बोध नहीं होता लेकिन सत्य के कुछ अंश को समझने में सहायता अवश्य मिलती है।

हैगेट ने मानव भूगोल के अध्ययन के लिए, अवस्थितिक संरचना (Locational Structure) के मॉडलों के पाँच प्रकरण वर्णित किये किये हैं —

1. **संचालन (Movement)** — उनके अनुसार प्रदेशों या क्षेत्रों में परिवहन (Transport), यातायात (Traffic), अभिगमन (Commuting) की दूरियाँ तथा विसरण (Diffusion) आदि के रूप में संचालन

होता है।

2. मार्ग जाल (Network)।
3. मार्ग संगम केन्द्र (Nodes), इसमें मानवीय अधिवासों के प्रतिरूपों की आकृतिकी, जनसमूह आदि आते हैं।
4. पदानुक्रम (Hierarchies)।
5. भू-सतह (Surface) के मॉडल।

कम्प्यूटर मानचित्र मॉडल (Computerized Map Model)

वर्तमान समय में भूगोल में कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों का प्रयोग बढ़ रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा आदि देशों में कम्प्यूटर की सहायता से मानचित्र मॉडलों का निर्माण किया जा रहा है। रूस में मॉस्को कम्प्यूटर केन्द्र में वायु फोटो चित्रों से मानचित्रों का निर्माण किया जा रहा है। कम्प्यूटर मानचित्र मॉडलों के निर्माण में जर्मनी में स्टूटगार्ट का कम्प्यूटर केन्द्र, संयुक्त राज्य में हारवर्ड का कम्प्यूटर ग्राफिक्स केन्द्र, कनाडा में मॉन्ट्रियल का कम्प्यूटर केन्द्र आदि प्रमुख हैं।

भारत में भी कम्प्यूटर मॉडलों का निर्माण किया जा रहा है। इनमें सुदूर संवेदन तकनीकी से प्राप्त आँकड़ों का भौगोलिक सूचना तंत्र के अन्तर्गत विश्लेषण करके भी मानचित्र मॉडल तैयार किये जा रहे हैं। इसे अंकीय मानचित्रण (Digit Mapping) कहते हैं।

स्थानिक विवरण सम्बन्धी मॉण्टे कार्लो मॉडल (Monte Carlo Model of Spatial Diffusion)

मॉण्टे कार्लो मॉडल' द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक तथ्यों के स्थानिक विसरण का विश्लेषण किया जा सकता है, इसे 'मॉण्टे कार्लो अनुकार प्रतिरूप' (Monte Carlo Simulation Model) कहते हैं। सन् 1953 में स्वीडिश भूगोलवेत्ता हैगरस्ट्रेण्ड ने नवाचार एवं विसरण (Innovation and Diffusion) का मूल्यांकन किया तथा एक लघु शोध-प्रबन्ध लिखा जिसका एलेन प्रेड ने सन् 1967 में अंग्रेजी में Innovation Diffusion as a Spatial Process नाम से अनुवाद किया। हैगरस्ट्रेण्ड ने इस प्रतिरूप में प्रधानतः यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि किसी विचार के विसरण को किस विधि के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने सिमुलेशन विधि का प्रयोग किया, जिसके द्वारा स्वीडन में कृषि एवं पशुचारण के क्षेत्र में विकास के लिए सरकार द्वारा जारी वित्त राशि सहायताओं की स्वीकृति के विसरण तथा पशुओं में यक्ष्मा रोग प्रसरण (Epidemic Diffusion) आदि का अध्ययन किया था। यह मॉडल कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित था। इन मान्यताओं का विवेचन करने से पूर्व स्थानिक विसरण सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है।

स्थानिक विसरण (Spatial Diffusion)

किसी नवीन प्रविधि, आविष्कार, नवीन प्रक्रिया, सांस्कृतिक प्रसार, विचारों का प्रसार आदि के एक केन्द्र से अन्यत्र क्षेत्रों में होने वाले प्रसार को विसरण (Diffusion) कहते हैं। यह विसरण प्राकृतिक वातावरण, लोगों के ज्ञान के स्तर, परिवहन तथा संचार के साधनों से प्रभावित होता है। नवीन विचारों के विसरण के बारे में मॉरिल (1970) ने बताया कि नवीन विचारों का प्रसरण स्थान एवं समय की सहभागी प्रक्रिया है। हैगरस्ट्रेण्ड ने दक्षिणी स्वीडन से इस प्रक्रिया का अध्ययन करके बताया कि, "The Spread of information occurs via the neighbourhood effect] and the likelihood of one adopter generating another declines with distance in a form calculated from migration and telephone interaction over space."

भूगोल में विसरण (Diffusion) का अध्ययन रेटजेल द्वारा प्रकाशित Anthropogeographie के द्वितीय खण्ड से माना जाता है। इसके बाद संस्कृति के प्रसार पर सेम्पुल का अध्ययन महत्वपूर्ण रहा। लेकिन स्थानिक विसरण की प्रक्रिया को गणितीय मॉडलों द्वारा 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में दर्शाया जाने लगा, जिसकी शुरुआत सन् 1953 में हैगरस्ट्रेण्ड द्वारा की गई तथा सन् 1967 में Spatial Diffusion शब्द भूगोलवेत्ताओं के सामने विश्वस्तर पर प्रचारित हुआ।

भौगोलिक दृष्टि से विसरण दो प्रकार के होते हैं—

1. **विस्तारित विसरण (Expansion Diffusion)**— इसमें कोई सूचना या वस्तु अपने मूल स्थान में रहते हुए दूसरे क्षेत्रों में प्रसारित होता है।
2. **पुनः अवस्थित विसरण (Relocation Diffusion)**— इसमें प्रसारित विचार या सूचनाएँ अपने मूल स्थान को छोड़कर नवीन स्थानों में पहुँच जाते हैं।

समयावधि के अनुसार विसरण संक्रामक या तीव्रगामी तथा प्रपाती होता है। संक्रामक विसरण में नवीन विचार प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं। जैसे छूत की बीमारी का विसरण परस्पर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में होता है। प्रपाती विसरण में विचारों का प्रसार निर्धारित क्रम में होता है। हैगरस्ट्रेण्ड ने नवोन्मेष की प्रक्रिया का प्रसार निम्नांकित 6 कारकों पर निर्भर बताया है।

1. भौगोलिक परिस्थितियाँ जिसमें धरातल समतल हो,
2. प्रसार की समयावधि एक निश्चित क्रम वाली होनी चाहिए,
3. प्रसार का साधन,
4. उद्भव के स्थल,
5. प्रसार की पहुँच का निश्चित स्थान, तथा
6. प्रसार का मार्ग।

स्थानिक विसरण पर संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त हैगरस्ट्रेण्ड ने अपने मॉडल के लिए निम्नांकित मान्यताएँ एवं नियम बताये हैं—

1. प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र समरूप मैदानी भाग हो जो एक समान कोष्ठों द्वारा विभाजित हो और सभी कोष्ठों में जनसंख्या का समान वितरण हो। ये कोष्ठ वर्गाकार होने चाहिए।
2. क्षेत्र की परिवहन प्रणाली सुव्यवस्थित एवं आदर्श हो।
3. क्षेत्र में प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक बाधाएँ न हों।
4. विचारों का प्रसार निश्चित समयावधि में हो।
5. आरम्भ में एक व्यक्ति के द्वारा ही दो कोष्ठों से सम्पर्क होना चाहिए।
6. किसी नवीन विचार को प्रसार के उपरान्त अपना लिया जाता है।
7. विभिन्न लोगों के परस्पर मिलने एवं वार्तालाप से विचारों का प्रसार होता है।
8. नवीन विचार का प्रसार जानकारी देने वाले एवं प्राप्त करने वाले व्यक्ति के मध्य की दूरी से भी प्रभावित होता है।

इस प्रकार हैगरस्ट्रेण्ड ने स्पष्ट किया कि विचारों का प्रसार सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के उपरान्त उक्त क्षेत्र में एक ऐसे प्रतिरूप का निर्माण होता है जो इस तथ्य को निरूपित करता है कि आरम्भिक अवस्था में विसरण केवल छोटे क्षेत्रों तक ही सीमित था। धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों में विसरण होने से इसका प्रभाव फैलता है।

हैगरस्ट्रेण्ड के इस मॉडल का भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग प्रो. आर.पी. मिश्रा ने किया है। इन्होंने इस मॉडल के आधार पर मैसूर जनपद को 111 वर्गाकार कोष्ठों में विभक्त करके सन् 1895 से 1965 तक के 70 वर्षों की अवधि को 7 समान समयावधियों में विभाजित करके वहाँ कृषि सहकारी समितियों के विसरण की विवेचना की है।

11.6. भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति (Quantitative Revolution in Geography)

भूगोल में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अनुभवात्मक (Empirical) अध्ययनों के स्थान पर मात्रात्मक (परिमाणात्मक) अध्ययनों पर अधिक बल दिया जाने लगा, जिसे भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति कहते हैं। इस प्रकार के अध्ययनों में उच्चस्तर की गणित तथा सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करके मॉडल बनाये गये जो प्रादेशिक

भौगोलिक अध्ययन व सामान्य भूगोल के अध्ययन में उपयोगी सिद्ध हुए। मात्रात्मक क्रांति के समर्थक भूगोलवेत्ता मानते हैं कि गणितीय सूत्रों के द्वारा हम इस विषय को और अधिक तर्कसंगत, विशुद्ध तथा क्रमबद्ध (Systematic) स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। इन गणितीय सूत्रों के द्वारा विभिन्न भौगोलिक सिद्धान्तों की जाँच करके उनमें यथासम्भव परिवर्तन किया जा सकता है जिससे भूगोल की वर्णात्मक भाषा पर गणितीय प्रभाव पड़ा।

मात्रात्मक क्रांति का दार्शनिक आधार प्रत्यक्षवाद है। भौगोलिक व्यवस्था को समझने के लिए सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों का प्रयोग मात्रात्मक क्रांति का मुख्य बिन्दु था। इस दिशा में प्रथम प्रयास बर्टन का रहा है। उन्होंने सन् 1963 में जर्नल ऑफ कनेडियन ज्योग्राफर के अंक 7 में एक शोध-पत्र 'The Quantitative Revolution and Theoretical Geography' नाम से प्रकाशित किया। ऐसी सम्भावना सन् 1958 में एकरमैन ने भी बतायी थी कि आने वाले समय में भौगोलिक विश्लेषणों में व्याख्यात्मक मॉडलों, प्रत्यागमन (Regression), सहसम्बन्ध (Correlation), परिवर्तन (Variance) आदि का प्रयोग बढ़ेगा। इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का प्रथम प्रयास तो सन् 1940 के दशक में किया जा चुका था जिसको पृष्ठभूमि में वॉन थ्यूनेन (1826), मार्क जेफरसन (1931), अल्फ्रेड वेबर (1909), वाल्टर क्रिस्टलर (1933) के विचार महत्वपूर्ण रहे हैं लेकिन सन् 1950 के दशक में सेफर तथा एकरमैन के प्रयासों को विशेष मान्यता मिली। हार्टशोन ने भी सन् 1959 में प्रकाशित 'Perspective on Nature of Geography' में भूगोल में गणितीय विधियों के प्रयोग को स्वीकार किया था। भूगोल में मात्रात्मक क्रांति के सूत्रपात में वॉन न्यायमैन तथा मार्गेनस्टर्न को सन् 1944 में प्रकाशित पुस्तक "Theory of Games and Economic Behaviour" नोबर्ट बाइनर की सन् 1949 में प्रकाशित पुस्तक "Cybernetics" जी.के. जिफ की सन् 1949 में प्रकाशित पुस्तक 'Human Behaviour and the Principle of Least Effort' प्रमुख रही हैं।

मात्रात्मक भूगोल का आरम्भ सन् 1960 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका की विस्कॉसिन, आयोवा, शिकागो, वाशिंगटन विश्वविद्यालयों से हुआ तथा शीघ्र ही ब्रिटेन, स्वीडन लुण्ड विश्वविद्यालय, फ्रांस व अन्य यूरोपियन देशों के विश्वविद्यालयों में फैल गया। ब्रिटेन में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पीटर हैगेट (Locational Analysis in Human Geography, 1965; Geography: Modern Synthesis, 1975) तथा रिचार्ड चोर्ले (Models in Geography, 1967; Integrated Models in Geography, 1969; Socio Economics Models in Geography, 1969 सभी पी. हैगेट के साथ) तथा डेविड हार्वे नामक भूगोलवेत्ता ने स्थानीय विश्लेषणों (Locations Analysis) के लिए गणितीय विधियों का पूरा उपयोग किया। इसी प्रकार वाशिंगटन विश्वविद्यालय (USA) के विलियम गेरीसन बी. जे.एल. बेरी (Computer Graphics and Environmental Planning, 1983) मार्बल, न्यास्ट्रन, मोरिल, नोफॉन (Kniffon) तथा आयोवा विश्वविद्यालय से मेककार्टी तथा किंग (L.C.King) आदि प्रमुख गणितीय भूगोलवेत्ता हैं। इनके अतिरिक्त टी. हैगरस्टैण्ड तथा एलन प्रेड ने भी गणितीय विधियों का प्रयोग किया है। मात्रात्मक क्रांति के दौरान विलियम बुंगी (Theoretical Geography) ने भूगोल को भविष्यसूचक प्रतिरूपों को खोज के रूप में परिभाषित किया है।

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त सन् 1950 के दशक में भूगोल में गणितीय विधियों के प्रयोग को एक आवश्यकता बना दिया। भू-आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान तथा जीव भूगोल आदि प्राकृतिक भूगोल की शाखाओं में भी मात्रात्मक विधियों के प्रयोग को स्वीकार कर लिया गया। मानव भूगोल में सम्भववादी चिन्तन से प्रेरित होने के कारण इनके प्रयोग में थोड़ी कठिनाई आयी लेकिन बाद में इस पर सहमति बन गई थी। स्पेट ने सन् 1960 में प्रकाशित पुस्तक 'Quantity and Quality in Geography' में लिखा था कि प्रत्येक युवा भूगोलवेत्ता के लिए गणितीय विधियों का ज्ञान आवश्यक है। बर्टन ने भौगोलिक अध्ययन में सैद्धान्तिक अध्ययन की अनुशंसा करते हुए लिखा था कि, वैज्ञानिक सिद्धान्त वह छलनी है जिसके माध्यम से विद्यार्थी असंख्य सूचनाओं को अलग-अलग वर्गों में रख सकता है। इसके बिना सूचनाएँ निरर्थक अम्बार की तरह हैं। सिद्धान्त हमें वह साधन प्रदान करता है जिसकी सहायता से हम असामान्य तथा अनहोनी घटनाओं को पहचान कर सकते हैं। संक्षेप में सिद्धान्तों के अभाव में कोई अपवाद नहीं होता, प्रत्येक वस्तु अनूठी इकाई होती है। यही कारण है कि भूगोल के वैज्ञानिक अध्ययन में सिद्धान्तों का प्रतिपादन महत्वपूर्ण है। भौगोलिक अध्ययनों में मात्रात्मक क्रांति के बाद उपयोग में ली गई गणितीय विधियाँ अनेक रूपों में उपयोगी सिद्ध हुईं।

मात्रात्मक तकनीक आनुभाविक अवलोकन की दृढ़ता से आधारित तथा तुरन्त सत्यापनीय है। सांख्यिकीय विधियाँ अनेक प्रेक्षण आँकड़ों व तथ्यों के कारकों के सीमित संख्या में घटाने में सहायक होती है। इस तकनीक

द्वारा आँकड़ों के अनुमान, अन्तर्वेशन (Interpolation) व अनुरूपण (Simulation) में सहायता मिलती है। ये विश्लेषण पूर्वानुमान में भी सहायक हैं। इनसे भौगोलिक व्यवस्था का वर्णन एवं विश्लेषण करने व सरल बनाने में सहायता मिलती है। उद्योगों के अवस्थिति सिद्धान्त, कृषि भूमि उपयोग एवं भू-आकृतियों के विकास के अवस्थाओं को समझने में मात्रात्मक तकनीकी सहायक है। गणितीय विधियों के प्रयोग से संक्षिप्त भाषा एवं स्पष्टता के साथ विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। भौगोलिक अध्ययनों में प्रयुक्त मॉडल स्पष्ट एवं पक्षपात रहित होते हैं तथा सम्बन्धित तथ्यों की प्रवृत्ति का भी स्पष्ट पता लग जाता है। जैसे अपरदन चक्र का मॉडल, जनांकिकीय संक्रमण मॉडल, विश्व के ताप कटिबन्धीय व्यवस्था एवं पवनों का विवरण आदि बिना अतिरिक्त विवरण के देखने मात्र से स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक तकनीकी के समावेश ने अनेक विश्लेषण एवं भविष्यवाणी आसान बनाई है। एकरमेन का मानना था कि भौगोलिक अध्ययन में वास्तव में सिद्धान्त आधारित शोधकार्य होने चाहिए।

भौगोलिक शोधकार्य में साधारणीकरण को बढ़ावा देना चाहिए। शोधकार्य द्वारा ही भूगोल के विस्तृत क्षेत्र को परस्पर संयोजित कर समझा जा सकता है तथा शोधकार्यों में वास्तविक एवं सूक्ष्मदृष्टि का गुणा गणितीय विधियों के समावेश से ही सम्भव है। इस सन्दर्भ में एकरमेन ने कहा था कि यथार्थपरक अध्ययन मात्राकरण पर निर्भर है। एकरमेन के इस लेख द्वारा भूगोल के तत्कालीन दर्शन में परिवर्तन आया तथा मात्राकरण को बढ़ावा मिला।

प्रो. आर.डी. दीक्षित के अनुसार, तत्कालीन विचारधारा के अनुसार भौगोलिक चिन्तन में वांछित परिवर्तनों के लिए आवश्यक था कि भूगोल में मात्रात्मक वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति अर्थात् गणितीय और सांख्यिकीय विधियों पर निर्भरता बढ़ाई जाए। इसी कारण सन् 1950 के दशक में भौगोलिक चिन्तन में आये इस व्यापक व क्रांतिकारी परिवर्तन को मात्रात्मक क्रांति कहा गया। भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का बीजारोपण तो वास्तव में सन् 1940 के दशक में ही हो गया था लेकिन सन् 1950 के दशक में शेफर, एकरमेन व हैगेट के प्रयासों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मात्रात्मक क्रांति का चरमोत्कर्ष काल सन् 1957-1960 के मध्य का माना जाता है। सन् 1959 में रिचार्ड हार्टशोर्न ने भी अपनी पुस्तक 'परस्पेक्टिव ऑन नेचर ऑफ ज्योग्राफी' में सांख्यिकीय विधियों की उपयोगिता को स्वीकार किया है।

पीटर हैगेट, रिचार्ड चोर्ले तथा डेविड हार्वे से पूर्व भी कुछ भूगोलवेत्ता मात्रात्मक विधि का प्रयोग करके मॉडल तथा सिद्धान्त प्रस्तुत कर चुके हैं, इनमें वॉन थ्यूनेन (John Henric Von Thunen, 1826) का भूमि उपयोग अवस्थिति सिद्धान्त अल्फ्रेड वेबर (Alfred Weber, 1909) का औद्योगिक स्थानीयकरण सिद्धान्त तथा वाल्टर क्रिस्टालर (W. Christaller, 1933) का नगरों को केन्द्रीय स्थिति सम्बन्धी केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory) प्रमुख हैं जो प्रत्यक्ष रूप से गणितीय सूत्रों पर आधारित थे। इनके उपरान्त सन् 1954 में अमेरिकी भूगोलवेत्ता वीवर (J.C. Weaver) ने फसल-संयोजन प्रदेश (Crop&Combination Region) बनाने में मात्रात्मक विधियों का उपयोग किया।

सन् 1960 में स्पेट (Spate, O.H.K.) ने भी 'Quantity and Quality in Geography' नामक लेख में स्पष्ट किया था कि सांख्यिकीय विधियाँ भौगोलिक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण हैं तथा प्रत्येक युवा भूगोलवेत्ता को इनकी जानकारी होनी चाहिए।

मानव भूगोल के साथ-साथ शीघ्र ही भौतिक भूगोल में भी मात्रात्मक विधियों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। यद्यपि मानव भूगोल का अध्ययन सम्भववादी विचार से प्रेरित रहने के कारण इसमें मात्राकरण में कठिनाई आयी। भौगोलिक अध्ययन में सिद्धान्तों पर आधारित अध्ययन की अनुशंसा करते हुए बर्टन ने लिखा था कि "वैज्ञानिक सिद्धान्त एक ऐसी छलनी के समान है जिसमें से विद्यार्थी अनेक सूचनाओं को विभिन्न वर्गों में रख सकता है। इसके बिना ये सूचनायें एक बेकार ढेर की तरह हैं। सिद्धान्त हमें ऐसा साधन प्रदान करता है जिसकी सहायता से हम असामान्य और अनहोनी घटनाओं की पहचान कर सकते हैं। संक्षेप में, सिद्धान्तों के बिना कोई अपवाद नहीं होता, प्रत्येक वस्तु अनूठी इकाई होती है। इसीलिए वैज्ञानिक अध्ययन में सिद्धान्तों का प्रतिपादन इतना महत्त्वपूर्ण है।"

मात्रात्मक विधियों को अपनाने के कारण—

1. भूगोलवेत्ताओं का मानना है कि मात्रात्मक विधियों के उपयोग से भूगोल विषय को अधिक तर्कसंगत,

विशुद्ध (Accurate) तथा क्रमबद्ध रूप दिया जा सकता है।

2. वर्णात्मक भूगोल का स्थान भूगोल के विश्लेषणात्मक विधि ने ले लिया।
3. भौगोलिक जाँच में संक्षिप्तता के साथ सारगर्भित स्वरूप भी सम्मिलित हो गया।
4. गणितीय विधियों के समावेश से भूगोल के उद्देश्य एवं भावना में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।
5. भूगोल में गणितीय विधियों के आधार पर अध्ययन करने पर वैज्ञानिक विश्लेषण में सहायता मिलने लगी।
6. मात्रात्मक विधियों के समावेश से विस्तृत रूप में तथा परिवर्तन करके सार्थक कारकों में सम्मिलित किया गया।
7. इनके आधार पर विचारों का संरचनात्मक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप में विकास हुआ जिसकी जाँच सम्भव हुई।

इस प्रकार भूगोल में मात्रात्मक विधियों के समावेश से निम्न लाभ सामने आये—

1. गणितीय विधियों के आधार पर भौगोलिक सूचनाएँ एकत्रित करने, संश्लेषण तथा विश्लेषण करने में सहायता मिलती है।
2. मात्रात्मक विधियों से मॉडल तथा सिद्धान्तों का निर्माण आसानी से किया जा सकता है।
3. भूगोल के प्रादेशिक अध्ययन के दौरान प्रदेशों के सीमांकन (Demarcation) में सहायता मिलती है।
4. इन विधियों के उपयोग द्वारा वास्तविक परिणाम प्राप्त करने के लिए बार—बार की पुनरावृत्ति से बचा जा सकता है।
5. भौगोलिक वितरण प्रतिरूप का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो गया है।
6. मात्रात्मक विधियों की सहायता से संसाधनों के सर्वेक्षण की प्रक्रिया सरल हो गई जिस कारण नियोजन कार्यों में भूगोल की उपयोगिता बढ़ी है।

भूगोल के विधितंत्र में मुख्य रूप से सन् 1940 से 1950 के दशक में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग से सम्बन्धित व्यापक परिवर्तन देखा गया जिसकी पृष्ठभूमि भूगोल के बदलते स्वरूप एवं अन्तरानुशासनिक विषय के रूप में विकास रहा जिसके तहत पारम्परिक रूप से भौगोलिक विश्लेषण करते आ रहे भूगोलवेत्ता अब गणितीय विधियों को महत्त्व देने लगे। इसी दौरान अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के कुछ प्रमुख भूगोलवेत्ता सांख्यिकी एवं गणित में विशेषज्ञता रखने वाले थे जिन्होंने अपने अध्ययन में मात्रात्मक विधियों को आधार बनाया। प्रारम्भ में मात्रात्मक विधियों का प्रयोग मानव भूगोल में किया गया। इनमें प्रतिचयन, मध्यिका, माध्य एवं बहुलक, मानक विचलन तथा चतुर्थक विचलन आदि का।

प्रयोग प्रमुख था। इसके बाद एकरमेन ने सहसम्बन्ध पर बल दिया। सन् 1970 के दशक में अधिवासों के वितरण, जलवायु विश्लेषण आदि में गणितीय विधियों का प्रयोग किया गया। सन् 1970 के उत्तरार्द्ध में भूगोलवेत्ता वायु फोटोचित्रों एवं सुदूर संवेदन से प्राप्त आँकड़ों व कम्प्यूटर का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति पर गहन अध्ययन करके प्रो. हीरालाल यादव ने बताया कि एक निश्चित पद्धति की खोज के फलस्वरूप विगत कुछ दशकों में भूगोल के उद्देश्य एवं क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। नव—विश्लेषणात्मक शोध तकनीकों एवं नूतन विषय—सामग्री द्वारा परम्परागत विचारधारा का संशोधन करने से अध्ययन पद्धति में नवीनता आई है तथा भौगोलिक ज्ञान क्रियात्मक एवं व्यावहारिकताजन्य आयाम से युक्त हुआ है। सम्प्रति भौगोलिक समस्याओं के समाधान में गणित एवं सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग तथा संगणकों (कम्प्यूटर) की सुविधा और भूगोल विज्ञान के प्रति सामान्य दृष्टिकोण में परिवर्तन से भूगोल तथा सामान्य विज्ञान में समन्वय का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस उपागमजन्य परिवर्तन के प्रयास को मात्रात्मक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति सन् 1950 के आस—पास प्रारम्भ हुई जो सन् 1957 से 1960 के मध्य अपने

चरम बिन्दु पर थी और अब वह समाप्त हो चुकी है। एकरमैन ने सन् 1958 में इस नवीन पद्धति पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि यद्यपि भूतकाल में भौगोलिक वितरणों के विश्लेषण में सरलतम सांख्यिकी का उपयोग किया जाता था, किन्तु आज विषय जटिलतम सांख्यिकी विधियाँ—एक पूर्ण तार्किक विकास की ओर उन्मुख है। विश्लेषणात्मक मॉडल के प्रयोग तथा समाश्रयण, सह—सम्बन्ध, प्रसरण एवं सह—प्रसरण विश्लेषण के भूगोल में अधिकाधिक प्रयोग की आशा की जाती है। इन विधितंत्रों को आवश्यकता एवं मूल्यों की दृष्टि से भूगोल अन्य समाज विज्ञानों से भिन्न नहीं है स्पेट (1960), यद्यपि मात्रात्मक विधि के प्रति कुछ सशंकित थे, तथापि मानते हैं कि “नये भूगोलज्ञ अनुभव करेंगे कि बिना सांख्यिकी—ज्ञान के वे समुचित रूप से सुसज्जित नहीं” तथा अन्त में असहाय हो यह भी जोड़ा कि ‘युवा—भूगोलज्ञ न होने से वे भारमुक्त हैं।’

एक बौद्धिक क्रान्ति उस समय समाप्त हो जाती है जब परम्परागत मान्य विचारों को, नई मान्यताओं को सम्मिलित करने के लिए दूर फेंक दिया जाता है या परिवर्तित कर दिया जाता है। एक बौद्धिक क्रान्ति उस समय भी समाप्त हो जाती है जब क्रान्तिकारी विचार स्वयं परम्परागत बौद्धिकता के अंग बन जाते हैं। एकरमैन, स्पेट या हार्टशोर्न जब कुछ के लिए सहमत हैं, तब हम परम्परागत बौद्धिकता की बात कर रहे हैं। अतः मेरा विचार है कि मात्रात्मक क्रान्ति जो कुछ समय तक रही, समाप्त हो चुकी है। अब किस दर से हमारे पाठ्यक्रमों में मात्रात्मक विधियों को स्थान मिल रहा है, इस पर ध्यान केन्द्रित करना है (बर्टन, 1963)।

यद्यपि यह क्रान्ति समाप्त हो चुकी है, इसके विभिन्न चरणों की परीक्षा करना लाभप्रद होगा, क्योंकि इससे मात्रात्मकता जैसे प्रश्न के लिए आधारभूमि प्रस्तुत होगी।

11.7. भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा

भूगोल सुदीर्घकाल से एक अनुयायी विज्ञान रहा है न कि अग्रणी। मुख्य विचारधाराओं का उद्भव अन्य क्षेत्रों में हुआ। वह हलचल जिसने भूगोल में क्रान्ति पैदा की, भौतिकविदों तथा गणितज्ञों द्वारा प्रारम्भ की गयी और जिसका सर्वप्रथम भौतिकशास्त्र, तदनन्तर जीवविज्ञानों में परिवर्तन हेतु विस्तार किया गया, आज यह अधिकांश समाज विज्ञानों—प्रमुखतः अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में समुचित रूप से प्रदर्शित होता है। प्रमुख पूर्ववर्ती विज्ञानों में, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भूगोल में इस क्रान्ति को लाने में विशेष योगदान रहा है, वॉन न्यूमान (एक गणितज्ञ) और मार्ग्रेस्टर्न (अर्थशास्त्री) अपने गेम तथा आर्थिक व्यवहार सिद्धान्त के लिए (1944), नार्वर्ट विनेर (1948) जिसका साइबरनेटिक्स शैक्षिक इतिहास सीमाओं का अतिक्रमण करने का सुझाव देता है और जिफ, जिसने सन् 1949 में मानव व्यवहार तथा न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को प्रकाशित किया मुख्य हैं। भौतिकविद् स्टीवर्ट का लेख ‘जनसंख्या वितरण तथा समानता’ से सम्बन्धित आनुभाषिक गणितीय नियम सन् 1947 में ही ‘ज्योग्राफिकल रिव्यू’ में छपा। स्टीवर्ट ‘समाज—भौतिकी’ के विकास का अगुआ है।

कुछ प्राकृतिक तथा समाज वैज्ञानिकों द्वारा सन् 1949 में प्रीस्टन सम्मेलन में किये गये संयुक्त विज्ञप्ति से ही कदाचित्त समाज विज्ञानों में गणित के प्रयोग का सूत्रपात हुआ। इसके तुरन्त बाद भूगोल में मात्रात्मकता का प्रभाव अनुभव किया गया। अनेक विद्वानों द्वारा मात्रात्मक प्रयोग के प्रति सुझावों से इसका प्रारम्भ हुआ। ऐसे प्रयास सन् 1939 के आस—पास भी किये गये थे, पर इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान क्रान्ति के सन्दर्भ में प्रथम प्रयास स्टाहलर द्वारा किया गया, जिन्होंने भूगोल में इसके प्रयोग को प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त लीस्टर, किंग, शोरले, ड्यूरी, मैकेय, उलमैन आदि मात्रात्मक विधियों के अग्रणी प्रयोगकर्ता हैं।

मानव तथा आर्थिक भूगोल में मात्रात्मक विधियों को आत्मसात करने में विशेष कठिनाई रही। सम्भववादी परम्परा के कारण यह आश्चर्यजनक नहीं। इस क्षेत्र में सन् 1950 के आस—पास नेल्सन के नगरों के ‘सेवा—निर्धारण विधि’ पर गैरिसन की टिप्पणी, भूगोल में सांख्यिकी विधियों के अल्प प्रयोग पर रेनॉल्ड तथा गैरिसन के विचारों के आदान—प्रदान, स्पेट—बेरी के ‘आर्थिक भूगोल’ में सम्पादकीय टिप्पणी में विचार, जिसमें स्पेट ने याद दिलाया कि ‘सांख्यिकी सर्वोत्तम होते हुए भी अर्द्धजीवन युक्त है, शोषार्द्ध समझ एवं तार्किक विश्लेषण है,’ जबकि बेरी ने इसके विपरीत मात्रापोषकों का पक्ष लेते हुए बताया है कि तथ्यों, सिद्धान्तों तथा विधि—तंत्रों के बीच स्पष्ट भेद हेतु यह विधि अपरिहार्य है, डेसी, जोबलर—मैकेय, राविंसन, लुकरमान तथा बेरी आदि के कार्य सम्मिलित हैं।

सन् 1956 के मात्रापोषकों ने विभिन्न व्यावसायिक पत्रिकाओं में अपने विचार सविस्तार से रखने प्रारम्भ कर दिये थे। सन् 1956 में 'रीजनल साइन्स परिषद्' की स्थापना से भूगोल में मात्रात्मकता को पुनः प्रोत्साहन मिला। पूर्ववर्ती क्रान्तिकारी अब तक भौगोलिक निर्माण के अंग बन चुके हैं तथा उनके कार्य हमारे विषय के स्वीकृत तथा एक उच्च स्तरीय अंग हैं।

भूगोल में मात्रात्मक विधियों का प्रयोग (Application of Quantitative Methods in Geography)

विगत शताब्दी में भूगोल में मात्रात्मक विधियों का उपयोग काफी बढ़ा है। यह उपयोग मुख्यतः निम्नलिखित दो रूपों में हुआ है—

1. आँकड़ों का संग्रह (**Collection of Data**)
2. आँकड़ों का प्रसंस्करण (**Processing of Data**)

उपर्युक्त प्रक्रियाओं का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जाता है—

1. वर्णनात्मक (**Descriptive**)
2. अनुमानित (**Inferential**)
3. क्षेत्रीय सांख्यिकी (**Spatial Statistics**)
4. बहुपदीय सांख्यिकी (**Multivariate Statistics**)

(1) वर्णनात्मक (Descriptive)— इस विधि का प्रयोग सन् 1940 से 1960 के दौरान किया गया जिसमें निम्नलिखित प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण माना गया—

- (क) आरेख एवं आरेखीय निरूपण
- (ख) केन्द्रीय पद्धति का अध्ययन
- (ग) जनसंख्या प्रक्षेपण
- (घ) माध्य विचलन

(2) अनुमानित (Inferential)— इस तकनीकी का प्रयोग विस्तृत क्षेत्रों में, जनसंख्या के प्रतिदर्श लेकर निष्कर्ष निकालने के लिए किया जाता है। इसमें सांख्यिकीय विधियों का चयन आँकड़ों के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टि से स्वतंत्र चरों को जाँच सहसम्बन्ध तकनीको द्वारा की जाती है।

(3) क्षेत्रीय या स्थानिक सांख्यिकी (Spatial Statistics)— इसमें विभिन्न विश्लेषणों एवं मॉडलों के आधार पर स्थानिक वितरण स्पष्ट किया जाता है। ये तकनीक निम्नलिखित हैं—

(1) प्रारूप या प्रतिरूप विश्लेषण — प्रारूप तीन प्रकार के होते हैं—प्रथम, नियमित प्रारूप, द्वितीय, आकस्मिक या यादृच्छिक प्रारूप तथा तृतीय पुजित प्रारूप। भूगोल में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण, चतुर्थक प्रतिचयन आदि के द्वारा अध्ययन करते हैं। सन् 1954 में निकटतम पड़ोसी विश्लेषण विधि का प्रयोग इवांस एवं क्लार्क ने अधिवास वितरण प्रारूप के लिए किया था। उत्क्रममाप विश्लेषण (Entropy Analysis) का प्रयोग मेडवेडकोव ने किया था। (1) प्रवाह विश्लेषण (Flow Analysis)—ऐसे विश्लेषणों के अन्तर्गत किसी वस्तु के घनत्व, चौड़ाई, आयतन तथा मूल्य को दर्शाया जाता है। इसमें गुरुत्व मॉडल (Gravity Model), तंत्र या जाल विश्लेषण (Network Analysis) तथा रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming) का प्रयोग करते हैं।

(i) पूर्वानुमानित एवं नियतन मॉडल (Predictive and Allocation Model)—ऐसे मॉडलों का प्रयोग जनसंख्या वितरण को प्रवृत्ति को देखने के लिए किया जाता है।

(4) बहुपदीय सांख्यिकी (**Multivariate Statistics**) वर्तमान में कोई भौगोलिक घटना एक कारक पर निर्भर न होकर विविध कारकों या चरों पर निर्भर करती है। ऐसे विश्लेषणों में बहुपदीय सांख्यिकी का प्रयोग करते हैं।

क्रान्ति के परिणाम (Consequences)

यह क्रान्ति इस दृष्टि से समाप्त हो गई है कि समय विशेष को क्रान्तिकारी विचारधाराएँ अब एक परम्परा बन चुकी है। स्पष्टतः यह एक प्रारम्भ मात्र है। एक नई पद्धति के निर्माण के अतिरिक्त इसका एक अन्य उद्देश्य भी है। यदि वह क्रान्ति मात्रात्मकता में स्वकीय विश्वास अथवा शक या फैशन से प्रोत्साहित हुआ होता तो अपनी ही गति से उसकी इतिश्री हो चुकी होती, किन्तु इस क्रान्ति का एक अलग ही उद्देश्य था। भूगोल को अधिक वैज्ञानिक बनाने और सिद्धान्तों को विकसित करने की सही आवश्यकता से ही प्रोत्साहित हुआ था। गुणात्मक, शाब्दिक व्याख्या अर्थात् इडियोग्राफिक (Ideographic) के प्रति असंतोष ही मात्रात्मक क्रान्ति के उद्भव का मूल रहा है। सैद्धान्तिक तथा मॉडल-निर्माणजन्य भूगोल का विकास ही कदाचित् मात्रात्मक क्रान्ति का प्रमुख प्रतिफल है।

‘सिर्फ वर्णन करना’ एक कला हो सकती है, तो भी ‘वर्णन’ वैज्ञानिक विधि का एक अनिवार्य अंग है। यथार्थ विश्व की जाँच करते समय हमारा प्रथम कार्य द्रष्टव्य का वर्णन और उन अवलोकनों को सुविधाजनक प्रयोग हेतु सार्थक वर्गों में विभक्त करना होता है, ज्यों ही भूगोलज्ञ का एक क्षेत्र का वर्णन प्रारम्भ होता है वह चयनात्मक हो जाता है और चयन की यही क्रिया ‘सार्थक क्या है?’ से सम्बद्ध चेतन या अचेतन में सिद्धान्त या परिकल्पना को प्रदर्शित करती है। वस्तुतः यह सार्थकता की माप किसी अन्तर्सम्बन्धजन्य सिद्धान्त द्वारा हो की जा सकती है जबकि सिद्धान्तों के विकास के लिए, विभिन्न कारकों, यथा-सांस्कृतिक स्वरूपों, मानव-क्रियाकलापों या प्राकृतिक कारकों की भू-वैन्यासिक व्यवस्था में एकरूपता का अवलोकन तथा वर्णन करना प्रथम सोपान है। सिद्धान्त ऐसे मापन प्रस्तुत करते हैं जिनसे असामान्य एवं विलक्षण घटनाओं को पहचाना जा सकता है। सिद्धान्तहीन विश्व में कोई भी चीज विलक्षण नहीं होती, हर चीज ही अनन्य (Unique) होती है। इसीलिए सिद्धान्त का महत्त्व है। सिद्धान्त को विकसित करने की आवश्यकता के साथ ही मात्रात्मक क्रान्ति का विकास हुआ जिसने सिद्धान्तों को विकसित तथा संशोधित करने की तकनीकी प्रदान की। यह निश्चित नहीं कि प्रारम्भिक मात्रापोषक सिद्धान्त विकसित करने के लिए अभिप्रेरित थे, किन्तु अब भूगोलज्ञों को यह स्पष्ट हो गया है कि मात्रात्मकता जटिल रूप से सिद्धान्त से आबद्ध है।

वैज्ञानिक विधियों के कठोर परिपालन-सिद्धान्तों के विकसित करने तथा प्रयुक्तियुक्त परीक्षण की आवश्यकता की पूर्ति हेतु गणित एक सर्वोत्तम उपलब्ध औजार है। अन्य औजार-भाषा, मानचित्र, प्रतीकात्मक तर्क भी उपयोगी तथा कुछ दृष्टान्तों में पर्याप्त होते हैं, किन्तु गणित की भाँति हमारी आवश्यकताओं की किसी से भी पूर्ति नहीं होती।

सिद्धान्तों का परिमाणन एवं सम्बन्धों के प्रदर्शनार्थ गणित के प्रयोग का दो आधारों पर समर्थन किया जा सकता है-प्रथम, यह अधिक दृढ़ होता है तथा द्वितीय, किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण, वह आत्मवंचना रहित या स्वयं को धोखे में रखने का उपयुक्त साधन है।

चेतावनी (Warning)

मात्रात्मक क्रान्ति एक दार्शनिक क्रान्ति से सम्बद्ध है। यदि हम अपने दर्शन को समायोजित नहीं कर सकते तो मात्रात्मक प्रक्रिया हमें सीधी एक अंधी गली में ले जा सकती है। साथ ही, मात्रात्मक मार्ग पर चलते हुए पूर्व-मूल्यांकित अधिकांश दार्शनिक विचारों को अक्षुण्ण रखा जा सकता है। यदि परम्परागत भौगोलिक विचारों के रचनात्मक पक्ष तथा मात्रात्मकता द्वारा प्रयुक्त दर्शन के निकट जाने का प्रयास कर सकें, तो आश्चर्यजनक रूप से पाया जाएगा कि भूगोल का दर्शन कितना विस्तृत तथा शक्तिशाली हो गया है। इससे विचारों के एक ऐसे नये संसार का द्वार खुलेगा जिसमें हमें सैद्धान्तिक तथा संश्लेषणात्मक रूप से विचार करने में कोई भय नहीं होगा, जिससे हम व्यक्ति तथा समूह से एक ही वाक्य में बात कर सकते हैं तथा जिससे हम प्रारूपों का सामान्यीकरण तथा क्षेत्रीय सम्बन्धों में विशिष्टीकरण एक ही सन्दर्भ वाक्य में प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार मात्रात्मकता में वैज्ञानिक विधियों के दर्शन ही निहित हैं। मात्रात्मकता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यही रहा कि इसने हमें तार्किक एवं सतत रूप से इस बात पर सोचने के लिए प्रेरित (मजबूर) किया कि कौन क्षेत्र अभी अछूते हैं। संक्षेप में, हम भूगोल में वैज्ञानिक विधियों की भूमिका में रुचि लेने लगे हैं।

पुनः विज्ञान हमें एक तेज औजार प्रदान करता है, किन्तु जैसा अधिकांश शिल्पी कहते हैं, तेज औजार ही गलत प्रयोग किए जाने पर सर्वाधिक क्षति पहुँचा सकते हैं। गणित तथा सांख्यिकी द्वारा अत्यन्त तेज औजार

ही प्रदान किए जाते हैं। गणित जहाँ हमें तर्क को दृढ़ करने और उसके सरलतम निर्माण का माध्यम प्रदान करता है, सांख्यिकी द्वारा आँकड़ों से सम्बन्धित विश्लेषण तथा परिकल्पना परीक्षण के औजार प्रदान किये जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि भूगोलविदों द्वारा इन औजारों का बहुधा दुरुपयोग हुआ तथा इन्हें गलत समझा गया है।

यदि हमें इन तीव्र औजारों को अपने अध्ययन में प्रयोग करते समय समुचित नियंत्रण करना है तो उन दार्शनिक तथा विधितंत्रीय मान्यताओं का, जिन पर उनके प्रयोग आधारित हैं, ज्ञान आवश्यक है। ये मान्यताएँ, निश्चित ही, स्पष्टतः वैज्ञानिक विधि के विश्लेषण द्वारा ही बनती हैं। किन्तु हमें यह निश्चित कर लेना होगा कि इस निश्चित वैज्ञानिक औजार से सम्बन्धित जो मान्यता स्वीकार करते हैं उन विस्तृत मान्यताओं से संघर्ष (द्वन्द्व) न करते हों और जो हम तर्कनापरक युक्ति (Inference) तथा अनुमान हेतु मानक को निश्चित करने में प्रयुक्त करते हैं। इस प्रकार जहाँ मात्रात्मक तकनीक और सामान्य तर्कतापरक युक्ति तथा अनुमान एक साथ आते हैं, उस बिन्दु पर एक पूर्ण विधि की समस्या पर दोहरा ध्यान देना होता है। इसीलिए मात्रात्मकता का महत्त्व है। अतः भौगोलिक अध्ययन में प्रत्येक स्तर पर मान्यताओं में पुनर्मेल करना आवश्यक होता है।

आलोचना (Criticism)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आचरण भूगोल एवं मानववादी दृष्टिकोण के विकास के कारण मात्रात्मक क्रांति की आलोचना होने लगी। भूगोल में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग की विभिन्न विद्वानों ने आलोचना की जिनका विवरण निम्नलिखित है—

1. भूगोल के सभी प्रकरणों की व्याख्या गणितीय विधियों द्वारा सम्भव नहीं थी। मानव भूगोल की मानव पर्यावरण सम्बन्धों की संकल्पना की व्याख्या गणितीय भाषा से नहीं हो सकती है।
2. मात्रात्मक क्रांति का मूल दर्शन प्रत्यक्षवाद पर आधारित है जो स्थानिक विज्ञान की क्रिया पद्धति के अनुसार चलता है। इस कारण विषय को रेखागणित तक सीमित कर दिया है।
3. मात्रात्मक तकनीक अवस्थिति विश्लेषण पर आधारित होने के कारण पूँजीवाद को बढ़ावा देती है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अनियमित शोषण किया जाता है। फलस्वरूप धनी एवं निर्धन के मध्य दरार बढ़ती जाती है। साथ ही उच्च तकनीकी से विकसित मशीनों के प्रचलन से बेरोजगारी बढ़ती है।
4. आनुभाविक आँकड़ों पर आधारित मॉडलों एवं सिद्धान्तों द्वारा अनेक मानकीय (Normative) प्रश्नों की व्याख्या सम्भव नहीं है। इनमें मनोभाव (Emotion), व्यवहार (Attitude), इच्छाएँ (Desires), आशाएँ, डर आदि प्रमुख हैं।
5. मात्रात्मक क्रांति का प्रमुख कमजोर पक्ष यह रहा कि इसके बाद गणित आधारित तकनीकों से विकसित मॉडलों के प्रयोग से मानव की निष्क्रियता में वृद्धि हुई है।
6. गणितीय तकनीकी पर आधारित अनुमान एवं भविष्यवाणी सदैव सत्य नहीं होती है।
7. भूगोलशास्त्री बिना किसी अनुभव के तथा आवश्यकता के मात्रात्मक विधि का उपयोग करने लगे।
8. जहाँ वर्णात्मक विधि का उपयोग अधिक उपयोगी था वहाँ भी इस विधि को अपनाया गया।
9. इसने अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की तरह सीमाओं में जकड़ दिया।
10. स्टाम्प (L.D. Stamp) तथा मिंशुल (Minshull, R.) के अनुसार, इन विधियों का अंधाधुंध उपयोग किया गया, जो अस्वीकार्य है। इनके अनुसार भूगोल की परम्परागत, वर्णनात्मक एवं मानचित्रण विधि अत्यन्त सशक्त विधि है। अतः हमें इन्हीं में सुधार करना चाहिए।

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की विभिन्न कमजोरियों के बाद भी इनको आधार मानकर विश्लेषण किये जाने लगे तथा आज भौगोलिक अध्ययनों एवं विश्लेषणों में गणितीय विधियों का प्रयोग एक आवश्यकता बन गया है। सन् 1960 के दशक में यह वाशिंगटन, विस्कान्सिन व आयोवा आदि अमेरिकी केन्द्रों तथा ब्रिटेन व स्वीडन सहित यूरोप में भी गणितीय विधियों का प्रयोग बढ़ा। स्वीडन के लुण्ड विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग सैद्धान्तिक भूगोल का केन्द्र बन गया। जहाँ अनेक देशों से विद्वान् शोध के लिए आने लगे। इसी अवधि में पीटर हैगेट, रिचार्ड चोर्ले व डेविड हार्वे आदि ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं ने एक साथ मॉडल विकसित किये। इन्होंने ही

कम्प्यूटर की आवश्यकता महसूस की थी। (Berry B.J.L., 1961 रु 45–52) यद्यपि सन् 1970 के दशक में हार्वे ने यह कह दिया था कि अब मात्रात्मक क्रांति ने अपनी यात्रा पूरी कर ली है तथा अब यह धीरे-धीरे हासमान हो रही है।

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की यद्यपि अनेक भूगोलवेत्ताओं ने आलोचना की है लेकिन वास्तव में भूगोल में वैज्ञानिक विश्लेषण मात्रात्मक विधियों के आधार पर ही सम्भव हुए हैं। सन् 1960 के बाद अधिकांश शोधकर्ताओं ने इन विधियों को अपनाया तथा इनका उपयोग सिद्धान्त एवं मॉडल बनाने में किया। प्रारम्भ में गणितीय विधियों का प्रयोग मानव भूगोल में किया। सिद्धान्तों एवं मॉडलों द्वारा मानव पर्यावरण सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या की गई लेकिन इसकी प्रतिक्रिया में मानव भूगोल में आचरण एवं मानवीय पद्धतियों को प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार भूगोल अन्य समाज विज्ञानों के साथ ही अनुमानों एवं भविष्यवाणियों का मिला-जुला प्रयोग आवश्यक माना गया।

भौतिक भूगोल में भी गणितीय विधियों के आधार पर अनेक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विभिन्न भौतिक प्रक्रियाओं को मॉडल निर्माण कर दर्शाया जाता है। वर्तमान में विवर्तनिक घटनाओं एवं जलवायु एवं मौसमी विश्लेषणों में गणितीय विधियों का सहारा लिया जाता है। वर्तमान में कम्प्यूटर आधारित विश्लेषणों में गणितीय विधियाँ आवश्यकता बन गई हैं। मानचित्र कला का वर्तमान स्वरूप बिना गणितीय विधियों के समावेश के अधूरा है। पीटर हैगेट, चोर्ले एवं हार्वे ने भौगोलिक निदर्शन (**Paradigm**) एवं मॉडल निर्माण में मात्रात्मक विधियों के प्रयोग में कम्प्यूटर को आवश्यक बताया था।

11.9 शब्द सूची

- 1 आँकड़ों का संग्रह (**Collection of Data**)
- 2 आँकड़ों का प्रसंस्करण (**Processing of Data**)
- 3 वर्णात्मक (**Descriptive**)
4. अनुमानित (**Inferential**)
5. क्षेत्रीय सांख्यिकी (**Spatial Statistics**)
6. बहुपदीय सांख्यिकी (**Multivariate Statistics**)

11.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

- भूगोल में प्रतिरूपों के पक्ष को उजागर कीजिये
- भूगोल में प्रतिरूपों में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट कीजिये
- भूगोल के प्रतिरूप के प्रकार स्पष्ट कीजिये
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की व्याख्या कीजिये।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की दिशा स्पष्ट कीजिये।
- भूगोल में मात्रात्मक क्रान्ति की गुणों दोषों को व्याख्या कीजिये

11.11 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मलिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मलिक बुक कम्पनी, जयपुर

- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई-12 कल्याणकारी भूगोल, भूगोल में आदर्शवाद

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 कल्याणकारी भूगोल की संकल्पना
- 12.3 आदर्शवाद (Idealism)
- 12.4 सारांश
- 12.5 शब्द सूची
- 12.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 12.7 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 12.8 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

12.0 प्रस्तावना

इकाई 12 में परस्नातक स्तर पर कल्याणकारी भूगोल और भूगोल में आदर्शवाद जैसे महत्वपूर्ण भौगोलिक चिंतन के विषय को शामिल किया गया है। कल्याणकारी भूगोल वर्ष 1970 के दशक के बाद भूगोल में तेजी से विकसित हुआ और इसके विकास के पीछे महत्वपूर्ण कारण यह था कि भूगोल में मात्रात्मक क्रांति, स्थानिक विश्लेषण, व्यवहारिक भूगोल के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में कल्याणकारी भूगोल अपना स्थान बनाया। इसमें भूगोलवेत्ता मानवीय सामाजिक समस्याओं के समाधान के मार्ग ढूंढने का प्रयास किया। इस इकाई में कल्याणकारी भूगोल का विकास कैसे हुआ, कल्याणकारी भूगोल में किन बिंदुओं पर अधिक बल दिया जाता है, उसके कमजोर पक्ष क्या हैं, इसी तरह से इसी इकाई में भूगोल में आदर्शवाद जैसे महत्वपूर्ण बिंदु का भी विश्लेषण किया गया है जिससे भौगोलिक चिंतन के परिवर्तनशील फलक को उजागर किया जा सकता है। साथ ही साथ परस्नातक स्तर पर भूगोल के छात्रों को आदर्शवाद क्या है, भूगोल में क्षेत्रीय विभिन्नता (Area Differentiation), स्थानिक संगठन Spatial Organisation, अतिवादी भूगोल (Radical Geography), भूगोल में अपवादवाद (Exceptionalism in Geography), स्थानिक विश्लेषण Spatial Analysis, उद्देश्यवाद (Pragmatism), भूगोल में स्पष्टीकरण (Explanation in Geography) उसके अध्ययन का तात्पर्य क्या है, उसके कमजोर पक्ष क्या हैं, इनका विश्लेषण इस इकाई के अंतर्गत किया गया है जैसे शिक्षार्थी इन महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विश्लेषण करने में समर्थ हो सकें।

12.1 उद्देश्य

- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल या भूगोल में आदर्शवाद के पक्ष को उजागर करना
- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल या भूगोल में आदर्शवाद में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट करना।
- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल, या भूगोल में आदर्शवाद का अध्ययन करना।

12.2 कल्याणकारी भूगोल की संकल्पना (Concept of Social Well Being or Welfare Geography)

भौगोलिक चिन्तन में कल्याणकारी उपागम का विकास सन् 1970 के दशक में मात्रात्मक भूगोल, स्थानिक विश्लेषण एवं व्यावहारिक भूगोल, (Behavioural Geography) के प्रति प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है। द्वितीय महायुद्ध के समय तक भूगोल धरातल, उच्चावच लक्षण, जलवायु, वनस्पति तथा सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी देने वाला विषय माना जाता रहा, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में भूगोलवेत्ताओं ने पुनर्निर्माण की एक नवीन नीति अपनाकर अवश्यम्भावी परिवर्तन किये जिनके तहत ही सामाजिक कल्याण की अवधारणा

को सम्मिलित किया गया। विगत दो दशकों में यद्यपि विषयवस्तु, दर्शन तथा क्रिया पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन स्पष्ट हुए हैं, जिनमें निर्धनता, भूख, प्रदूषण, जातिभेद, सामाजिक असमानता, अन्याय तथा संसाधनों का उपयोग व दुरुपयोग प्रमुख हैं। लोककल्याणकारी भूगोल के विकास में सन् 1960 की मात्रात्मक क्रान्ति ने बौद्धिक शक्ति प्रदान की। यह देखा गया कि यंत्रीकृत सांख्यिकीय विधियाँ तथा ज्यामितीय प्रारूपों द्वारा प्राप्त निष्कर्ष मानवीय आकांक्षा तथा लोककल्याण से दूर पाये गये, जिसे मद्देनजर रखते हुए भूगोलवेत्ता भूगोल को अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह सामाजिक समस्याओं के समाधान के विषय के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से इस दिशा में अग्रसर हो गये। इस प्रकार कल्याणकारी भूगोल में जीवन की गुणवत्ता के पक्ष के अध्ययन की समीक्षा को महत्व दिया जाता है।

भूगोलवेत्ता इस तथ्य को विशेष महत्व देने लगे कि भूगोल को किस प्रकार मानव केन्द्रित तथा मानवीय समस्याओं के समाधान में सहायक बनाया जाये। विकसित देशों में तो आरम्भिक काल से ही प्रादेशिक योजना तथा नीति निर्धारण में भूगोलवेत्ता के अनुभव को महत्व दिया जाता रहा है, लेकिन विकासशील देशों में इस मुहिम को विशेष गति देना आवश्यक समझा गया यद्यपि मानव कल्याण की बात तो क्रान्तिकारी भूगोल (Radical Geography) तथा मानववादी भूगोल (Humanistic Geography) में भी होती है, किन्तु कल्याणकारी भूगोल (Welfare Geography) इनसे भिन्न है। इसमें केवल मानवीय दृष्टिकोण न अपनाकर व्यापक रूप से कल्याणकारी दृष्टिकोण को महत्ता दी गई है, जिसके आधार पर भूगोलवेत्ता प्रादेशिक परिस्थितियों के बारे में अपना विस्तृत अध्ययन करके सुधारात्मक सिफारिश प्रस्तुत करे, जो विकासात्मक नीतियों के निर्धारण में सहायक हो।

कल्याणकारी भूगोल का वास्तविक विकास ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डेविड स्मिथ (Smith David M.) (नारटिंघम विश्वविद्यालय) द्वारा मानव भूगोल में कल्याणकारी पद्धति को अपनाने के साथ ही आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पुस्तक "The Geography of Well&being in the United States" में प्रमुख सामाजिक सूचकों को स्थानिक सन्दर्भ में स्पष्ट किया, तत्पश्चात् सन् 1977 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "Human Geography: A Welfare Approach" में कल्याणकारी दृष्टिकोण को समाज कल्याण को सामाजिक आर्थिक प्रारूप की संकल्पना के रूप में परिभाषित किया। डेविड स्मिथ ने कल्याणकारी भूगोल को स्थानिक सन्दर्भ में परिभाषित करते हुए लिखा है कि कौन, क्या प्राप्त करता है, कहाँ तथा कैसे के रूप में अध्ययन किया जाता है।" (Who gets what where, where the grass is greens, 1982) आगे चलकर मिशान ने कल्याणकारी भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "सैद्धान्तिक कल्याणकारी भूगोल अध्ययन की वह शाखा है जो अवस्थिति निर्माण के लिए प्रयास करती है, जिसके द्वारा हम अच्छे और बुरे मापक्रम पर समाज के लिए वैकल्पिक भौगोलिक स्थितियाँ पंक्तिबद्ध कर सकें। जबकि नाथे के अनुसार कल्याणकारी भूगोल, भूगोल का वह भाग है, जिसमें हम विभिन्न भौगोलिक नीतियों का समाज के कल्याण पर सम्भावित प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

भौगोलिक स्थितियों का तात्पर्य मानवीय अस्तित्व को स्थानिक व्यवस्था से लिया गया है, जिसका सम्बन्ध संसाधनों के स्थानिक निर्धारण आय या मानवीय कल्याण के किसी दूसरे स्रोत से होता है, साथ ही निर्धनता तथा सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के स्थानिक प्रभाव भी अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

इस प्रकार कल्याणकारी भूगोल में निम्न बिन्दुओं पर अधिक बल दिया जा रहा है—

1. डेविड एम. स्मिथ के अनुसार, कल्याणकारी भूगोल का कौन, क्या प्राप्त करता है, कहाँ तथा कैसे के रूप में अध्ययन किया जाता है।
2. कल्याणकारी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भूगोलवेत्ता सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर रहे हैं जो मुख्यतः समाज की समस्याओं से सम्बन्धित हैं।
3. भौतिक व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक (Socio-economic) पिछड़ेपन के कारण तथा विकास के असमान स्तर को खोज रहे हैं। इस सन्दर्भ में फ्रैंक (Frank A.G) ने क्षेत्रीय योजना से सम्बन्धित निर्भरता सिद्धान्त (Dependency Theory) प्रस्तुत करके विकासशील देशों में विद्यमान असमानताओं तथा निर्धनता के वास्तविक कारणों की व्याख्या की है।
4. भूगोलवेत्ता मानते हैं कि निर्धनता अथवा अन्य कोई सामाजिक समस्या का स्थानिक प्रभाव से प्रत्यक्ष

सम्बन्ध होता है। साथ ही इसका सम्बन्ध संसाधनों के स्थानिक निर्धारण आय व मानवीय कल्याण के अन्य स्रोतों में भी होता है।

5. मानव कल्याण को मानव अवस्था के वर्णन में क्षेत्रीय स्तर की आनुभाविक पहचान सम्मिलित की जाती है।
6. समाज में आरम्भ किये गये विभिन्न क्रिया-कलापों के कारण तथा परिणाम की जटिल पहचान का समावेश होता है, क्योंकि ये क्रिया-कलाप कौन, क्या तथा कहाँ प्राप्त करता है, का निर्धारण करने में अपना योगदान देते हैं। इसमें आर्थिक, जनांकिकीय, तथा सामाजिक संरचना के तार्किक विश्लेषण को कल्याणकारी संरचना के अनुकूल माना गया है।
7. कल्याणकारी भूगोल में अनुसंधान तथा शोधों का उद्देश्य भूगोलवेत्ताओं को तथ्यों के विश्लेषण में प्रशिक्षित करना माना जाता है, ताकि वे सामाजिक समस्याओं तथा बुराइयों को अपने शोधकार्यों की सीमा में ला सकें। इस आधार पर भूगोलवेत्ता स्वयं को सामाजिक समस्याओं तथा मानव जाति की अवस्थाओं, आर्थिक असमानताओं तथा सामाजिक अन्याय आदि से निरन्तर सम्पर्क में ला रहा है।
8. संसाधनों का स्थानिक निर्धारण तथा उनके प्राप्ति स्थलों का अध्ययन उत्तरोत्तर किया जा रहा है जो प्रादेशिक असमानता को कम करने तथा स्तर में सुधार करने में सहायक होगा।
9. सामाजिक समस्याओं तथा संसाधनों के मध्य वितरण सम्बन्धों की जाँच करना।
10. कल्याणकारी अभिव्यक्ति का उपयोग वांछनीय औद्योगिक अवस्थिति प्रतिमान, जनसंख्या के वितरण तथा केन्द्रीयकरण, सामाजिक सेवा सुविधाओं की अवस्थिति, यातायात जाल, मनुष्यों या माल के संचलन प्रतिमान के निर्धारण में कर रहे हैं।

कल्याणकारी तकनीकी का मानव इतिहास के विभिन्न कालों में भिन्न अर्थ रहा है। विभिन्न देशों तथा समाजों में अनेक प्रकार के मानववादी बौद्धिक इतिहास के मानचित्र पर प्रकट हुए हैं, जिन्होंने विभिन्न समयावधियों में मानव हित में प्रयास किये हैं। वर्तमान में समाज की समस्याओं से सम्बन्धित भूगोलवेत्ता लोकनीति के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रस्तावों के निर्माण को प्रयासरत हैं। सभी भौगोलिक प्रतिमानों का उनके अधिकतम लाभ तथा न्यूनतम मूल्य के मापदण्ड के सन्दर्भ में मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति को महत्त्व मिल रहा है।

वर्तमान में भूगोलवेत्ता सामाजिक लाभों के दोषपूर्ण वितरण तथा सामाजिक असमानताओं की निन्दा न करके उनके स्थान पर स्थानिक असमानताओं (Spatial Inequalities) को खोजकर उनके यथासम्भव भौगोलिक कारणों की जाँच करने में प्रयासरत हैं। लेकिन अभी तक सभी विकासशील देशों में भूगोल समस्या उन्मूलक विषय (Problem Solving Discipline) के रूप में विकसित नहीं हो पाया है।

विकसित देशों में आरम्भ से ही नियोजन कार्यों में भूगोलवेत्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, जबकि भारतीय नीति-निर्माण में अर्थशास्त्रियों की प्रधानता रही है, जिनका प्रमुख उद्देश्य उच्च आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त करना रहा है, जिस कारण इन अर्थशास्त्रियों द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय विषयों की नीति-निर्माण में घोर उपेक्षा की गई है। इनको क्षेत्रीय अवस्थिति, स्थलाकृति, संसाधन आदि भौगोलिक तथ्यों का विशिष्ट ज्ञान नहीं होता है। उदाहरण के लिए, सम्पूर्ण विश्व में वृहद् बाँधों एवं जलाशयों के निर्माण की योजना को त्याग कर उनके स्थान पर मध्यम तथा लघु योजनाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है, किन्तु भारत में इस प्रकार के दोष पूर्ण निर्णय आज भी लिये जा रहे हैं। टिहरी बाँध परियोजना (उत्तराखण्ड) तथा सरदार सरोवर परियोजना (गुजरात-मध्यप्रदेश) भूकम्पीय सम्भावना वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। इसके साथ ही वहाँ उपलब्ध वन संसाधन, उनकी उपयोगिता तथा उस पर्यावरणीय परिस्थिति में एक विशेष जीवन पद्धति को अपनाने वाली जनजातियों के बारे में भूगोलवेत्ता समन्वित ज्ञान रखते हैं। वर्तमान में जब इनका समाज में विरोधाभास परिलक्षित हो रहा है, तो इसकी नीति-निर्धारण में उत्पन्न दोष उभरकर सामने आ रहे हैं।

एक दृष्टि से भूगोलवेत्ताओं द्वारा सामाजिक हित में कार्य कम करना भी सत्य प्रतीत हो रहा है। ये स्थानिक संगठन (Spatial Organisation) के लिए कोई प्रमुख योजना प्रस्तुत नहीं कर सके। इस सन्दर्भ में एब्लर (Abler Ronald F., 1971) ने अपनी पुस्तक 'Spatial Organisation' (स्थानिक संगठन) में द्वितीय विश्वयुद्ध के दो दशकों में प्रसारित क्षेत्रीय व्यवहार की स्थानिक विसरण विधियों का वैज्ञानिक विवेचन किया

है। इसी प्रकार विगत दो दशकों में भौगोलिक अध्ययन के विषय क्षेत्र, दर्शन तथा क्रियाविधि में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। वर्तमान भूगोलवेत्ता ग्रामीण बस्तियों, निर्धनता, बेरोजगारी, भूख, सामाजिक असमानता, अन्याय, पर्यावरण प्रदूषण, संसाधनों के उपयोग, पोषणीय विकास (Sustainable Development) तथा पर्यावरणीय असन्तुलन आदि विषयों का अध्ययन पर विस्तृत रूप से ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल के अन्तर्गत सामाजिक भूगोल (Social Geography) को ही महत्व दिया जा रहा है। वाटसन (Watson J. Wreford, 1979) ने अपनी पुस्तक 'Social Geography of the United States' में अमेरिकन काले लोगों की गरीबी अवस्था तथा अपराधों (Poverty Condition and Crimes) पर प्रकाश डालते हुए बताया कि यहाँ विभिन्न जाति तथा धार्मिक वर्ग इन समस्याओं के प्रति संघर्षरत हैं। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में भी समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं का अध्ययन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाने लगा है। (Davis. Richard - A Social Geography of England and Wales, 1980) साथ ही स्वीडन, नार्वे, नीदरलैण्ड, इजरायल, डेनमार्क, रूस, फ्रांस, न्यूजीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों में अन्य संकाय वैज्ञानिकों के साथ भूगोलवेत्ता लोकनीतियों का निर्माण करके वहाँ उपलब्ध संसाधनों के लाभ का प्रस्ताव समाज के सभी वर्गों तक पहुँचा रहे हैं। भारत में भी तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा नियोजन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु भूगोलवेत्ता उद्देश्यवादी प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं जो भारतीय समाज की लोककल्याणकारी नीति के अनुकूल साबित हो सकता है।

12.3 आदर्शवाद (Idealism)

आदर्शवाद प्रायः ऐसा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है जिसमें यथार्थता, मानसिक और मस्तिष्क आश्रित होते हैं। दार्शनिक दृष्टि से आदर्शवाद वह जड़वत सोच है, जो विशिष्ट वर्ग के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है, इसके अनुसार मस्तिष्क की क्रिया मानव अस्तित्व और ज्ञान का आधार है। इस दर्शन का सारांश यह है कि मानसिक क्रिया का अपना स्वयं का जीवन होता है जो भौतिक वस्तुओं और प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित नहीं होती है तथा विश्व को केवल विचारों द्वारा अप्रत्यक्ष ढंग से जाना जा सकता है। आदर्शवाद यह बताता है कि दुनिया का सारा ज्ञान व्यक्ति के आत्मपरक अनुभव पर आधारित होता है जिसमें मानसिक निर्माण और विचारों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार यहाँ कोई वास्तविक विश्व नहीं है जिसे मस्तिष्क की स्वतंत्रता के बिना जाना जा सकता हो। समाज में आचार-विचार व सोच का परिचालन एक ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है। इन्हीं रीति-रिवाजों में मानव का सोच बँधा है तथा इसी के अनुसार मानव का दृष्टिकोण परिपक्व होता है। व्यक्ति प्रवृत्ति में जहाँ कहीं भी घटित व विकसित होते देखता है। उसी सम्बन्ध में उसका मूल्यांकन ऐतिहासिक संस्कारों की कड़ियों के आधार पर करता है। इसी सोच या विचार को आदर्शवाद कहा गया है।

आदर्शवाद का प्रयोग समाज के सदस्य अपने सामाजिक इकाई की संस्कारजन्य ऐतिहासिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों एवं नैतिक मूल्यों के अनुसार करते हैं। चिशोल्म के अनुसार, आदर्शवाद सांस्कारिक आध्यात्मिक संरचना है जो वैज्ञानिक व्यवस्था के दायरे से परे है। आदर्शवादी पृथ्वी के धरातल पर विकसित मानव क्रियाओं को समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हो देखकर उनकी व्याख्या और मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण मानते हैं। इनके अनुसार भौगोलिक सामान्यीकरण की सार्थकता क्षेत्र व उसमें निवासित जनसमुदायों को संस्कृति पर निर्भर होती है।

कनेडियन ऐतिहासिक भूगोलवेत्ता लियोनार्ड गुल्के (Guelke, Leonard T.) ने सन् 1974 में इस उपागम को विकसित किया था। गुल्के ने टोरण्टो विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की, जिनका विशेषाधिकरण भूगोल के इतिहास, दर्शन तथा विधितंत्र में रहा है। इन्होंने भूगोल में आदर्शवाद का समर्थन किया तथा यह तर्क दिया कि हमने अपनी कर्ता के मस्तिष्क में प्रवेश करने की पद्धति विकसित कर ली है, यहाँ तक कि उनके विचारों के लिए सोचना और उनकी अपेक्षाओं को उचित ठहराने की वह पद्धति है जो कि मानव उद्देश्यों और पृथ्वी के परिवर्तन में हमारी भूमिका को समझना निश्चित करेगी। मानव- पर्यावरण सम्बन्धों का अध्ययन करते समय भूगोलवेत्ता को यह तलाशने का प्रयास करना चाहिए कि वनावरण कम करने व कृषि में विविध पद्धतियाँ अपनाने के क्या कारण हैं? इस तरह वास्तव में कोई सांस्कृतिक भू-दृश्य के तथ्यों का प्रतिमान कोई अनुमान न होकर उन लोगों के विचारों का स्पष्टीकरण ही होता है जिन्होंने इसका निर्माण किया है। आदर्शवादी भूगोलवेत्ता पृथ्वी पर मानव क्रियाओं का समस्त सांस्कृतिक सन्दर्भ में महत्व देते हुए अध्ययन करता है। इस तरह यह एक विशिष्ट प्रविधि है जिसका अर्थ है कि मोटे तौर पर एक ही तरह की संस्कृति के लोगों तक

सामान्यीकरण सीमित रहेगा।

आदर्शवादी उपागम को प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन में भी उपयोगी माना गया है। आदर्शवादी भूगोलवेत्ता प्रदेशों के सीमांकन के लिए समान संस्कृति तथा वैश्विक दृष्टिकोण वाले लोगों को एक स्थान पर रखने का प्रयास कर सकता है, क्योंकि भौगोलिक आचरण का निर्माण ऐसे ही विचारों से होता है। प्रदेशों की एक वास्तविक तस्वीर प्राप्त करने के लिए उन्हें बृहद, मध्यम तथा लघु प्रदेशों में विभाजित किया जाता है। अनेक बार भूगोलवेत्ता मॉडल निर्माण में भी विवेकी सिद्धान्तों का सहारा लेते हैं। वॉनथ्यूनेन ने अपने भूमि उपयोग मॉडल में भूमि उपयोग तथा फसल सघनता (Crop Intensity) के लिए विवेकी मानव को आधार माना था। भूगोलवेत्ताओं द्वारा अपनाई गई सभी प्रविधियों में आदर्शवादी भिन्न है, क्योंकि यह प्रविधि तार्किक प्रत्यक्षवादियों (Logical Positivistics) की विरोधी है तथा यह सामाजिक विज्ञानों की स्वायत्तता को महत्त्व देती है इसलिए यह मानव तथा प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है। इसके द्वारा उपयुक्त विश्लेषण करके मानव आचरण की व्याख्या भी प्राप्त की जा सकती है।

क्षेत्रीय विभिन्नता (Area Differentiation)

हेटनर एवं श्लूटर दोनों ही पृथ्वी तल पर व्याप्त विभिन्नताओं के बारे में सोच रखते थे, जिसे बाद में क्षेत्रीय विभिन्नता के विचार के रूप में जाना गया। प्रादेशिक विभिन्नता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हेटनर द्वारा सन् 1898 तथा कार्ल सावर द्वारा सन् 1925 की रचनाओं में मिलता है। बाद में इस शब्द का प्रचलन यूरोप, ब्रिटेन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्रों के स्वरूप Morphology of Areas को सुस्पष्ट करने में प्रयुक्त हुआ। हेटनर की संकल्पना के विस्तृत विवेचन के क्रम में कार्ल सावर ने सन् 1925 में सर्वप्रथम क्षेत्रीय विभिन्नता (Area Differentiation) शब्द का प्रयोग किया। क्षेत्रीय विभिन्नता (Areal Differentiation) शब्दावली का निर्माण और उपयोग हार्टशोर्न ने अपनी पुस्तक भूगोल की प्रकृति (The Nature of Geography 1939) में किया। हेटनर से लेकर हार्टशोर्न का भूगोल की समाकलनात्मक (Integrative) अथवा संश्लेषित Synthetic उद्देश्य है। क्षेत्रीय विभिन्नता को क्षेत्रवर्णन (Chorology) भी कहा है। क्षेत्रीय भिन्नता को अद्वितीय एवं विशिष्ट तथ्यों से सम्बन्धित होने के कारण स्वरूपी (Ideographic) भी कहते हैं। हेटनर से पूर्व रिचथोफेन ने रिटर व हम्बोल्ट के विचारों के आधार पर क्षेत्रीय विभिन्नता की पृष्ठभूमि तैयार की लेकिन इसे अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करने का श्रेय हेटनर को जाता है।

हेटनर ने सन् 1907 में बताया कि भूगोल पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान है तथा ये क्षेत्र एक-दूसरे से भिन्न होते हैं (Geography is the knowledge of various areas which are different from each other)। इससे स्पष्ट होता है कि अपने प्राकृतिक व मानव संसाधनों के अनुसार पृथ्वी पर विद्यमान विभिन्न क्षेत्र परस्पर एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः भूगोलवेत्ताओं का प्रमुख उद्देश्य उन विभिन्नताओं की जानकारी प्राप्त करके, उन क्षेत्रों के अन्तर्सम्बन्धों को पहचानना है। सन् 1927 में उन्होंने क्षेत्रों की प्रकृति पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि क्षेत्र वितरण दृष्टिकोण का उद्देश्य क्षेत्र या स्थानों की प्रकृति को विविध स्वरूपों में समझना है।

ब्लाश ने फ्रांस में विस्तृत प्रादेशिक अध्ययन किया था। उनके अनुसार भूगोल स्थानों का विज्ञान है न कि मानव का, उसका सम्बन्ध राष्ट्रों की विशेषताओं एवं सम्भावनाओं से है। एक राष्ट्र की विशिष्ट प्रकृति एवं विकास की प्रवृत्ति का स्वरूप वहाँ के सभी स्वरूपित लक्षणों के योग एवं सम्मिलित प्रभाव को दर्शाते हैं। इसके बाद बीसवीं सदी के सभी भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में क्षेत्रीय भिन्नताओं के अध्ययन पर अधिक बल दिया। ब्रिटिश भूगोलवेत्ता लियरमन्थ (A-T-A- Learmonth) ने भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है कि भूगोल प्राकृतिक और मानवीय तत्त्वों के क्षेत्रीय वितरण का विश्लेषण करता है जो इस पृथ्वी की भू-सतह पर विद्यमान हैं।¹⁶ इसी प्रकार डडले स्टेम्प ने भूगोल को पृथ्वी तल के वर्णन, क्षेत्रों की भिन्नताओं तथा सम्बन्धों का अध्ययन बताया है। ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं की एक समिति ने सन् 1950 में भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा था कि भूगोल वह विज्ञान है जो क्षेत्रों की भिन्नता (Areal Differentiation) तथा उनके सम्बन्धों के सन्दर्भ में पृथ्वी तल का वर्णन करता है।

व्यावहारिक भूगोलवेत्ता जे.के. राइट ने पृथ्वी तल पर मिलने वाली विभिन्नताओं को इसके विभिन्न प्रतिबिम्बों Images के रूप में अध्ययन कर इनको भूविविधता (Geodiversity) कहा है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता एण्ड्री चोर्ले (Cholley, Andre, 1886-1968) ने अपनी पुस्तक 'Guide to the Student of Geography' में इस विचार की पुष्टि की है कि पृथ्वी तल पर क्षेत्रों में प्राकृतिक तथा मानवीय तत्त्वों की

आश्चर्यजनक विभिन्नताएँ होती हैं। चोर्ले ने पेरिस से पी.एच.डी. की तथा पेरिस विश्वविद्यालय में अध्यापन करवाते हुए। सन् 1942 में प्रादेशिक चिन्तन को आगे बढ़ाया।

कार्ल सावर (Carl Sauer 1889–1975) ने भौगोलिक अध्ययन में व्यापक दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया है। उन्होंने भूगोल के क्रमबद्ध विकास एवं उसके नये स्वरूप को समझने में क्षेत्र, क्षेत्रीय दृश्यभूमि, उसके सभी लक्षण, सम्बन्ध तथा प्रभाव, उसके विकास की सम्पूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, क्षेत्रीय भूमि के आर्थिक उपयोग सम्बन्धी व्यावहारिक पक्ष, समस्याएँ एवं उनके समाधान को विशेष महत्त्व दिया है। अतः सावर महोदय भी हार्टशोर्न की तरह क्षेत्रीय विभिन्नताओं तथा विविधताओं के सकल स्वरूप के अध्ययन पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।

प्रेस्टन तथा जोन्स (James. P-E- and Jones C-F., 1954) ने अपनी पुस्तक 'American Geography : Inventory and Prospectus' में बताया कि भूगोल में स्थानों की उन दृश्य घटनाओं (Phenomen) का अध्ययन किया जाता है जो विभिन्न क्षेत्रों को समानताओं और विभिन्नताओं का बोध कराती है। उन्होंने बताया कि क्षेत्रीय विभिन्नताओं के अन्तर्गत क्षेत्रों के उच्चावच, भूगर्भिक संरचना, मृदा, वनस्पति, खनिज पदार्थ, प्राकृतिक जल-स्रोत, जीव-जन्तु तथा जलवायु के विभिन्न घटकों आदि सभी भौतिक पर्यावरण के कारकों का अध्ययन सम्मिलित है। ये कारक मानव के सांस्कृतिक पर्यावरण पर प्रभाव डालते हैं, जिससे मानवीय वातावरण में भी विभिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अतः भूगोलवेत्ताओं का कार्य न केवल क्षेत्रीय विभिन्नताओं का अध्ययन करना है वरन् उनकी समानताओं का भी अध्ययन करना है। इन्हीं समानताओं व असमानताओं के आधार पर प्रदेशों की कल्पना की गई है।

प्रसिद्ध अमेरिकन भूगोलवेत्ता रिचार्ड हार्टशोर्न ने अपनी रचनाओं 'Nature of Geography' 1939 तथा 'Perspective on the Nature of Geography' 1959 में भूगोल को क्षेत्रीय विभिन्नताओं के अध्ययन का विज्ञान बताया है। उन्होंने क्षेत्रीय विभिन्नता के साथ भौगोलिक अध्ययन में क्षेत्रीय सम्बन्धों को समझने पर बल दिया। उनके अनुसार प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र होता है, जिसकी विशिष्ट उपस्थिति होती है, जो दूसरे क्षेत्रों से भिन्न होता है उसका विस्तार उतनी दूरी तक होता है जहाँ तक भिन्नता विस्तृत होती है।

स्पष्ट है कि भौगोलिक दृश्य घटनाओं तथा उनसे उत्पन्न विभिन्नताओं का एकाकी अध्ययन नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक तत्वों की विविधताएँ तथा मानवीय क्रियाकलाप परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार ये अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

स्थानिक संगठन Spatial Organisation

भूगोल में स्थानिक संगठन की संकल्पना का विकास सन् 1970 के दशक में तीव्रता से हुआ है। भौगोलिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में किसी क्षेत्र में समाज या समुदाय की क्रियाओं एवं प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पन्न समन्वित स्थानिक प्रतिरूप जो वहाँ निवास करने वाले व्यक्तियों तथा पर्यावरण के मध्य अन्योन्य क्रिया का परिणाम होता है, स्थानिक संगठन के रूप में पहचाना जाता है। भूगोल में स्थानिक संगठन का विकास विभिन्न सन्देशों में हुआ है। सर्वप्रथम अमेरिकी भूगोलवेत्ता उलमेन (Edward L- Ullman, 1957) ने अपनी पुस्तक 'American Commodity' में भौगोलिक क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता को स्पष्ट करने के लिए स्थानिक प्रतिक्रिया Spatial Interaction शब्दावली का प्रयोग किया था। इसके उपरान्त उन्होंने इसे अधिक स्पष्ट रूप में सन् 1980 में Geography as Spatial Interaction में समझाया। स्थानिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया और उसके प्रतिरूपों (Pattern) का वर्णन करने में भूगोलवेत्ता अभिगम्यता एवं सम्बद्धता (Accessibility and Connectivity) से सर्वाधिक सरोकार रखते हैं।

मानव अपने आवास के चारों ओर पर्यावरण से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। मानव विभिन्न समाजों तथा समुदायों में एक क्रियाशील प्राणी के रूप में निवास करता है। यह पर्यावरण भी विभिन्नता लिए होता है। जिस कारण एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में परस्पर आदान-प्रदान अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना होती है। ये अन्तर्सम्बन्ध परिपूरकता पर आधारित होते हैं, जिनके तहत एक समाज या समुदाय विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं वाले दूसरे समाज से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु घनिष्ठ अन्तर्निर्भरता रखता है। जिनमें वस्तुओं, सेवाओं, विचारों एवं स्वयं व्यक्ति का गमनागमन होता है जिसके तहत ही स्थानिक संगठन का सृजन होता है। स्थानिक संगठन की प्रक्रिया को एब्लर (Abler Ronald F-, 1971) ने अपनी पुस्तक 'Spatial Organisation' में समझाते

हुए बताया कि यह मानव भूगोल के बदलते वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में स्थानिक विश्लेषण की प्रविधि तथा आर्थिक गतिविधियों का वितरण है। फ्रीडमैन ने स्पष्ट किया कि स्थानिक संगठन और राष्ट्रीय विकास के मध्य सम्बन्ध विद्यमान है।

आर्थिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ में फिलब्रिक (Philbrick) महोदय ने बताया कि दो प्रकार के आर्थिक प्रदेशों के पारस्परिक सहयोग से स्थानिक संगठन की भावना जागृत होती है। उन्होंने बताया कि इस प्रक्रिया से विश्व के आर्थिक भू-दृश्यों में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, लेकिन सम्बन्ध स्थापित होने की गति में भी स्थानिक भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं के पारस्परिक कार्यात्मक सम्बन्धों के द्वारा प्रदेश का आर्थिक संगठन बना रहता है।

टी हॅगरस्टैण्ड ने अपनी पुस्तक 'Innovation Diffusion as a Spatial Process', 1967 में बताया कि स्थानिक संगठन के विकास में सूचनाओं तथा निर्णयों के विसरण (Diffusion of Information and Decisions) का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

पीटर हैगेट ने Geography: A Modern Synthesis, 1983 में मानवीय समाज के स्थानिक तंत्र के चार खण्ड बताये

1. अन्तरतम स्थान,
2. वैयक्तिक स्थान
3. सामाजिक स्थान, तथा
4. सार्वजनिक स्थान।

स्थानिक संगठन एक जटिल प्रक्रिया है। मानव अपने वास्यस्थल से कार्यस्थल पर गमन करता है।

मानव का कार्यस्थल पर गमन उसका कृषि फार्म, कार्यालय, कारखाना, शिक्षण संस्थान या व्यावसायिक प्रतिष्ठान हो सकता है। इन स्थलों पर वह विभिन्न परिवहन मार्गों द्वारा पहुँचता है, जिसका निर्माण उसे करना पड़ता है। इस प्रकार मानव का वास्यस्थल तथा कार्य-स्थल के मध्य एक कार्यात्मक अन्तःप्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। यह स्थानिक संगठन अपने समीपवर्ती पर्यावरण से प्रभावित होता है। जिस कारण सभी क्षेत्रों का स्थानिक संगठन एक समान नहीं होता है। स्थानिक संगठित के निम्न मूल तत्त्व हैं— 1

1. कार्य स्थल (Work Place),
2. गमनागमन (Movement),
3. यातायात मार्ग (Transport),
4. अन्तः क्रिया (Interaction),
5. केन्द्र स्थल (Central Place),
6. पदानुक्रम (Hierarchy),
7. दूरी क्षय (Distance Decay), तथा
- 8 स्थानिक संगठन Spatial Organisation)

पीटर हैगेट ने अपनी पुस्तक, 'Locational Analysis in Human Geography, 1977' के प्रथम खण्ड में स्थानिक संगठन के निम्न छः तत्त्व बताये हैं

1. अन्तःक्रिया (Interaction)
- 2 जाल (Networks)
3. संकेन्द्र (Nodes)
4. पदानुक्रम (Hierarchy),

5. धरातल (Surfaces) तथा

6. विसरण (Diffusion)।

कल्याणकारी भूगोल की संकल्पना

भौगोलिक चिन्तन में कल्याणकारी उपागम का विकास सन् 1970 के दशक में मात्रात्मक भूगोल, स्थानिक विश्लेषण एवं व्यावहारिक भूगोल, (Behavioural Geography) के प्रति प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है। द्वितीय महायुद्ध के समय तक भूगोल धरातल, उच्चावच लक्षण, जलवायु, वनस्पति तथा सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी देने वाला विषय माना जाता रहा, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में भूगोलवेत्ताओं ने पुनर्निर्माण की एक नवीन नीति अपनाकर अवश्यम्भावी परिवर्तन किये जिनके तहत हो सामाजिक कल्याण की अवधारणा को सम्मिलित किया गया। विगत दो दशकों में यद्यपि विषयवस्तु, दर्शन तथा क्रिया पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन स्पष्ट हुए हैं, जिनमें निर्धनता, भूख, प्रदूषण, जातिभेद, सामाजिक असमानता, अन्याय तथा संसाधनों का उपयोग व दुरुपयोग प्रमुख हैं। लोककल्याणकारी भूगोल के विकास में सन् 1960 की मात्रात्मक क्रान्ति ने बौद्धिक शक्ति प्रदान की। यह देखा गया कि यंत्रीकृत सांख्यिकीय विधियाँ तथा ज्यामितीय प्रारूपों द्वारा प्राप्त निष्कर्ष मानवीय आकांक्षा तथा लोककल्याण से दूर पाये गये, जिसे मद्देनजर रखते हुए भूगोलवेत्ता भूगोल को अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह सामाजिक समस्याओं के समाधान के विषय के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से इस दिशा में अग्रसर हो गये। इस प्रकार कल्याणकारी भूगोल में जीवन की गुणवत्ता के पक्ष में अध्ययन की समीक्षा को महत्त्व दिया जाता है।

भूगोलवेत्ता इस तथ्य को विशेष महत्त्व देने लगे कि भूगोल को किस प्रकार मानव केन्द्रित तथा मानवीय समस्याओं के समाधान में सहायक बनाया जाये। विकसित देशों में तो आरम्भिक काल से ही प्रादेशिक योजना तथा नीति निर्धारण में भूगोलवेत्ता के अनुभव को महत्त्व दिया जाता रहा है, लेकिन विकासशील देशों में इस मुहिम को विशेष गति देना आवश्यक समझा गया यद्यपि मानव कल्याण की बात तो क्रान्तिकारी भूगोल (Radical Geography) तथा मानववादी भूगोल (Humanistic Geography) में भी होती है, किन्तु कल्याणकारी भूगोल (Welfare Geography) इनसे भिन्न है। इसमें केवल मानवीय दृष्टिकोण न अपनाकर व्यापक रूप से कल्याणकारी दृष्टिकोण को महत्ता दी गई है, जिसके आधार पर भूगोलवेत्ता प्रादेशिक परिस्थितियों के बारे में अपना विस्तृत अध्ययन करके सुधारात्मक सिफारिश प्रस्तुत करे, जो विकासात्मक नीतियों के निर्धारण में सहायक हो।

कल्याणकारी भूगोल का वास्तविक विकास ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डेविड स्मिथ (Smith David M.) (नारटिंघम विश्वविद्यालय) द्वारा मानव भूगोल में कल्याणकारी पद्धति को अपनाने के साथ ही आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पुस्तक "The Geography of Well&being in the United States" में प्रमुख सामाजिक सूचकों को स्थानिक सन्दर्भ में स्पष्ट किया, तत्पश्चात् सन् 1977 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "Human Geography : A Welfare Approach" में कल्याणकारी दृष्टिकोण को समाज कल्याण की सामाजिक आर्थिक प्रारूप की संकल्पना के रूप में परिभाषित किया। डेविड स्मिथ ने कल्याणकारी भूगोल को स्थानिक सन्दर्भ में परिभाषित करते हुए लिखा है कि इसका कौन, क्या प्राप्त करता है, कहाँ तथा कैसे के रूप में अध्ययन किया जाता है। Who gets what where, where the grass is greens, 1982)

आगे चलकर मिशान ने कल्याणकारी भूगोल को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सैद्धान्तिक कल्याणकारी भूगोल अध्ययन की वह शाखा है जो अवस्थिति निर्माण के लिए प्रयास करती है, जिसके द्वारा हम अच्छे और बुरे मापक्रम पर समाज के लिए वैकल्पिक भौगोलिक स्थितियाँ पंक्तिबद्ध कर सकें। जबकि नाथे के अनुसार कल्याणकारी भूगोल, भूगोल का वह भाग है, जिसमें हम विभिन्न भौगोलिक नीतियों का समाज के कल्याण पर सम्भावित प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

भौगोलिक स्थितियों का तात्पर्य मानवीय अस्तित्व की स्थानिक व्यवस्था से लिया गया है, जिसका सम्बन्ध संसाधनों के स्थानिक निर्धारण आय या मानवीय कल्याण के किसी दूसरे स्रोत से होता है, साथ ही निर्धनता तथा सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के स्थानिक प्रभाव भी अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

इस प्रकार कल्याणकारी भूगोल में निम्न बिन्दुओं पर अधिक बल दिया जा रहा है—

1. डेविड एम. स्मिथ के अनुसार, कल्याणकारी भूगोल का कौन, क्या प्राप्त करता है, कहाँ तथा कैसे के रूप में अध्ययन किया जाता है।
2. कल्याणकारी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भूगोलवेत्ता सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर रहे हैं जो मुख्यतः समाज की समस्याओं से सम्बन्धित हैं।
3. भौतिक व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक (Socio&economic) पिछड़ेपन के कारण तथा विकास के असमान स्तर को खोज रहे हैं। इस सन्दर्भ में फ्रैंक (Frank A-G) ने क्षेत्रीय योजना से सम्बन्धित निर्भरता सिद्धान्त (Dependency Theory) प्रस्तुत करके विकासशील देशों में विद्यमान असमानताओं तथा निर्धनता के वास्तविक कारणों की व्याख्या की है।
4. भूगोलवेत्ता मानते हैं कि निर्धनता अथवा अन्य कोई सामाजिक समस्या का स्थानिक प्रभाव से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। साथ ही इसका सम्बन्ध संसाधनों के स्थानिक निर्धारण आय व मानवीय कल्याण के अन्य स्रोतों में भी होता है।
5. मानव कल्याण की मानव अवस्था के वर्णन में क्षेत्रीय स्तर की आनुभाषिक पहचान सम्मिलित की जाती है।
6. समाज में आरम्भ किये गये विभिन्न क्रिया-कलापों के कारण तथा परिणाम की जटिल पहचान का समावेश होता है, क्योंकि ये क्रिया-कलाप कौन, क्या तथा कहाँ प्राप्त करता है, का निर्धारण करने में अपना योगदान देते हैं। इसमें आर्थिक, जनांकिकीय, तथा सामाजिक संरचना के तार्किक विश्लेषण को कल्याणकारी संरचना के अनुकूल माना गया है।
7. कल्याणकारी भूगोल में अनुसंधान तथा शोधों का उद्देश्य भूगोलवेत्ताओं को तथ्यों के विश्लेषण में प्रशिक्षित करना माना जाता है, ताकि वे सामाजिक समस्याओं तथा बुराइयों को अपने शोधकार्यों की सीमा में ला सकें। इस आधार पर भूगोलवेत्ता स्वयं को सामाजिक समस्याओं तथा मानव जाति की अवस्थाओं, आर्थिक असमानताओं तथा सामाजिक अन्याय आदि से निरन्तर सम्पर्क में आते हैं।
8. संसाधनों का स्थानिक निर्धारण तथा उनके प्राप्ति स्थलों का अध्ययन उत्तरोत्तर किया जा रहा है। जो प्रादेशिक असमानता को कम करने तथा स्तर में सुधार करने में सहायक होगा।
9. सामाजिक समस्याओं तथा संसाधनों के मध्य वितरण सम्बन्धों की जाँच करना।
10. कल्याणकारी अभिव्यक्ति का उपयोग वांछनीय औद्योगिक अवस्थिति प्रतिमान, जनसंख्या के वितरण तथा केन्द्रीयकरण, सामाजिक सेवा सुविधाओं की अवस्थिति, यातायात जाल, मनुष्यों या माल के संचलन प्रतिमान के निर्धारण में कर रहे हैं।

कल्याणकारी तकनीकी का मानव इतिहास के विभिन्न कालों में भिन्न अर्थ रहा है। विभिन्न देशों तथा समाजों में अनेक प्रकार के मानववादी बौद्धिक इतिहास के मानचित्र पर प्रकट हुए हैं, जिन्होंने विभिन्न समयावधियों में मानव हित में प्रयास किये हैं। वर्तमान में समाज की समस्याओं से सम्बन्धित भूगोलवेत्ता लोकनीति के लिए उद्देश्यपूर्ण प्रस्तावों के निर्माण को प्रयासरत हैं। सभी भौगोलिक प्रतिमानों का उनके अधिकतम लाभ तथा न्यूनतम मूल्य के मापदण्ड के सन्दर्भ में मूल्यांकन करने की प्रवृत्ति को महत्त्व मिल रहा है।

वर्तमान में भूगोलवेत्ता सामाजिक लाभों के दोषपूर्ण वितरण तथा सामाजिक असमानताओं की निन्दा न करके उनके स्थान पर स्थानिक असमानताओं (Spatial Inequalities) को खोजकर उनके यथासम्भव भौगोलिक कारणों की जाँच करने में प्रयासरत हैं। लेकिन अभी तक सभी विकासशील देशों में भूगोल समस्या उन्मूलक विषय (Problem Solving Discipline) के रूप में विकसित नहीं हो पाया है। विकसित देशों में आरम्भ से ही नियोजन कार्यों में भूगोलवेत्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, जबकि भारतीय नीति-निर्माण में अर्थशास्त्रियों की प्रधानता रही है, जिनका प्रमुख उद्देश्य उच्च आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त करना रहा है, जिस कारण इन अर्थशास्त्रियों द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय विषयों की नीति-निर्माण में घोर उपेक्षा की गई है। इनको क्षेत्रीय अवस्थिति, स्थलाकृति, संसाधन आदि भौगोलिक तथ्यों का विशिष्ट ज्ञान नहीं होता है। उदाहरण के लिए, सम्पूर्ण विश्व में वृहद् बाँधों एवं जलाशयों के निर्माण की योजना को त्याग कर उनके स्थान पर मध्यम तथा लघु योजनाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है, किन्तु भारत में इस प्रकार के दोष पूर्ण निर्णय आज भी लिये जा रहे हैं।

टिहरी बाँध परियोजना (उत्तराखण्ड) तथा सरदार सरोवर परियोजना (गुजरात मध्यप्रदेश) भूकम्पीय सम्भावना वाले क्षेत्रों में स्थित हैं। इसके साथ ही वहाँ उपलब्ध वन संसाधन, उनकी उपयोगिता तथा उस पर्यावरणीय परिस्थिति में एक विशेष जीवन पद्धति को अपनाने वाली जनजातियों के बारे में भूगोलवेत्ता समन्वित ज्ञान रखते हैं। वर्तमान में जब इनका समाज में विरोधाभास परिलक्षित हो रहा है, तो इसकी नीति-निर्धारण में उत्पन्न दोष उभरकर सामने आ रहे हैं। एक दृष्टि से भूगोलवेत्ताओं द्वारा सामाजिक हित में कार्य कम करना भी सत्य प्रतीत हो रहा है। वे स्थानिक संगठन (Spatial Organisation) के लिए कोई प्रमुख योजना प्रस्तुत नहीं कर सके। इस सन्दर्भ में एब्लर (Abler Ronald F-J 1971) ने अपनी पुस्तक 'Spatial Organisation' (स्थानिक संगठन) में द्वितीय विश्वयुद्ध के दो दशकों में प्रसारित क्षेत्रीय व्यवहार की स्थानिक विसरण विधियों का वैज्ञानिक विवेचन किया है। इसी प्रकार विगत दो दशकों में भौगोलिक अध्ययन के विषय क्षेत्र, दर्शन तथा क्रियाविधि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। वर्तमान भूगोलवेत्ता ग्रामीण बस्तियों, निर्धनता, बेरोजगारी, भूख, सामाजिक असमानता, अन्याय, पर्यावरण प्रदूषण, संसाधनों के उपयोग, पोषणीय विकास (Sustainable Development) तथा पर्यावरणीय असन्तुलन आदि विषयों का अध्ययन पर विस्तृत रूप से ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल के अन्तर्गत सामाजिक भूगोल Social Geography को ही महत्त्व दिया जा रहा है। वाटसन (Watson J-Wreford, 1979) ने अपनी पुस्तक Social Geography of the United States' में अमेरिकन काले लोगों की गरीबी अवस्था तथा अपराधों (Poverty Condition and Crimes) पर प्रकाश डालते हुए बताना कि यहाँ विभिन्न जाति तथा धार्मिक वर्ग इन समस्याओं के प्रति संघर्षरत हैं। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में भी समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं का अध्ययन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाने लगा है। (Davis, Richard & A Social Geography of England and Wales, 1980) साथ ही स्वीडन, नार्वे, नीदरलैण्ड, इजरायल, डेनमार्क रूस, फ्रांस, न्यूजीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों में अन्य संकाय वैज्ञानिकों के साथ भूगोलवेत्ता लोकनीतियों का निर्माण करके वहाँ उपलब्ध संसाधनों के लाभ का प्रस्ताव समाज के सभी वर्गों तक पहुँचा रहे हैं। भारत में भी तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा नियोजन से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु भूगोलवेत्ता उद्देश्यवादी प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं जो भारतीय समाज की लोककल्याणकारी नीति के अनुकूल साबित हो सकता है।

क्रान्तिकारी भूगोल (Radical Geography)

अतिवादी या मार्क्सवादी भूगोल मात्रात्मक क्रान्ति के विरोधाभाव स्वरूप विकसित हुई। यह मार्क्सवादी विचारधारा की प्रयुक्ति है। सन् 1969 में क्लार्क विश्वविद्यालय, मेसाचुसेट्स में Antipode नामक एक भौगोलिक शोध पत्रिका के प्रथम अंक में से क्रान्तिकारी भूगोल का जन्म हुआ। इसके विकास में विलियम बुंगी तथा डेविड हार्वे ने परम्परागत पूँजीवादी व्यवस्था को निरर्थक बताते हुए भूगोल को सामाजिक मूल्यों से जोड़ने की अनिवार्यता पर बल दिया। मार्क्सवादी भूगोल का प्रारम्भ करने वाला पहला विद्वान् अमरीकी भूगोलवेत्ता विलियम बुंगी (1962) रहा है। बुंगी ने सन् 1968 में सोसायटी फॉर ह्यूमन एक्सप्लोरेशन नामक संस्था की स्थापना की। इसके बाद सन् 1969 में रिचार्ड पीट (R- Peet) ने अनेक विद्यार्थियों के साथ क्लार्क विश्वविद्यालय में 'Antipode' नामक पत्रिका (Journal) का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसी समय हार्वे का मार्क्सवादी विचारधारा की ओर झुकाव हुआ जिसने सन् 1970 के दशक में एण्टीपोड को अधिक मजबूत किया। हार्वे ने सन् 1969 में 'Explanation in Geography' में सिद्धान्त निरूपण की क्षमता का आकलन तथा दिशा-निर्देशन किया। सन् 1972 में उन्होंने भौगोलिक चिन्तन में इस क्रान्ति को आवश्यक तथा उपयुक्त बताते हुए कहा कि सामाजिक दशा की निरन्तर बिगड़ती स्थिति तथा उसे नियंत्रित करने की अक्षमता भौगोलिक चिन्तन में क्रान्ति की अनिवार्यता सिद्ध करती है। हार्वे ने अनेक लेखों द्वारा पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्द्वंद्व तथा विसंगतियों पर प्रहार करते हुए सामाजिक न्याय की अनिवार्यता की भौगोलिक दृष्टिकोण से व्याख्या की। इनमें 'Social Justice and Spatial Systems (1972) Revolutionary and Counter Revolutionary Theory in Geography and the Problem of Ghetto Formation (1972) Social Justice and the City (1973) आदि उल्लेखनीय हैं। घेटो (संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो लोगों की मलिन बस्तियाँ) के सन्दर्भ में हार्वे ने कहा है कि इनकी सामाजिक दशाओं की परम्परागत ढंग से विवेचना करने की अपेक्षा भूगोलवेत्ताओं को सामाजिक भौगोलिक चिन्तन का एक नया दृष्टिकोण खोजना चाहिए।

एण्टीपोड पत्रिका के प्रथम अंक में अतिवादी भूगोल का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए इसके सम्पादक विसनर

ने लिखा था कि इसका उद्देश्य भूगोल में मूल्यों (Value) का प्रश्न उठाना है। सन् 1969 के विलियम बुंगी ने भूगोलवेत्ताओं को अन्वेषण की अपनी पुरानी क्षमता का उपयोग मानवीय-सामाजिक दशाओं के अन्वेषण में करने पर बल दिया। भूगोलवेत्ता को क्षेत्र का अवबोध या अनुभूति तभी हो सकती है, जब वह उस क्षेत्र विशेष का निवासी बन जाये तथा इसके बाद ही वह स्थानीय लोगों को आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझ सकता है। भूगोलवेत्ता को अपने देश के निर्धन एवं बेसहारा रिचार्ड पीट (J- Richard Peet, 1940-) प्रसिद्ध अमेरिकी मानव भूगोलवेत्ता जिन्होंने क्लार्क से स्नातक तथा बर्कले से पीएच.डी. की तथा अतिवादी सामाजिक एवं आर्थिक भूगोल के विशेषज्ञ रहे हैं। इन्होंने 'Radical Geography' नामक पुस्तक सम्पादित की है। Modern Geographical Thought, 1998 पुस्तक भी इन्होंने ही लिखी है। अन्वेषण यात्रा कर के क्षेत्र के लोगों के साथ संसाधन उपयोग की नियोजन रणनीति बनाये। इस तरह अतिवादी भूगोल की प्रेरणा सामाजिक दुर्दशा व सामाजिक क्षेत्रीय विषमता को नीति बनाये। साना से उदभूत साक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पूँजीवादी व्यापारी सापेक्ष वैज्ञानिक विश्लेषण एवं सिद्धान्त निरूपण को अस्वीकार करके मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित मूल्य सापेक्ष सामाजिक, ऐतिहासिक प्रक्रियात्मक विवेचन अतिवादी भूगोल का अभीष्ट है। इसलिए अतिवादी दृष्टिकोण (भूगोल) पूर्व पूँजीवादी देशों में प्रचलित आदर्श वैज्ञानिकतावादी रुझान व आधारपरक विश्लेषण को त्याग कर ऐतिहासिक भौतिकतावादी दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा प्रदान करता है। जिसकी सहायता से विज्ञान को समाज से जोड़ने वाली कड़ियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अतिवादी या क्रान्तिकारी भूगोल की पृथक् रूप में विस्तृत विवेचना सर्वप्रथम अमेरिकी भूगोलवेत्ता सेट (1- Richard Peet) ने सन् 1973 में अपनी पुस्तक 'Radicalism in Geography' में की। इसके प्रतिपादन की पृष्ठभूमि पूँजीवादी क्षेत्रीय विज्ञानों तथा मात्रात्मक क्रान्ति के विरोध में तैयार हुई। क्रान्तिकारी भूगोलवेत्ताओं का मानना था कि पृथ्वी पर मानव द्वारा मानव का तथा मानव द्वारा पर्यावरण का शोषण किया जा रहा है, जिसके लिए निजी व्यवसायी तथा आर्थिक वर्ग उत्तरदायी है। आहेरू पूँजीवाद का अन्त करके मानव कल्याण की स्थापना की जानी चाहिए। एक वर्ग से दूसरे वर्ग की असमानताओं के विनाश की प्रक्रिया पर बल दिया जाना चाहिए। (Antipode 1969)। क्रान्तिकारी भूगोल का विकास क्रमिक रूप से दो चरणों में हुआ प्रथम-चरण (1969-73) में, सामाजिक समस्याओं के भौगोलिक पक्ष का विश्लेषण किया गया, किन्तु विश्लेषण की पृष्ठभूमि सम्प्रति राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था में विकसित सिद्धान्त एवं उपागम ही रहे। सन् 1972 के उपरान्त पूँजीवादी व्यवस्था से सम्बन्धित सिद्धान्तों एवं उपागमों को चुनौती देते हुए यह स्वीकार किया गया कि सामाजिक उत्पादन के वितरण का प्रश्न सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। इस सन्दर्भ में हार्वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संयुक्त राज्य अमेरिका को नगरीय मलिन बस्तियों (घेटी) की समस्या का समाधान भूमि उपयोग के नियमन की बाजार प्रतिस्पर्धा प्रणाली के उन्मूलन द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार क्रान्तिकारी भूगोल के उद्देश्य पूर्ति के लिए एक बिल्कुल पृथक् दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक धरातल की खोज होने लगी, जिसके लिए मार्क्स के दर्शन पर आधारित सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाने लगे। इस सन्दर्भ में हार्वे ने अपनी पुस्तक 'The Limit to Capital' (1982) में मार्क्स के दर्शन के सन्दर्भ में स्थानिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपागमों की विस्तृत चर्चा की है। संक्षेप में, क्रान्तिकारी भूगोल जीवन के गुणात्मक स्तर (Quality of Life) में व्याप्त क्षेत्रीय असमता के भू-वैन्यासिक स्वरूप, संरचनात्मक आधार तथा मौलिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करके उसे न्यूनतम होने के दिशा निर्देश देता है। इस दृष्टि से किसी क्षेत्र के भू-वैन्यासिक संगठन को वहाँ रहने वाले लोगों की सामाजिक संरचना से पृथक् रूप में नहीं देखा जाता है। ये तो भू-वैन्यासिक संगठन तथा सामाजिक संरचना के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध का स्थानिक अध्ययन मात्र ही न करके इस सम्बन्ध का मात्र समाज के कल्याण की दृष्टि से मूल्यांकन करता है।

मार्क्स ने राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम द्वारा संसाधनों में मूल्य वृद्धि को पूँजीपति द्वारा है। इस पैनी तथा बुद्धिमान संस्था अन्तर्विरोधों पर प्रकाश डालते हुए इस संचय तथा वृद्धिमान पूँजी संचय से श्रम के शोषण की प्रक्रिया का गहन विवेचन किया सम्भावी बताया। इन विरोधों का समाधान तभी होगा जब साम्यवादी व्यवस्था स्थापित होने लगा जिससे इन विरोधों का समान अधिकार होगा। डोरीन मासे (May, D-, 2005) के 2005 में प्रकाशित पुस्तक 'For Space' में मार्क्सवादी भूगोल का समर्थन किया है।

इस अतिवादी भूगोल की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. अतिवादी भूगोल या मार्क्सवादी भूगोल समन्वित विज्ञान का वह अभिन्न अंग है जिसका उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो जिसमें सम्मिलित सभी व्यक्तियों का संसाधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण हो।
2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विश्लेषण विधि को अपनाया जाता है जिससे बाह्यकृति एवं वास्तविक तत्त्व में विभेद किया जा सके।
3. अतिवादी भूगोलवेत्ता किसी विषय का अध्ययन निरर्थक प्रतिरूपों से हटकर ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित करना चाहते हैं जबकि व्यावहारिक स्तर पर वे ऐसी संगठनात्मक व्यवस्था की खोज हो जो सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्षम हो। वे भूगोलवेत्ता क्षेत्रीय विभिन्नता के प्रति जिज्ञासा मात्र न दर्शाकर क्षेत्रीय असमानता की समस्या का निराकरण करने को उत्सुक है।
4. अतिवादी भूगोल का नया स्रोत अराजकतावादी दर्शन है जिसका लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत करना है जिसमें राज्य में उत्पीड़नात्मक सत्ता की आवश्यकता समाप्त हो जाए। पूँजीवादी व्यवस्था अल्पकालिक प्रतिस्पर्द्धा मूलक व्यवस्था का प्रतीक है जबकि अराजकतावाद की अवधारणा की मान्यता यह है कि मानव समुदाय अपनी पूरी क्षमता का विकास तभी कर सकता है जब वह विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों में संलग्न हो तथा उसका प्राकृतिक वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध तब होगा जब उत्पादन छोटी-छोटी इकाइयों में हो और उसका समस्त नियंत्रण संचालन लघुमानव समुदाय कर सके।

क्रान्तिकारी भूगोल यद्यपि सामाजिक सिद्धान्तों को समझाने में एक वैकल्पिक आधार अवश्य प्रदान करता है, लेकिन भूगोलशास्त्र स्थानिक विज्ञान के रूप में स्थापित है। स्थानिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त प्रतिरूपों का भूगोल में विशेष महत्त्व होता है। क्रान्तिकारी भूगोल के समर्थक कभी-कभी कालिक (Temporal) विश्लेषण पर अधिक बल देते हुए इतिहास के निकट पहुँच जाते हैं। फिर भी यह सत्य है कि भूगोल में आयी मात्रात्मक तथा प्रत्यक्षवादी (Positivist) क्रान्ति के कारण सामाजिक आधार के ह्रास पर व्यवहारवाद तथा मानववादी दृष्टिकोण के सदृश्य क्रान्तिकारी विचारधारा ने भी नियंत्रण लगाने का सराहनीय कार्य किया है।

इस प्रकार क्षेत्रीय विषमता को खत्म करने के लिए डेविड हार्वे ने तीन प्रकार के सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट किया है। प्रथम प्रतिक्रांतिकारी या प्रति अतिवादी द्वितीय, यथास्थितिपरक तथा तृतीय अतिवादी। प्रति अतिवादी सिद्धान्त समस्या के व्यक्तिगत स्तर पर निराकरण करने को महत्त्वपूर्ण मानते हैं जिसमें समाज का संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण न होकर व्यक्तिपरक विश्लेषण होता है। ऐसी नीति जो व्यक्तिगत स्तर पर संसाधनों की सुलभता के स्तर में परिवर्तन करती है। वह केवल सीमित मात्रा में प्रभावित कर पाती है जिसके कारण समस्या के प्रति जागरूकता कम होकर बिखर जाती है। फलस्वरूप लोगों का ध्यान मूल समस्या से परे काल्पनिक प्रश्नों की ओर आकर्षित हो जाता है। यथास्थितिपरक सिद्धान्त में सामाजिक समस्याओं का निराकरण सरकारी तंत्र के माध्यम से होता है जिसके तहत आर्थिक प्रदेशों या सामाजिक वर्गों में विद्यमान विषमता को कम करना सरकारी व्यवस्था की जिम्मेदारी होती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक प्रक्रियाओं की पुनःस्थापना को तो महत्त्व दिया जाता है लेकिन यह जिम्मेदारी राजनीतिक तंत्र को दे दी जाती है। इस प्रकार ये दोनों ही सिद्धान्त समस्या के केवल मात्रात्मक स्वरूप को ही परिवर्तित कर सकते हैं, गुणात्मक को नहीं। इसलिए इस समाज के आधारभूत संरचनात्मक अन्तर्विरोधों पर आक्रमण नहीं कर सकते हैं। क्रांतिकारी या अतिवादी सिद्धान्त इस मूल सामाजिक समस्या की परतें उखाड़ देता है, जिससे इसके उन्मूलन का रास्ता निकलता है। स्पष्ट है

अतिवादी या समाजवादी भूगोल ही क्षेत्रीय सामाजिक विषमता के संरचनात्मक आधार पर विश्लेषण करके इस सन्दर्भ में विषमता उन्मूलन सम्बन्धी मार्गदर्शन प्रदान करता है।

समाजवादी भूगोल किसी क्षेत्र के भू-वैन्यासिक संगठन को वहाँ रहने वाले लोगों की सामाजिक संरचना से विलग करके नहीं देखता। वह भू-वैन्यासिक संगठन और सामाजिक संरचना को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित मानता है तथा इस सम्बन्ध का मूल्यांकन मानव समाज के कल्याण की दृष्टि से करता है।

मार्क्सवादी दर्शन का अनुसरण करते हुए समाजवादी भूगोलवेत्ताओं ने समाज में व्याप्त क्षेत्रीय असमानता में अतिवृद्धि के लिए उस बाजार-प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रक्रिया को उत्तरदायी माना जिसके द्वारा संसाधनों का स्वामित्व कुछ व्यक्तियों, वर्गों अथवा क्षेत्रों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है तथा अन्य मात्र श्रम विक्रेता बनकर रह जाते हैं।

विश्व स्तर पर विकसित और विकासशील देशों के मध्य जीवन-स्तर में खाई होना इसी प्रक्रिया का

परिणाम है। विकासशील देशों में भी कुछ गिने-चुने नगरों एवं देहाती क्षेत्रों के मध्य भी लोगों के जीवन-स्तर में उतनी ही असमानता व्याप्त है। उदाहरणार्थ मुम्बई जैसे महानगर में निवास करने वाले मानव समाज के कुछ वर्ग जैसे राजनेता, उद्योगपति तथा जनसाधारण के मध्य उतनी ही विषमता है। इसका कारण वही प्रक्रिया है जिसके चलते संसाधन कुछ ही व्यक्तियों, वर्गों या क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाती है। अवशेष क्षेत्रों के साधारण लोग अपने भरण-पोषण के लिए सिर्फ अपने श्रम को संसाधन स्वामियों के हाथ बेचने पर आश्रित रहते हैं।

इस प्रकार आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के मूल में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की दो मौलिक त्रुटियाँ हैं। पहली त्रुटि व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार की मान्यता जो बाजार में व्यक्ति विशेष की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को बहुत बढ़ा देती है। जिसका संसाधन (भूमि, पूँजी आदि) पर नियंत्रण हो जाता है वही श्रमिक वर्ग का शोषण करने एवं पूँजी के एकत्रीकरण से अपनी क्षमता में वृद्धि करने में सक्षम होता है। दूसरा भौगोलिक सन्दर्भ में बाजार प्रक्रिया द्वारा उत्पादन के सभी साधन वही एकत्र होने लगते हैं जहाँ अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस प्रक्रिया में पूँजी तथा श्रम दोनों ही बड़े नगरों में अवस्थिति में लाभ को बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भू-वैन्यासिक क्रोड़-उपान्त तंत्र में परिणित हो जाता है और इस प्रकार क्षेत्रीय असमता की समस्या हर स्तर पर प्रकट हो जाती है। इस प्रकार समाजवादी भूगोल पूँजीवादी व्यवस्था में निहित इसी अन्तर्द्वन्द्व एवं प्रक्रिया पर चोट करता है। इस प्रकार अतिवादी अथवा समाजवादी भूगोल सामाजिक मूल्यों का क्रोड़ है।

भूगोल में अपवादवाद (Exceptionalism in Geography)

वर्तमान में प्रगतिशील ज्ञान व्यवस्था में प्रत्येक विषय अपनी अवस्थिति तलाशता है। इस दृष्टि से भूगोलवेत्ताओं के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न आया तथा इसी दिशा में सोच का परिणाम अपवादवादी दृष्टिकोण का विकास रहा है। इससे पूर्व अल्फ्रेड हेटनर द्वारा प्रचलित विचार क्षेत्रीय भिन्नता एवं प्रादेशिक भूगोल को शेफर महोदय ने नकार दिया। शेफर के अनुसार पृथ्वी तल की विभिन्न इकाइयों को अनूठा (Unique) कहना सार्थक नहीं है, इससे हम भूगोल को विज्ञानों की श्रेणी में नहीं ला सकते हैं।

अपवादवाद एक ऐसा विश्वास है जिसके अनुसार इतिहास और भूगोल अपने आपको व्यवस्थिति विज्ञान माने जाने वाले विषयों से भिन्न अपवादनात्मक अवस्था में पाते हैं। भूगोल का इतिहास के साथ ऐसे सामूहिकीकरण के उपरान्त विभिन्न भूगोलविदों ने भूगोल विषय की प्रकृति प्राप्त करने के लिए दृढ़ता से कही गई समानताओं की ओर आकर्षित किया था। यद्यपि यह विचार सर्वप्रथम काण्ट के चिन्तन में मिलता है लेकिन अपवादवाद शब्द सर्वप्रथम सन् 1953 में शेफर महोदय ने दिया था। शेफर के रिचार्ड हार्टशोर्न की पुस्तक 'The Nature of Geography' का आलोचनात्मक विश्लेषण कर सन् 1953 में अनाल्स ऑफ एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन ज्योग्राफर्स (Annals of Association of American Geographers, AAAG) के खण्ड 43 में भूगोल में अपवादवाद के विचार का प्रकाशन किया जिससे तत्कालीन भूगोल जगत् ने मानव भूगोलवेत्ताओं की नवीन पीढ़ी के लिए एक संगठित होने का प्रयास बताया था।

शेफर द्वारा प्रकाशित शोध-पत्र हेटनर और अन्य लोगों के कार्यों की हार्टशोर्न द्वारा की गई समीक्षा के लिए एक चुनौती था। शेफर ने स्पष्ट किया था कि भूगोल का उद्देश्य तत्त्वों का अध्ययन नहीं है, परन्तु तत्त्वों के क्षेत्रीय वितरण से निकले प्रारूपों का नियम है। ये प्रारूप नियम (Pattern Laws) अन्य समाज विज्ञानों के प्रक्रिया नियमों (Process Laws) से भिन्न है, क्योंकि प्रारूप नियम परिघटनाओं (Phenomena) में निहित प्रारूपों के कारणों पर आधारित होते हैं जबकि प्रक्रिया नियम केवल यह स्पष्ट करते हैं कि घटनाएँ किस प्रकार घटती हैं। शेफर ने अपने लेख में पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों की आलोचना की। वास्तव में यह शेफर का अपवादवाद का विचार हार्टशोर्न की पुस्तक भूगोल की प्रकृति में प्रतिपादित क्षेत्रीय संकल्पनाओं की कमियों एवं क्षेत्रीय इकाइयों के अध्ययन के विज्ञान विरोधी दृष्टिकोण पर आधारित है। इस विचार के बाद ही हार्टशोर्न-शेफर विवाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके तहत सन् 1955 में हार्टशोर्न ने शेफर की क्षेत्रीय अध्ययन सम्बन्धी आपत्तियों का उत्तर दिया।

शेफर ने पहले विज्ञान की प्रवृत्ति की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद में यह तर्क दिया कि भूगोल एक सम्पूर्ण विज्ञान के रूप में व्यवस्थित विज्ञानों के निष्कर्षों को एक साथ रखता है। यह मात्र एक घमण्ड है, क्योंकि किसी भी अवस्था में उसका परिणाम नवीन एवं गहरी अन्तर्दृष्टि प्रारम्भ नहीं करता है। विज्ञान की

विशेषताएँ उसकी व्याख्याओं में होती हैं और इन व्याख्याओं के लिए नियम आवश्यक हैं। तथ्यों के व्याख्या व पहचान करने के लिए नियमों के उदाहरण के रूप में पद्धतियों का वर्णन आवश्यक है। शेफर ने स्पष्ट किया कि जिन नियमितताओं का वर्णन किया जाता है वे स्थानिक प्रतिमान Spatial Pattern के रूप में होता है इसलिए भूगोल को विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाना तो पृथ्वी तल के स्थलाकृतिक लक्षणों के स्थानिक वितरण के नियमों के सूत्रण से संचालित होना चाहिए। इस प्रकार यह स्वयं तथ्य न होकर तथ्यों का स्थानिक व्यवस्थापन है। उनके अनुसार भूगोलवेत्ताओं के लिए नियम समान कथन के लिए खोज का विषय होना चाहिए और तभी अन्य प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामाजिक विज्ञानों में अपनायी जाने वाली प्रक्रियाओं से भौगोलिक प्रक्रियाएँ भिन्न नहीं होगी।

पारम्परिक विचार के अनुसार भूगोल स्थानिक व्यवस्थापन (Spatial Arrangement) का विज्ञान है। इस परिभाषा के विरुद्ध तर्क ही भूगोल में अपवादवाद का विचार कहलाता है। इस विचार के अनुसार भूगोल की क्रिया पद्धति अन्य विज्ञानों की क्रिया पद्धति से मेल नहीं खाती है, क्योंकि इसकी विषयवस्तु अनूठे या अद्वितीय स्थानों (Unique Places) और प्रदेशों के कारण भिन्न है। जबकि भूगोल की इतिहास से तुलना की जाती है तथा इतिहास अद्वितीय समय का अध्ययन है। शेफर के अनुसार भूगोल अद्वितीय तथ्यों (Unique Phenomenon) पर ध्यानाकर्षित करने वाला अनूठा विषय नहीं है। जबकि सभी विज्ञान अनूठी घटनाओं (Unique Events) का वर्णन करते हैं, जो व्यवस्थित विज्ञानों के समग्र नियमों (Integration of Laws) द्वारा वर्णित होते हैं। इस प्रकार भूगोल में अपवादवाद इसकी कार्य पद्धति पर आधारित था। इसमें हार्टशोर्न और शेफर दोनों ही मूलतः काण्ट, हम्बोल्ट तथा रिटर आदि जर्मन स्रोतों पर निर्भर रहे और दोनों ने ही भूगोलवेत्ताओं को स्थानिक प्रारूप की ओर निर्देशित किया। शेफर ने इस तक रहे भूगोल-वेत्ताओं को क्रिस्टालर, वॉन्थ्यूनेन और लॉश के विचारों को समझाने में अग्रणी रहा लेकिन इस प्रयास से हार्टशोर्न सहमत नहीं था लेकिन यह मानव भूगोल का सन् 1960 के दशक में मुख्य आधार बना।

इस विचार के उपरान्त अमेरिका एवं यूरोप में भूगोलविदों की रुचि प्रादेशिक भूगोल से हटकर क्रमबद्ध भूगोल की ओर आकर्षित हुई। भूगोल में केवल क्षेत्रीय विभिन्नताओं के वास्तविक विवरण में विद्वानों को नवीनता व अनूठी बात ही नहीं दिखाई दी वरन् विद्वान् भूगोल को सिद्धान्तपरक स्तर का वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने की ओर भी अग्रसर होने लगे।

स्थानिक विश्लेषण Spatial Analysis

अवस्थितिक विश्लेषण (Locational Analysis) में प्रयुक्त मात्रात्मक तकनीकों या प्रक्रियाओं (Quantitative Procedures) को स्थानिक विश्लेषण कहा जाता है। इसे अनेक बार अवस्थिति विश्लेषण के पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। अनविन (Unwin] D-I-, 1981) ने स्थानिक विश्लेषण को मानचित्र पर बिन्दुओं, रेखाओं, क्षेत्रों (Areas) और धरातलीय व्यवस्थापन (Surface Arrangement) के अध्ययन के रूप में माना है। स्थानिक विज्ञान के समर्थक एवं प्रचारक मानव भूगोल को सामाजिक विज्ञानों का ऐसा संघटक मानते हैं जो मूलभूत चर के रूप में स्थान की भूमिका पर केन्द्रित और सामाजिक संगठन तथा परिचालन व उसके विभिन्न सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करता है। मात्रात्मक क्रान्ति के दौरान स्थानिक विश्लेषण को महत्त्व मिला। यह प्रत्यक्षवाद के दर्शन से निकटता से सम्बद्ध है। स्थानिक विश्लेषण का लक्ष्य स्थानिक वितरण, स्थानिक संरचना और संगठन तथा स्थानिक सम्बन्धों का सूक्ष्म परिमाणात्मक वर्णन करके उसके द्वारा भविष्यवाणी शक्ति के साथ व्यापकीकरण करना है। यह व्यापकीकरण दिशा, दूरी एवं सम्बन्ध पर आधारित है। स्थानिक विश्लेषण में अनेक भूगोलवेत्ता, भौगोलिक उदाहरणों पर केवल 'सामान्य रेखीय प्रतिरूप' (General Linear Model) से प्राप्त प्रविधियों को लागू करते हैं, जबकि कुछ अन्य भूगोलवेत्ता ये कहते हैं कि स्थानिक आँकड़े विशेष सांख्यिकीय समस्या, जैसे कि स्थानिक स्व-सहसम्बन्ध (Spatial Autocorrelation) उपस्थित करते हैं जिसका अर्थ है प्रक्रियाओं का विकसित होना विशेषकर उनके विपरीत को अभिकल्पित किया जाना (Haining] R-P. 1990)

उद्देश्यवाद (Pragmatism)

यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण है जिसे उपयोगितावाद भी कहते हैं। इस शब्द को प्रचलित करने का श्रेय विलियम जेम्स को है। जेम्स के अनुसार 'Pragmatism' शब्द ग्रीक भाषा के 'Pragma' से निकला है, जिसका

अर्थ होता है— व्यवहार तथा उपयोगिता। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग चार्ल्स सैण्डर्स पर्स ने किया था। पर्स के अनुसार हमारे सभी विश्वास कार्य करने के साधन—नियम हैं अतः किसी विचार के अर्थ को समझने के लिए हमें यह अवश्य देख लेना चाहिए कि वह किस प्रकार के आचरण—व्यवहार को जन्म दे रहा है। जेम्स को पर्स के इन्हीं विचारों में उपयोगितावाद का उद्भव दिखाई देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है हमको विचार व्यवहार, कार्य एवं आचरण पर बल देना है वह उपयोगितावादी हो जाता है। इसका कारण है उपयोगितावाद का दर्शन 'व्यवहार' को केन्द्रीय स्थान देता है। विचारों को अनुकूलता भी व्यवहार पर आधृत हो जाती है। जेम्स कहते हैं कि इस प्रकार की वैचारिक दृष्टि कोई सर्वथा नवीन दृष्टि नहीं है, उनके अनुसार तो ऐसी दृष्टि सुकरात, अरस्तू, लॉक, बर्कले, ह्यूम, काण्ट आदि विचारकों में भी विद्यमान थी। जेम्स के अनुसार यह पुरानी शराब नई बोतल में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। लेकिन हम यहाँ जिस दार्शनिक विचारधारा को समझने का प्रयास कर रहे हैं, वह एक विशिष्ट पृष्ठभूमि में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल में प्रकाश में आई थी इसलिए यहाँ प्राचीन विचारकों का विवरण देना प्रासंगिक नहीं होगा। उपयोगितावाद प्रत्यक्षवाद का ही संशोधित रूप है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग पर बल दिया जाता है लेकिन उपयोगितावाद मानवीय समस्याओं के समाधान तलाशने का प्रयास करता है तथा समाज की व्यावहारिक समस्याओं को हल करने तथा भूगोल की वास्तविकता को जानने के लिए मूल्य आधारित क्रिया—पद्धति का उपयोग करते हैं जिसमें मानवीय व्यवहार, विश्वास तथा मानकों को सम्मिलित करते हैं। भूगोल में यह दृष्टिकोण नियोजन के लिए विचार की अपेक्षा नियोजित क्रिया में विशेषीकृत है। भूगोल में उद्देश्यवादी अथवा उपयोगितावादी दृष्टिकोण के उपयोग से व्यावहारिक भूगोल को बल मिला है। मानव भूगोलवेत्ता इस बात से सहमत हैं कि मानवीय व्यवहार (आचरण), रुचियाँ इच्छाएँ, पूर्वाग्रह और समूह मूल्यों में स्थान और समय के साथ अन्तर आ जाता है। उद्देश्यवाद का मूल उद्देश्य मानवीय तत्त्व को अधिक महत्त्व देना है। इसीलिए जेम्स (James] W-, 1932) ने कहा है कि हमारे विचार हमारे कार्यों को निर्धारित करते हैं और हमारे कार्य यथार्थ (विश्व) की पूर्व प्रकृति को निर्धारित करते हैं। जेम्स के इस विचार में मानव केन्द्र बिन्दु है। साथ ही ये विचार भूगोल को फ्रांसीसी विचारधारा द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से भी समानता रखते हैं जिनमें ब्लॉश ने मानवीय कार्यों को महत्त्वपूर्ण माना था। इस विवेचन से उद्देश्यवादी भूगोल के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्यों की पहचान की गई है—

- 1) भौगोलिक स्थान ज्ञान तथा भ्रान्ति का मिश्रण है।
 - 2) भौगोलिक स्थान परिवर्तनशील है।
 - 3) भौगोलिक स्थान समय से होकर मानव तत्त्वों की एक अभिव्यक्ति है।
 - 4) भौगोलिक स्थान व्यावहारिक मानवीय समस्याओं के हल के परिणाम के रूप में संरचित एवं पुनर्संरचित है।
- (अ) स्थानिक यथार्थता मानवीय अनुभवों का मिश्रण है।
- (ब) भौगोलिक अध्ययन स्थान में मानव की व्यावहारिक समस्याओं से सम्बन्धित होता है तथा वैज्ञानिक विधियों के उपयोग द्वारा उनका अध्ययन किया जा सकता है।

भूगोल में स्पष्टीकरण (Explanation in Geography)

भूगोल विषय में जहाँ भी स्पष्टीकरण या व्याख्या करने का प्रयास किया गया है, वे अस्थायी और अवैज्ञानिक स्वरूप में हो रहे हैं। इस प्रश्न का हार्वे ने ध्यानपूर्वक पूर्णरूप से इस पर विचार किया। उसने इसकी व्याख्या इस प्रकार से की है। हार्वे ने छः प्रकार की वैज्ञानिक व्याख्या को मान्यता दी है, इसमें क्रिया—पद्धति (Methodological) विवरण और आनुभाविक अध्ययन से व्यापकीकरण को सम्मिलित किया गया है। हार्वे द्वारा भूगोल में सामान्य और आनुभाविक नियमों की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है।

- (1) **ज्ञानात्मक वर्णन (Cognitive Description)** ज्ञानात्मक वर्णन के अन्तर्गत आँकड़ों का एकत्रीकरण व्यवस्था और वर्गीकरण सम्मिलित किया जाता है। कोई भी सिद्धान्त इस प्रकार की प्रक्रिया में स्पष्टता से सम्मिलित नहीं होता है, किन्तु यह देखा जाना महत्त्वपूर्ण है कि किसी प्रकार का सिद्धान्त इसमें अन्तर्निहित होता है। इस प्रकार से वर्गीकरण में किसी प्रकार की संरचना सम्बन्धी पूर्व धारणाएँ सम्मिलित रहती हैं और यह धारणाएँ वास्तविकता में प्रारम्भिक सिद्धान्त की होती हैं। किसी भी विषय के

प्रारम्भिक काल में इस प्रकार के सिद्धान्त विकास में धारणाएँ आकारहीन और अस्पष्ट हो सकती हैं।

- (2) **आकृतिमान विश्लेषण (Morphometric Analysis)** आकृतिमान (Morphometric) विश्लेषण एक प्रकार का ज्ञानात्मक वर्णन ही है। इसमें गुण-धर्म भाषा की अपेक्षा स्थान-समय भाषा सम्मिलित रहती है। आकृतिमान विश्लेषण इस प्रकार एक ढाँचा प्रस्तुत करता है जिसमें भूगोलवेत्ता स्थान में आकृतियों और आकारों का परीक्षण करता है। आकृतिमान विश्लेषण भविष्यवाणी (Predictive) और अनुकरण (Simulation) प्रतिमानों के निश्चित प्रकारों की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार के विश्लेषण में माप पर जोर दिया जाता है जबकि भूदृश्य के आकृति विज्ञान का अध्ययन प्रायः ज्ञानात्मक वर्णन का रूप ले लेता है। अवस्थितीय सिद्धान्तों और केन्द्रीय स्थान (Central Place) इस प्रकार के विश्लेषण का परिणाम होते हैं। इस प्रकार की ज्यामितीय भविष्यवाणी भूगोल में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होती जा रही हैं।
- (3) **कार्य-कारण विश्लेषण (Cause and Effect Analysis)** कार्य-कारण विश्लेषण इस अनुमान पर विकसित होता है कि पूर्व के कारणों से प्रेक्षित तथ्यों की व्याख्या की जा सके। हम कारणात्मक सम्बन्धों की ओर देखते हैं जो उनके साधारणतम रूप में होते हैं। 'ए' का कारण 'बी' को प्रभावित करता है। इसका अर्थ यह होता है कि कारण कभी भी 'ए' का परिणाम नहीं हो सकता। कारणात्मक नियम परिकल्पित निगमनात्मक विधि (Deductive Method) से खोजे जा सकते हैं, अथवा सामान्यतः किसी प्रदेश में विभिन्न तत्त्वों के आँकड़ों की तुलना से खोजे जा सकते हैं। भारत का काली मिट्टी प्रदेश (महाराष्ट्र, गुजरात और मध्य प्रदेश) को दिखाने वाले मानचित्र की तुलना कपास उत्पादन करने वाले क्षेत्रों और उत्पाद प्रतिमान वाले मानचित्र से करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि काली मिट्टी के क्षेत्रों और कपास के उत्पादन में निकट का सम्बन्ध है। इस उदाहरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काली मिट्टी कपास के उत्पादन को प्रभावित करती है, किन्तु कपास को प्रति एकड़ अधिक उपज क्षेत्र की मिट्टी को काली नहीं बनाती है। यह कारणात्मक सम्बन्ध: यद्यपि सरल प्रक्रिया नहीं है और इसीलिए बहु प्रतीपगमन (Multiple Regression) अथवा गुणक विश्लेषण (Factor Analysis) की आवश्यकता होती है।
- (4) **स्पष्टीकरण के कालगत रूप (Temporal Modes of Explanation)** पार्थिक कालिक विश्लेषण को ऐतिहासिक विश्लेषण भी कहा जा सकता है। यह विश्लेषण कार्य-कारण प्रकार का विश्लेषण होता है जो लम्बे समय की अवधि द्वारा स्थापित किया जाता है। इसमें यह माना जाता है कि एक विशेष घटना के तथ्यों के समूह की उत्पत्ति और आगामी विकास की व्याख्या प्रक्रिया नियमों के प्रभाव द्वारा की जा सकती है। डार्वी के शब्दों में, 'भौगोलिक अध्ययन का आधार भूआकृतिकी और ऐतिहासिक भूगोल में निहित है। जो कि दोनों ही व्याख्या के कालिक ढंग द्वारा प्रभावित थे। पार्थिव दीर्घ कालिक विश्लेषण अनेकों तथ्यों के स्थानिक वितरण को समझने में सहायता करते हैं किन्तु भौगोलिक स्पष्टीकरण के लिए यह एकमात्र पद्धति नहीं मानी जा सकती है। इतिहास को कारणात्मक श्रेणी के रूप में देखा जा सकता है जो कि अस्पष्ट व्याख्या से आरम्भ हुआ इतिहास का ऊषा काल से आरम्भ हुई और आज समाप्त हुई। अभ्यास में इस प्रकार की कारणात्मक श्रेणी को समझना कभी सम्भव नहीं होता, इसलिए विश्लेषण को निश्चित समय में सीमित किया जाना चाहिए।
- (5) **कार्यात्मक और पारिस्थितिकीय विश्लेषण (Functional and Ecological Analysis)**—प्रत्यक्षवादियों (Positivists) द्वारा तात्त्विक (Metaphysical) और मानकी (Normative) साज-सामान से बचाने के लिए कार्य-कारण विश्लेषण को त्याग दिया गया। कार्य-कारण सम्बन्ध के विरोध के कारण कार्यात्मक कर्मोपलक्षी विश्लेषण विकसित हुआ था कार्यात्मक कर्मोपलक्षी विश्लेषण तथ्यों की भूमिका जो वे एक विशेष संघटन में अदा करते हैं, का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। नगरों का विश्लेषण उनके द्वारा आर्थिक ढाँचे के लिए किए जाने वाले कार्यों के आधार पर किया जा सकता है। इस प्रकार नगरों के कार्यात्मक (Functional) वर्गीकरण का विकास हुआ। नदियों का विश्लेषण उनके द्वारा अपरदन की भूमिका के आधार पर किया जा सकता है आदि। पारिस्थितिकी और कार्यात्मक कर्मोपलक्षी विचारधारा का भूगोल में विशेष महत्व है। वर्तमान सन्दर्भ में अनेक भूगोलवेत्ता हैं जो पारिस्थितिकीय विचारों को भौगोलिक विश्लेषण का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार मानते हैं।

12.7 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल, या आदर्शवाद व्याख्या कीजिये
- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल, भूगोल में आदर्शवाद में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को स्पष्ट कीजिये।
- भूगोल में कल्याणकारी भूगोल, या भूगोल में आदर्शवाद की विशद विवेचना कीजिये
- भूगोल में क्षेत्रीय विभिन्नता की विशद विवेचना कीजिये
- स्थानिक संगठन की विशद विवेचना कीजिये
- अतिवादी भूगोल की विशद विवेचना कीजिये
- भूगोल में अपवादवाद की विशद विवेचना कीजिये
- स्थानिक विश्लेषण की विशद विवेचना कीजिये
- उद्देश्यवाद की विशद विवेचना कीजियें

12.8 संदर्भ/उपयोगी पुस्तकें

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई-13 : भूगोल में प्रत्यक्षवाद, मानववाद, व्यवहारवाद

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 प्रस्तावना
- 13.1 उद्देश्य
- 13.2 मानववादी भूगोल (**Humanistic Geography**)
- 13.3 मानववादी भूगोल की कार्यपद्धति (**Procedure of Humanistic Geography**)
- 13.4 भूगोल में प्रत्यक्षवाद (**Positivism in Geography**)
- 13.5 आचरणात्मक भूगोल (**Behavioural Geography**)
- 13.6 आचरणात्मक भूगोल का विकास (**Development of Behavioural Geography**)
- 13.7 सारांश
- 13.8 शब्द सूची
- 13.9 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 13.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा हेतु)
- 13.11 सन्दर्भ/उपयोग पुस्तकें

13.0 प्रस्तावना

इकाई 13 में परास्नातक स्तर पर मानववाद, प्रत्यक्षवाद, आचरणवाद की व्याख्या की गई इस इकाई में यह बताया गया है की भूगोल में प्रत्यक्षवाद का विकास किन परिस्थितियों में हुआ। प्रत्यक्षवाद की संकल्पना का विकास फ्रांसीसी क्रांति के बाद किया था इस क्रांति से समाज में एक अशांति का वातावरण बना हुआ था प्रत्यक्षवादियों ने इसे नकारात्मक माना। इनका विचार था कि प्राकृतिक विज्ञानों के साथ सामाजिक संबंधों का भी ज्ञान होना चाहिए इस तरह से भूगोलवेत्ताओं ने इन बिंदुओं को इस इकाई में शामिल किया मानववाद और प्रत्यक्षवाद के विपरीत विचारधारा उत्पन्न हुई जिसे मानववादी भूगोल कहा गया और इस विचारधारा का उद्भव वर्ष 1960 के बाद हुआ इस विचारधारा में मानवीय मूल्य मानव को केंद्रीय विषय के रूप में मानकर एक सक्रिय कारक रूप में मानकर भूगोल के अध्ययन की वकालत की गई इसके अनेक पक्षों का अध्ययन इस इकाई में किया गया है जिस परास्नातक स्तर का शिक्षार्थी मानववाद, प्रत्यक्षवाद, आचरणवाद को सविस्तार समझ सके उसका विश्लेषण कर सके उसकी व्याख्या करें भूगोल ऐसा विषय है जिसमें न केवल प्राकृतिक बल्कि मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्रियाकलापों के अध्ययन का विशेष महत्व होता है और भूगोल इन्हीं विशेषताओं के कारण अन्य सामाजिक विषयों से अपनी अलग पहचान रखता है इन अनेक बिंदुओं का विश्लेषण प्रस्तुत इकाई में किया गया है जैसे शिक्षार्थी इसका अध्ययन कर सके।

13.1 उद्देश्य

- मानववादी भूगोल व्याख्या कर सकेंगे
- मानववादी भूगोल की कार्यपद्धति की व्याख्या कर सकेंगे
- भूगोल में प्रत्यक्षवाद व्याख्या कर सकेंगे
- आचरणात्मक भूगोल व्याख्या कर सकेंगे
- आचरणात्मक भूगोल के विकास की व्याख्या कर सकेंगे

13.2 मानववादी भूगोल (Humanistic Geography)

मानववादी भूगोल का विकास मात्रात्मक भूगोल तथा प्रत्यक्षवाद (Positivism) के विरुद्ध प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है, जो मनुष्य की जागरूकता, मनुष्य की चेतना और मानव द्वैत पर बल देता है। यह दृष्टिकोण सन् 1960 के दशक के अन्त में आरम्भ हुआ। मानववादी भूगोलवेत्ता मात्रात्मक तकनीकी को अस्वीकार करते हुए मानते हैं। ये मानवीय विश्व एवं मानवीय मुद्दों जैसे सामाजिक संस्थाओं, मूल्य व परम्पराओं के महत्त्व को नहीं समझते हैं। इस प्रकार मानववादी दृष्टिकोण मानवीय चेतना, (जागरूकता) एवं क्रियात्मकता में सक्रिय एवं केन्द्रीय भूमिका एक मानव अभिकर्ता के रूप में प्रदान करता है। साथ ही मानवीय समाज के अस्तित्व में संचार को एक मूलभूत कारक माना है। ये मुख्य रूप से सहभागिता (Participation), अवक्षेपण (Observation), चर्चा तथा गुणात्मक दृष्टिकोण पर बल देता है। मानववादी दृष्टिकोण में मानव को कदापि आर्थिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। साथ ही भूगोल को भू-विज्ञान (Earth Science) न मानकर मानव हित का विज्ञान माना है जिसमें मानव की सक्रिय तथा केन्द्रीय भूमिका है तथा मानव विज्ञता व मानव अभिकर्ता तथा मानवीय क्रियाशीलता को महत्त्व दिया जाता है।

मानववादी भूगोल का विकास काण्ट के भौगोलिक दर्शन से स्पष्ट होने लगता है, जिसके विकास में विडाल-डि-ला ब्लाश, ला फेब्रे, कार्ल-ओ-सावर, रिचार्ड हार्टशोर्न, डब्ल्यू. क्रिक, तुवान तथा एनी बुटीमर आदि का सराहनीय योगदान रहा है। इसका समर्थन करते हुए आदर्शवादी (Idealistic) विचारक गुएल्के (Guelke) ने बताया कि "हमने मानव के मस्तिष्क में प्रवेश करने की पद्धति विकसित कर ली है।"

उन्होंने आगे बताया कि मानसिक क्रियाशीलता का नियंत्रण पदार्थ एवं प्रक्रियाओं से नहीं हो सकता वरन् विश्व को अप्रत्यक्ष रूप से विचारों द्वारा पहचाना जा सकता है, जो व्यक्ति के विषयगत अनुभव पर आधारित होता है। **गुमन ओल्सन** का योगदान **आधुनिक मानवतावादी दृष्टिकोण** में रहा है।

विडाल डी-ला-ब्लाश के प्रयासों को गति देते हुए एनी बुटीमर (Anne Buttimer, 1971) ने अपनी पुस्तक 'Society and Milieu in the French Geographic Tradition' में मानववादी दृष्टिकोण को नया आयाम दिया। बुटीमर महोदय ने सन् 1974 में प्रकाशित पुस्तक 'भूगोल में मूल्य' (Values in Geography) में मानववादी दृष्टिकोण को मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से समझाया है।

मानववादी भूगोल का वास्तविक प्रतिपादन तुवान (Tuan, Yi Fu, 1971)' ने किया तथा अपने प्रकाशन 'Geography, Phenomenology and the Study of Human Nature' में बताया कि भूगोल मानवीय दर्पण है जो मानव अस्तित्व तथा जीवन के सार को स्पष्ट करता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Space and Place' में बताया कि मानववादी दृष्टिकोण स्थान तथा स्थानिक दूरी के सन्दर्भ में मानवीय अनुभव की सीमा को खोजता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जिस प्रकार साहित्य व कला के अध्ययन से मानवीय जीवन को जानकारी मिलती है, उसी प्रकार किसी भू-दृश्य का अध्ययन समाज के सार द्वारा सम्भव है जिससे वह अस्तित्व में आता है। सुवान महोदय ने माना कि वैज्ञानिक सन्दर्श के अन्दर मानवीय ज्ञान एवं क्षमता को विद्यमान स्तर से कम आँका जाता है, जिसके विरुद्ध मानववादी भूगोल यह समझाने का प्रयास करता है कि भौगोलिक क्रियाकलाप तथा परिघटनाओं की अभिव्यक्ति किस प्रकार मानवीय ज्ञान तथा क्षमता द्वारा होती है। तूआन ने मानववादी भूगोल के पाँच आधारभूत सार बताये हैं –

1. भौगोलिक ज्ञान को प्रकृति तथा मानव अस्तित्व में मानववादी दृष्टिकोण एक पाश्विक वृत्ति है। यह मानवीय वास्त्य क्षेत्र, अवस्थिति, स्थान तथा संसाधनों की पूर्ण जानकारी रखता है, लेकिन उसका व्यवहार विभिन्न वर्गों में भिन्न-भिन्न मिलता है। अतः एक मानव भूगोलवेत्ता का कार्य इस भौगोलिक ज्ञान का अध्ययन करना है।
2. मानवीय व्यवहार एवं स्थान की पहचान में क्षेत्रीय भूमिका महत्वपूर्ण होती है, जिसमें स्थान तथा भू-भाग का मान एक पाश्विक वृत्ति है तथा मानव भूगोल यह इंगित करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार एक क्षेत्र गहन रूप से एक मानवीय क्षेत्र के रूप में विकसित हो जाता है।
3. मानववादी दृष्टिकोण भीड़-भाड़ एवं गोपनीयता के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। भीड़-भाड़ के वातावरण से मानव तथा पशु मानसिक दबाव महसूस करते हैं। जबकि एकान्त क्षेत्र में शिथिलता महसूस

करता है। एकान्त तथा गोपनीयता से किसी क्षेत्र विशेष के प्रति मानव चिन्तन की प्रक्रिया तथा निर्णयन की क्षमता प्रभावित होती है। जिसका अध्ययन मानव भूगोल में किया जाता है।

4. ज्ञान जीवन को प्रभावित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सभी व्यक्ति तथा व्यावसायिक योजनाकार अपने आर्थिक क्रियाकलापों की कार्ययोजना अपने ज्ञान तथा तकनीक योग्यता के आधार पर तय करते हैं, निर्णयन की क्रिया में एक सीमा तक योजनाकार आर्थिक सिद्धान्त तथा सहयोग का सहारा लेते हैं, जिसके परिणाम कितने लाभकारी हैं। ये सभी प्रश्न मानववादी भूगोलवेत्ता पूछते हैं।
5. मानव क्रियाशीलता को प्रभावित करने में धर्म की प्रमुख भूमिका होती है। प्रत्येक संस्कृति में धर्म की प्रधानता होती है। मानववादी दृष्टिकोण के अनुसार विश्व एकत्व तथा अर्थ को समझने वाला व्यक्ति ही धार्मिक दृष्टियुक्त हो सकता है। धार्मिक संस्कृति में विश्व की एक स्पष्ट संरचना होती है, जो एक धर्म से दूसरे धर्म तथा परस्पर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती है।

13.3 मानववादी भूगोल की कार्यपद्धति (Procedure of Humanistic Geography)

1. मानववादी भूगोल में मानवीय आत्मचेतना के प्रयास को सम्मिलित किया जाता है। मानवीय अनुभव तथा अभिव्यक्ति के लिए एक विशेष प्रकार के ज्ञान, प्रतिक्रिया तथा तत्त्व से जोड़ता है।
2. मानववादी भूगोल की कार्यपद्धति व्याख्या एवं स्पष्टीकरण के ज्ञान पर आधारित है, जिसमें साहित्य की आलोचना, सौन्दर्य बोध तथा कलात्मक इतिहास को प्रमुख रूप से सम्मिलित किया जाता है।
3. मानववादी भूगोल भौगोलिक दृश्यभूमि के मौलिक स्वरूप के समक्ष कार्यकारण सम्बन्ध को चिह्नित करता है।
4. मानववादी भूगोल सांख्यिकीय तथा मात्रात्मक प्रविधियों के विपरीत सहभागी पर्यवेक्षण, सहभागिता, विचारों के आदान-प्रदान तथा तार्किक निष्कर्ष पर बल देकर मानव व स्थान के मध्य सहसम्बन्ध की खोज करता है।
5. मानववादी भूगोलवेत्ता मूल्य आधारित शोध (Value Based Research) को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।
6. मानववाद ऐसा दृष्टिकोण है, जिसमें वैज्ञानिक पर्यवेक्षण से पूर्व विश्व के रहस्यों को उजागर करता है।
7. मानववादियों ने मानव समाज के अस्तित्व में संचार को एक मूलभूत कारक माना है। उन्होंने मानवीय चेतना को सक्रिय तथा केन्द्रिय भूमिका प्रदान करते हुए माना है कि मानवीय जीवन के विकास के लिए चिन्तन फलन कम आवश्यक तत्त्व है।

आलोचना (Criticism)

1. मानववादी भूगोल की भाषा में शुद्धता तथा मात्राकरण की कमी पायी गई है।
2. मानववादी भूगोल में शोधकर्ता अपने परिणामों के प्रति संवेदनशील होता है।
3. मानववादी भूगोल की कार्य-पद्धति में भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल में किया गया अन्तर स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि मानव भूगोल के सिद्धान्त को मॉडल निर्माण में, भौतिक भूगोल में प्रयोग की गई मात्रात्मक प्रविधियों का उपयोग सम्भव नहीं है।
4. मानववादी भूगोल मुख्य रूप से सहभागिता, पर्यवेक्षण तथा विचार-विमर्श (Discussion) पर आधारित है जिसके आधार पर सिद्धान्त, परिणाम, तथा प्रादेशिक प्रारूप को प्राप्त करना कठिन है।
5. मानववादी भूगोल मानव को कदापि आर्थिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं करता है। अतः इसमें औद्योगिक अवस्थिति तथा भूमि उपयोग अवस्थिति विश्लेषण से सम्बन्धित आचारपरक खोजों व नीति-निर्माण में सहायता नहीं मिलती है।
6. एन्ट्रीकिन (Entrikin, 1976) के अनुसार मानववादी भूगोल वैज्ञानिक रूप से कोई मात्रात्मक विश्लेषण न करके केवल उपदेश देने का कार्य करता है।

7. मानववादी भूगोल के विषय क्षेत्र की व्याख्या गुणात्मक शोध पर आधारित है जो न तो विश्वव्यापी हो सकती है और न ही प्रादेशिक (It can neither be universal nor idiographic).
8. सामाजिक संस्थानों का अति महत्त्व भी आलोचना का विषय बन गया है। इसके सम्पूर्ण ऐतिहासिक दृष्टिकोण को मानवीय विचारों का इतिहास माना गया है।

13.4 भूगोल में प्रत्यक्षवाद (Positivism in Geography)

प्रत्यक्षवाद या प्रमाणवादी चिन्तन की संकल्पना का विकास फ्रांसीसी क्रान्ति के उपरान्त हुआ था। जिसकी स्थापना सन् 1830 के दशक में आगस्ट कॉम्टे (Auguste Comte, 1798–1857) ने फ्रांस में की थी। कॉम्टे का मानना था कि प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग की जाने वाली अध्ययन पद्धति सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में भी आसानी से प्रयोग की जा सकती है। स्पष्ट है कि समाज विज्ञानों में भी सामान्य नियमों का प्रतिपादन हो सकता है। फ्रांस में क्रान्ति से समाज में अशान्ति का वातावरण बन गया था। प्रत्यक्षवादियों ने इसे नकारात्मक माना, क्योंकि ये न तो रचनात्मक था और न ही व्यावहारिक। यह प्रविधि (Approach) सकारात्मक प्रविधि थी। प्रत्यक्षवादियों का विचार था कि प्राकृतिक विज्ञानों के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान भी होना चाहिए। जो प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धान्तों पर विकसित हो।

जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में विभिन्न नियमों एवं सिद्धान्तों की खोज करते हैं, उसी प्रकार समाज वैज्ञानिकों द्वारा अनुसन्धान करके समाज के नियमों को खोजना चाहिए।

कॉम्टे ने सामाजिक विकास की तीन अवस्थाएँ बताई हैं (1) ईश्वरीय ज्ञान (Theological Knowledge), (2) कल्पनामूलक (Metaphysical), तथा (3) सकारात्मक (Positive)। सकारात्मक अवस्था में अवलोकित तथ्यों के मध्य कारण सम्बन्ध ढूँढ़ लिए जाते हैं। प्रत्यक्षवादी अधिनायकवाद के विरोधी रहे हैं।

प्रत्यक्षवादी विचारधारा का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त तीव्र गति से हुआ है, जिसे विभिन्न प्रविधियों (Approaches) के सन्दर्भ में विकसित किया गया। एमिडो (Amedeo Dougl, 1975) ने अपनी पुस्तक 'An Introduction to Scientific Reasoning in Geography' में प्रत्यक्षवाद को मानव भूगोल के विधितंत्र में स्थानिक सिद्धान्तों तथा उनके अनुप्रयोग की प्रविधि बताया है। इसके उपरान्त सन् 1979 में ग्रेगरी (Gregory, Derek) ने अपनी रचना 'Ideology, Science, and Human Geography' में बताया कि "प्रत्यक्षवाद, मानव भूगोल में प्रादेशिक प्रतिरूप के निर्माण, पुनर्निर्माण तथा परिवर्तन (Alteration) में मानव अभिकरण (Human Agency) की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता है।" प्रत्यक्षवाद पर अमेरिकी भूगोलवेत्ता जोहन्स्टन (Johanston, Ronald J.) ने अपनी कृतियों 'Geography and Geographers' तथा 'Philosophy and Human Geography', 1983 में मानववादी तथा संरचनात्मकतावाद के साथ प्रत्यक्षवाद के तुलनात्मक उद्देश्यों के दर्शन का विस्तृत विवरण देते हुए इस प्रविधि को गति प्रदान की।

प्रत्यक्षवाद का वास्तविक विकास करने का श्रेय हार्वे (Harvey, Milton E.) को है, जिन्होंने होली (Holly, Brian P.) के साथ मिलकर भूगोल के प्रत्यक्षवाद से सम्बन्धित प्रमुख दस निबन्धों को अपनी पुस्तक 'Themes in Geographic Thought' में सन् 1981 में प्रकाशित किया। इनके एक वर्ष उपरान्त सन् 1982 में होल्ट-जेनसन (Holt & Jensen, Arild) ने प्रत्यक्षवाद के सन्दर्भ में भूगोल के ऐतिहासिक दर्शन का विस्तृत विवेचन अपनी रचना 'Geography: Its History and Concepts' में किया। उपरोक्त विद्वानों ने अपने विभिन्न आयामी दार्शनिक लेखों द्वारा प्रत्यक्षवाद की विचारधारा को विकसित करने में प्रयास किया है।

प्रत्यक्षवाद एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जिसे आनुभाविकता (Empiricism) भी कहते हैं। प्रत्यक्षवाद के समर्थकों का मानना है कि विज्ञान का सम्बन्ध केवल आनुभाविक प्रश्नों से होता है। आनुभाविक प्रश्नों में यथार्थता द्वारा संसार को समझा तथा अनुभव (Perceive) किया जा सकता है अर्थात् विज्ञान का सम्बन्ध विश्व की वस्तुओं से होता है। इस प्रकार विवेक के प्रमाणों से प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है। वास्तविक ज्ञान केवल यथार्थ अवस्थाओं के मौलिक अवलोकन से प्राप्त किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विकसित होने के लिए वस्तुपरक, वास्तविक तथा निष्पक्ष होना आवश्यक है। प्रत्यक्षवादी भी विज्ञानों की एकता में विश्वास करते हैं। होल्ट-जेनसन के अनुसार विज्ञान एकीकृत पद्धति है, तब केवल एक ही व्यापक विज्ञान हो सकता है। वैज्ञानिक प्रस्थिति (Status) वास्तविकता के सदृश्य अनुभव तथा वैज्ञानिक भाषा के द्वारा प्रतिभूत होता है अर्थात्

विज्ञान अपनी सम्पूर्ण भौतिक व्यवस्था, रसायन, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों के सिद्धान्तों के अन्तर्गत वृद्धि करता है, जो परस्पर तार्किक दृष्टि से सम्बन्धित हैं।

इस प्रकार प्रत्यक्षवाद एक ऐसा दर्शन है जो एक मानव मस्तिष्क पर आधारित वास्तविकता की विचारधारा, आदर्शवाद का विरोधी है। प्रत्यक्षवादी कहते हैं कि नैतिक आदर्श जैसे मूल्यों (Values), विश्वास, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, सौन्दर्यबोध आदि का परीक्षण नहीं कर सकते। अतः हमें इस प्रकार के मानकी प्रश्नों से दूर रहना चाहिए। सारांशतः प्रत्यक्षवादी कल्पनामूलक प्रश्नों को वैज्ञानिक रूप में स्वीकार नहीं करते हैं।

प्रत्यक्षवादी निम्न विचार बिन्दुओं पर अधिक ध्यानाकर्षण रखते हैं—

1. प्रत्यक्षवादी मूल्य स्वतंत्र (Value Free) वस्तुनिष्ठ अनुसंधान को सम्भव मानते हैं।
2. प्रत्यक्षवादियों के अनुसार सभी समस्याओं का तकनीकी हल सम्भव है।
3. वैज्ञानिक प्रक्रिया स्वयं वास्तविकता (Reality) का रूप निर्धारित करती है।
4. प्रत्यक्षवादी अध्ययन के लिए सकारात्मक प्रविधि (Positive Approach) की अनुशंसा करते हैं।
5. उनका विश्वास है कि नैतिक आदर्शों को न तो जाँच सकते हैं और न ही उनका परीक्षण कर सकते हैं।
6. प्रत्यक्षवाद के समर्थक कल्पनामूलक प्रश्नों को अवैज्ञानिक मानते हैं।
7. यथार्थ ज्ञान केवल वास्तविक अवस्थाओं के मौलिक अवलोकन से प्राप्त किया जा सकता है।

आलोचना (Criticism)

1. प्रत्यक्षवादी, विज्ञान की एकता में अतिविश्वास रखते हैं।
2. वे यह मानते हैं कि समाज वैज्ञानिक विज्ञान की एकता की भावना को विकसित करने में असमर्थ हैं, जो गलत हैं।
3. उनका यह मानना भी गलत है कि प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान प्रयोगात्मक दृष्टि से न तो समान हैं तथा न ही हो सकते हैं। सामाजिक विज्ञानों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानव से होता है तथा मानव को एक वस्तु नहीं मान सकते हैं, क्योंकि उसके पास पर्याप्त विवेकपूर्ण क्षमता वाला मस्तिष्क है।
4. मानवीय इरादों (Intention), कल्पनाशक्ति तथा विश्वास को प्राकृतिक विज्ञान की भाषा के सांख्यिकीय जाल में रूपान्तरित नहीं किया जा सकता है। अतः सामाजिक नियमों का विकास मानवीय वस्तुओं के वस्तुनिष्ठ तत्त्वों के अध्ययन से ही सम्भव है।

13.5 आचरणात्मक भूगोल (Behavioural Geography)

भूगोल में मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक क्रियाकलापों के अध्ययन का विशेष महत्त्व होता है। इस दृष्टि से भूगोल सामाजिक विज्ञानों में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में सफल रहा है, लेकिन इसके विधितंत्र तथा लक्ष्यों को लेकर उभरे असन्तोष के परिणामस्वरूप सन् 1960 के दशक में भूगोल के विषय में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये तथा आचारपरक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया जाने लगा। आचारपरक दृष्टिकोण के आधार पर भौगोलिक समस्याओं के अध्ययन तथा व्याख्या में सुविधा मिलती है। इस क्रान्ति ने मानव तथा वातावरण प्रणाली को समझने में नवीन तथा विस्तृत दृष्टि प्रदान की है। इसमें मानवीय बोध व्यवहार, वातावरण सम्बन्धी निर्णय, क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध आदि पर बल दिया जाता है। मानवीय क्रियाकलाप उसके वातावरण के साथ व्यवहार या आचरण पर निर्भर करता है। यह आचरण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न होता है तथा समान परिस्थितियों में भी भिन्न हो सकता है।

13.6 आचरणात्मक भूगोल का विकास (Development of Behavioural Geography)

वर्तमान में यह माना जाने लगा है कि हमारे सभी निर्णय वस्तुनिष्ठ वास्तविकता पर आधारित न होकर उसकी वास्तविकता के बारे में हमारे व्यक्तिगत मानसिक विचारों तथा उनके बारे में हमारे अनुभव (Perception)

पर निर्भर होते हैं। इसी अनुभव को प्रतिबोधन भी कहा गया है। आज किसी भी परिघटना के प्रति मानवीय समझ व उसके बारे में मानसिक प्रतिबिम्ब प्रतिबोधन का ही परिणाम होता है। इस प्रकार भूगोलशास्त्र विविध सिद्धान्तों की खोज न करके मानवीय व्यवहार के स्थानिक पक्ष को महत्वपूर्ण मानने लगे हैं। जिसके अन्तर्गत यह पता लगाया जा रहा है कि विभिन्न बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति विशेष तथा व्यक्ति समूह कैसा व्यवहार करते हैं। इस सन्दर्भ में गॉलेज, ब्राउन तथा विलियम्सन के कार्य उल्लेखनीय हैं। अतः आज भौगोलिक चिन्तन में सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व बढ़ गया है। इसी चिन्तन ने आचरणवादी भूगोल को जन्म दिया है। इस सम्बन्ध में प्रो. आर.डी. दीक्षित ने लिखा है कि आचरणवाद का मुख्य उद्देश्य मानव और प्राकृतिक वातावरण के अन्तर सम्बन्धों की व्याख्या में पूर्ववर्ती कार्य कारण संकल्पना पर केन्द्रित यांत्रिक परिदृष्टि के बदले मानव प्रतिबोधन की प्रक्रिया पर केन्द्रित एक नई अध्ययन पद्धति का विकास करना था। इस नई पद्धति की केन्द्रीय मान्यता थी कि मनुष्य संवेदनशील तथा विवेकपूर्ण प्रभावी है।

भूगोल में आचरण या व्यवहारवादी चिन्तन को कार्ल सावर, जे.के. राइट, जी.एफ. व्हाइट और विलियन किर्क ने विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें व्यावहारिक विचारधारा को विस्तृत रूप में जूलियन वोल्पार्ट ने प्रचारित किया जब सन् 1964 में *Annals of Association of American Geographers* esa 'The Decision Process in a Spatial Contact' नामक शीर्षक से उनका लेख प्रकाशित हुआ था। इसी शीर्षक से सम्बन्धित विचारों पर वोल्पार्ट महोदय ने विंस्कसिन विश्वविद्यालय में अपना शोध कार्य किया था। यह ऐसा समय था जब भौगोलिक विचारों पर मात्रात्मक क्रांति का प्रभाव था तथा मानव समाज पर गणितीय विधियाँ प्रभाव नहीं डाल पा रही थीं ऐसे में इस विचार को अधिक महत्व मिला।

वोल्पार्ट का आचरणवादी भूगोल सम्बन्धी यह चिन्तन स्वीडन के ग्रामीण परिवेश में भूमि उपयोग के क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित था जिसके अनुसार वहाँ के किसान तत्कालीन कृषि उत्पादन से सन्तुष्ट थे। वोल्पार्ट के अनुसार, यह उत्पादन अपेक्षा से लगभग चालीस प्रतिशत कम था जिसका मूल कारण उनके अनुसार किसानों की महत्वाकांक्षा का सीमित होना था जिसके कारण वे उत्पादन बढ़ाने के कोई प्रयास नहीं कर रहे थे। विलियम किर्क ने स्पष्ट किया कि किसी विशिष्ट सूचना के प्रति स्थान एवं समय के अनुसार बदलती हुई प्रतिक्रिया उभरकर आती है, अर्थात् एक ही भौगोलिक परिवेश में रहने वाले विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं वाले व्यक्तियों का आचरण भी विभिन्न होता है। इस आधार पर किर्क ने दो प्रकार के परिवेश (Environment) बताये हैं—

1. **इन्द्रियग्राह्य पर्यावरण (Phenomenal Environment)**— यह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया गया तथ्यपरक पर्यावरण होता है।
2. **आचरणात्मक पर्यावरण (Behavioural Environment)**— यह मानवीय अनुभवों (Perceptions) तथा सजगता (Awareness) पर आधारित है।

ट्रॉस्टन हैगरस्ट्रेण्ड ने प्रवजन एवं नवाचार के विसरण (Diffusion of Innovation) की संकल्पना दी जो मानवीय व्यवहार, आचरण एवं निर्णयन तथा सूचना शक्ति व व्यक्तिगत सम्पर्क क्षेत्रों पर निर्भर है। बाइट (White G.) ने समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विचारों से प्रभावित होकर बताया कि प्राकृतिक आपदाओं के प्रति मानवीय व्यवहार विभिन्न प्रकार का होता है।

सन् 1960 के दशक के उपरान्त आचरण भूगोल के विकास में शिकागो स्कूल के लोवेन्चल, बर्टन कीट्स कुल्मार्ट तथा डेविड हफ आदि विद्वानों ने प्रमुख योगदान दिया। इन्होंने निर्णय लेने की प्रक्रिया (Decision Making), लक्ष्य तथा अभिप्रेरणा का विशेष अध्ययन किया। डेविड हफ ने नगरों की आन्तरिक स्थिति में उपभोक्ताओं के आचरण पर शोध किया था।

व्यवहारवादी चिन्तन में वोल्पार्ट के उपरान्त ऐलेन प्रेड का प्रमुख योगदान रहा है। प्रेड महोदय ने इसे आचरणात्मक ढाँचे (Behavioural Matrix) के रूप में प्रस्तुत किया। प्रेड ने स्पष्ट किया कि सूचना की उपलब्धता तथा दक्षता के स्तर में परिवर्तनशीलता के आधार पर ही यह निर्धारित किया जा सकता है कि सेवाओं के स्थानान्तरण के बारे में निर्णय का स्वरूप कैसा होता है? प्रेड महोदय ने अपने इस मैट्रिक्स में निर्णयकर्ता की स्थिति, प्राप्त सूचना के प्रयोग में उसकी क्षमता तथा उसके ज्ञान की मात्रा या स्तर आदि के आधार पर निर्धारित कर सकते हैं।

इस प्रकार वोल्पार्ट, प्रेड एवं किर्क आदि के विशेष प्रयासों से सन् 1960 के दशक में भूगोल में व्यवहारवादी चिन्तन को स्वतंत्र स्वरूप मिला। इस विचार के बाद ही अमेरिकन भूगोलवेत्ता संघ ने सन् 1968 में आचरणवादी भूगोल पर विशेष चर्चा प्रारम्भ की जिसमें प्राप्त शोध-पत्रों को काकन व गोलेज के सम्पादन में प्रकाशित कराया गया।

पीटर गोल्ड ने सन् 1970 के दशक में व्यवहारवादी या आचरणवादी भूगोल में मानव एवं प्रकृति के परस्पर सम्बन्धों के अध्ययन में सम्मिलित परिदृष्टि निम्नलिखित थी—

1. आचरणात्मक भूगोलवेत्ताओं की मान्यता थी कि पर्यावरणीय ज्ञान जिस पर मानवीय प्रतिबोधन तथा उस पर्यावरण का वास्तविक यथार्थ अलग-अलग होते हैं अर्थात् पर्यावरण की क्षेत्रीय वस्तुस्थिति के दो भिन्न पक्ष होते हैं—एक वस्तुनिष्ठ या वस्तुपरक पर्यावरण (Objective Environment) तथा दूसरा आचरणात्मक पर्यावरण (Behavioural Environment), वस्तुनिष्ठ पर्यावरण वास्तविकता का विश्व होता है जिसे स्पष्ट साधनों या संवेदकों (Sensors) से देखा या मापा जा सकता है जबकि आचरणात्मक पर्यावरण एक मानव मस्तिष्क का विश्व है जिसे केवल अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा ही पढ़ा जा सकता है। आचरणात्मक भूगोल की व्याख्या इसी तथ्य पर केन्द्रित है। आचरणात्मक पर्यावरण द्वारा यह समझा जाता है कि व्यक्तियों द्वारा वास्तविक कैसे समझी जाती है, इसमें लोग कोई भी चयन ज्ञान के आधार पर करते हैं।
2. दूसरा आचरणवादी दृष्टिकोण यह था कि मनुष्य अपने वातावरण से प्रभावित होता है तथा वह निरन्तर उसमें संशोधन करता रहता है। इस प्रकार इस पक्ष में व्यक्ति समूह की अपेक्षा व्यक्ति विशेष को ही अधिक महत्त्व (Weightage) दिया जाता है।
3. भूगोल में आचरणवादी पद्धति ने मानव और पर्यावरण के मध्य परस्पर अन्योन्य क्रिया सम्बन्धों को अभिग्रहित किया जिसके द्वारा मनुष्य पर्यावरण को आकार देता है तथा इसके बाद वह स्वयं भी पर्यावरणीय दशाओं से आधारित होता है।
4. व्यवहारवादी भौगोलिक चिन्तन का चौथा महत्वपूर्ण लक्षण उसकी अन्तर अनुशासनिक प्रकृति (Interdisciplinary Nature) है। व्यवहारवादी भूगोलवेत्ता मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों आदि के विचारों, चिन्तनफलक तथा सिद्धान्तों से सहायता लेते हैं।

सन् 1970 के दशक के उपरान्त विभिन्न सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक अनुभवों को पुनर्मूल्यांकन द्वारा परखा गया। आर्योवा विश्वविद्यालय के रुस्लिन (G. Ruslin) ने क्रिस्टॉलर के केन्द्र स्थल सिद्धान्त का पुनर्मूल्यांकन किया तथा एक बहु-आयामी मापन प्रविधि (Multi Dimensional Scaling Technique) विकसित की। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता एलन प्रेड ने आबद्ध (सीमित) विवेकशीलता (Bounded Rationality) पर आधारित अवस्थिति सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आर.ई. मर्फी ने वातावरणीय बोध (Environmental Perception) का अध्ययन किया तथा पर्यावरण के प्रति मानवीय दृष्टिकोण के क्षेत्रीय प्रतिरूप को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में विचार दिये। मर्फी के इन विचारों से आचरण भूगोल के विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। पीटर गोल्ड ने स्थानिक शोध तकनीकी का विकास किया तथा मानसिक मानचित्र (Mental Map) बनाकर यह समझाया कि इस संकल्पना द्वारा उन सभी माध्यमों का अध्ययन होता है, जिनसे व्यक्ति एवं स्थानों की स्थिति के बारे में मानव मस्तिष्क में प्रतिबिम्ब चित्र (Imagery) के निर्माण में सहभागी संरचना के स्वरूप तथा उसकी निर्णयन की स्थिति को समझाने में सुविधा रही है।

13.1 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा हेतु)

- 1 मानववादी भूगोल की विशद विवेचना कीजिये
- 2 मानववादी भूगोल की कार्यपद्धति की विशद विवेचना कीजिये
- 3 भूगोल में प्रत्यक्षवाद की विशद विवेचना कीजिये
- 4 आचरणात्मक भूगोल की विशद विवेचना कीजिये
- 5 आचरणात्मक भूगोल के विकास की विशद विवेचना कीजिये

13.11 सन्दर्भ/उपयोग पुस्तके

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई-14 : स्त्रीवाद एवं लैंगिक भूगोल

ईकाई की रूपरेखा

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 उद्देश्य
- 14.3 स्त्रीवाद एवं लैंगिक भूगोल
- 14.4 नारीवाद (Feminism)
- 14.5 संरचनावाद (Structuralism)
- 14.7 सारांश
- 14.8 पारिभाषिक शब्दावली
- 14.9 बोध प्रश्न
 - 14.9.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर
 - 14.9.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर
 - 14.9.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर
- 14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 प्रस्तावना

भौगोलिक चिंतन के नूतन आयामों में स्त्रीवाद या नारीवादी भूगोल तथा मात्रात्मक क्रांति भी एक है। नारीवादी भूगोल को लैंगिक भूगोल भी कहते हैं। महिलावादी भूगोल से तात्पर्य महिलावादी राजनीति और लिंगभेद से सम्बद्ध सैद्धांतिक चिंतन और उनकी आधारभूत मान्यताओं पर आधारित भौगोलिक अध्ययन से है। इस विषयक पर समाज वैज्ञानिक चिंतन 1960 के दशक से पश्चिमी देशों में महिलाओं के नागरिक अधिकारों से संबंधित आन्दोलन के साथ प्रारम्भ हुआ था। महिला अधिकारों के लिए संघर्ष उस समय पश्चिमी देशों में उभरती हुई आमूल परिवर्तनवादी मार्क्सवादी चिंतन धारा से प्रेरित और उसका अभिन्न अंग था। महिलावादी विमर्श में लिंग भेद का तात्पर्य स्त्री और पुरुष के कर्तव्यों और अधिकारों में पाये जाने वाले सामाजिक व्यवस्था जन्म विभेदों से है। जो सामाजिक मूल्यों पर आधारित है। इस प्रकार भूगोल के सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रहार करते हुए 1960 के दशक में ही भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का प्रवेश हुआ। जिसमें भूगोल के प्राचीन वर्णनात्मक स्वरूप को बदलकर उसकी जगह गणितीय व सांख्यिकीय विधियों का समावेश किया गया इसके लिए यह तर्क दिया गया है कि 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भूगोल एक प्रौढ़ विषय के रूप में स्थापित हो चुका था। इसका स्वरूप वर्णनात्मक, गुणात्मक एवं साहित्यिक था इसके बावजूद भी भूगोलवेत्ता इस हीन भावना से ग्रसित थे कि भूगोल की दार्शनिक अभिव्यक्तियों की प्रचुरता के कारण भूगोल की जन उपयागिता कहीं समाप्त न हो जाए अर्थात् भूगोल के सामने अस्तित्व की समस्या थी। अस्तित्व इस बात पर निर्भर था कि भूगोल के निष्कर्षों में सत्यता और वस्तुनिष्ठता कितनी है? भौगोलिक अध्ययन-विश्लेषण में गणितीय प्रावधानों के समावेश एवं प्रधानता ने आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया, जिसे मात्रात्मक क्रांति या गणितीय क्रांति या परिणात्मक क्रांति (Quantitative Revolution) कहा जाता है। 1960 के दशक से भी पहले भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का समावेश माना जाता है। जब भूगोल में सिद्धान्तों और मॉडलों का समावेश किया गया। जिसमें वेबर: जैसे विद्वानों के नाम उभरकर सामने आते हैं।

14.2 उद्देश्य

- भूगोल में नारीवादी चिंतन के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- नारीवादी चिंतन के सामाजिक दृष्टिकोण को समझाना।

- नारीवादी आन्दोलन को स्पष्ट करना।
- मार्क्सवादी आन्दोलन की लैंगिक भूगोल में योगदान के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- भूगोल में संरचनावाद के स्वरूप को स्पष्ट करना।

14.3 स्त्रीवाद एवं लैंगिक भूगोल

नारीवादी भूगोल, भूगोल में एक नवीन आयाम है। इसे लैंगिक भूगोल भी कहा जाता है। मानव समाज में विगतकाल में पुरुष प्रधानता एवं वर्चस्व की स्थापना हो गयी। इसलिए काल कृत्य समान रूप से एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसी दर्शन के तहत आधुनिक काल में नारियों में पुर्नजागरण हुआ है। सरकारों तथा समाज ने भी इन्हें संरक्षण दिया है। इसलिए आधुनिक भूगोल में ही इन्हें महत्व दिया गया। इसी के अध्ययन के लिए लैंगिक भूगोल का विकास हुआ। इसे ही भूगोल में नारीवादी चिन्तन कहा जाता है।

नारीवाद या महिलावादी भूगोल में महिलावादी राजनीति और लिंग-भेद से सम्बन्धित सैद्धान्तिक चिन्तन तथा उनकी मौलिक मान्यताओं पर आधारित भौगोलिक अध्ययन सम्मिलित हैं। नारीवादी भूगोल में नारीवादी राजनीति एवं सिद्धान्तों द्वारा इस संदर्भ की व्याख्या की जाती है कि लिंग-भेद सम्बन्ध एवं भूगोल परस्पर कैसे संरचित एवं परिवर्तित हैं। इस विमर्श में लिंग भेद (Gender) का तात्पर्य स्त्री एवं पुरुष के कर्तव्यों और अधिकारों में पाए जाने वाले सामाजिक व्यवस्थाजन्य विभेदों से हैं। इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रिटिश ज्यॉग्राफर्स के स्टडी ग्रुप ने इसे भूगोल की वह शाखा बताया जो अपनी व्याख्या में सामाजिक व्यवस्था की लिंग-भेद पर आधारित संरचना और उसके सामाजिक और भौगोलिक परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करती है। नारीवादी भूगोल वास्तव में जीवन के सभी क्षेत्रों में लिंग असमानता एवं महिला दमन के प्रश्नों पर बल देता है और इसका उद्देश्य भूगोल में इन असमानताओं और विभेदन को तलाशना तथा प्रतिरोध करना है।

नारीवादी भूगोल में अन्य शाखाओं की तरह यह जानने का प्रयास किया जाता है कि समाज में लिंग-भेद पर आधारित व्यवस्था को कैसे करके उसके स्थान पर ऐसी व्यवस्था की स्थापना की जाए जिसमें स्त्री और पुरुष को समान स्थान प्राप्त हो सके। जॉनसन (Johnson, 1989) ने लिखा है कि नारीवादी भूगोल महिलाओं के सामान्य अनुभवों और पुरुषों द्वारा दमन के प्रति प्रतिरोध तथा उसके अन्त के लिए प्रतिबद्धता है जिसमें महिलाएँ स्वयं की पहचान कायम कर सकें। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मानव भूगोल की प्रोफेसर एक ब्रिटिश भूगोलशास्त्री रोज (Gillian Rose) ने नारीवाद पर कहा था कि—

1. भूगोल का सैद्धान्तिक विषय ऐतिहासिक दृष्टि से पुरुषों द्वारा प्रभावित रहा है।
2. भौगोलिक विषयों में महिलाएँ उत्पीड़ित और किनारे कर दी जाती रही हैं
3. नारीवाद भूगोल के क्षेत्र से बाहर रहा है।
4. पुरुषों द्वारा भूगोल पर एकाधिकार का परिणाम दोनों ही बिन्दुओं पर तर्कसंगत भौगोलिक ज्ञान और जो (पुरुष) इस ज्ञान को सृजित कर सकें, ने पुरुषों और महिलाओं को क्या करना चाहिए कि अघोषित मान्यताओं की भूगोल में एक श्रृंखला है जिस पर भूगोल में बल दिया गया है तथा यह कि भूगोल विषय स्थानों, प्रदेशों और भुदृश्यों पर केन्द्रित रहता है जैसा इसे पुरुष देखते हैं।

नारीवादी भूगोल के अध्ययन में विभिन्न विद्वानों में अनेक पक्षों पर असहमति भी रही है, फिर भी कुछ मूलभूत पक्षों पर पूर्ण सहमत रहे हैं। प्रैट (G. Pratt, 2001) के अनुसार सहमति के ये प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. सभी विद्वान समस्या की व्याख्या एवं विश्लेषण में आलोचनात्मक विमर्श के पक्षधर हैं। उनकी आलोचना न केवल समाज में महिलाओं के उत्पीड़न पर केन्द्रित है वरन् वे इस बात के मूल्यांकन पर बल देते हैं कि समाज में महिला उत्पीड़न और शोषण किन-किन रूपों में विद्यमान है।
2. सभी अध्ययन करने वाले विद्वान भौगोलिक संस्थाओं (शिक्षण कार्य, अध्यापन चयन प्रक्रिया तथा प्रकाशन व्यवस्था) में अभ्यर्थियों के लिंग पर आधारित भेदभाव की व्याख्या पर बल देते हैं।

ग्रेट ने इसके तीसरे बिन्दु का उत्तर उपनिवेशवादी महिलावादी भूगोल का नाम दिया गया है। इसका प्रारम्भ 1980 के दशक के अन्त में हुआ था। इस चरण की विचार प्रक्रिया की तीन मुख्य विशेषताएं हैं। पहली विशेषता यह है कि ये विचारक लिंगभेद को मात्र स्त्री-पुरुष की द्वैधता तक ही सीमित नहीं मानते हैं। अतः महिलावादी भूगोल उत्तरोत्तर अन्तर लैंगिक सामाजिक संबंधों में जाति और वंश, धार्मिक विश्वासों, राष्ट्रीय मान्यताओं और इन सभी सन्दर्भों में अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर आसीन महिलाओं पर बल देने लगे हैं। दूसरी विशेषता यह है कि उत्तर उपनिवेशवादी चिंतन के वर्तमान दौर के अध्येता अध्ययन में संकल्पनात्मक अनादृष्टि के लिए समाजवाद और मार्क्सवाद के साथ-साथ मनोविश्लेषण और उत्तर संरचनावादी विचारधारा का सहारा लेने लगे हैं जिसके परिणामस्वरूप उनकी व्याख्या पहले से अधिक व्यापक और पथार्थपरक हो गई। तिसरी विशेषता यह है कि लिंग भेद से सम्बन्धित समस्याओं की व्याख्या वस्तुनिष्ठ पद्धति के स्थान पर देश और काल केन्द्रित व्याख्या पद्धति पर अधिक बल दिया जाने लगा है।

14.4 नारीवाद (Feminism)

नारीवाद या महिलावादी भूगोल में महिलावादी राजनीति और लिंग भेद से सम्बन्धित सैद्धान्तिक चिन्तन तथा उनकी मौलिक मान्यताओं पर आधारित भौगोलिक अध्ययन सम्मिलित है। नारीवादी भूगोल में नारीवादी राजनीति एवं सिद्धान्तों द्वारा इस सन्दर्भ की व्याख्या की जाती है कि लिंग भेद सम्बन्ध एवं भूगोल परस्पर कैसे संरचित एवं परिवर्तित हैं। इस विमर्श में लिंग भेद (Gender) का तात्पर्य स्त्री एवं पुरुष के कर्तव्यों और अधिकारों में पाए जाने वाले सामाजिक व्यवस्थाजन्य विभेदों से है। इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रिटिश ज्यॉग्रफर्स के स्टडी ग्रुप ने इसे भूगोल की वह शाखा बताया जो अपनी व्याख्या में सामाजिक व्यवस्था की लिंग भेद पर आधारित संरचना और उसके सामाजिक और भौगोलिक परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करती है। नारीवादी भूगोल वास्तव में जीवन के सभी क्षेत्रों में लिंग असमानता एवं महिला दमन के प्रश्नों पर बल देता है और इसका उद्देश्य भूगोल में इन असमानताओं और विभेदन को तलाशना तथा प्रतिरोध करना है।

नारीवादी भूगोल में अन्य शाखाओं की तरह यह जानने का प्रयास किया जाता है कि समाज में लिंग-भेद पर आधारित व्यवस्था को कैसे करके उसके स्थान पर ऐसी व्यवस्था की स्थापना की जाए जिसमें स्त्री और पुरुष को समान स्थान प्राप्त हो सके। जॉनसन (Jolunson, 1989) ने लिखा है कि नारीवादी भूगोल महिलाओं के सामान्य अनुभवों और पुरुषों द्वारा दमन के प्रति प्रतिरोध तथा उसने अन्त के लिए प्रतिबद्धता है जिसमें महिलाएँ स्वयं की पहचान कायम कर सकें। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मानव भूगोल की प्रोफेसर एक ब्रिटिश भूगोलशास्त्री रोज (Gillian Rose) ने नारीवाद पर कहा था कि –

1. भूगोल का सैद्धान्तिक विषय ऐतिहासिक दृष्टि से पुरुषों द्वारा प्रभावित रहा है।
2. भौगोलिक विषयों में महिलाएँ उत्पीड़ित और किनारे कर दी जाती रही हैं।
3. नारीवाद भूगोल के क्षेत्र से बाहर रहा है।
4. पुरुषों द्वारा भूगोल पर एकाधिकार का परिणाम दोनों ही बिन्दुओं पर तर्कसंगत भौगोलिक ज्ञान और जो (पुरुष) इस ज्ञान को सृजित कर सकें, ने पुरुषों और महिलाओं को क्या करना चाहिए कि अघोषित मान्यताओं की भूगोल में एक श्रृंखला है जिस पर भूगोल में बल दिया गया है तथा यह कि भूगोल विषय स्थानों, प्रदेशों और भूदृश्यों पर केन्द्रित रहता है जैसा इसे पुरुष देखते हैं।

नारीवादी भूगोल के अध्ययन में विभिन्न विद्वानों में अनेक पक्षों पर यद्यपि असहमति भी रही है, फिर भी कुछ मूलभूत पक्षों पर पूर्ण सहमत रहे हैं। ग्रेट (G. Pratt, 2001) के अनुसार सहमति के ये प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. सभी विद्वान समस्या की व्याख्या एवं विश्लेषण में आलोचनात्मक विमर्श के पक्षधर हैं। उनकी आलोचना न केवल समाज में महिलाओं के उत्पीड़न पर केन्द्रित है वरन् ये इस बात के मूल्यांकन पर बल देते हैं कि समाज में महिला उत्पीड़न और शोषण किन-किन रूपों में विद्यमान है।
2. सभी अध्ययन करने वाले विद्वान भौगोलिक संस्थाओं (शिक्षण कार्य, अध्यापक चयन प्रक्रिया तथा प्रकाशन व्यवस्था) में अभ्यर्थियों के लिंग पर आधारित भेदभाव की व्याख्या पर बल देते हैं।

3. सभी नारीवादी भूगोलवेत्ता ज्ञान की आधारभूत सीमाबद्धता अर्थात् ज्ञानार्जन की वास्तविकता की काल और स्थान सापेक्षता के परिणामस्वरूप उसके अधूरेपन की मान्यता स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में विश्वस्तरीय व्यापकता वाले सिद्धांत को प्रतिपादन सम्भव नहीं है। इसी कारण से महिलावादी भूगोल गुणात्मक अध्ययन पद्धति पर बल देता है।
4. सभी नारीवादी भूगोलवेत्ता, सामाजिक जीवन के सभी पक्षों (आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व अन्य) की आधारभूत पारस्परिकता में विश्वास करते हैं इसलिए महिलाओं की समस्याओं के अध्ययन में वे सभी प्रकार की समान वैज्ञानिक और सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि के समावेश के पक्षधर हैं।

नारीवादी भूगोल में भावी विकास की दिशाओं के बारे में बाउलवाई (Bowlby), लेविस, मैकडोवेल (McDowell) तथा फूर्ड (Foord, 1989) ने अध्ययन करके इसकी तीन दिशाओं के बारे में सम्भावना बताई है—**प्रथम**, भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक सन्दर्भों में लिंग भेद पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन; **द्वितीय**, महिलाओं की काम भावना, आत्मनिष्ठता और उनके सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या तथा **तृतीय**, जाति, वर्ग एवं लिंग भेद के अन्तर्सम्बन्धों के बारे में नई विचारधाराओं पर आधारित अध्ययन।

14.5 संरचनावाद (Structuralism)

संरचनावाद मानव संज्ञान (Cognition) व्यवहार, संस्कृति एवं अनुभवों की व्याख्या एवं विश्लेषण की एक विधि है। जिसे मूलतः भाषा विज्ञान एवं भाषायी दर्शनशास्त्र से लिया गया है। यह मूलतः एक संकल्पनात्मक व्यवस्था में विभिन्न तत्वों में विद्यमान विरोधाभासों के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। इस विचार के अनुसार कार्यों से ज्यादा संरचना महत्वपूर्ण है। इस प्रकार संरचनावाद घटनाओं के विश्लेषण का एक तरीका, एक विधि, एक परिप्रेक्ष्य है जिसे सन् 1960 के उपरान्त सामाजिक विज्ञानों तथा मानविकी के कई क्षेत्रों से अपनाया गया।

विश्व युद्धोपरान्त फ्रेंच दर्शनशास्त्र में यह विचारधारा प्रभावी थी जब साहित्यिक सिद्धान्तों में रोलैण्ड बाथ्स (Roland Barthes), मानवशास्त्र में लेवी स्ट्रॉस एवं मानवशास्त्र में जीन पाईगेट का योगदान अग्रगामी रहा है। सर्वप्रथम सामाजिक मानवशास्त्र में 'संरचनावाद' शब्द का प्रयोग फ्रांसीसी विद्वान क्लॉड लेवी स्ट्रॉस द्वारा विकसित सिद्धान्तों तथा पद्धतियों के उस समूह के लिए किया गया जिनकी रचना उन्होंने सन् 1945 से 1978 के मध्य अपनी विभिन्न कृतियों (Structural Anthropology, 1968) में की है।

लेवी स्ट्रॉस के अनुसार सभी संस्कृतियों के तत्त्व मूलतः एक ही मानसिक प्रक्रिया की उपज हैं के सम्पूर्ण मानव में समान रूप से पाई जाती है। यह सम्भव है कि सांस्कृतिक दृष्टि से बाह्य रूप में भिन्नता हो, किन्तु आन्तरिक संरचना में समानता होती है जो मानक चिन्तन की समान संरचना को प्रकट करती है।

सन् 1970 के दशक में मानव भूगोल में इसका प्रवेश अनुभववाद (Empiricism) एवं प्रत्यक्षवाद (Positivism) की आलोचना के रूप में हुआ जिसने आधुनिक स्थानिक विज्ञान को पहचान दी। तुआन, 1972, हार्वे, 1973, मार्कण्ड, 1974, सॉवर, 1976, ग्रेगरी (Gregory 1978) इसमें अधिकांश मानव भूगोलवेत्ता सैद्धान्तिक स्थिति को स्पष्ट करने लगे थे जिन पर उन्होंने कार्य किया था। ये ऐसा मानते थे कि तथ्य अपने लिए स्वयं नहीं बोलते जब तक कि उनकी सैद्धान्तिक संवेदनशील नहीं परख ली जाए। ग्रेगरी (1978, p. 77) के अनुसार एक समाज विज्ञान का यह समस्यागत पक्ष है कि परम्परागत रूप से हम स्वयं साक्ष्य (Self-evident) के रूप में पेश होते रहे हैं। इनका यही विचार मानव भूगोल में संरचनावादी उपागम को बढ़ावा देता है। हार्वे के अनुसार प्रत्यक्षवाद जहाँ दुनिया को समझने का प्रयास करता है वहीं मार्क्सवाद इसमें परिवर्तन की बात करता है। इसी प्रकार संरचनावादी मार्क्सवाद से प्रेरित भौगोलिक अध्ययन मुख्यतः आर्थिक भूगोल में (Massey, 1984; Thrift) 1986 तथा सामाजिक भूगोल में (Harvey, 1973) पाये गये। बेनेट (Bennett, 1985) ने हार्वे द्वारा भौतिक पर्यावरण पर प्रभावों का मात्र सामाजिक तंत्र के उत्पाद बनाने पर विरोध किया है। इसके उपरान्त सन् 1980 के दशक में संरचनाकरण सिद्धान्त (Structuration Theory) आया। ये सिद्धान्त बोर्डियू (Bourdieu, 1977), भास्कर (Bhaskar, 1979) तथा गिडिन्स (Giddens, 1979,) द्वारा प्रस्तुत किये गये। इनमें ब्रिटिश समाजशास्त्री एन्थोनी गिडिन्स ने मानव भूगोल पर सर्वाधिक प्रभाव डाला। इस सिद्धान्त के प्रणेता गिडिन्स के अनुसार सामाजिक संरचनाएँ सामाजिककर्ताओं के बाहर की वस्तु नहीं हैं, अपितु में तो नियम और संसाधन हैं जो कर्ताओं द्वारा अपने व्यवहार के दौरान निर्मित एवं पुनर्निर्मित किये गये हैं।

संरचनावाद के नवीन स्वरूप को उत्तर संरचनावाद (Poit Structuralism) कहा जाता है जिसमें लेवी

स्ट्रॉस के सार्वभौमिक मानसिक संरचनाओं के विचार को पूर्णतः नकार दिया गया है। इसके विचारकों में लैमर्ट, डरिडा एवं गिडिन्स प्रमुख हैं। डरिडा ने संरचनावाद का विरोध करते हुए कहा है हम यथार्थ को भाषा के हस्तक्षेप के बिना नहीं समझ सकते। अतः भाषा एवं ग्रन्थ हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

संरचनावाद के विकसित स्वरूप में यह अर्थ लिया जाने लगा कि किसी रचना के प्रतिमान की जानकारी ही संरचनावाद है अर्थात् प्रथम दृष्टया जो वस्तुएं में स्पष्ट रूप में परस्पर एक दूसरे से असम्बद्ध नजर आती हैं वास्तव में वह अन्तर्सम्बन्धित हिस्सों के रूप में व्यवस्था का एक भाग होती हैं। संरचनात्मक सिद्धांत में किसी समराही (समग्रता) को विभिन्न भागों का एक योग्य मात्र नहीं माना जाता है वरन् उसे इस योग से ऊपर एक ऐसी संपूर्णता में देखा जाता है, जिसका निर्माण व्यवस्थित रूप में उसकी निर्णायक इकाइयों के परस्परिक संबंधों के आधार पर होता है तथा यह भी माना जाता है कि अधिकांश समिष्टियों को उसके विशिष्ट लक्षणों अथवा द्विभाजी विपरीतता के विचार के आधार पर विविध भागों में बांटा जा सकता है संरचनावाद एक अध्ययन के उपागम के रूप में मानव शास्त्र से विकसित होकर विभिन्न अन्य विषयों की तरह भूगोल में स्वीकार किया गया है यद्यपि इसका मुख्य स्रोत भाषा शास्त्र है जहां से लेवी स्ट्रॉस के लेखों द्वारा मानवशास्त्र में तथा मार्क्सवाद से प्रेरित भौगोलिक अध्ययनों में भूगोल में आया है।

संरचनावाद के अनुसार मनुष्य की चेतना विभिन्न मानसिक तत्वों संवेदना भाव ध्यान, कल्पना आदि का योग है चेतना के स्वरूप में इस मानसिक तत्वों का विशेष महत्व है।

एटकेन एवं वैलेंटाइन (2006, 342) ने संरचनावाद को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है—

“मानव भूगोल के लिए यह एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण है जो इस विश्वास की विशेषता है कि मानव व्यवहार के सतही प्रारूप को समझने के लिए उसके अंतर निहित संरचनाओं को समझना आवश्यक है जो मानव क्रियाओं को उत्पन्न या आकार देते हैं।”¹

संरचनावाद मानता है कि समाज के अंदर सामाजिक सांस्कृतिक संरचनाएं हैं और वे व्यक्तिगत अभिनय सोच और बातचीत को आकार देते हैं।² इसलिए संरचनावाद चीजों के व्यक्तिगत उद्देश्य और व्याख्या पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है, बल्कि भौतिक और प्रतीकात्मक संरचनाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, जो सामाजिक व्यवहार के लिए एक ढाँचे के रूप में कार्य करते हैं। संरचनाएं सामाजिक दुनिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और इन्हें उत्पादक या कारण 'क्ति के साथ उत्तरदायी माना जाता है।

संरचना सिद्धान्त (**The Structuration Theory**) के मुख्य प्रस्तावक ब्रिटिश समाजशास्त्री **एंथोनी गिडेंस** तथा फ्रांसीसी समाजशास्त्री **पियरे बॉर्डियू** है।

Structuralism assumes that there are social and cultural structures within society and that those shape individual acting, thinking and talking - upuner, R. and werlan B(2009) Structuration theory. P.2.

A theoretical approach to human geography which is characterized by a belief that in order to understand the surface Pattern of human behavior it is necessary to understand the structure underlying them which produce or shape human actions- Atken S. and Valentine . G. 2006, 342.

गिडेंस के अनुसार संरचना एक क्षण में अस्तित्व में नहीं होती है। यह एक सतत प्रवाह है जो क्रियाओं द्वारा पुनरुत्पादित एक प्रक्रिया है। इसलिए वह संरचनावाद के स्थान पर संरचना को प्राथमिकता देते हैं। संरचना सिद्धान्त समाज को मानव गतिविधि से स्वतंत्र नहीं वरन् मानव गतिविधि के उत्पाद के रूप में देखता है। यह संरचना का द्वंद्व गिडिन के संरचना सिद्धांत का एक केन्द्रिय बिन्दु है। इस संरचना प्रथाओं के पुनरुत्पाद का माध्यम और परिणाम दोनों हैं। इसलिए संरचना सिद्धांत में यह भी महत्वपूर्ण है कि संरचनाएं एक गतिशील प्रक्रिया के माध्यम से कैसे अस्तित्व में आती हैं। (Briyant and p.7) एक और अन्तर यह है कि संरचना सिद्धांत के दृष्टिकोण से संरचनाओं में स्वयं शक्ति नहीं होती है। मुख्य संवैधानिक शक्ति मानव व्यक्तियों की एजेंसी को सौंपी गयी है। यह निम्नलिखित रूप से स्पष्ट की जा सकती है।

“संरचना और सामाजिक अभ्यास का सम्बन्ध दोहरा है। जिसका अर्थ है कि सामाजिक प्रथा में सामाजिक संरचनाओं को संदर्भित करती है और सामाजिक संरचनाएं पहले से निष्पादित प्रथाओं और सामाजिक कार्यों का

परिणाम है।

लेवी स्ट्रॉस के अनुसार संरचनावाद किसी घटना की विषयवस्तु की अपेक्षा उसके स्वरूप पर अधिक बल देता है। इस परिपेक्ष्य में संरचनात्मक संबंधों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। संरचनावादी मानते हैं कि वस्तुएं संरचना में उनके स्थान (महत्व) के आधार पर अर्थ ग्रहण करती हैं। आधुनिक संरचनावाद पर लेवी स्ट्रॉस का सर्वाधिक प्रभाव रहा है। उनके अनुसार संरचनावाद एक पद्धति है, एक सौन्दर्यपरक विश्लेषण की शैली है और साथ ही यह एक दार्शनिक रुझान भी है। जिसका मानव भूगोल में सर्वाधिक विशिष्ट एवं स्पष्ट रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसा ही मानवशास्त्र में लेवी स्ट्रॉस ने किया था। बीसवीं शताब्दी के बृहद् आधुनिकतावादी आन्दोलन के रूप में इस परिप्रेक्ष्य ने तथाकथित मानवतावादी विरोधी दर्शन को प्रभावित किया है। इसके उपरान्त ही उत्तर संरचनावादी धारा (बार्थस, फुको, लेकन व दरिदा) का भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में उदय हुआ है। लेवी स्ट्रॉस वादी अर्थ में संरचनावाद का उदय भाषाशास्त्र और संज्ञानात्मक मानव शास्त्र में देखने को मिलता है। जिसका विकास उत्तरी अमेरिका सन् 1950 से 1960 के दशकों में बोऑसवादी परंपरा से हुआ है। लेवी स्ट्रॉस के संरचनावाद की विशिष्टता इस तथ्य में स्पष्ट झलकती है कि इसमें सभी संभव संरचनाओं की खोज करने का प्रयास किया गया है। इनका मानवशास्त्र वास्तव में मानसिक एकता के सिद्धांत की उपज है। जिसे लेवी स्ट्रॉस ने फ्रेंच भाषा में *L'Esprit Humain* कहा है, उनका यह विचार दुर्खाइम की सामूहिक चेतना की धारणा के विरोधाभास के रूप में 'सामूहिक अचेतन' के अर्थ में भी स्वीकार की जाती है।

संरचनावाद को रेडक्लिफ ब्राउन के विचार में मात्र सामाजिक संरचना के रूप में ही नहीं समझते, वरन् इसमें वैचारिक संरचना को भी सम्मिलित किया गया है। स्ट्रॉसवादी अर्थों में किसी वस्तु की तार्किक संभावनाओं पर विचार करने के बाद नृजातीय क्षेत्र में उसके उदाहरणों की खोज की जाती है। इस सम्बन्ध में लेवी स्ट्रॉस ने क्रिस्टल की संरचना की उपमा का प्रयोग करते हुए कहा है कि जब एक भौतिकशास्त्री एक क्रिस्टल के गणितीय गुणों का अध्ययन करता है तब से संभवतः वास्तविक क्रिस्टल से कोई मतलब नहीं होता है। (जिनमें कमियां हो सकती हैं) अपितु उसका सम्बन्ध कुछ आदर्श अर्थात् परिशुद्ध सटीक क्रिस्टल से होता है।

वास्तविक क्रिस्टल की रचना ऊष्मा और दबाव, के बाह्य विजातीय तत्वों तथा कई अन्य बातों के परिवर्तन के प्रभावों पर निर्भर करती है। प्रकृति में पूर्णतः शुद्ध क्रिस्टल मिलना कठिन है, परन्तु इसकी छवि, इसका नक्शा या प्रतिबिम्ब अवश्य मस्तिष्क में हो सकता है। इस प्रकार लेवी स्ट्रॉस समाज की आदर्श संरचना के बारे में बात करते हुए इसे दो रूपों देखते हैं:— प्रथम शोधकर्ता के मस्तिष्क में रची-बसी रचना के अर्थ में तथा दूसरा उन लोगों के मस्तिष्क में रची-बसी रचना के अर्थ में जिनका अध्ययन शोधकर्ता करता है। अधिकांश मानवशास्त्री एवं मानव भूगोलवेत्ता इनमें दूसरे अर्थ का अधिक प्रयोग करते हैं। लेवी स्ट्रॉस का संरचनावाद संस्कृति को एक अमूर्तता के रूप में देखता है अर्थात् इसमें व्यक्तियों के वास्तविक व्यवहार की अपेक्षा आदर्शात्मक प्रतिमान से काफी समानता लिए संरचना की व्याख्या करता है।

मानवशास्त्रीय संरचनावाद (लेवी स्ट्रॉसवादी संरचनावाद) का एक उपागम या एक पद्धति के रूप में उद्भव फार्डिनेंड डी सॉसक (1959) के संरचनात्मक भाषाशास्त्र, रोमन जेकबसन (1956, 1978, 1987) तथा मार्शल मॉस के दुखड़मवादी समाजशास्त्र तथा सूचना सिद्धान्त से हुआ है। लेवी स्ट्रॉस ने इनके अतिरिक्त भूगर्भशास्त्र, मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण में अन्तर्निहित संरचनाओं का भी उल्लेख किया है। सॉसक ने कहा है कि— भाषा में इकाईयों के अर्थ की रचना भिन्नता की एक व्यवस्था के रूप में होती है, अर्थात् प्रत्येक इकाई को व्यवस्था की अन्य इकाईयों से उसकी विशिष्टता के आधार पर महत्व दिया जाता है। इसी आधार पर लेवी स्ट्रॉस ने कहा है कि मानवशास्त्री को भी एक ऐसी व्यवस्थित विधि की आवश्यकता है, जिसके द्वारा वह सांस्कृतिक स्वरूपों में अन्तर्निहित संरचनाओं को उजागर कर सके जो इस प्रकार व्यवस्थित होती है। यह विधि विश्लेषण कि द्विभाजी तरीके पर आधारित है जिसका सर्वाधिक विकास सूचना सिद्धांत में हुआ है। इन स्वरूपों की लोक व्याख्यायें, भ्रामक है क्योंकि लोगों को अपनी संरचनाओं के बारे में चेतन रूप में पूरी जानकारी नहीं होती है। मानव भूगोल में इस पद्धति के अनुसार संरचनावाद को महत्व दिया गया है।

मानव भूगोल में यह माना जाता है कि सभी संस्कृतियों के तत्व मूलतः एक ही मानसिक प्रक्रिया की उपज हैं जो सम्पूर्ण मानव समाज में समान रूप में पाई जाती है। यह सम्भव है कि सांस्कृतिक रूप से बाह्य रूप में भिन्नता परिलक्षित हो, किन्तु आंतरिक संरचना में एक प्रकार की समानता होती है जो मानव चिंतन की समान संरचना को प्रकट करती है। मानव भूगोल की मनोवैज्ञानिक विचार धाराओं का मानना है कि हम मानव

मास्तिष्क की कार्य प्रणाली के बारे में मूलभूत तथ्यों की जानकारी उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के प्रेक्षण द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। घटनाओं को द्वी-विरोधी धड़ों में बाँटने की प्रवृत्ति मानव मास्तिष्क का एक सार्वभौमिक लक्षण है।

रेडक्लिफ ब्राउन संरचनात्मक प्रकार्यवाद मुख्यतः आगमनात्मक विधि पर आधारित है, जबकि संरचनावादी बहुधा जिस विधि का प्रयोग करते हैं। वह निगमनात्मकता है जो कुछ पूर्व प्रस्थापनाओं पर आधारित होती है। वे बहुधा पहले तार्किक संभावनाओं को खोजते हैं तथा बाद में उन्हें यथा स्थान फिट करने की कोशिश करते हैं।

संरचनावाद का विकास विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में भी विकसित हुआ। ब्रिटिश संरचनावाद का विकास 1950 के दशक में सर्वप्रथम हुआ जो तत्कालीन प्रचलित संरचनात्मक-प्रकार्यवाद का ही एक पर्याय रहा है, लेकिन बाद में इस विचारधारा का प्रयोग उन ब्रिटिश मानवशास्त्रीयों के कार्यों के लिए दिया जाने लगा जिन्होंने फ्रांसीसी संरचनावाद के विचारों (सन् – 1960 के बाद से) को अपना लिया गया तथा किसी संस्कृति के एक समय विशेष के संरचनात्मक तत्वों के अध्ययन में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। संरचनावाद का यह रूप समाज अथवा संस्कृति को अपनी सम्पूर्णता से देखता है जिसका निर्माण व्यवस्थित रूप में उसकी निर्माणक इकाइयों के पारस्परिक संबंधों के आधार पर होता है। इस प्रकार संरचनावाद के प्रमुख प्रचारक लीच (1954) एक नीडहाम (1962) रहे हैं। ब्रिटिश संरचनावाद में सांस्कृतिक भिन्नता के साथ-साथ सामाजिक और सांकेतिक संरचनाओं में अन्तर-सांस्कृतिक समानताओं को स्वीकार किया गया है, वहीं स्ट्रॉसवाद ऐसी सांस्कृतिक सार्वभौमिकता पर आधारित है। जिसकी जड़ें मानव प्राणी की मानसिक एकता के सिद्धांत में निहित हैं।

डच संरचनावाद नीदरलैण्ड में सन् 1920 के दशक से पूर्व विकसित हुआ। इसमें प्रादेशिक संरचनाओं जैसे मलाया द्वीप समूह की संस्कृति को अपनी सम्पूर्णता में अध्ययन पर बल दिया गया। डच संरचनावाद का उदय बीसवीं शताब्दी में भाषा, संस्कृति और समाज के अध्ययनों द्वारा हुआ है। इसके प्रमुख प्रणेता जोशेलीन डी जॉंग (1935) रहे हैं।

फ्रांसीसी संरचनावाद सर्वाधिक विस्तृत स्वरूप में विकसित माना जाता है, जिसके प्रणेता लेवी स्ट्रॉस रहे हैं, जिन्होंने किसी विशिष्ट संस्कृति के सदस्यों अथवा किसी विशेष संस्कृति क्षेत्रों के लोगों के मास्तिष्क की संरचनाओं की अपेक्षा मानव मास्तिष्क की संरचनाओं पर बल देता है।

मार्क्सवादी संरचनावाद फ्रांसीसी संरचनावाद की ही एक शाखा है जो मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर 1960 और 1970 के दशकों के मध्य विकसित हुई इसके उद्भव एवं विकास में फ्रेंच मानवशास्त्री मार्क्स गॉडलिअर (1973), इम्मेनुएल टेके (1972) तथा क्लॉड मिलासोक्स (1981) का प्रमुख योगदान रहा है। इनका मानना था कि पूर्व-पूंजीवादी समाजों में अधि-संरचनात्मक तत्व मुख्यतः नातेदारी सम्बन्धों को निर्मित करते हैं तथा श्रम को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक विज्ञान और मानविकी के कई अन्य क्षेत्र हैं जिन्होंने अपने संबंधित प्रवचन में संरचनावाद के सार का व्यापक रूप से उपयोग किया है। भूगोल भी इसका अपवाद नहीं था। जिस तरह भूगोल पहले सकारात्मकतावादी और मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित था, संभवतः उसी तरह यह सामाजिक विज्ञान के डोमेन से प्रभावित था जो या तो संरचनावादी विश्लेषण के स्रोत थे या किसी तरह भूगोल से पहले संरचनावाद के दृष्टिकोण से प्रभावित थे। हालांकि, मानव भूगोल में संरचनावाद का प्रतिबिंब 1970 के दशक से पहले भी स्पष्ट पाया जाता है जब संरचनावादी दृष्टि-कोण के मुख्य प्रभाव को सबसे अधिक स्वीकार किया जाता है। पीटर क्रोपोटकिन और एलिसी रेकलस प्रारंभिक अराजकतावादी, अभ्यासशील भूगोलवेत्ता पाए गए। ग्रेगरी (1978) ने स्ट्रॉस के काम को मानव भूगोल के साथ सहसंबंधित करते हुए संक्षेप में रिकॉर्ड किया, हालांकि उनके काम को उस संबंध में पूर्ण नहीं माना जाता है। दरअसल, मानव भूगोल के साथ संरचनावादी दृष्टिकोण को जोड़ने में 'संरचना के रूप में संरचना' स्कूल और उसके विद्वानों का सीमित योगदान रहा है और गेगरी उस मामले में अपवाद नहीं थे। हालांकि, जीन पियागेट (1896-1980) का योगदान एक अपवाद था, जो 'निर्माण के रूप में संरचना स्कूल से संबंधित थे, लेकिन संरचनावादी दृष्टिकोण के साथ भौगोलिक अनुसंधान को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया। उनका ध्यान संरचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में बुद्धि के अधिग्रहण पर था। उन्होंने तर्क दिया कि अंतरिक्ष और ज्यामिति के बारे में एक बच्चे की बुद्धि का विकास समय और चरणों के अधीन है जो एक दूसरे से गुणात्मक रूप से भिन्न होते हैं। विकास के प्रत्येक चरण में, नई सामग्री को पहले से प्रचलित अवधारणाओं के साथ एकीकृत किया जाता है। ऐसी सामग्रियों को इस तरह से समेकित और समन्वित किया

जाता है कि यह एक स्व-विनियमन संरचना विकसित करती है जिसमें सभी सामग्रियों को व्यवस्थित तरीके से फिट किया जाता है, न कि यादृच्छिक रूप में। उनके विचार की बाद में गोल्ड (1973) ने आलोचना की, जिन्होंने कहा कि बच्चे की मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया पर काम करने में अग्रणी होने के बावजूद, पियागेट अंतरिक्ष और ज्यामिति के बारे में अधिक चिंतित थे, एक बच्चे द्वारा बनाए रखी गई भौगोलिक छवि के बारे में ज्यादा बात नहीं की गई। जबकि इससे जुड़ी बातें सीख रहे हैं। बाद में, कई अन्य विद्वानों ने भी बच्चों की मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया पर काम किया, लेकिन ऐसे सभी अध्ययनों ने ऐसी जांचों को संरचनावाद के सिद्धांतों और तर्कों से जोड़ने के बजाय यह उजागर करने का प्रयास किया कि लोग क्या जानते हैं और एक विशेष प्रक्रिया द्वारा इसे कैसे हासिल किया जा रहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि मानव चेतना की एक गहरी संरचना बनी रहे जो भौगोलिक अनुसंधान के लिए बहुत प्रासंगिक है लेकिन उन दिनों इसका अध्ययन नहीं किया गया था।

भौगोलिक शोधों में संरचनावादी दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख प्रविष्टि 1970 के दशक के दौरान मार्क्सवादी भूगोलवेत्ताओं के कार्यों के माध्यम से स्पष्ट हो सकती है, जब उन्होंने स्थानिक विज्ञान को कड़ी चुनौती दी, जिसे कभी-कभी कार्टोग्राफी के रूप में दर्शाया जाता था। पीट (1977) के अनुसार, भूगोलवेत्ताओं में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने की बढ़ती रुचि तत्कालीन पश्चिमी समाज की मौजूदा संरचना के प्रति असंतोष और प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के प्रति बढ़ती निराशा के कारण थी, जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य समाधान और परिवर्तनों को प्राप्त करने में बार-बार विफल रही। इस संदर्भ में, डेविड हार्वे को काम सामाजिक न्याय और शहर' (2010) ने भूगोलवेत्ताओं के लिए भौगोलिक अनुसंधान के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरणा के रूप में काम किया, क्योंकि यह दृष्टिकोण समग्र है और आर्थिक और सामाजिक दोनों की परस्पर निर्भरता पर अधिक जोर देता है। उत्पादन, उपभोग और वितरण के संदर्भ में मुद्दे। हालाँकि, भूगोल में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को उधार लेने पर भी कई आधारों पर बहस हुई दर्शन को अपनाने से लेकर भूगोल में इसे लागू करने के तरीके तक। बड़ी संख्या में भूगोलवेत्ताओं ने पूंजीवादी समाजों के विविध आर्थिक पहलुओं को प्रस्तुत करने में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया, लेकिन उत्पादन प्रणाली को आगे की खपत और वितरण प्रणाली के साथ जोड़ने के लिए मार्क्सवाद के पूर्ण रूप पर विचार नहीं किया जिसका अर्थ है कि वे आर्थिक पहलुओं को जोड़ने में विफल रहे। सामाजिक मुद्दे (स्मिथ, 1977)। कभी-कभी, इसकी एक ऐसे दृष्टिकोण के रूप में आलोचना की गई है जिसे मार्क्सवादी के बजाय मार्क्सवादी कहा जाता था (एशेम, 1979)¹

संरचनावादी भूगोल का वास्तविक रूप वास्तव में उत्पादन प्रणाली और उसके संगठन के महत्व को स्वीकार करता है जो समाज के सभी स्तरों पर सामाजिक प्रक्रियाओं के निर्माण और संरचना को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। इसलिए, स्वाभाविक रूप से, यह उन सभी द्वंद्वात्मक संबंधों से संबंधित है जो एक ओर सामाजिक प्रक्रियाओं और दूसरी ओर प्राकृतिक पर्यावरण और स्थानिक संबंधों (पीट और ल्यॉस, 1981) के बीच मौजूद हैं। बहुत महत्वपूर्ण रूप से, क्रांति की शुरुआत करने में मार्क्सवादी भूगोलवेत्ताओं को दिशा देने के लिए कोई विशेष सुव्यवस्थित रूपरेखा तैयार नहीं की गई थी, जब तक कि आलोचनात्मक सिद्धांत विद्वानों की सर्वसम्मति ने सुझाव नहीं दिया कि मार्क्सवादी विश्लेषण के प्रकाश में वास्तविक तथ्यों की सराहना केवल शक्ति और आत्मप्रतिबिंब को बढ़ा सकती है। इसलिए, मार्क्सवादी भूगोल एक सैद्धांतिक और साथ ही एक राजनीतिक आधार विकसित करता है जो आम लोगों की आम जनता की ओर से अंतर्राष्ट्रीय शासक वर्ग के लोगों द्वारा विनाश और शोषण के रूपों को चुनौती देने की बात करता है (पीट और ल्यॉस, 1981)। इसलिए, मार्क्सवादी भूगोल मूलतः वास्तविकता की संरचना से निपटने के लिए एक समग्र परिप्रेक्ष्य की मांग करता है। डनफोर्ड (1980) जैसे कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया, हालांकि एक समग्र परिप्रेक्ष्य बनाए रखने की आवश्यकता है, सामाजिक विज्ञान की व्यक्तिगत शाखाओं के पास अलग-अलग विषयों के रूप में प्रकट होने का उचित औचित्य है क्योंकि उनके पास ध्यान देने का अपना विशिष्ट केंद्र है। इस विशेष परिप्रेक्ष्य से, मानव भूगोल में प्रवचन की अपनी विशिष्ट पंक्ति स्थापित करने की गुंजाइश है जिसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है संरचना और स्थानिक रूपों का अध्ययन जो ऐतिहासिक रूप से उत्पादित किया गया है और उत्पादन प्रणाली के मोड़ द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। इस तरह के तर्कों ने मानव भूगोलवेत्ताओं को इस आम सहमति पर पहुँचाया कि भूगोल को अपने परिप्रेक्ष्य की प्रकृति के साथ आना चाहिए जो सामाजिक मुद्दों की संरचनाओं और स्थानिक रूपों को प्रकट करने में आत्म-प्रतिबिंबित और शक्तिशाली होगा। इसने कालान्तर में संरचनावादी भूगोल के विकास को मार्ग प्रशस्त किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि संरचनावादी भूगोल में मानवतावादी भूगोलवेत्ताओं की तरह ही आलोचनाएँ शामिल थीं, जिन्हें सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणामों की व्याख्या करने में अन्य दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता की आलोचना करने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। संरचनावादी भूगोलवेत्ता मुख्य रूप से यह मानते हुए दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं कि व्यक्तिगत निर्णय लेने से वास्तविक संरचनात्मक प्रक्रिया का पता नहीं चल सकता है जो भूगोल के निर्माण और मनोरंजन को रेखांकित करती है। मानव भूगोल के कुछ क्षेत्रों में संरचनावादी भूगोल का प्रभाव अधिक प्रभावी है।

ऐसे क्षेत्रों में एक आर्थिक भूगोल है जहाँ संरचनावादी कार्यों का प्रमुख फोकस विकास के साथ-साथ अविकसितता का भूगोल भी पाया गया। ऐसी घटनाओं के संरचनावादी विश्लेषण ने मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था में नियतिवादी स्थानिक प्रसार के साथ एक रेखीय आर्थिक विकास को बदल दिया। बुकफील्ड, ब्रेवर, एन. स्मिथ जैसे विभिन्न विद्वानों के लेखन ने इस संदर्भ में बहुत कुछ प्रेरित किया।

संरचनावादी दृष्टिकोण का योगदान सामाजिक भूगोल, विशेष रूप से सामाजिक शहरी भूगोल में भी प्रमुख है जिसने भौगोलिक अनुसंधान के अभिविन्यास को बदलने में बहुत प्रभाव डाला। पूर्व-संरचनावादी परिप्रेक्ष्य में, भूगोलवेत्ता शहरी क्षेत्रों में कौन कहाँ रहता है जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते थे और यह भी मानते थे कि समय के साथ सामाजिक संबंधों का एक निश्चित समूह नहीं बदल रहा था, ऐसे संबंधों की शुद्धता के बारे में आपसी सहमति थी। जिसके आधार पर लोगों को एक विशिष्ट आवास स्थान आवंटित किया जाएगा और उन्हें अपनी स्थिति बदलने की अनुमति दी जाएगी और लोगों के बीच जहाँ भी वे चाहे आवास स्थान चुनने के लिए एक स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा होगी। संरचनावादी परिप्रेक्ष्य में यह तर्क देकर ऐसी धारणाओं को दृढ़ता से चुनौती दी कि समाज हमेशा बदल रहा है और संबंधों को तदनुसार बदलना चाहिए। इस तरह के संबंध असहमति के बजाय और कभी-कभी संघर्ष के कारण भी बदल जाते हैं (जॉनस्टन, 1980)। इसलिए, कई जटिल तंत्र बने हुए हैं जो शहरी क्षेत्र में आवास स्थानों का चयन करने की स्वतंत्र पसंद को सीमित करते हैं। इस संदर्भ में डेविड हार्वे का योगदान उल्लेखनीय पाया जाता है।

ब्रायन बेरी (1969) ने पूर्व-संरचनावादी काल के दौरान राजनीतिक भूगोल को 'मरणासन्न बैकवाटर' कहा था। 1950 और 1960 के दशक में मात्रात्मक क्रांति के दौरान आदर्शवादी और प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण का संयोजन राजनीतिक भूगोल में ज्यादा योगदान नहीं दे सका। चुनावी भूगोल ने प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य (टेलर और जॉनस्टन, 2014) के साथ अधिक महत्व प्राप्त करने के बावजूद, वास्तविक पुनरुद्धार अपने अनुसंधान अभिविन्यास में संरचनावादी दृष्टिकोण के आवेदन के बाद दिखाई दिया। क्लार्क और डियर (1981) ने पूंजीवादी और उत्पादन प्रणाली के कई अन्य तरीकों के भीतर राज्य की प्रकृति से संबंधित सैद्धांतिक मुद्दों को एकीकृत करके राजनीतिक भूगोल में प्रमुख योगदान दिया। पूर्व संरचनावादी समय में ऐसे मुद्दों को राजनीतिक भूगोल के क्षेत्र के अंतर्गत अध्ययन नहीं माना जाता था।

ऐतिहासिक भूगोल में, संरचनावादी परिप्रेक्ष्य ने अतीत के पैटर्न का अध्ययन और व्याख्या करने के लिए एक वास्तविक विधि प्रदान की। इसके अलावा, यदि किसी को अतीत के किसी विशिष्ट पैटर्न में रुचि नहीं है, बल्कि अतीत की विशिष्ट घटनाओं की कई श्रृंखलाओं में परिवर्तनों के पैटर्न का पता लगाने में अधिक रुचि है, तो उसे भी प्रकट करने के लिए संरचनावादी दृष्टिकोण सबसे उपयुक्त है। ऐतिहासिक भूगोल में प्रेड (1979) का योगदान उल्लेखनीय है क्योंकि उन्होंने अपने विश्लेषण में संरचना की अवधारणा का उपयोग किया था।

अंत में, यह उल्लेखनीय है कि संरचनावाद के साथ मानव भूगोलवेत्ताओं का जुड़ाव अल्पकालिक था और एक संक्रमण के रूप में काम किया जब भूगोलवेत्ताओं ने कुछ अन्य दृष्टिकोण अपनाए और अधिक गहराई से निपटा। 'संरचनावाद की ओर कदम, भौगोलिक विचार में कभी भी पूरा नहीं हुआ, अधिक सैद्धांतिक सुसंगतता और कठोरता की खोज का प्रतिनिधित्व करता है (पीट, 1998, पृष्ठ 112)' संरचनावाद ने अंततः अनुभववाद की समस्याओं का पता लगाने के लिए कोई संतोषजनक समाधान नहीं दिया, बल्कि इसने सत्ता और सामाजिक प्रक्रियाओं का संरचनात्मक विश्लेषण प्रदान करने के लिए मार्क्सवाद (जैसे संरचनात्मक मार्क्सवाद) के कई रूप अपनाए (ग्रेगरी एट अल., 2011)।

14.7 सारांश

जब से भूगोल की परिवर्तनशील चिंतन फलक में नवीन संकल्पनाओं का विकास हुआ तब से

भूगोलवेत्ताओं ने विभिन्न संकल्पनाओं को भूगोल में स्थान दिलाने का पुरजोर प्रयास किया है। इस संकल्पनात्मक विकास के दौर में नारीवादी भूगोल और मात्रात्मक क्रांति का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारीवादी भूगोल एक प्रकार से नारीवादी आन्दोलन है जो पुरुष प्रधान समाज में नारी को बराबरी का स्थान दिलाने की बात करता है। यह समाज में पहले महिलाओं के प्रति की जा रही अनदेखी को मिटाने के लिए किया गया कार्य है जिसमें मार्क्सवादी चिंतन का भी सहारा लिया है। जो इसे सामाजिक भूगोल से भी जोड़ने का कार्य करता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामाजिक निर्वहन की वकालत करता है। इसी के साथ 1960 के दशक में सामाजिक मूल्यों पर प्रहार करने वाली विचार आया जिसे मात्रात्मक क्रांति का नाम दिया गया। यह भूगोल के विवरणात्मक स्वरूप पर उंगली उठाने लगा तथा तर्क दिया कि 20वीं शताब्दी तक आते-आते भौगोलिक अध्ययन को निराशा पूर्ण बना दिया गया। जिसमें भौगोलिक अध्ययन में वैज्ञानिकता की झलक कम दिखाई पड़ती है। इसके लिए भूगोल के स्वरूप को गणितीय, सांख्यिकीय स्वरूप के साथ सैद्धांतिक रूप दिए जाने पर कार्य किया जाने लगा तथा इसे समझाने के लिए मॉडल का सहारा भी लिया जाने लगा। इस दिशा में प्रथम प्रयास वान थ्यूनेन का माना जाता है जिन्होंने अपने कृषि अवस्थिति सिद्धान्त को समझाने के लिए मॉडल का सहारा लिया। इनका वास्तविक विकास 1960 के दशक में माना जाता है। जब इसके सम्पूर्ण स्वरूप को बदल गणित व सांख्यिकी के हवाले कर दिया गया तथा कम्प्यूटर प्रयोग अनिवार्य कर दिया। ऐसी स्थिति में भूगोल आम जन की पहुँच से दूर होता दिखने लगा तब सामाजिक भूगोल के अध्येता भूगोलवेत्ताओं ने इसका विरोध कर मात्रात्मक विधियों के सीमित प्रयोग पर बल दिया।

14.8 पारिभाषिक शब्दावली

लैंगिक भूगोल— भूगोल का एक नवीन आयाम जिसमें स्त्री व पुरुष दोनों को समान अधिकार दिए जाने की वकालत की जाती है नारियों संरक्षण तथा उनके पुर्नजागरण पर बल दिया जाता है तथा भूगोल में इस तरह के चिंतन को नारीवादी चिंतन कहा जाता है।

मात्रात्मक क्रांति— भूगोल में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अनुभवात्मक अध्ययनों के स्थान पर मात्रात्मक अध्ययनों पर बल दिया जाने लगा। जिसे भूगोल में मात्रात्मक क्रांति कहते हैं।

14.9 बोध प्रश्न

14.9.1 दीर्घ उत्तरोत्तर प्रश्नोत्तर

प्रश्न—1 भूगोल में नारीवादी चिंतन के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न—2 भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की रूपरेखा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न—3 भूगोल में मात्रात्मक विधियों के अपनाने के कारा बताइए।

प्रश्न—4 मात्रात्मक क्रांति का आलोचनात्मक परिक्षण कीजिए।

14.9.2 लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न—1 लैंगिक भूगोल किसे कहते हैं।

प्रश्न—2 मात्रात्मक क्रांति को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न—3 मात्रात्मक क्रांति के समर्थक भूगोलवेत्ताओं के नाम बताइए।

14.9.3 बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न—1 **The Quantitative Revolution Theoretical Geography** पुस्तक किस विज्ञान की है?

(क) बर्टन (ख) शोर्ले (ग) हैगेट (घ) वेबर

प्रश्न—2 हम्बोल्ट धारा का दूसरा नाम कौन सा है।

प्रश्न—3 क्रमबद्ध भूगोल के प्रणेता कौन थे?

प्रश्न—4 प्रादेशिक भूगोल के प्रणेता कौन थे?

प्रश्न-5 सन् 1859 का वर्ष का भौगोलिक काल में चर्चा

प्रश्न-6 आर्मचेयर भूगोलवेत्ता

प्रश्न-7 रीटर की अध्ययन पद्धति

प्रश्न-8 भूगोल के प्रथम प्रोफेसर

प्रश्न-9 आगमनात्मक विधि

प्रश्न-10 निगमनात्मक विधि

अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक भूगोल के संस्थापक के रूप में हम्बोल्ट व रीटर के योगदान की व्याख्या कीजिए।
2. काण्ट के भूगोल के विकास में दार्शनिक आधार को स्पष्ट कीजिए।
3. हम्बोल्ट छायावादी युग के प्रतिनिधि भूगोलवेत्ता है। स्पष्ट कीजिए।
4. हम्बोल्ट व रीटर द्वारा भूगोल के अध्ययन में अपनायी गई विधियों की व्याख्या कीजिए।
5. रीटर का प्रादेशिक भूगोल के विकास में दिए गए योगदान की व्याख्या कीजिए।
6. हम्बोल्ट व रीटर की समानताएँ व असमानताओं की व्याख्या कीजिए।

14.10 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई-15 : उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति

ईकाई की रूपरेखा

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3. उत्तर आधुनिकतावाद
- 15.4. आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति
- 15.4 सारांश
- 15.5 पारिभाषिक शब्दावली
- 15.6 बोध प्रश्न
 - 15.6.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर
 - 15.6.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर
 - 15.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर
- 15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों में समाज व्यक्ति वर्ष में आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक भूगोल की चर्चा बढ़ चढ़कर की जा रही है परंतु जिन्हें भी दोनों का सही-सही अर्थ और उनके बीच का आधार मूल अंतर अभी भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। इस तरह आधुनिक का अर्थ इतिहास को समझे बिना उत्तर आधुनिकतावाद को पूरी तरह से समझ पाना असंभव है। भूगोल में इस तरह के संकल्पनात्मक विचारों का समावेश 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही किया जा रहा है, जो भूगोल को वैज्ञानिकता की ओर ले जाते हैं तो कभी समाज विज्ञान के नजदीक ले आते हैं। इस तरह के विषयों का विकास से भी पहले 16वीं शताब्दी तथा 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट किया जाता है। यह विषय नवीनतम और प्रगतिशीलता के अनिवार्य विश्लेषण और उनके मूल पहचान बन गया। यह समाज विज्ञानों के विशेष संदर्भ में आधुनिकता को परिभाषित करते हैं। मार्क्स, एंगेल्स, गिडेंस जैसे विद्वानों के विचारों ने 19वीं सदी के मध्य में मार्क्स एवं एंगेल्स के सामाजिक परिवर्तन के इतिहास में आधुनिकता को पूंजीवाद की सफलता और उसके विश्व विस्तार का मूल कारण बताया है उनके दोनों के सहयोग के कारण ऐतिहासिक संस्कार पुरानी पहचान और उन पर आधारित संबंध विशिष्ट हो गए और परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज हो गई कि नई पहचान और संबंध पुराने होकर स्थापित प्राप्त करने के पहले ही बासी पड़ने लगे।

स्थिति निरंतर चालू है अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर आधारित आधुनिक विश्व व्यवस्था का प्रारंभ 16वीं सदी में यूरोपीय देशों में हुआ था, परंतु आज की विश्व व्यापी और सही अर्थों में वैश्विक बाजार व्यवस्था का विकास 19वीं और 20वीं सदी के राजनीतिक और आर्थिक विकास का परिणाम है। 19वीं सदी के प्रारंभ में आधुनिकता बाजार पर आधारित आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का आधार बन गई और सामाजिक परिवर्तन व नए तथा पुराने जाने की गति दूर हो गई। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में क्रांतिकारी तकनीक के विकास के परिणाम स्वरूप परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज हो गई की सामाजिक जीवन के सभी पक्षों की पहचान पर संकट उत्पन्न हो गया तथा इससे कई विषय भी प्रभावित हुए।

15.2 उद्देश्य

- आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता को स्पष्ट करना।
- आधुनिकतावादी विचारधारा के सामाजिक योगदान के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- आधुनिकतावाद की आधारभूत संरचना की पहचान करना।

15.3 उत्तर आधुनिकतावाद

जैसा की प्रस्तावना में बताया गया है उत्तर आधुनिकता को समझने से पहले आधुनिकतावाद को भी समझना आवश्यक है। डिक्शनरी ऑफ वूमेन जियोग्राफी 1994 के अनुसार आधुनिकता से तात्पर्य ज्ञान और सामाजिक व्यवहार पद्धति के उसे विशेष प्रकार के संयोग से है जिसका विकास 16वीं, 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट हुआ और जो परिवर्तन क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से 17वीं सदी के मध्य तक पूरे विश्व में सामाजिक चिंतन और व्यवहार का प्रतिमान बन गया। 18वीं सदी के अंत में नवीनता और प्रगतिशीलता आधुनिकता के अनिवार्य विश्लेषक और उसकी मूल पहचान बन गया आधुनिक होने का तात्पर्य विस्तार आगे देखते हुए उन्नति और विकास के मार्ग पर अग्रसर होते रहना। ऐतिहासिक भौतिकतावाद से प्रेरित आधुनिक समाज वैज्ञानिक चिंतन पद्धति में प्रचलित सामाजिक परिवर्तनों के अध्ययन में सर्वभौमवादी परिदृष्टि 20वीं सदी के उत्तरार्ध में परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के लिए पर्याप्त और सामाजिक अनुभव की जाने लगी। चिंतन पद्धति में आया यह व्यापक परिवर्तन ही सामाजिक विज्ञानों में उत्तर आधुनिकतावाद का प्रारंभिक चरण था।

आधुनिकतावाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद

एक अवधारणा के रूप में आधुनिकता की तरह आधुनिकतावाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद का जन्म हुआ है एक और आधुनिकता शोध विचार के एक विशिष्ट दृष्टिकोण का संकेत देती है जिसे तार्किक वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहते हैं वही दूसरी ओर आधुनिकतावाद समाज की एक विशिष्ट दशहरा स्थिति को दर्शाने वाली एक विचरण है यह एक प्रकार की जीवन शैली को भी प्रदर्शित करती है इसी तरह आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जिसके तहत कोई व्यक्ति आधुनिक बनता है आधुनिकता के विपरीत परिणामों के बाद उत्तर आधुनिकतावाद का विचार विकसित हुआ अर्थात् आधुनिकतावाद की प्रतिक्रिया में उत्तर आधुनिकतावाद का जन्म हुआ उत्तर आधुनिकतावाद यह स्पष्ट करती है कि सत्य, सौंदर्य और नैतिकता वस्तुपरक वास्तविकताएं नहीं हैं तथा वैज्ञानिक तथा तार्किक विधियों से उनकी खोज संभव नहीं है।

औद्योगीकरण को यदि हम आधुनिकता के देन समझते हैं तो इसके दुष्परिणाम (पर्यावरण विनाश आदि) उत्तर आधुनिकता के विचार को प्रतिबिंबित करते हैं। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूपों के अध्ययन को उत्तर आधुनिकतावाद कहा गया जिनकी उत्पत्ति आधुनिकता की प्रक्रियाओं के तीव्रीकरण उग्रवादिता और रूपांतरण के फलस्वरूप हुई है।

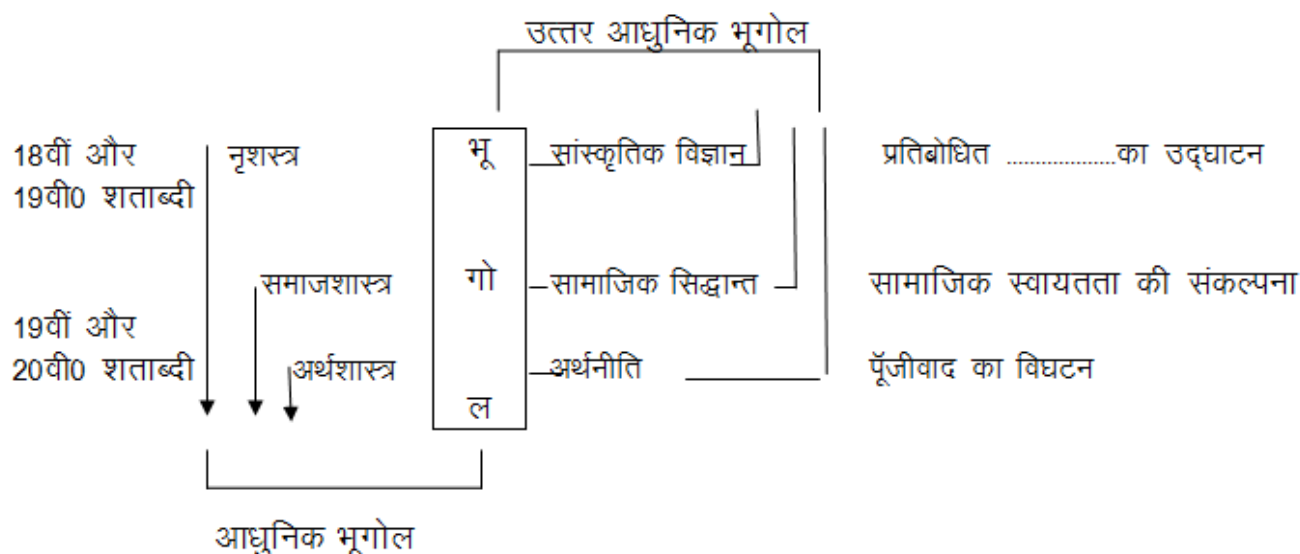
गाइडेंस 1990 में आधुनिकतावाद की चार आधार मूल संस्थाओं की पहचान की है संनिरीक्षण, उद्योगवाद, पूंजीवाद तथा सैन्यशक्ति। गाइडेंस ने इनके आधार पर इंसानी और वैदिक स्तर की राजनीतिक के कौशल के दो प्रारूपों की संकल्पना की है। वरमैन 1982 में समाज विभागों के संदर्भ में आधुनिकताओं की परिभाषा करते हुए इस जीवन मृत्यु से संबंधित अनुभवों को स्वयं और दूसरों के बीच अंतर करने तथा जीवन की संभावनाओं और इसके खतरों के बारे में सोचने समझने की एक विशेष और युग समझ परिदृष्टि बताया है। अतः आधुनिक संदर्भ में और तर्क वितर्क का मिला-जुला रूप देश काल के संदर्भ में जीवित रहने अर्थात् समकालीन बने रहने से संबंधित एक विशेष प्रकार की पड़ती है। अतः मानव अंकित के तीन आधारमूल विशिष्ट और परिवर्तनशील अभाव के क्षेत्र समय और अस्तित्व अर्थात् मानव जीवन के क्षेत्रीय ऐतिहासिक और सामाजिक आयाम को समझने और उनकी व्यवस्था के लिए आधुनिकता एक उपयोगी शब्द है। आधुनिकतावाद का तात्पर्य आधुनिकरण और पूर्ण निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में समन्वय की सांस्कृतिक तथा वैचारिक संचेतनात्मक और संकलन आत्मक प्रतिक्रिया है।

उत्तर आधुनिकता दर्शन, कला और समाज वैज्ञानिक चिंतन की अपेक्षाकृत नई धारा है इनकी मुख्य विशेषताओं में आधुनिक युग की उपलब्धियां और आधुनिक चिंतन धारा की विस्थापित संकल्पनाओं और उनके बौद्धिक श्रेष्ठ संबंधी गांव के प्रति संदेह का भाव शक्ति है।

आधुनिकतावाद को सही अर्थों में स्पष्ट करते हुए भारतीय विद्वान प्रोफेसर दीक्षित ने लिखा है कि आधुनिकरण और पुनर्निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में समन्वय की सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक संचेतनात्मक और संकल्पनात्मक प्रतिक्रिया से है। आधुनिकतावाद चेतना का स्वरूप ऐतिहासिक परिवर्तनों के इस दीर्घकालीन दौर में पूंजीवाद के विकास में समय-समय पर उत्पन्न होने वाले संकटों के अनुरूप सदी के मध्य अपनी जकड़ बनाये रहा परिणाम स्वरूप भौगोलिक चिंतन में रेटजेल और ब्लॉश कि संघटनवादी संकल्पना

से लेकर हैंगरस्टैंड के समय भूगोल की संकल्पना तक अनेक विचारधारा निरंतर किसी ने किसी रूप में रही है। इस तरह भूगोल में आधुनिक से उत्तर आधुनिक की ओर विकास एक प्रक्रिया के रूप में हुआ है। उत्तर आधुनिकतावाद विचार विमर्श में अधिक खुलेपन एवं उदारवादी रूप पर बोल देता है सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उत्तर आधुनिकतावाद समाज के उपेक्षित वर्गों को अनेक राजनीतिक अधिकार दिलाने पर बल देता है। भौगोलिक अध्ययनों में उत्तर आधुनिकतावाद का विचार सन 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीतिक परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ आया था। यह विचार उसे समय मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित था, इसके बाद तत्कालीन भूगोल क्षेत्रीय इकाइयों में विद्यमान सामाजिक समदृष्टियों और स्थानीय निवासियों के जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक वितरण में न्याय, अन्याय के क्षेत्रीय पक्ष पर केंद्रित हो गया। केंब्रिज विश्वविद्यालय के ग्रेगरी (Derek Gregory) ने मानव भूगोल में सामाजिक समीक्षा सिद्धांत (social critical theory) का प्रतिपादन सन 1978 में ऐतिहासिक और प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन को शब्दार्थ मीमांसा की अध्ययन पद्धति से जोड़ने के उद्देश्य से किया था (ideology science and women geography 1978) इसके बाद भूगोल एवं समाजशास्त्र में द्वैत खत्म हुआ। ग्रेगरी के अनुसार उत्तर आधुनिकतावाद मानव भूगोल की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं प्रथम यह की सामाजिक व्याख्या स्थान और काल सापेक्ष है। उत्तर आधुनिकतावाद मानव भूगोल अध्ययन के लिए चुनी गई स्थानिक इकाई और उससे संबंधित समस्याओं को वहां रहने वाले लोगों की दृष्टि से देखने पर बोल देता है। प्रत्यावर्तन या कर्तव्य विशेषता (**reflex iveness**) अर्थात् विषय एवं विषय वस्तु के मध्य पूर्ण तादात्म्य उत्तर आधुनिकतावाद समाज वैज्ञानिक चिंतन के आधारभूत मान्यता है। उत्तर आधुनिकतावाद को डियर 1986 में निम्नलिखित तीन रूपों में वर्गीकृत किया है –

1. उत्तर आधुनिकतावाद एक शैली स्टाइल है जिसमें साहित्य व साहित्यिक आलोचना से इसका जन्म हुआ है तथा अभिकल्प डिजाइन फिल्म, फोटोग्राफ, कला और वास्तुकला में इसका विस्तार हुआ है।
2. यह एक विधि है तथा विधि के रूप में सार्वभौम सत्य तथा अधिसिद्धांतों के विचारों का मनन करता है।
3. उत्तर आधुनिकतावाद को एक युग (Epoch) के रूप में माना गया है जिसे एक ऐतिहासिक काल भी कहते हैं इस काल में संस्कृति और दर्शन में परिवर्तन एक सार्वभौम अर्थव्यवस्था और भू राजनीति के विकास में स्वयं अवस्थित है। इस तरह यह विचारवाद के पूंजीवाद की संस्कृति है। उत्तर आधुनिकतावाद एक युग के रूप में समाज में, भूतकाल में, एक प्रमुख मूलभूत विचलन के रूप में वर्तमान विकास को चित्रित करता है। अतः पूर्वकी युग की आधुनिकता के विपरीत आधुनिकता शब्दावली का प्रयोग किया गया है। उत्तर आधुनिकतावाद उन सभी पद्धतियों की आलोचना करता है। जिनका भूगोल पर 1950 के दशक से 1980 के दशक तक प्रभुत्व रहा था।



चित्र – आधुनिक मानव भूगोल का बनना और बिगड़ता (स्रोत ग्रेगरी 1989 प्र 350)

उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन आधुनिकतावादी चिंतन की अपेक्षा विचार विमर्श में अधिक खुलेपन और

उदारवादी रुख पर बल देता है। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन समाज के अपेक्षित वर्गों को उनके राजनीतिक अधिकार दिलाने पर बल देता है, और कला व साहित्य में परस्पर प्रतिस्पर्धा संकल्पनाओं के प्रति आधुनिकतावादी चिंतन की अपेक्षाकृत अधिक उदार व सहानुभूति पूर्ण स्वरूप अपनाता है। उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन की व्याख्या करते हुए डियर ने इसके तीन संबंधों की ओर ध्यान खींचा है जो शैली विधि और युगारंभ है। अध्ययन की जाने वाली विषय की अर्थव्यवस्था और उसकी पहचान बहुत हद तक उनके देखने समझने और प्रस्तुत करने की शैली पर निर्भर है। शैली दो अलग-अलग रूप अपना शक्ति है या तो वह समकालीन शासक वर्ग के विचारों का समर्थन कर सकती है या उसके प्रति विरोधात्मक रूप अपना सकती है। शैली संबंधी यह विचार दृश्य निर्माण से संबंधित परिवर्तनों के बारे में भी लागू होता है उत्तर आधुनिकतावादी अध्ययन पद्धति मूलतः व्याख्यान विचारों और सिद्धांतों के पुनर्निरीक्षण की विधि है। पुनर्निरीक्षण आलोचनात्मक विवेचन की यह विशेष पद्धति है। जिनको सहायता है किसी सिद्धांत विचार या संकल्पना और वकालव्य को विचार रखने वाले शोधकर्ता या व्यक्ति की संस्कृति पृष्ठभूमि और उसके सामाजिक आदि के पृष्ठभूमि और उनके सामाजिक आर्थिक स्तर और उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया जाता है। अतः पुनर्निरीक्षण मूलतः सामाजिक चेतना और मान्यताओं को पूरे देने और उन्हें अधिकार करने वाली विधि है। इसके सहारे समाज वैज्ञानिक चिंतक पुरानी संस्कारों और मान्यताओं को समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के वर्ग गत हितों के संदर्भ में समझाने का प्रयास करता है। उत्तर आधुनिकतावाद के बाद समाज की वैचारिक प्रगति का युगांतर दिशा भी अनिवार्यता जुड़ा हुआ है अर्थात् उत्तर आधुनिकतावाद को एक ऐतिहासिक युग के रूप में देखा जा सकता है। एक ऐसे युग के रूप में जिसमें सांस्कृतिक और वैचारिक मान्यताओं को राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के विकास भी वैश्विक प्रक्रिया से जोड़कर देखने का प्रयास करता है। इसलिए कुछ समालोचकों ने उत्तर आधुनिकतावाद को पूंजीवाद के लिए विकास के अंतिम चरण की सांस्कृतिक चेतना बताया है। हार्वे के अनुसार उत्तर आधुनिकतावाद अमेरिकी उद्योगपति हेनरीजोर्ड द्वारा प्रारंभ की गई मानवीकरण अवधूत उत्पादन और भिन्न-भिन्न इकाइयों में निर्मित अलग-अलग कल पुर्जों को जोड़कर मशीनों के उत्पादन की असेंबली लाइन पद्धति के आधार पर पूंजी संचयन पद्धति के आधार पर पूंजी संज्ञान पद्धति की समाप्ति के बाद प्रचलन में आई पूंजी पद्धति की नई पद्धति द्वारा प्रेषित चेतन है। इसे सामाजिक परिवर्तन की मार्क्सवादी संकल्पना को भी दूसरों से जोड़कर देखा गया है। 1960 के दशक के उत्तर में समाज वैज्ञानिक चिंतकों का ध्यान ऐतिहासिक भौतिकवादी व्याख्या की इस आधारभूत कमी की ओर आकृष्ट हुआ और वह समाज वैज्ञानिक व्याख्या में स्थान सापेक्षता पर बल देने लगे। यही उत्तर आधुनिकतावादी चेतन की सही शुरुआत थी इसमें भौगोलिक कल्पना सामाजिक चेतना का अभिन्न अंग मानी जाने लगी।

भौगोलिक अध्ययन में आधुनिकतावादी चिंतन का क्रमिक और उत्तर आधुनिकतावादी भूगोल के और विचार परिवर्तन की प्राप्ति 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीति परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ निकट से जुड़ी थी। इस बात के होते हुए भी की अर्थनीति परिदृष्टि मुख्यतः तथा स्थान निरपेक्ष मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित थी। इसके साथ ही मानव भूगोल के परिदृष्टि क्षेत्रीय प्रारूपों से हटकर मानव विकास की विश्व स्तरीय अंतर क्षेत्रीय असमानताओं पर केंद्रित हो गई। हम इस प्रकार भूगोल क्षेत्रीय इकाइयों में विद्यमान सामाजिक दृष्टियों और स्थानीय निवासियों के जीवन के कठिनाइयों और सामाजिक वितरण में न्याय अन्याय के क्षेत्रीय पक्ष के अध्ययन पर केंद्रित हो गए मार्क्सवादी चिंतन के निरपेक्षता के परिणाम स्वरूप इस विचार परिवर्तन और इसके संदर्भ में अर्थनीति परिदृष्टि और उत्तर आधुनिकतावादी परिदृष्टि के बीच अनिश्चय और भ्रम की स्थिति बनी रही। मानव भूगोल की अनिश्चयवादी परिदृष्टि के समय पूंजीवादी विश्व व्यवस्था में असंगठित पूंजीवाद का युग था, परिणाम स्वरूप मार्क्सवादी विचारको में सामाजिक परिवर्तन के ऐतिहासिकवाद भौतिकवाद से प्रेरित विचारधारा की क्षेत्रनिरपेक्षता संबंधित आधारभूत कमी की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। इस प्रकार मानव भूगोल में सामाजिक पक्ष की ओर अधिक ध्यान आकृष्ट करवाया गया। उत्तर आधुनिकतावादी भूगोल ने इस आधारभूत संकल्पना मत कठिनाई को दूर करने के लिए भूगोल के सीमांत को सभी प्रकार के वैज्ञानिक और दार्शनिक चिंतन के लिए समान रूप से खोल दिए फलस्वरूप मानव भूगोल और सिद्धांत पर समाज वैज्ञानिक चिंतन के बीच वैचारिक लेनदेन में वृद्धि है। परंतु उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल के चिंतकों को स्पष्ट मत है, मानव भौगोलिक विमर्श से विश्व स्तरीय व्यापकता वाले सिद्धांतों के प्रतिपादक की कोई संभावना नहीं है। ग्रेगरी के अनुसार उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल के तीन प्रमुख विशेषताएं हैं।

1. यह सामाजिक व्याख्या स्थान और कल सापेक्ष है।

2. उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल अध्ययन के लिए चुनी गई स्थानीय इकाई है।
3. उसे समृद्ध समस्याओं को वहां रहने वाले लोगों की दृष्टि से देखने पर बोल देता है प्रत्यावर्तन या कर्तव्य विशेषता अर्थात विषय और विषय वस्तु के बीच पूरा उत्तर आधुनिकतावादी समाज वैज्ञानिक चिंतन के आधार बहुत मान्यता है।

16.4. आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारत में भूगोल का क्षेत्र केवल स्कूलों तक ही सीमित था यहा से इतिहास व नागरिकशास्त्र के साथ मिलकर पढ़ाया जाता था। इस काल में केवल देहरादून स्थित सर्वे ऑफ इण्डिया (1767 में स्थापित) ही एकमात्र संस्था थी जहाँ भौगोलिक जानकारी के लिए भूपत्रक तथा मानचित्रावली बनायी जाती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भूगोल का अध्ययन सामाजिक अध्ययन के रूप में हाईस्कूल स्तर पर कराया जाने लगा। महा-विद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन सन् 1920 में लाहोर में आरम्भ हुआ। यह स्वतन्त्र विषय बना। स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल शिक्षा का श्रीगणेश सन् 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ। यहाँ प्रथम विभागाध्यक्ष प्रो. इनादुर्रहमान खॉं थे। 1936 में यहाँ स्नातकोत्तर अध्ययन के साथ शिक्षक प्रशिक्षण कार्यो में भी भूगोल विषय आरम्भ हुआ। 1932 में मद्रास (चौन्नई) में प्रो. एन. सुब्रह्मण्यम के निर्देशन में पहले शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में तथा बाद में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ। इस प्रकार सन् 1950 से पूर्व तक भारत में आगरा, कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई), मद्रास (चौन्नई), बड़ौदा, मैसूर, हैदराबाद, राँची, वाराणसी, इलाहाबाद, नागपुर, उदयपुर, जोधपुर, गोहाटी आदि स्थानों पर महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ। सन् 1950 से पूर्व का काल इस दिशा में प्रारम्भिक काल कहलाता है। इसके उपरान्त 1950-60 का दशक रचनाकाल के नाम से जाना जाता है। इसी दौरान सर्वप्रथम आस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता ओ.एच.के. स्पेट ने 1950 में भारत एवं पाकिस्तान के भौगोलिक कार्यो का सर्वेक्षण का एक पुस्तक लिखी। इसके बाद 1964 से 1973 तक प्रो. एच.डी. घटकों ने भारत में भूगोल की प्रगति से सम्बन्धित लेख लिखे थे। 1956 में भारतीय भूगोल में निम्नांकित प्रमुख कार्य सम्पन्न हुये—

- (1) भारतीय राष्ट्रीय एटलस संस्थान की स्थापना।
- (2) अलीगढ़ में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संगोष्ठी सम्पन्न।
- (3) भारतीय भूगोलवेत्ता परिषद् का राष्ट्रीय स्तर पर संगठन।
- (4) भारतीय सांख्यिकीय प्रादेशिक सर्वेक्षण के भूगोल विभाग की स्थापना।

1960-70 के दशक में भारतीय भूगोल पर प्रसिद्ध ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डडले स्टेम्प का प्रभाव रहा जिनके निर्देशन में प्रो. मो. शफी द्वारा भूमि उपयोग कार्य किया गया था। इसी दौरान सागर विश्वविद्यालय में प्रो. मुजफ्फर अली ने सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग की स्थापना की। इस दौरान प्रो. अली का पौराणिक भूगोल, डी.पी. सक्सेना का वैदिक भारत का भूगोल ऐतिहासिक भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण कार्य थे। सन् 1970-80 के दशक में भारतीय भूगोल में विविधता आने लगी थी। भारतीय भूगोल में अभी भी पाश्चात्य देशों का अध्यानुकरण किया गया। इस दशक में मानव भूगोल पर अधिक बल दिया गया। नगरीय भूगोल, ग्रामीण अधिवास भूगोल, जनसंख्या भूगोल, राजनैतिक भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल आदि का स्वतन्त्र अध्ययन आरम्भ हुआ। जबकि भौतिक भूगोल में भू-आकृति-विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान का भी स्वतन्त्र शाखा के रूप में अध्ययन आरम्भ हुआ। भारत में भूगोल को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में विभिन्न संस्थाओं, समितियों तथा सम्मेलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनके उपरान्त भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगोल के शिक्षण कार्य में गुणवत्ता आयी व शोध कार्य तीव्र गति से अधिक शुद्धता से होने लगे। कुशल प्राध्यापकों के निर्देशन में भौगोलिक पत्र-पत्रिकाओं का नियतकालिक प्रकाशन आरम्भ हुआ। ये संस्थायें तथा समितियाँ निम्नांकित हैं— जैसे

- (1) भारतीय विश्वविद्यालय।
- (2) भौगोलिक परिषदें।
- (3) भारत की प्रमुख भौगोलिक पत्रिकायें।

4) भारत के भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थान।

भारतीय विश्वविद्यालय।

भारतीय विश्वविद्यालय में भूगोल का अध्ययन सर्वप्रथम 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ था। कोलकाता में 1941 में, बनारस में 1946 में, इलाहाबाद में 1946 में, लुधियाना में 1948 में, मद्रास में 1948 में, पटना में 1949 में मुख्यतः स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ था। इस प्रकार 1959 तक भारत में 20 विश्वविद्यालयों में तथा 1973 में 42 विश्वविद्यालयों में भूगोल का स्नातकोत्तर स्तरीय संस्थाओं में पर्याप्त विकास हुआ। भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगोल की प्रगति निम्नांकित प्रकार से हुई

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ भारत में भूगोल का अध्ययन स्नातकोत्तर स्तर पर सर्वप्रथम 1931 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हुआ, जहाँ प्रो. डॉ. इवादुर्रहमान प्रथम विभागाध्यक्ष बने। इसके उपरान्त प्रो. ताहिर रिजवी, प्रो. मुजफ्फर अली ने विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। इनके बाद प्रो. डॉ. मोहम्मद शफी ने यह पद सम्भाला। आपने प्रो. डडले स्टेम्प के निर्देशन में लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। आपका शोध प्रबन्ध विषय भूमि उपयोग से सम्बन्धिता को 1956 में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संगोष्ठी आयोजित की गयी। यह देश की प्रथम भौगोलिक संगोष्ठी थी। जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, चीन आदि देशों के भूगोलवेत्ताओं ने भाग लिया था। इसमें व्यावहारिक भूगोल से सम्बन्धित 66 शोधपत्र सम्मिलित किये गये। इन शोध-पत्रों के उपविषय निम्नांकित थे

- (1) राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भूगोल का स्थान,
- (2) खाद्य संसाधन एवं जनसंख्या वृद्धि,
- (3) भूगोल का अध्यापन,
- (4) शुष्क एवं अर्द्धशुष्क कटिबन्ध,
- (5) भूगोल एवं प्रजातिवाद,
- (6) जल विद्युत विकास,
- (7) भूमि उपयोग सर्वेक्षण,
- (8) भूतकाल में जलवायुवीय परिवर्तन मिल

प्रो. मोहम्मद शफी ने भूगोल विभाग का विकास करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 20वीं अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस (1964) में ये अनुप्रयुक्त (व्यावहारिक) शाखा के अध्यक्ष थे। 1966 में अनुप्रयुक्त भूगोल (Applied Geography) पर किंग्सटन, अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की अध्यक्षता इन्होंने ही की 1967 में बेल्जियम के लीग शहर में व्यावहारिक भूगोल के अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन की तीसरी सभा की भी इन्होंने अध्यक्षता की थी, जहाँ इनको लांग विश्वविद्यालय ने स्वर्ण पदक से सम्मानित किया। प्रो. शफी ने उत्तर प्रदेश की कृषि दक्षता का मूल्यांकन व भारत में खाद्य उत्पादन दक्षता आदि विषयों पर शोध उनकी उत्कृष्ट देन है। भारतीय भौगोलिक परिषदों में उच्च पदों पर कार्य कर चुके प्रो. शफी को 1987 में ग्रेट ब्रिटेन की रायल ज्योग्राफिकल सोसाइटी का सदस्य चुना गया। आपने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से 1941 से प्रकाशित वार्षिक परीक्षा The Geographer को आधुनिक गुणवत्ता के साथ नियमित प्रकाशित करने में भी योगदान दिया। प्रो. शफी ने लेखक के 1999 में शोध प्रबन्ध का भी मूल्यांकन किया था।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

कलकत्ता विश्वविद्यालय में डॉ. एस.पी. चटर्जी के निर्देशन में सन् 1939 में स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल का शिक्षण कार्य आरम्भ हुआ। प्रो. चटर्जी ने लन्दन से पीएच. डी. तथा पेरिस 1- Shafi- M--"Land Utilization in Eastern Uttar Pradesh India से डी.लिट. की उपाधियाँ अर्जित कीं। इन्होंने रंगून (यंगून) में भी कुछ समय तक भौतिक भूगोल का शिक्षण कार्य करवाता है इसके अतिरिक्त इन्होंने बंगाल के चौबीस परगना में भूमि उपयोग सर्वेक्षण कार्य तथा 1948 में बंगाल मानचित्रावली प्रकाशित कर भूगोल को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रो. चटर्जी भारतीय भूगोलवेत्ताओं की परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ आदि संघटनों में भी

प्रमुख पदों पर कार्य कर चुके हैं। डॉ. चटर्जी की अध्यक्षता में नई दिल्ली में 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस का 21वाँ अधिवेशन हुआ था, जिसमें प्रमुख वैज्ञानिकों एवं भूगोलवेत्ताओं ने भाग लिया। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी ब्रिटेन आदि 120 देशों के भूवैज्ञानिक एवं भूगोलवेत्ता उपस्थित हुए थे। डॉ. चटर्जी के महत्वपूर्ण प्रयासों से ही कलकत्ता विश्वविद्यालय में मृदा विज्ञान, भू-आकृति विज्ञान, भूमि उपयोग, जलवायु विज्ञान, नगरीय भूगोल, स्वास्थ्य भूगोल तथा मानचित्र विज्ञान आदि शाखाओं का विकास एवं उनमें शोध कार्य आरम्भ हुआ।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यहाँ पर सर्वप्रथम 1947 में डॉ. एच.एल. छिब्र ने स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना की। ये मूलतः भूगर्भशास्त्री रहे हैं। इन्होंने यहाँ 1955 तक कार्य किया। सन् 1955 में प्रो. छिब्र के निधन के उपरान्त डॉ. आर. एल. सिंह विभागाध्यक्ष बने। इनका शोध विषय मार्क्सवादीनगरीय भूगोलमार्क्सवादी रहा है। सन् 1968 में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल की सभा एवं नगरीय भूगोल से सम्बन्धित संगोष्ठी का आयोजन किया गया। (यहीं 1946 में 'नेशनल ज्याॅग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया' की स्थापना की गयी। डॉ. रामलोचन सिंह (आर.एल. सिंह) ने अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ में 'ग्रामीण बस्तियों के कमीशन' की संगोष्ठी में अध्यक्षता की जिसमें इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भारत-एक प्रादेशिक भूगोल (India A Regional Geography) का विमोचन हुआ यह पुस्तक वर्तमान में भी भारत के प्रादेशिक अध्ययन की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति है प्रो सिंह ने भी लन्दन विश्वविद्यालय से बनारस का नगरीय भूगोल नामक शोध प्रबन्ध पर डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की थी। इनके नगरीय भूगोल पर दो अन्य शोध पत्र उत्कृष्ट कोटि के हैं। डॉ. सिंह ने स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए 'प्रयोगात्मक भूगोल भी लिखी है।

प्रो. रामलोचन सिंह ने अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भाग लिया तथा अध्यक्षता की। ये 18वीं अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस, रियो डी जेनेरो (ब्राजील) के उपाध्यक्ष थे। अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ की कुआलालाम्पुर एवं टोकियो में सम्पन्न प्रादेशिक संगोष्ठियों में भाग लिया था। 1965 में विजिटिंग प्रोफेसर बनकर मैक्सिको गये थे जहाँ एशिया के भूगोल पर भाषण दिया था। 1971 में बनारस में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के ग्रामीण बस्तियों के कमीशन की संगोष्ठी का संचालन किया, जिसमें पढ़े गये शोध पत्र 'Rural Settlement in Monsoon Asia' का ग्रन्थ के रूप में प्रकाशन हुआ। इस प्रकार इन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में नगरीय भूगोल, ग्रामीण भूगोल, भू-आकृति विज्ञान, भूरूपांकन, भूमि उपयोग तथा प्रादेशिक योजना से सम्बन्धित विषयों का विकास किया एवं शोध कार्य करवाया

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली (Jawaharlal Nehru University New Delhi)

इसकी स्थापना सन् 1969 में की गयी थी। यहाँ भूगोल का अध्ययन स्नातकोत्तर स्तर पर सामाजिक विज्ञान विद्यालय (School of Social Sciences) के प्रादेशिक विकासोत्तर स्तर (Centre for the Study of Regional Development) में कराया जाता है। इनके अतिरिक्त एम.फिल. एवं उच्चतर शोध डॉक्टरेट आदि करवायी जाती है। यहाँ पर भूगोल से सम्बन्धित इस केन्द्र की स्थापना का श्रेय प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता प्रो. युनिस रजा को है, जो इसके प्रथम अध्यक्ष रहे हैं। इनके अतिरिक्त इलाहाबाद, लुधियाना, मद्रास, पटना, कर्नाटक (धारवाड़), पूना, राँची, उस्मानिया (हैदराबाद), भागलपुर, बड़ौदा, सागर, गोहाटी, गोरखपुर, मैसूर, दिल्ली आदि विश्वविद्यालयों में 1960 से पूर्व भूगोल का शिक्षण आरम्भ हो गया था। 1961 से 1970 के दौरान दार्जिलिंग, मगध, जोधपुर, चण्डीगढ़, उदयपुर, रायपुर, ग्वालियर, जयपुर, कुरुक्षेत्र, दिल्ली (जे.एन.यू.), विश्वविद्यालयों में तथा 1971 के बाद में गढ़वाल, कुमायूँ, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश (शिमला), शिलांग, पटियाला आदि विश्वविद्यालयों में भी भूगोल का शिक्षण स्नातकोत्तर स्तर पर आरम्भ हुआ।

भौगोलिक परिषदें (Geographical Councils)

भूगोल के विकास एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में भौगोलिक परिषदों की प्रमुख भूमिका रही है। सर्वप्रथम इनकी स्थापना 19वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों द्वारा की गई। फ्रांस में संसार की प्रथम भूगोल परिषद्—पेरिस की भूगोल परिषद् (Societe de Geographie de Paris) की स्थापना सन् 1821 में हुई इसके उपरान्त सन् 1828 में बर्लिन में अर्डकुण्डे जु बर्लिन (Gesellschaft fur Erdkunde Zu Berlin), लन्दन में 1830 में रायल ज्याॅग्राफिकल परिषद् (Royal Geographical Society), 1845 में रूस के सेंट पोट्सबर्ग में इम्पीरियल रूसी

भूगोल परिषद् (Imperial Russian Geographical Society)] 1852 में अमेरिकी भूगोल परिषद् (American Geographical Society) तथा 1884 में एडिनबरा में रायल स्कॉटिश ज्यॉग्रफिकल सोसायटी (Royal Scottish Geographical Society), 1832 में बम्बई भूगोल परिषद्, बम्बई आदि भूगोल परिषदों की स्थापना हुई। भारत में भूगोल परिषदों की स्थापना 20वीं सदी के दूसरे दशक से आरम्भ हुई। वर्तमान में भारत में निम्नांकित भौगोलिक परिषदें कार्यरत हैं—

भारतीय भौगोलिक परिषद्, मद्रास (चेन्नई) (Indian Geographical Society)

इसकी स्थापना सन् 1926 में एन. सुब्रामण्यम ने अपने मित्र भूगोलवेत्ता एम. सुन्नामण्यम को सहायता से 'Madras Geographical Association' के नाम से की थी। इसके बाद कुमारी जे.एम. गेरार्ड एवं ई.डब्ल्यू. ग्रीन ने मिलकर इसे विकसित किया। स्थापना के समय इसके केवल 142 सदस्य थे यहाँ से प्रकाशित होने वाली वार्षिक पत्रिका 'Journal of Madras Geographical Association' थी जिसका बाद में नाम परिवर्तित कर 'Indian Geographical Journal' कर दिया गया।

भारतीय राष्ट्रीय भूगोल परिषद्, वाराणसी (National Geographical Society of India&N-G-S-I)

इसकी स्थापना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगोल के विभागाध्यक्ष प्रो. एच.एल. छिब्वर ने 1946 में की, जिसका नियमित प्रकाशन इनके निर्देशन में 1954 तक चला तथा इनके निधन के उपरान्त 1955 से प्रो. आर. एल. सिंह के निर्देशन में 'National Geographical Journal' के नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती रही। यह भारत की एक प्रतिष्ठित पत्रिका है, जिसे प्रो. सिंह के प्रयासों से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। इस परिषद् के तत्वावधान में यहाँ 1966 में 'All India Seminar on Applied Geography' का आयोजन किया गया।

भारतीय भूगोलवेत्ताओं का राष्ट्रीय संघ (National Association of Indian Geographers&NAGI)

इसकी स्थापना एवं विकास जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (J-N-U) नई दिल्ली के प्रोफेसर मुनिस रजा एवं प्रोफेसर गोशाल ने की थी। इसका मुख्य संरक्षक प्रतिवर्ष चयनित अध्यक्ष एवं भूगोल विभाग का प्रोफेसर रहता है। भारत का कोई भी भूगोलवेत्ता इसका सदस्य बन सकता है।

बम्बई भूगोल परिषद्, मुम्बई (Bombay Geographical Association, Mumbai)

इसकी स्थापना 1832 में रॉयल ज्यॉग्रफिकल सोसाइटी, लन्दन की भारत में शाखा के रूप में की गयी थी। 1837 से इसने स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार यह भारत की सबसे प्राचीन व प्रथम भूगोल परिषद् है। इसके अनियमित कार्यकाल तथा बार-बार नाम परिवर्तन होने के कारण इसका प्रभाव स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहा। यह 1832 से 1873 तक रॉयल ज्यॉग्रफिकल सोसायटी के शाखा कार्यालय के कारण इसका निरन्तर वार्षिक प्रकाशन होता रहा। 1873 से इसे एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता से सम्बद्ध किया गया। सन् 1935 में वी. डी. घाटे (V.D. Ghate) तथा सी.बी. जोशी के सम्मिलित प्रयासों से 'Bombay Geographical Society' की स्थापना की गयी जहाँ से 1952 में 'Bombay Geographical Magazine' का वार्षिक प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् 1963 से यह विश्वविद्यालय भूगोल परिषद् के निकट सम्पर्क में है।

भारतीय भौगोलिक परिषद्, कोलकाता (Indian Geographical Council] Kolkata)

इसकी स्थापना 1933 में 'Calcutta Geographical Society' के नाम से हुई थी। इसने 1936 से कलकत्ता ज्यॉग्रफिकल रिव्यू नामक भौगोलिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 2 जनवरी, 1951 में इसका नाम परिवर्तित करके भारतीय भौगोलिक परिषद् कर दिया गया तथा पत्रिका का नाम बदलकर 'Geographical Review of India' कर दिया गया।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय भूगोल सोसायटी, अलीगढ़ (ALLU Geographical Society, Aligarh)

इसकी स्थापना सन् 1946 में हुई। यहाँ 1956 में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें विश्व के 130 देशों के भूगोलवेत्ता आये तथा 66 शोधपत्र पड़े गये। इस परिषद् ने ग्रीष्मकालीन शिविर, पाठ्यक्रम प्रशिक्षण, विशेष गोष्ठियाँ आदि का आयोजन किया। इस परिषद् द्वारा 'The Geographer' नामक वार्षिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन क्षेत्र है।

उत्तर भारत भूगोल परिषद्, गोरखपुर North East Geographical Council] Gorakhpur)

इसका गठन 1968 में किया गया था। यह परिषद् स्नातकोत्तर स्तर एवं शोध छात्रों के लिए हिन्दी की पत्रिका उत्तर भारत भूगोल पत्रिका का प्रकाशन करती है।

भारतीय भूगोलविद् परिषद् (Council of Geographers of India)

इसका गठन प्रथम भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में 1947 में किया गया। सन् 1953 में इसका नाम परिवर्तित करके भूगोल अध्यापकों की भारतीय परिषद् (Indian Council of Geography Teachers) कर दिया गया, लेकिन पुनः इसका नाम बदलकर सन् 1961 ने भारत की भूगोलवेत्ता परिषद् रखा गया।

भारतीय भूगोलवेत्ता परिषद्, नई दिल्ली (Indian Geographers Council, New Delhi) इसका गठन अगस्त 1955 में हुआ तथा डी.एन. वाडिया को अध्यक्ष तथा एम. पी. ठाकुर को मन्त्री चुना गया। सन् 1956 से इस परिषद् ने भारतीय भूगोलवेत्ता (Indian Geographer) उनके पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

हैदराबाद भूगोल परिषद्, हैदराबाद (Hydrabad Geographical Council, Hydrabad)

प्रो. बी. एन. चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सन् 1962 में इसकी स्थापना की गयी तथा ए. मोहम्मद को इसका मन्त्री चयनित किया गया। उस्मानियाँ विश्वविद्यालय, हैदराबाद के भूगोल विभाग के माध्यम से श्द दक्कन ज्योग्राफर (The Deccan Geographer) नामक भौगोलिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया गया।

भारत की प्रमुख भौगोलिक पत्रिकायें (Geographical Magazines of India)

भारत को विभिन्न भूगोल परिषदों, समितियों व विश्वविद्यालयों द्वारा अग्रलिखित भूगोल पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है, जिनका भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है—

- (1) दक्कन भौगोलिक समिति एवं उस्मानियाँ विश्वविद्यालय हैदराबाद का जर्नल
- (2) 'Geographer' (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, भौगोलिक समिति द्वारा प्रकाशित)
- (3) 'Geographical Observer' (भौगोलिक समिति, मेरठ कॉलेज द्वारा प्रकाशित)
- (4) Geographical Review of India (भारतीय भौगोलिक समिति, कोलकाता द्वारा प्रकाशित)
- (5) Bombay Geographical Journal] Mumbai (बम्बई भौगोलिक समिति द्वारा प्रकाशित)
- (6) National Geographical Journal of India] Varanasi (राष्ट्रीय भौगोलिक समिति वाराणसी द्वारा प्रकाशित)
- (7) Geographical View Point (आगरा भौगोलिक परिषद् द्वारा प्रकाशित)
- (8) Geography Teacher (भारत के भूगोल शिक्षकों का संघ, चेन्नई)
- (9) Indian Geographical Journal (भारतीय भौगोलिक समिति, चेन्नई)
- (10) Geographical Outlook (भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय)
- (11) उत्तर भारत भूगोल पत्रिका (उत्तर भारत भूगोल परिषद्, गोरखपुर)

भारत में भूगोल परिषदों एवं शोध-पत्रिकाओं का विकास (1926–86)'

क्र.सं	भूगोल परिषद्	शोध पत्रिका	प्रकाशन का वर्ष	टिप्पणी
1	2	3	4	5
1	इण्डियन ज्योग्राफिकल सोसाइटी चेन्नई	इण्डियन ज्योग्राफिकल	1926	त्रैमासिक

2	ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी इण्डिया, कोलकाता	ज्याग्रॉफिकल रिव्यू कोलकाता	1936	त्रैमासिक
3	अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी ऑफ ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी अलीगढ़	ज्याग्रॉफर	1948	वार्षिक
4	बॉम्बे ज्याग्रॉफिकल एसोसिएशन, मुम्बई	बॉम्बे ज्याग्रॉफिकल मैगजीन	1953	अनियमित
5	. नेशनल ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया	नेशनल ज्याग्रॉफिकल जनरल ऑफ इण्डिया	1955	त्रैमासिक
6	भूगोल विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची	ज्याग्रॉफिकल आउटलुक	1956	अनियमित
7	.इलाहाबाद ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी, इलाहाबाद	नेशनल ज्याग्रॉफर	1958	वार्षिक
8	मध्य प्रदेश भूगोल परिषद्, सागर		1960	अंग्रेजी (स्थगित)
9	डेकन ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी, हैदराबाद	डेकन ज्याग्रॉफर	1962	अर्द्धवार्षिक
10	मेरठ कॉलेज ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी, मेरठ	ज्याग्रॉफिकल आब्जर्वर	1965	अनियमित
11	एसोसिएशन ऑफ नार्थ इण्डियन ज्याग्रॉफर्स भूगोल परिषद्, गोरखपुर	ज्याग्रॉफिकल थाट 1966 उत्तर भारत भूगोल पत्रिका (हिन्दी)	1968	हिन्दी
12	जोधपुर. एसोसिएशन ऑफ ज्याग्रॉफर्स जोधपुर,	इंडियन जनरल ऑफ ज्याग्रॉफी	1966	स्थगित 1977
13	भूगोल कार्यालय, उदयपुर	भू-दर्शन (हिन्दी)	1967	त्रैमासिक, हिन्दी
14	सोसायटी फार ज्याग्रॉफिकल स्टडीज,	भू-दर्शन (हिन्दी) ज्याग्रॉफिकल नॉलेज	1968	अनियमित

	कानपुर			
15	रीजनल साइंस एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, खड़गपुर	.इण्डियन जनरल ऑफ रीजनल साइन्स	1968	वार्षिक
16	नार्थ-ईस्ट इण्डिया ज्योग्राफिकल सोसाइटी, गौहाटी	हिल ज्योग्राफर	1969	अनियमित
17	ज्योग्राफिकल सोसाइटी, दयानन्द कॉलेज, अजमेर	अजमेर ज्योग्राफर अजमेर	1969	अनियमित
18	आगरा ज्योग्राफिकल सोसाइटी, आगरा	ज्योग्राफिकल ब्लू प्वाइंट	1970	अनियमित
19	इण्डियन ज्योग्राफिकल एसोसिएशन, रायपुर	इण्डियन ज्योग्राफी	1974	अनियमित
20	इण्डियन काउन्सिल ऑफ ज्योग्राफर्स, भुवनेश्वर	ट्रॉजेक्शन्स	1973	वार्षिक
21	अवध ज्योग्राफिकल सोसाइटी, लखनऊ	अवध ज्योग्राफर	1975	अनियमित
22	एसोसिएशनआफ ज्योग्राफर्स, पटना	ज्योग्राफिकल बुलेटिन ऑफ इण्डिया	1977	अर्द्धवार्षिक
23	एसोसिएशन ऑफ पापुलेशन ज्योग्राफर्स	पापुलेशन ज्योग्राफी	1979	वार्षिक
24	भूगोल विभाग राज. विश्वविद्यालय, जयपुर	ज्याग्राफिक स्टडीज	1968	अनियमित
25	नेशनलएसोसिएशन ऑफ ज्योग्राफर्स, इण्डिया	अनल्स	1981	अर्द्धवार्षिक
26	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ ज्योग्राफी, पूणे	ट्रॉजेक्शन्स	1979	वार्षिक

27	ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी फॉर दी नार्थ इस्टर्न हिल रीजन (इण्डिया) शिलांग	हिल ज्यॉग्राफर	1982	वार्षिक
28	एसोसिएशन ऑफ मारकेटिंग ज्यॉग्राफर्स ऑफ इंडिया, गोरखपुर	इण्डियन जनरल ऑफ मारकेटिंग ज्यॉग्राफी	1983	अर्द्धवार्षिक
29	दि गैंजीज ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, ऋषिकेश	दि गैंजीज ज्यॉग्राफिकल जनरल ऑफ इण्डिया	1986	वार्षिक
30	मध्य भारत भूगोल परिषद्, इन्दौर	ग्लोब	1988	
31	भू-विज्ञान विकास फाउंडेशन, नागपुर		2000	प्रारंभिक गठन सम्पन्न

Source: International List of Geographical Serials] edited by C-D- Harris and D- Fehman-

इस सारणी में पुरानी, अनियमित, पत्रिकाओं को छोड़ दिया गया है तथा शासकीय एवं अर्द्धशासकीय संस्थाओं को सम्मिलित नहीं किया गया है।

भारत के भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थान (Geographical Scientist Institute of India)

भारत में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा भौगोलिक परिषदों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थाएँ भी हैं, जो भूगोल के विकास में अपना योगदान देती हैं, ये अग्रलिखित राष्ट्रीय मानचित्रावली एवं विषयक मानचित्रण संगठन, कोलकाता (National Atlas & Thematic Mapping Organisation, Kolkata, NATMO) की स्थापना प्रो. एस.पी. चटर्जी के निर्देशन में सन् 1956 में हुई। यह भारत सरकार का संगठन है। इसके गठन का मुख्य उद्देश्य भारत का राष्ट्रीय एटलस तैयार भारत लेकिन कुछ समय उपरान्त इस संगठन द्वारा क्षेत्रीय एवं जिला स्तर पर भी मानचित्रण आरम्भ किया गया। वर्तमान में पद संगठन मानचित्रण के अतिरिक्त शोध, प्रशिक्षण एवं परियोजना कार्यों में संलग्न है जिसमें 200 से अधिक भूगोलवेत्ता कार्यरत हैं। इस संगठन ने सन् 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्टोग्राफिक कांग्रेस का आयोजन किया इसके संस्थापक अध्यक्ष प्रो. चटर्जी को भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। तथा रॉयल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ने 'मूर्चसन' पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया। इस संगठन की प्रमुख गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं।

- (1) भारत के राष्ट्रीय एटलस को संकलित करना।
- (2) क्षेत्रीय भाषाओं में राष्ट्रीय एटलस के मानचित्रों का निर्माण करना।
- (3) सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर पर्यावरणीय एवं सम्बन्धित प्रभावों के विषयगत मानचित्रों का निर्माण।
- (4) मानचित्रण के त्वरित निर्माण हेतु स्वचालित मानरेखन तंत्र की स्थापना।
- (5) भौगोलिक शोध।
- (6) भारत सरकार द्वारा निर्देशित अन्य कार्य।

यह संगठन निम्न कार्य सम्पादित कर चुका है—

- (1) भारत का राष्ट्रीय एटलस—हिन्दी एवं अंग्रेजी संस्करण
- (2) भारत का पर्यटन एटलस
- (3) भारत का सिंचाई एटलस
- (4) भारत का कृषि संसाधन एटलस
- (5) भारत का वन संसाधन एटलस
- (6) कलकत्ता नगर एवं आस-पास का एटलस
- (7) भारत का भू-संसाधन एटलस
- (8) छात्रों के लिये संदर्भ एटलस
- (9) भारत के समुद्रों का एटलस
- (10) राष्ट्रीय स्कूल एटलस

इसके अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन निम्नांकित हैं—

- (1) दामोदर घाटी योजना का नियोजन एटलस
- (2) उड़ीसा का जल विज्ञानी एटलस
- (3) पश्चिमी बंगाल का जलविज्ञानी एटलस
- (4) बिहार का जल विज्ञान एटलस
- (5) समन्वित जल संसाधन विकास आयोग के लिये एटलस
- (6) भारत की झलक
- (7) मानचित्रों में भारत
- (8) विभिन्न राज्यों के मानचित्र
- (9) मैकमिलन स्कूल एटलस हेतु भारतीय मानचित्रों का निर्माण।

इसकी मानचित्र सम्बन्धी परियोजनायें निम्नलिखित हैं—

- (1) स्वास्थ्य एवं बीमारियों का एटलस
- (2) खेड़ा तथा आनंद जिलों का नियोजन एटलस
- (3) पश्चिमी बंगाल औद्योगिक विकास निगम हेतु औद्योगिक भू-दृश्य का डीजीटल मानचित्रण
- (4) पश्चिमी बंगाल के जलधारा अभयारण्य हेतु डीजीटल मानचित्रण
- (5) राष्ट्रीय संसाधन संरक्षण परियोजना मानचित्र।

मानचित्र निर्माण के आगामी कार्यक्रम—

- (1) सामाजिक-आर्थिक एटलस
- (2) भारत का संक्षिप्त एटलस (हिन्दी-अंग्रेजी, बंगाली भाषाओं में)
- (3) भारत का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी एटलस
- (4) भारत का प्रदूषण एटलस (केन्द्रीय प्रदूषण संगठन के साथ)
- (5) संवेदनशील पर्यावरणीय प्रखण्ड एवं औद्योगिक अवस्थिति का राज्यवाद मानचित्र (कई राज्यों का)

मानचित्रण हो चुका है।)

- (6) कलकत्ता म्यूनिसिपल निगम के साथ नगर निदेशिका, सम्पत्ति विवरण आदि का मानचित्रण
- (7) राज्यों के ग्रामीण विकास मंत्रालयों के साथ विकास खण्डों के मानचित्रों का निर्माण।

यह संगठन निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्य भी सम्पादित करता है—

- (1) क्षेत्रीय फोटोग्रामेट्री
- (2) भौगोलिक सूचना तन्त्र (GIS)
- (3) सुदूर संवेदन तकनीकी
- (4) बहुरंगी (Multicolour) प्रकाशन ।

सर्वे ऑफ इण्डिया, देहरादून (Survey of India Dehradun)

इसकी स्थापना नवनिर्मित राज्य उत्तरांचल की राजधानी देहरादून में सन् 1767 में अंग्रेजों द्वारा की गयी। यह संगठन स्थलाकृतिक मानचित्र बनाने के लिए सर्वेक्षण करता है। इसने पाँच प्रकार की स्थलाकृतिक अंशचित्र मालाएँ प्रकाशित की हैं—

- (1) दक्षिण एशिया अंशचित्र माला (Graph Series of Southern Asia)
- (2) भारत तथा समीपवर्ती देशों की माला (Series of India and Adjoining Countries)
- (3) अन्तर्राष्ट्रीय माला (International Series)
- (4) भारत के स्थलाकृतिक अंशचित्र (Topographical Sheet of India)
- (5) नगर प्रदर्शक पत्रक (Town Guide Maps)

भारतीय सांख्यिकी संस्थान का प्रादेशिक सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली (States Surveyor Department of Indian Statistical Institute] New Delhi) इसे सन् 1956 में लिवरपूल विश्वविद्यालय (U-K-) के भूगोल के प्राध्यापक डॉ. ए.टी.ए. लियर मन्थ (A-T-A- Lear Month) के निर्देशन में खोला गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत के प्रदेशों का सीमांकन कर विवरण प्रस्तुत करना था। वर्तमान में यह इकाई योजना आयोग में संदर्शी नियोजन अनुभाग (Perspective Planning Division) दिल्ली में संचालित है। यह संगठन कृषि उत्पादन राष्ट्रीय लक्ष्य में प्रादेशिक द्वास-स्थिति को ज्ञात करने तथा भारत में नगरीयकरण के प्रादेशिक प्रतिरूपों का अध्ययन भी करता है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (Meteorological Department of India)

यह वायुमण्डलीय दशाओं का नियमित अध्ययन तथा मौसमी अवलोकन (Weather Observations) करके इसकी दैनिक जानकारी प्रदान करके भविष्यवाणी प्रकाशित करता है। साथ ही मौसम सम्बन्धी मासिक और वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशन करता है।

केन्द्रीय शुष्क प्रदेश शोध संस्थान, जोधपुर Central Arid Zone Research Institute (CAZRI)

काजरी CAZRI द्वारा भू-आकृति, जलवायु, जलप्रवाह, जलापूर्ति, मरुस्थल नियन्त्रण आदि विषयों पर शोध कार्य किये जाते हैं। इसकी वार्षिक पत्रिका 'Annals of the Central Arid Zone Research' प्रकाशित होती है। भारतीय जनगणना महापंजीयक, नई दिल्ली की मानचित्र शाखा (Indian Registrar General of Census] Cartograph Sector] New Delhi) यह विभाग भारतीय जनगणना विभाग द्वारा संगृहीत जनसंख्या आंकड़ों को मानचित्र के माध्यम से प्रकाशित करता है। इस विभाग के क्रमबद्ध विकास का प्रमुख श्रेय स्वर्गीय डॉ. पी. सेन गुप्ता को है जिन्होंने सोवियत संघ की भूगोल अकादमी में अपना योगदान देते हुए इसे भी गुणवत्ता प्रदान की।

कलकत्ता महानगरीय नियोजन संस्थान, कोलकाता (Calcutta Metropolitan Planning Organisation] Kolkata) यह संस्थान कलकत्ता नगर के लिए वृहद् योजना (Master Plan) बनाने के लिए संस्थापित हुआ था 1962 में प्रो. एस.पी. चटर्जी की अध्यक्षता में इसके भौगोलिक अन्वेषण अनुभाग स्थापना करके 16 भूगोलवेत्ता तथा 40 तकनीकी सहायक व प्रलेखकों सहित एक दल का गठन किया गया जिसका प्रमुख कार्य कलकत्ता नगरमाल (Conurbation), तथा महानगरीय क्षेत्र का अध्ययन करना था। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, (नई दिल्ली) (Indian Council of Social Science Research&ICSSR)

इसके द्वारा भूमि उपयोग, कृषि, उद्योग, परिवहन, व्यापार, जनसंख्या, सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक प्रतिरूप आदि विषयों से सम्बन्धित शोध कार्य किये जाते हैं। ICSSR के तत्वावहार में 1972 में भारत में किये भौगोलिक अनुसंधानों का एक सर्वेक्षण (A Survey of Research done in Geography in India) करवाया गया था।

भारत का मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्थान (Anthropological Survey Institute of India)

इसका मुख्य कार्य आदिम जनजाति प्रदेशों (Aboriginal Tribal Areas) का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सर्वेक्षण करना है। भारत में भौगोलिक विकास को आधुनिक स्वरूप देने वाली अन्य प्रमुख संस्थाओं में भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग (Geological Survey of India) भारत का तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण विभाग (Techno&economic Survey of India) नगरीय-ग्रामीण योजना संस्थान (Town and Country Planning of India) नई दिल्ली तथा भारत का योजना आयोग (Planning Commission) नई दिल्ली आदि हैं। अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद् का मानचित्रण अनुभाग, नई दिल्ली (Cartographic Section of National Council of Applied Economic Research&N-C-A-E-R-) सन् 1980 के दशक में पूर्ववर्ती दोनों दशकों में विभिन्न पक्षों पर हुए शोध कार्यों का विश्लेषण हुआ तथा इसके विभिन्न आयामों पर सम्मेलन, संगोष्ठियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि आयोजित किये गये। भारत में भूगोल की विभिन्न शाखाओं एवं उनके प्रमुख प्रकरणों पर भी शोधकार्य हुए जिनका उल्लेख भारतीय सामाजिक एवं वैज्ञानिक शोध परिषद् ICSSR Indian Council of Social Science Research] New Delhi) के ग्रन्थ में किया गया है, जो 'Survey of Research in Geography' शीर्षक से दो खण्डों में क्रमशः 1968 1972 में प्रकाशित हुआ था। इनमें भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भूगोल के विभिन्न पक्ष का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके सर्वेक्षण कार्य का निर्देशन ICSSR को भूगोल विज्ञान के लिए गठित स्थायी समिति द्वारा किया गया कि निम्नलिखित सदस्य

प्रो. वी.एल.एसे प्रकाश राव-सभापति

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सदस्य गण

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

- (1) प्रो. रामलोचन सिंह
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।
- (2) प्रो. मोहम्मद शफी
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
- (3) प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।
- (4) प्रो. एस.एस. आलम
मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर।
- (5) प्रो. आर.पी. मिश्रा
बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई।
- 6) प्रो. सी.डी. देशपाण्डे

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

- (7) प्रो. मुनिस रजा
पटना विश्वविद्यालय, पटना।
- (8) प्रो.पी. दयाल
नेशनल एटलस ऑरगेनाइजेशन, कलकत्ता।
- (9) प्रो. एस.पी. दास गुप्ता
- (10) डॉ.जे.पी. नायक

सदस्य—सचिव ICSSR नई दिल्ली।

इस समिति द्वारा निर्देशित यह शोध सर्वेक्षण 9 उपविभागों में विभाजित किया गया जो, निम्नलिखित हैं।

- (1) आर्थिक भूगोल
 - (i) कृषि भूगोल
 - (ii) औद्योगिक भूगोल
 - (iii) भूमि उपयोग अध्ययन
 - (iv) औद्योगिक संसाधन
 - (v) वनसंसाधन
 - (vi) परिवहन एवं वाणिज्य भूगोल ।
 - (vii) संसाधन भूगोल—जन्तु, मत्स्य, खनिज, मृदा एवं जल संसाधन।
- (2) नियोजन भूगोल
 - (i) महानगरीय नियोजन
 - (ii) प्रादेशीकरण और प्रादेशिक योजना
 - (iii) मात्रात्मक भूगोल एवं योजना
 - (iv) नदी घाटी विकास योजना
- (3) ऐतिहासिक भूगोल सामग्री स्रोत
 - (i) प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण
- (4) मानव भूगोल
 - (i) जनसंख्या भूगोल
 - (ii) ग्रामीण अधिवास भूगोल
 - (iii) नगरीय भूगोल
 - (iv) नगर प्रभाव क्षेत्र
 - (v) मानव और वातावरण
 - (vi) चिकित्सा भूगोल
- (5) राजनीतिक भूगोल
 - (i) राजनीतिक भूगोल— राज्यों की सीमायें, जनसंख्या तथा संसाधन, सैन्यवर, अनतर्राष्ट्रीय

सद्भावनाएँ।

(6) प्रादेशिक भूगोल

- (i) प्रादेशिक भूगोल— प्रादेशिक संकल्पना, भारतीय पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं कार्य, प्रादेशिक भूगोल। (7) विधियाँ
- (ii) वायुफोटो व्याख्या
- (iii) क्षेत्र कार्य
- (iv) मात्राकरण विधियाँ
- (v) सुधार हेतु सुझाव

(8) शोध विधि तन्त्र में प्रशिक्षण

(9) निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझावों में भूगोल के निम्नलिखित 16 पक्षों में सुधार के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये थे—

- (1) कृषि भूगोल
- (ii) भूमि उपयोग
- (iii) वन सम्पदा
- (iv) संसाधन भूगोल
- (v) औद्योगिक भूगोल
- (vi) औद्योगिक संस्थान
- (vii) परिवहन एवं वाणिज्य भूगोल
- (viii) महानगरीय योजना
- (a) प्रादेशीकरण एवं प्रदेश योजना
- (b) नदीघाटी विकास योजना
- (c) ऐतिहासिक भूगोल
- (d) ग्रामीण बस्तियाँ
- (e) नगरीय भूगोल
- (f) मानव एवं वातावरण
- (g) राजनीतिक भूगोल
- (h) शोधविधि तन्त्र में प्रशिक्षण

इसी तरह 1969 से 1972 के दौरान भूगोल के उपरोक्त प्रकार से (नवीन प्रकरणों में) एवं विकसित तकनीकी के अनुसार सम्पादित शोध की उत्कृष्ट विवेचना 'Survey of Research पद Geography' के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत की गयी। इसके सम्पादक मण्डल में निम्नलिखित भूगोलवेत्ता नियुक्त किये गये—

नाम भूगोलवेत्ता

इकाई

प्रो. मुनिस रजा : मुख्य सम्पादक एवं सामाजिक भूगोल इकाई

प्रो. मोहम्मद शफी : आर्थिक भूगोल

प्रो. एजाजुद्दीन अहमद : ऐतिहासिक एवं राजनीतिक भूगोल

प्रो. गुरुदेवसिंह गोसाल : जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल

प्रो. सी.डी. देशपाण्डे : प्रादेशिक भूगोल एवं नियोजन

इस खण्ड की इकाइयाँ एवं उपइकाइयाँ निम्नलिखित हैं—

(अ) आर्थिक भूगोल

(ब) संसाधन भूगोल

(स) कृषि भूगोल

भूमि उपयोग अध्ययन, औद्योगिक भूगोल, यातायात एवं वाणिज्य भूगोल, सामाजिक भूगोल, सामाजिक भूगोल का क्षेत्र एवं परिभाषा, जातियाँ, जनजातियाँ, धर्म, भाषा तथा बोलियाँ, सामाजिक रूपान्तरण का भूगोल, सामाजिक भूगोल के परित्यक्त पक्ष सामाजिक भूगोल में मात्रात्मक विधियाँ।

(3) ऐतिहासिक एवं राजनीतिक भूगोल.

(अ) ऐतिहासिक भूगोल

(ब) राजनीतिक भूगोल

(स) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भूगोल

(4) जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल

(अ) परिचय

(ब) जनसंख्या भूगोल

(स) ग्रामीण अधिवास भूगोल

(य) नगरीय भूगोल

(5) प्रादेशिक भूगोल एवं नियोजन

(अ) प्रादेशिक भूगोल

(ब) प्रादेशिक नियोजन

भूगोल की विभिन्न शाखाएँ एवं उनका विकास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भूगोल में विविधता का अभाव पाया जाता था लेकिन 1960— 70 के दशक में भारतीय भूगोल में विविधता आयी तथा धीरे-धीरे भूगोल की स्वतन्त्र शाखाओं का विकास हुआ, जिसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों, भौगोलिक परिषदों, वैज्ञानिक संगठनों तथा स्वतन्त्र भूगोलवेत्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान में भारत में निम्नलिखित शाखाओं का स्वतन्त्र रूप में अध्ययन किया जा रहा है—

भौतिक भूगोल

भूगोल विषय का प्रारंभिक विकास भौतिक भूगोल के रूप में ही हुआ था। इसमें आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, मृदा विज्ञान तथा जैव-विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology) — यद्यपि भारत में प्रारंभिक काल में प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन किया गया लेकिन कुछ प्रमुख भूगोलवेत्ताओं द्वारा भू-आकृति विज्ञान पर शोध कार्य किया गया। इनमें प्रो. छिब्रर का कुमायूँ हिमालय के भोम्याकारों के विकास (N-G-S-I- द्वारा प्रकाशित बुलेटिन सं. 20—1954), प्रो. एस.पी. चटर्जी का भाता के प्रमुख भौतिक प्रदेश (Proceedings of Summer School in Geography] Simla 1962), डॉ. आर.डी. दीक्षित का दून घाटी का विकास (Indian Geographical Journal igIndia&Vol. 4—1)

1959, एन. के. बोस का ऊपरी व्यास (माटी के भौतिक प्रदेश तथा चे पठार को स्थलाकृति (Geographical Red ऊपरी व्यास घाटी के तथा अहमद दक्षिणी प्रायद्वीप के भू-आकृति प्रदेश की भू-भौतिक विशेषतायें (Journal of Ranchi University (1)-1962) आदि प्रमुख शोधग्रन्थों ने भू-आकृति विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके अतिरिक्त ए.के. सेन गुप्ता (1957, पश्चिमी राँची पठार के पार प्रदेश की भूआकारिकी) इनायद अहमद (1958), छोटा नागपुर का भू-आकृतिक स्वरूप एच.एस. शर्मा। आर. वैद्यनाथन (1964, बेलारी प्रदेश के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के भू-आकार), बी.एस. नेगी (Morphometric Determinants of the Stage of Cycle of Erosion&Geogobserver, 1976) एस. सिंह एवं आर. श्रीवास्तव (राँची पठार एवं बेलन बेसिन) का आकारमिति (Morphometric) अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान भौतिक भूगोल पर डॉ. सविन्द्रसिंह का योगदान प्रमुख रहा है। जलवायु विज्ञान (Climatology) विकास में जेड एहमद (Reliability Intensity and Deficiency of Rainfall in District Bijnor in the content of Agricultural Landuse (Geog- 1967), आर.सी. बनर्जी, डी. एस. उपाध्याय, जयपाल तथा डी.के. मिश्रा का योगदान भी सराहनीय है। जलवायु विज्ञान में महत्वपूर्ण अध्ययन जे.के. पटनायक एवं आर. राव तथा आर. रामनाथन का Characteristics of Indian Monsoon Rains (Indian Geog. 1977) रहा है। इसमें विगत 50 वर्षों की वर्षा के आंकड़ों का प्रयोग करके वर्षा का आकलन किया गया है। मृदा विज्ञान को स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित करने में राय चौधरी (1964), भट्टाचार्य (1956), पाठक (1958), आचार्य (1958), राय (1942), पुरी (1956), भारद्वाज (1961), मुखर्जी (1957), रेड्डी (1965), राय व शफी (1971) दक्षिणामूर्ति (1972), एस.के. डे. तथा प्रो. लक्ष्मी शुक्ला (जयपुर) आदि विद्वानों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

आर्थिक भूगोल (Economic Geography)

आर्थिक भूगोल की विभिन्न शाखाओं— कृषि भूगोल, संसाधन भूगोल, औद्योगिक भूगोल तथा भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन पर 300 से अधिक महत्वपूर्ण शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके बाद ये शाखाएँ स्वतन्त्र रूप में स्थापित हुई। इनके विकास क्रम का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) कृषि भूगोल (Agricultural Geography)

कृषि भूगोल का सर्वप्रथम कार्य दक्षिण भारत से आरम्भ हुआ इसमें के.सी. रामकृष्णन (कोयम्बटूर), एस.एन.सी. अय्यर (त्रिचि), गोपालन (तंजौर) आदि मुख्य हैं। एल.वाई. मुखर्जी व भट्ट ने महाराष्ट्र कृषि पर अध्ययन किया है। उत्तर भारत में सर्वप्रथम वी.एन. मुखर्जी उत्तर प्रदेश की कृषि भूगोल पर एडिनबरा विश्वविद्यालय से पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। पी. दयाल ने लन्दन विश्वविद्यालय से बिहार की कृषि भूगोल पर पीएच. डी. की उपाधि अर्जित की। इनके 1- Bhat L-S- Agriculture in the Lower Kumbhi Valley Kolhapur Dist- Bombay Geo& graphical Magazine. 1956. अतिरिक्त ए. बी. मुखर्जी, एस.डी. मिश्रा, एम.एन. वसन्त देवी, सेन गुप्ता, आदि के अध्ययन भी कृषि भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण रहे हैं। कृषि में खाद्यान्न तथा नकदी फसलों पर भी उनके लिए आवश्यक भौतिक दशाओं के सन्दर्भ में अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये हैं, जिनसे कृषि भूगोल को आधुनिक सहर मिला। इनमें सेन गुप्ता, बी.बनर्जी, एस.पी. चटर्जी, मोहम्मद शफी, ए.एच. सिदको आई.ए. कुरेशी तथा प्रो. लक्ष्मी शुक्ला के कार्य प्रमुख हैं, जिन्होंने कृषि उत्पादों तथा उनको समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। प्रो. रन्धावा द्वारा 1959-68 के मध्य कृषि पर का खण्डों का ग्रन्थ लिखा गया इनमें 'Farmers of India' विशेष उल्लेखनीय है। इनमें प्रो. रमाया ने श्री प्रेमनाथ के सहयोग से भारत को कृषि प्रदेशों में विभक्त किया। 1961 में वेंकटेश्वास ने दक्षिण भारत के सभी राज्यों को एक भौगोलिक इकाई मानकर जलवायु, मृदा तथा अन्य भौतिक दशाओं का विश्लेषणात्मक सम्बन्ध स्पष्ट किया। 1970 में रन्धावा एवं सिंह तथा चौधरी एवं शर्मा ने विकसित कृषि तकनीकी, कृषि उत्पादकता एवं फसलों पर उपलब्ध ऋण व्यवस्था पर अध्ययन किया।

(2) भूमि उपयोग अध्ययन (Land use Studies)

भारत में भूमि उपयोग सम्बन्धी शोध एवं अध्ययन आरम्भ से ही प्रभावी रहा है, क्योंकि यह व्यावहारिक भूगोल का सर्वप्रभावी तथ्य है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रो. एस.पी. चटर्जी ने 1941 में ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने भूमि की विभिन्न समस्याओं, कटाव, भू-अवनयन, वनोन्मूलन आदि का अध्ययन किया। इसके बाद डॉ. एस.डी. गुप्ता, डा. प्रकाश राव, डॉ. एम. शफी, डॉ. ओ.पी. भारद्वाज, डॉ. एस.डी. गुप्ता, डॉ. एस.एच. भारद्वाज तथा डॉ. वी.आर. सिंह ने उल्लेखनीय योगदान दिया। प्रो. मोहम्मद शफी ने लन्दन विश्वविद्यालय से पूर्वी उत्तर प्रदेश के भूमि उपयोग पर पीएच.डी. की उपाधि अर्जित की। इसके अन्तर्गत इन्होंने 'Random Purposive Sampling'

के आधार पर 12 ग्रामों का चयन करके भूमि उपयोग का गहन अध्ययन किया है। साथ ही आपने फसलों के साहचर्य पर भी कार्य किया है। डॉ. आर. एल. सिंह व डॉ. मुकर्जी के कार्यों द्वारा भी भूमि उपयोग को गति मिली।

बीसवीं अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस (1964) में प्रो. शफी ने अपने शोध पत्र में भूमि उपयोग पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके ग्रामीण क्षेत्रों की भूमि उपयोग सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि, 'Land use Planning in India should aim at recording the existing use of land in the first instance--- Followed by mapping of land capability or land potential.'

(3) संसाधन भूगोल (Resource Geography)

संसाधन भूगोल का विकास कृषि, वन, पशु, खनिज, मृदा आदि संसाधनों पर किये गये शोध कार्यों के उपरान्त हुआ है। इसके विकास में प्रो. पी. दयाल, ए.एस.अय्यर, एस.एल. कायस्थ, एस.पी. चटर्जी, ई. अहमद, कृष्णामूर्ति, ओ.पी. भारद्वाज, ए.एन. रैना तथा आई.ए. कुरेशी के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

(4) औद्योगिक भूगोल

औद्योगिक अवस्थित एवं विकास की भारत में सर्वप्रथम व्याख्या श्री लोकनाथन ने प्रस्तुत की। इन्होंने भारतीय उद्योगों की समस्याओं के अध्ययन पर बल दिया। इनके उपरान्त प्रो. प्रकाश एव ने औद्योगिक स्थानीयकरणों पर, डॉ. घोष ने औद्योगिक विकास एवं समस्याओं के निराकरण पर, डॉ. करन ने जमशेदपुर के औद्योगिक भूदृश्य पर विशेष अध्ययन किया। सन् 1964 में प्रो.पी.दयाल ने भारत के लोहा-इस्पात एवं सीमेण्ट उद्योग का विस्तृत विवेचन किया।

(5) परिवहन भूगोल

परिवहन भूगोल के बारे में सर्वप्रथम 1929 में सूरीराजन ने अध्ययन किया। इनका विषय, बकिंघम नहर की यातायात व्यवस्था एवं दक्षिण भारत की यातायात व्यवस्था पर था। 1933 से 1947 के दौरान सुब्रह्मण्यम ने कोयम्बटूर, मालाबार, मदुराई, रामनद, त्रिचनापली, अनन्तपुर, मतेम एवं तंजौर जिलों की परिवहन तथा संचार व्यवस्था का अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त एस.ए. मजीद (बिहार का सड़क परिवहन), एम. गुहा (कलकता की यातायात व्यवस्था), एल.कुलकर्णी (बम्बई राज्य की परिवहन समस्याएँ), प्रो. आर. एल. सिंह, जे. सिंह आदि के योगदान श्री महत्त्वपूर्ण रहे हैं। प्रो. बी.एन. सिन्हा ने उड़ीसा की परिवहन एवं संचार समस्याओं का अध्ययन किया। परिवहन भूगोल के विकास में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो.जगदीश सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद ICSSR द्वारा प्रकाशित भौगोलिक अनुसंधान में परिवहन के विकास की स्थिति को निम्नानुसार स्पष्ट किया है

"Geographical Studies of the transport system of the country have been mainly attempted on a regional basis. These are only a few overall assemblage of the country's transport needs."

ऐतिहासिक भूगोल

ऐतिहासिक भूगोल के विकास में भूगोल के अतिरिक्त दूसरे विषय के विद्वानों के महत्त्वपूर्ण रहे हैं, जिनमें एल.एन. डे (1927) की पुस्तक "प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का भौगोलिक शब्दकोश" तथा मजूमदार का "भारत का प्राचीन भूगोल" महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। सन्दर्भ में के. एम. पन्नीकर का "भारतीय इतिहास में भौगोलिक तत्व" एवं "प्राचीन भारत ऐतिहासिक भूगोल" भी महत्त्वपूर्ण हैं। नफीस अहमद ने "भूगोल में मुसलमानों के योगदान" आर. एल. सिंह ने मध्य गंगा के अधिवासों का विकास आदि अध्ययन प्रस्तुत किये जो ऐतिहासिक भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त ए.सी. दास (1921), बी.सी.लॉ (1940-60), पी. एल. भार्गव (1956), राय चौधरी (1960), सरकार (1960), डॉ. एस.एम. अली (1968) आदि विद्वानों ने प्राचीन ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन कर भौगोलिक ज्ञान के रूप में व्यवस्थित किया। इन्होंने वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, वाल्मीकि रामायण तथा जैन बौद्ध ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित प्राकृतिक एवं सामाजिक तत्वों की व्याख्या करने में जे.बर्ड (1840), ए.सी. दास (1921), बी.सी. लॉ (1946), राय चौधरी (1952-1960), आदि का योगदान सराहनीय है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अलवी ने मध्यकालीन भूगोल पर ग्रन्थ प्रकाशित किया। वाराणसी विश्वविद्यालय के बी. दुबे ने अपने शोध ग्रन्थ (Geographical Concept in

Ancien India) में प्राचीन भारत के भौगोलिक ज्ञान की विस्तृत विवेचना की है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. मुनिस रजा ने ऐतिहासिक परिवेश में भारत में भूगोल के विकास को निम्नलिखित तीन उपभागों में विभक्त किया है—

1. भारत में प्राचीन काल में भूगोल सम्बन्धी ज्ञान का स्रोत,
2. प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश के तथ्य, तथा
3. भूतल पर पायी जाने वाली स्थानिक भिन्नता एवं प्रादेशिक बाह्य स्वरूप की व्याख्या।

राजनैतिक भूगोल (Political Geography)

सर्वप्रथम भारत की राजनीतिक भूगोल पर प्रसिद्ध आस्ट्रेलियन भूगोलवेत्ता ओ.एच. के स्पेट ने अपना लेख 1948 में प्रकाशित किया, जिसमें भारत के विभाजन की स्पष्ट रूप रेखा प्रस्तुत की। प्रो. एस.पी. चटर्जी ने 1963 में स्पष्ट किया था कि भारत में अभी राजनीतिक भूगोल का विकास नहीं हो पाया है। प्रो. भट्टाचार्य, बोस, जानकी तथा करन आदि विद्वानों ने भारत-चीन सीमा विवाद एवं भारत-चीन युद्ध पर लेख प्रस्तुत किये। इनके अतिरिक्त आई.सी. रोथ, आर.एल. सिंह, आर.डी. दीक्षित, ए.एस. यादव के योगदान भी उल्लेखनीय हैं। डॉ. सुखबाल ने भारत का राजनीतिक भूगोल लिखा है। प्रो. आर.डी. दीक्षित का शोध प्रबन्ध 'Geography of Federalism' 1975 में प्रकाशित हो चुका है। विगत दो दशकों में इसके नवीन प्रकरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भूगोल पर भी अध्ययन किये जा रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. आर.सी. शर्मा का कार्य इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। 1750 में हार्टशोर्न ने विश्व सन्दर्भ में क्रमबद्ध विकास एवं क्रियात्मक दृष्टिकोण के लिए राजनीतिक भूगोल का भौगोलीकरण की ओर विशेष महत्त्व को स्वीकार किया गया।।

जनसंख्या भूगोल :

भौगोलिक अध्ययन में जनसंख्या भूगोल को स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित करने का श्रेय प्रो. ट्रीवार्था को है। इन्हें जनसंख्या भूगोल का जनक (Father of Population Geography) कहा जाता है। भारत में सर्वप्रथम जनसंख्या भूगोल पर कार्य पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल ने किया, जिन्होंने प्रो. ट्रीवार्था के निर्देशन में विस्कॉसिन विश्वविद्यालय से भारत की जनसंख्या का भौगोलिक विश्लेषण विषय पर अपना डाक्टरेट (Ph.D). शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें जनसंख्या के विभिन्न पक्षों की विस्तृत विवेचना की गयी है। इनके अतिरिक्त गोपालकृष्ण चान्दना तथा मेहता (पंजाब विश्वविद्यालय), एस.पी. चटर्जी (1962), एस. मेहता (1967), एच.लाल (1966), जी. कृष्णन् (1968), आर.पी. ओझा (1984), आर. रामचन्द्रन (1978) एवं मुनिस रजा (1990) के कार्य उल्लेखनीय हैं। जनसंख्या भूगोल को ICSSR 1972 के 'A Survey of Research in Geography' के अंक में मानव भूगोल का अंग माना गया है।

नगरीय भूगोल (Urban Geography)

भारत में नगरीय भूगोल के विकास का श्रेय प्रो. आर. एल. सिंह को है। उनके प्रकाशन **Banarash- A Study in Urban Geography** तथा **Gorkhpur- A study in Urban Morphology** इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। उनके निर्देशन में बनारस विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि अर्जित करने वालों में उजागर सिंह (इलाहाबाद), निगम (लखनऊ), हरिहर (कानपुर) प्रमुख भूगोलवेत्ता हैं, जिन्होंने नगरीय भूगोल के विकास में अपना योगदान दिया। प्रो. काशीनाथ सिंह ने उत्तर प्रदेश के नगरों का कार्यात्मक विभाजन किया। ओमप्रकाश सिंह ने उत्तर प्रदेश में केन्द्र स्थलों का, वी. चटर्जी ने हावड़ा के नगरीय भूगोल पर, एस. मुखर्जी (1958) नागपुर शहर के विकास पर, उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रो. मन्जूर आलम ने हैदराबाद महानगर तथा उसके प्रदेश पर अध्ययन किया है। इनके अतिरिक्त प्रो. रफीउल्लाह ने नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण पर नवीन विधि प्रस्तुत की है। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल ने नगरीय भूगोल पर कार्य किया तथा निम्नांकित शब्दों में परिभाषित किया—"Urban Geography in the Geographic Study of urban places which value grow and exist as service centres largely for their surrounding areas" अर्थात् नगरीय भूगोल उन शहरी स्थानों का भौगोलिक अध्ययन है, जो कि आसपास के क्षेत्रों के लिए सेवा-केन्द्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं तथा वृद्धि करते हैं। सन 1980 के उपरान्त भारतीय भूगोल के शोध एवं शिक्षण कार्य में विविधता आयी है। विश्व में भूगोल की विभिन्न शाखाओं के सन्दर्भ में भारतीय विकास भी पीछे नहीं रहा है। इस सन्दर्भ में प्रो. मुनिस रजा ने

लिखा है कि भारत का भूगोल उस वृद्धाकार जीव की तरह है, जिसकी रीढ़ की हड्डी ही नहीं है। इस प्रकार वर्तमान में भारत में भूगोल की शाखाओं में शोध एवं शिक्षण कार्य हो रहा है।

मुख्य शाखा

(1) भौतिक भूगोल

(2) मानव भूगोल

(3) पर्यावरण भूगोल

(4) आर्थिक भूगोल

(5) राजनीतिक भूगोल

(6) सामाजिक भूगोल

(7) सांस्कृतिक भूगोल

(8) प्रादेशिक भूगोल

(9) ऐतिहासिक भूगोल

(10) मानचित्र कला

(11) नियोजन भूगोल

उप शाखाएँ

1. भू-आकृति विज्ञान

2. जलवायु विज्ञान

3. समुद्र विज्ञान

4. मृदा विज्ञान

1. जनसंख्या भूगोल

2. ग्रामीण बस्ती भूगोल

3. नगरीय भूगोल

4. आयुर्विज्ञान भूगोल

5. कल्याणकारी भूगोल

1. मानव पारिस्थितिकी

2. जैव भूगोल

3. पादप भूगोल

4. जन्तु भूगोल

5. पारिस्थितिकी भूगोल

1. कृषि भूगोल

2. औद्योगिक भूगोल

3. विपणन भूगोल

4. परिवहन तथा व्यापारिक भूगोल

5. संसाधन भूगोल

6. भूमि उपयोग

7. जल संसाधन भूगोल

1. सांख्यिकीय भूगोल

2. सुदूर संवेदन

3. भौगोलिक सूचना तन्त्र (GIS)

भूगोल की नवीनतम शाखाएँ (Recent Branches of Geography)

- (12) शांति का भूगोल (Geography of the Peace)
- (13) धर्म सम्बन्धी भूगोल (Geography of Religion)
- (14) सैन्य भूगोल (Military Geography)
- (15) मनोरंजन भूगोल (Geography of Entertainment)
- (16) साहित्य भूगोल (Literary Geography)
- (17) निर्वाचन भूगोल (Electrol Geography)
- (18) तात्विक भूगोल (Spiritual Geography)
- (19) कल्याणकारी भूगोल (Welfare Geography)
- (20) क्रान्तिकारी भूगोल (Radical Geography)
- (21) अपराध का भूगोल (Geography of Crime)
- (22) भूगोल एवं काम वासना (Geography and Sexuality)

भारत में भूगोल विषय में अध्ययन की जाने वाली उपरोक्त शाखाओं से सम्बन्धित प्रमुख भूगोलवेत्ता निम्नलिखित हैं जिनका इस विषय के विकास में उत्कृष्ट योगदान रहा है—श्री मंगा आलम, गोपाल कृष्ण, ओ.पी. भारद्वाज, डी. एस. श्रीवास्तव, काशीनाथ सिंह, एम.एन. निगम आर.के. निगम, ओ.पी. सिंह, बी.पी. राव, रामनगीना सिंह, एच.एन. मिश्रा, उजागर सिंह, पे अमृतलाल (नगरीय भूगोल), आर.पी. मिश्रा, एजाज अहमद, जे.के. राउतरे, आर. एल. सिंह (प्रादेशिक नियोजन), प्रो. जी.एस. गोसाल, आशीष बोस, आर.एस. दुबे, आर.सी. चारत (जनसंख्या), सी.पी. सिंह, आर.डी. दीक्षित, आर.सी. शर्मा, के. जेड अमानी, पी.आर. चौहान, एस. के. दीक्षित, मोहम्मद अली (राजनीतिक भूगोल), एच.पी. दास, एम.आर. चौधरी, हरीहर सिंह, सी.बी. तिवारी, सन्तोष शुक्ला, सी.पी. सिंह (औद्योगिक भूगोल), एल.के. सेन, सुधी वनमाली, महातम प्रसाद (सेवाकेन्द्र), ए. रमेश, एस.सी. सिन्हा, कैलाश चौबे, आर. एल. सिंह, रईस अत्तर (स्वास्थ्य भूगोल), वी.सी. मिश्रा, टी.पी. सेनगुप्ता, बी. लहरी, बालेश्वर, नन्देखा शर्मा, वी.के. श्रीवास्तव (प्रादेशिक विकास एवं नियोजन), के. आर. दीक्षित, एस.के. पाल सावित्री बर्मन, आर. के. राय, के. बागची, ए.बी. मुखर्जी, सविन्द्र सिंह (भौतिक भूगोल) बी. जी. तामस्कर, एन. शर्मा, एस. के. शर्मा, आर. एस. दीक्षित, पी. के. श्रीवास्तव, विश्वनाथ, उध्वरान श्रीमती के. आर. श्रीवास्तव, कैलाश तिवारी, त्रियुगीनाथ, रामसूरत, वेणु त्रिवेदी, निजामुद्दीन खार निरंकरलाल, विजय चौधरी, रवीन्द्रसिंह (विपणन भूगोल), मोहम्मद शफी, रफीउल्ला, एस. सो. शर्मा, महात्मा सिंह, हरिहर गिरी (भूमि उपयोग), रामचन्द्रन, डी. के. सिंह, अस्लम महमुद मुनिस रजा (सांख्यिकीय भूगोल), आर.एल. सिंह, के. पी. धुरन्धर, जे.के. नायर, जे.पी. शर्मा हीरालाल (मानचित्रकला), मोहम्मद शफी, रफीउल्ला, इनायद अहमद, चम्पा मित्रा, प्रमित कुमार, जसबीर सिंह, बी.बी. सिंह, जी.बी. सिंह, जे.एन. पाण्डेय, आभा लक्ष्मी सिंह, मोहम्मद, लक्ष्मी शुक्ला (कृषि भूगोल), आर.एल. सिंह, वी. के. श्रीवास्तव, के. एम. मुंशी, सिंग जयप्रकाश राय, फिरतू राम, रामनयन राय, सुशीला सिंह, श्रीकमल शर्मा (प्रादेशिक भूगोता बालेश्वर ठाकुर, एन.के. डे, एम.एम. जाना, लक्ष्मी शुक्ला (भूमि विकास), आर. बी. सिंह वी.सी. झा, एच.पी. गौतम, पी. नाग, एन.सी. गौतम (सुदूर संवेदन तकनीकी एवं GIS)।

15.4 सारांश

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकतावाद भूगोल के महत्वपूर्ण संकल्प बनाए हैं जिसमें उत्तर आधुनिकतावाद को समझने के लिए आधुनिकतावाद को समझना आवश्यक है। भूगोल में इसके संकल्पनात्मक विचारों को समावेश 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही किया गया जो भूगोल को वैज्ञानिकता के नजदीक ले जाते हैं तथा कभी इस समाज विज्ञान के नजदीक ले जाते हैं। इन विचारधारों की नींव भूगोल में इससे भी पहले डाली जा चुकी थी। इनके साथ ही यह पूंजीवाद और औद्योगीकरण जैसे विचारों का भी इस समय समावेश करती है। समाज विज्ञान के विषयों जिसमें मार्क्स का योगदान सराहनीय है उसमें भी इससे संबंधित बातें कही गई हैं। आधुनिकतावाद का अर्थ आधुनिकीकरण और पुनर्निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में लिया गया है

तथा उत्तर आधुनिकता दर्शन कला और समाज वैज्ञानिक चिंतन की अपेक्षाकृत नई धारा है। इसी क्रम में मानव भूगोल के विकास के साथ ही इस संकल्पना को मानव भूगोल से भी जोड़कर देखा गया है। ग्रेगरी ने इस पर प्रकाश डालते हुए उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

15.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **आधुनिकता** – आधुनिकता आधुनिकता से तात्पर्य सहाजान और सामाजिक व्यवहार पद्धति के उसे विशेष प्रकार के संयोग से है जिसका विकास 16वीं व 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट हुआ।
- **उत्तरआधुनिकतावाद** – उत्तर आधुनिकतावाद 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीतिक परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ निकट से जुड़ी हुई थी।

15.6 बोध प्रश्न

15.6.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

9. आधुनिकतावाद के विस्तृत व्याख्या कीजिए।
10. आधुनिकतावाद से उत्तर आधुनिकतावाद के क्रमिक विकास की व्याख्या कीजिए।

15.6.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

1. यह डांस ने आधुनिकतावाद के चार आधारभूत संस्थाएं कौन सी बताई है।
2. डियर नमक विद्वान द्वारा बताए गए उत्तर आधुनिकतावाद के तीन रूपों के बारे में बताइए।

15.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

1. उत्तर अग्नितावादी संकल्पना का भूगोल में समावेश कब हुआ।
(क) 20वीं सदी में। (ख) 19वीं सदी में।
(ग) 18वीं सदी में। (घ) 17वीं सदी में।

उत्तरमाला— 1. (क) 20वीं सदी में।

15.7. संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.

इकाई— 16 तन्त्र की संकल्पना, तन्त्र के प्रकार, भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 तन्त्र की संकल्पना
 - 16.3.1. तंत्र की संरचना
 - 16.3.2. क्षेत्र की सीमाएं
 - 16.3.3. तन्त्र का पर्यावरण
- 16.4 तन्त्र के प्रकार
 - 16.4.1. होम्योक्टेटिक तंत्र
 - 16.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव
 - 16.4.3. गत्यात्मक तंत्र
- 16.5 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण
- 16.6 सारांश
- 16.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 16.8 बोध प्रश्न

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल की आधुनिक या नवीन प्रवृत्तियों में तन्त्र या विधि सिद्धान्त भी एक है। यह एक विश्लेषण परक साधन है जो सभी विज्ञानों में कार्य पद्धति के रूप में विकसित हुआ है। यह विभिन्न विधियों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। सन 1937 में शिकागो में आयोजित एक वैज्ञानिक संगोष्ठी में विख्यात जीव वैज्ञानिक फॉन बर्टनलाफी ने सर्वप्रथम इस अवधारणा पर एक वक्तव्य दिया था। इसके बाद सन 1972 में इसे परिभाषित करने का कार्य पी. ई. जेम्स ने किया तथा बताया की तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से सम्बन्धित है यह समग्रता में ही कार्यरत रहता है यह समग्रता व्यक्ति, राज्य, संस्कृति अथवा किसी व्यापारिक संगठन की हो सकती है। तंत्र एक प्रकार का विचार है जिसमें विभिन्न विषय आपस में जुड़े होते हैं तथा ये एक श्रृंखला के रूप में पाये जाते हैं। भूगोल विषय में कार्यवाद के समावेश के बाद तंत्र विश्लेषण अपरिहार्य हो गया क्योंकि तंत्र की संकल्पना ही कार्यात्मक सिद्धान्त का मूलाधार है। यह विशिष्ट गुण-धर्मो युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। तंत्र को कई प्रकार के विशिष्ट उदाहरणों से समझा जा सकता है। जिसका उल्लेख आगे अध्याय में किया जाएगा ।

16.2.उद्देश्य

- तंत्र की संकल्पना को स्पष्ट करना।
- क्षेत्र के मूलाधार भूगोल के कार्यात्मक स्वरूप करना।
- तंत्र के प्रकारों पर प्रकाश डालना।
- भूगोल में तंत्र विश्लेषण के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- तंत्र विश्लेषण से जुड़े सभी पहलुओं को प्रकाशित करना।

- तंत्र के माध्यम से भूगोल में अन्तर्सम्बन्धों के अध्ययन को स्पष्ट करना।
- तंत्र विश्लेषण द्वारा किसी बिन्दु की मूल बात को समझना।

16.3. तंत्र की संकल्पना

जैसा की ऊपर प्रस्तावना में बताया गया है भूगोल की नवीन प्रवृत्तियों में तंत्र या विधि सिद्धान्त भी एक विषय है यह एक विश्लेषण परक साधन है जिनमें सभी तत्व आपस में अंतर्सम्बन्धित हैं। वह विशिष्ट गुण-धर्मो युक्त वस्तुओं व तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं किसी भी विषय में तंत्र के अन्तर्गत निम्न तत्वों का होना अनिवार्य है।

- 1) घटक तत्वों का गुच्छ जिसकी पहचान तत्वों के विभिन्नतापूर्ण गुण धर्म में निहित है उनको स्पष्ट करता।
- 2) तत्व के गुण धर्मों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाएं।
- 3) तत्वों के उन गुण धर्मों एवं पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाये जो तंत्र से जुड़ी हुई हैं।

तंत्र एक विचार है जो किसी भी विषय को उसकी विभिन्न श्रृंखलाओं व उससे संबन्धित विचारों को जानने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए जैसे शहर में जलापूर्ति की एक व्यवस्था है। इसके लिए ऊँचाई पर एक टैंक जल संचय के लिए है जिसमें से अनेक घरों में नलों का गुच्छ होता है टैंक व नलों का गुच्छ कुछ विशिष्ट गुण-धर्म युक्त होता है जो जल आपूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। इसके लिए एक मुख्य पाइप लाइन तथा उससे कई छोटी-छोटी पाइप लाईनें डाली जाती हैं। इनके रख रखाव व मरम्मत के लिए भी पुख्ता इंतजामात किए जाते हैं। जिनके मध्य एक प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध होता है। संचयी टैंक अपने बाह्य पर्यावरण अर्थात् जल स्रोत में जुड़ा होता है तथा उनकी क्षमता जल उपलब्ध की दशाओं, विद्युत आपूर्ति पम्पसेट की क्षमता आदि के अनुरूप होती है। दूसरी ओर घरों में लगे नल उपभोक्ता की जरूरतों के अनुरूप होते हैं। यह सब एक छोटे पैमाने के तंत्र का प्रतीक है।

तंत्र की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है उसमें किसी न किसी रूप में ऊर्जा का प्रवाह होता है चाहे वह सूचना तंत्र, यातायात का प्रवाह तंत्र जल के प्रवाह तंत्र के रूप में हो उनमें ऊर्जा का प्रवाह होता है। ऊर्जा ही तंत्र को गतिशील करती है। उसमें विभिन्न प्रकार की शाखाओं व संरचनाओं का विकास करती है। ऊर्जा का प्रवाह जितना अधिक होगा तंत्र उतना ही अधिक फैलेगा। यदि प्रवाह कम कर दिया जाए तो तंत्र संकुचित हो जाएगा। जैसे किसी पेड़ में पोषक तत्वों व जल की आपूर्ति व बढ़ा दी जाए तो वह और अधिक विस्तारित रूप से फैलेगा।

16.3.1. तंत्र की संरचना

तंत्र के दो मूल घटक हैं।

- 1) **घटकतत्व**—यह तंत्र की मूल इकाई है जो इकाई तंत्र के पैमाने से परिभाषित होती है एक वृहत स्तर पर जो घटक तत्व मात्र इकाई है, लघु उत्तर पर वही सम्पूर्ण तंत्र माना जाता है। जैसा कि एक वृहद पारिस्थितिक तंत्र में रेल, सड़क, वायुमार्ग घटक तत्व माने जाते हैं जो आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध हैं जुड़े हुए हैं मिलकर एक तन्त्र का निर्माण करते हैं। इसी के अन्तर्गत रेलों का मार्ग जाल एक तंत्र है तथा उसके स्टेशन, जंक्शन, चाल, वाहन आदि को घटक तत्व माना जा सकता है। इस प्रकार तन्त्र एवं घटक तत्व की परिभाषा प्रेक्षण स्तर के अनुसार परिवर्तनशील है। तन्त्र का कोई घटक तत्व एक इकाई के रूप में नहीं वरन् विशेष गुण-धर्म युक्तता हेतु महत्वपूर्ण होता है। जैसे किसी के कार्यालय में कार्य करने वाले सभी कर्मचारी एक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि घटक तत्व तंत्र से जुड़ा हुआ है। यह तन्त्र का ही एक ही हिस्सा है। एक तंत्र के अन्तर्गत कई घटक तत्व हो सकते हैं जो मिलकर तन्त्र का निर्माण करते हैं। तंत्र की इस संकल्पना को कई स्तरों पर रखकर इसे समझा जा सकता है।

अन्तर्सम्बन्धया श्रृंखलायें

घटक तत्व के साथ श्रृंखलाएं भी तंत्र के अभिन्न अंग हैं श्रृंखलाओं को तीन प्रकारों में व्यक्त किया जा सकता है।

(अ) क्रमिक श्रृंखला (सम्बन्ध)

इसमें विभिन्न घटक तत्व अनुक्रमणीय श्रृंखला से आबद्ध होते हैं। उसमें अ-ब-स प्रकार का कार्य कारणवत सम्बन्ध रहता है। इसमें किसी भी तत्व को हटाया नहीं जा सकता क्योंकि यह कार्मिक है एक श्रृंखला के रूप में है। जिसमें किसी भी तत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती है। तत्वों का संयोजन रखने से ही इसमें निरन्तरता बनी रहती है और एक, विकसित तन्त्र का निर्माण हो पाता है। जैसे टैंक से नलों में पानी पहुँचेगा और नल इसे घरों तक पहुँचाएंगे।

(ब) समानान्तर श्रृंखला

इसके अन्तर्गत दो घटक तत्व एक साथ किसी तीसरे तत्व से प्रभावित होते हैं जैसे रेल परिवहन के कन्ट्रोल रूम है गड़बड़ी होने पर एक साथ स्टेशन मास्टर व रेल चालक प्रभावित होंगे। इस तरह यदि जहाँ से तंत्र शुरू हो रहा है वही पर गड़बड़ी आ जाए तो आगे का तंत्र संचालित नहीं हो पाएगा।

(स) पश्च प्रभावी –

किसी तंत्र में श्रृंखला के अन्तर्गत संचालित कई घटक तत्व स्वयं को प्रभावित करते हैं। यह अन्य सम्बन्धित घटक तत्वों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए किसी तन्त्र में श्रृंखला के अन्तर्गत संचालित कई घटक तत्व स्वयं जहाँ में तन्त्र की शुरुआत हो रही है उस पर यह निर्भर करेगा की उससे जुड़े हुए तत्वों को वह कितना आगे तक ले जा पाता है। यदि रेल का इंजन मार्ग में ही रुक जाएगा तो वह स्वयं के साथ यात्रियों को व स्टेशनों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए तंत्र के मुख्य घटक को अपनी स्थिति का सही अंदाजा होना चाहिए।

(द) मिश्रित श्रृंखला

ऊपर तंत्र की संरचना के दो घटकों का जिक्र किया गया है जो सभी एक श्रृंखला के रूप में संचालित होकर एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध को सरल मिश्रित अन्तर्सम्बन्ध भी कह सकते हैं जिसमें सभी तत्वों के सम्मिलित सहयोग व प्रभाव से ही तंत्र का संचालन किया जा सकता है।

घटक तत्व व उनके मध्य अन्तर्सम्बन्ध के अतिरिक्त तंत्र का आचरण अर्थात् उसकी कार्यप्रणाली भी महत्वपूर्ण है। तंत्र की कार्य प्रणाली, प्रवाह, प्रेरणा, अनुक्रिया, निविश उत्पाद आदि की ओर इंगित करती है। इसी के अन्तर्गत तंत्र की आन्तरिक व बाह्य कार्यप्रणाली तथा उसका पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अर्थ तंत्र में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं की अंतिम मांग तथा उसके आधार पर निर्मित विभिन्न वस्तुओं की मांग— पूर्ति का चार्ट इसका उत्कृष्ट उदाहरण है यदि अर्थतन्त्र की आन्तरिक दशाओं पर ध्यान दिया जाए तो विभिन्न वस्तुओं के निवेश—उत्पाद श्रृंखला को उनके तकनीकी गुणांक के आधार पर निर्मित किया जा सकता है जैसे अर्थ तंत्र में 100 मिलियन टन इस्पात की अंतिम खपत है और एक टन इस्पात निर्माण के लिए कितना कोयला, कच्चा लोहा, मैंगनीज, चूना लगता है। यह गुणांक है तो इन सबको अलग-अलग मांग ज्ञात की जा सकती है। इन सब वस्तुओं को इकट्ठा करने की परिवहन गुणांक भी ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थतन्त्र का प्रेरक—अनुक्रिया प्रारूप में चार्ट तैयार किया जा सकता है। इसके साथ यह भी देखा जा सकता है कि देश में समय के साथ जनसंख्या में कितनी वृद्धि होती है और बढ़ती जनसंख्या में वृद्धि मांग में वृद्धि करती है। जिसे प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तंत्र की आन्तरिक क्रियाशीलता तथा बाल पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन तंत्र के आचरण के अंतर्गत आता है। तंत्र अध्ययन की एक ऐसी विद्या है जिसे किसी भी पहलू पर खबर देखा जा सकता है।

16.3.2. क्षेत्र की सीमाएं

तंत्र की भी सीमाएं होती हैं। जैसे किसी भी समाज विज्ञान के विषय की सीमाएं होती हैं उसी प्रकार

तंत्र की कार्यशीलता का विवेचन तभी सम्भव है जब उसकी सीमाएं सुस्पष्ट हो। यदि तंत्र सुपरिभाषित हो और उसके घटक तत्व सर्वथा विलग हो तो उसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकती हैं। किसी भौगोलिक प्रदेश अपना कितनी सामाजिक समुदाय अथवा पारिस्थितिकी इकाई का भी विवेचन तन्त्र परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत विवेक द्वारा तंत्र को परिसीमित करना पड़ता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सीमाएं किसी तथ्यात्मक आधार का अनुसरण नहीं करती हैं अथवा वास्तविक दशाओं की अनदेखी करती हैं। इसका अर्थ मात्र इतना है कि 'तन्त्र का परिसीमन, उद्देश्य के अनुरूप किया जाता है। तंत्र तक उद्देश्य को लेकर शुरू होता है। जहां उद्देश्य पूर्ण हो जाता वहाँ यह को पूर्ण हो जाता है।

16.3.3. तन्त्रका पर्यावरण

तंत्र के पर्यावरण के अन्तर्गत उसके उच्च स्तरीय तंत्र एवं उसके ऐसे घटकतत्व समाहित होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव अध्ययन के दौरान तंत्र के आचरण पर पड़ता है। ऐसे सभी तथ्य जो जिनका तन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा जो सार्थक नहीं होते हैं तन्त्र के पर्यावरण में शामिल नहीं किए जाते हैं जैसे एक औद्योगिक तंत्र के पर्यावरण के लिए मिट्टी उस तन्त्र का अंग नहीं है। परन्तु देश की आयात-निर्यात नीति उसके व पर्यावरण का अंग है जैसे किसी राज्य स्तरीय राजनीतिक तन्त्र के लिए राष्ट्र स्तरीय राजनीति बाह्य पर्यावरण है कुछ स्थितियों में तंत्र के दो पर्यावरण भी हो सकते हैं जैसे वहां का कोई राजनीतिक दल की राष्ट्र के लिए राजनीतिक गतिविधियां व अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन। इस प्रकार तंत्र का अपना एक निश्चित पर्यावरण होता है जिसके अन्तर्गत तंत्र फलता-फूलता है विकसित होता है। अपना प्रसार करता है तथा अपने घटक तत्वों को इस पर्यावरण में जोड़े रखता है।

16.4. क्षेत्र के प्रकार

सामान्यतय तंत्र को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

(1) खुला तंत्र

(2) बन्द तन्त्र।

खुला तंत्र वह तंत्र होता है जिसमें तंत्र व उसके पर्यावरण से अन्तर्क्रिया का ध्यान रखा जाता है खुला तंत्र अधिक व्यापक होता है परन्तु विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त जटिल क्योंकि इसमें दृष्टि, घटक तत्वों के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध ही नहीं वरन् उनके व पर्यावरण के तत्वों से अन्तर्सम्बन्ध पर भी रहता है। इसके विपरीत बन्द तंत्र में तंत्र के घटक तत्वों में परस्पर अन्तर्क्रिया तक ही ध्यान सीमित रहता है। तंत्र के वर्गीकरण के कई अन्य आधार भी हैं जिनमें तंत्र की दशा के अनुसार इसका वर्गीकरण होम्योस्टेटिक एडापटिव तथा गत्यात्मक आधार पर इसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है किसी तंत्र की दशा उसके उत्पाद का बोध कराती है अर्थात् किसी तंत्र से क्या प्राप्त होगा। तंत्र एक प्रकार विश्लेषण है जिससे कुछ-न-कुछ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है जैसे किसी नदी के अपवाह तंत्र को उस नदी के मुहाने पर कितना अवसाद जमा होगा। इस उत्पाद की मात्रा तन्त्र में विद्यमान परिवर्तनशील घटक तत्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। जैसे अपवाह तंत्र में जल की मात्रा, प्रवाहगति, वनस्पति आच्छादन मिट्टी की प्रकृति आदि ऐसे परिवर्तनशील घटक तत्व हैं। तन्त्र की दशा ऐसी सुपरिभाषित स्थिति या विशेषता की ओर इंगित करती है जो आसानी से पहचाना जा सके। इस प्रकार तंत्र किसी क्षेत्र में प्रकृति द्वारा विकसित संरचना का एक प्रारूप भी है। जो अपने आप में एक विशिष्ट विशेषता रखता है। इस विशिष्ट संरचना के आधार पर इसे पहचाना जा सकता है।

16.4.1. होम्योस्टेटिकतंत्र

होम्योस्टेटिक तंत्र उसे कहते हैं जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहें या किसी झटके से अपने पर्यावरण में होने वाले आकस्मिक परिवर्तन को झेलकर यथाशीघ्र अपनी स्थिति या समस्थिति प्राप्त कर ले। जैसे किसी अपवाह तंत्र में अचानक बाढ़ आ जाने पर जलप्लावन की स्थिति बन जाती है बाढ़ के हट जाने पर नदी का जल पुनः अपनी यथास्थिति या अपने बाद से पहले के बहाव क्षेत्र में आ जाता है। कुछ तन्त्रों में यह समस्थिति उनमें विद्यमान ऋणात्मक पशुप्रभाव प्रक्रिया से प्राप्त होती है ऐसी स्थिति में पर्यावरणीय प्रभाव जितना विध्वंसक होगा उनका ऋणात्मक प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा। यदि किसी पारिस्थितिक तंत्र में समस्त उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर वनों को कहा जाता है तो ऐसी स्थिति में

बाढ़ एवं मृदा अपरदन का प्रभाव बढ़ जाता। आस-पास की भूमि पर से 20 प्रतिशत उत्पादन का स्तर घट जाएगा, ईंधन के लिए लकड़ी की कमी हो जाएगी। पुनः वापस इस समस्या से निजात पाने के लिए वृक्षारोपण किया जाएगा। और इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र पुनः समस्थिति में आयेगा इस प्रकार के ऋणात्मक पश्च प्रभाव सभी प्राणी एवं मानव हेतु अति महत्वपूर्ण है। कभी-कभी प्रकृति स्वयं अपने स्तर पर भी होम्योस्टेटिक तंत्र का विकास करती है जब प्रकृति अपनी समस्थिति को वापस प्राप्त कर लेती है। जैसे अतीत में भूगर्भिक हलचल के फलस्वरूप वृहद स्तर पर वनावरण भूमिगत हो गये तथा वहां कुछ भी नहीं बचा। इसके बाद कालक्रम अनुसार वहां पुनः वनों का आवरण स्वतः ही विकसित हो गया और उसी जलवायु के अनुरूप वहां जैव विविधता देखने को मिलती है

16.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव

यह तंत्र होम्योस्टेटिक की भांति ही होते हैं परन्तु उनमें एक खास विशेषता यह होती है कि इसमें किसी खास उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में चयन की गुंजाइश होती है। इसलिए इसे लक्ष्य परक या सौद्देश्यवादी तंत्र भी कहते हैं। इनमें कुछ ऐसे परिवर्तनशील घटक-तत्व होते हैं जो तंत्र के आन्तरिक परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होते हैं वरन् पर्यावरण अथवा किसी अन्य तलों के उत्पाद से प्रभावित होते हैं। ऐसे बाह्य पर्यावरण से प्राप्त मे निवेश- ईकाई को तन्त्र का मापदण्ड कहते हैं। इसमें पश्चय प्रभाव से भी मापदण्ड प्रभावित होते हैं। दो क्षेत्रों के मध्य अन्तर्क्रिया का स्तर उनके मध्यस्थ दूरी से प्रभावित होता है जैसे किसी कारखाने में श्रमिक एक निश्चित दूरी से काम करने के लिए आते हैं। यदि कारखाने की अवस्थिति बदल जाए और कारखाने व श्रमिकों के आवास की दूरी बढ़ जाए तो भी कारखाने क्रियाशीलता पर असर नहीं पड़ेगा क्योंकि कारखाना श्रमिकों की जरूरत है ऐसी स्थिति में श्रमिक काम पर पहुँच जाएंगे और बढ़ी हुई दूरी के अनुसार अपना अनुकूलन स्थापित कर लेंगे।

16.4.3. गत्यात्मक तंत्र

इस तंत्र में पश्चप्रभाव तन्त्र की दशा में सतत व निश्चित दिशा में परिवर्तन करता आया है। चक्रीय आर्थिक विकास युक्त तंत्र इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। नियमित तन्त्र में तन्त्र की निवेश इकाईयों पर किसी संचालक का कुछ हद तक नियंत्रण रहता है। नियोजित अर्थतन्त्र इनके उदाहरण हैं, जिनमें राजस्व कर अथवा आयात निर्यात को नियन्त्रित करके अर्थतंत्र का आचरण इच्छित दिशा में मोड़ दिया जाता है। परन्तु किसी भी तंत्र पर संचालक-नियोजक का आंशिक नियंत्रण ही हो पाता है पूर्ण नहीं।

16.5. भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

तंत्र विश्लेषण का सम्बन्ध कार्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किया जाता है। सन 1972 में पी. ई. जेम्स ने इस पर कहा है तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से अंतर्सम्बन्धित हैं अतः यह समग्रता में ही कार्यरत रहता है। पीटर टैगेट ने इस पर कहा है कि तंत्र विभिन्न वस्तुओं या अवयवों का एक ऐसा समुच्चय है जो समग्रता में एकरूप होकर कार्य करता है। भौगोलिक विश्लेषणों में स्थिति, दूरी, विस्तार, स्वरूप पारिस्थितिकी, मानव कार्यकलाप तथा जनसंख्या का विवरण एवं धनत्व सदृश्य तत्व मिलकर ही तंत्र का सृजन करते हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि भौगोलिक तंत्र से अभिप्राय ऐसे कर्मोपलक्षी तत्वों को है जिसमें स्थानिक विशिष्टताओं का समावेश हो।

शोले के विचार में भौगोलिक तंत्र उस प्राकृतिक व जैविक वातावरण से निर्मित होते हैं जिनका नियंत्रणकर्ता मनुष्य है अर्थात् भौगोलिक तंत्र में मनुष्यों की प्रमुखता रहती है।

अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण आधुनिक भूगोल का मूल भाव है अतः तंत्र विश्लेषण की उपयोगिता भी भूगोल में अधिक है। सजग तंत्र विश्लेषण का समावेश भूगोल में भूवैज्ञानिक संगठन के प्रतिरूप विश्लेषण के दौर में हुआ। डार्विन के युग में डार्विन को प्रभावित भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में नवीन विचारों का समावेश किया। जैसे रेटजेल का राजनीतिक भूगोल, डेविस का अपरदन चक्र जिसमें कोई भी भू-आकार युवा, प्रौढ़ व वृद्धावस्था से गुजरता है। इन सब में तंत्र की संकल्पना क्रियाशील थी। प्रादेशिक अध्ययन में प्रदेश को तन्त्र का ही समानार्थक माना गया है। इसी तरह पारिस्थितिक उपागम में प्राकृतिक जैविक तत्वों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह था जिसमें तंत्र संकल्पना का समावेश हो जाता था। अब पुनः पर्यावरणीय कारकवाद की दृष्टि

से भूगोल को पारिस्थितिकी तन्त्र के रूप में समझा जाने लगा है। टान्सले के विचारों से प्रेरित होकर भूगोल में पारिस्थितिकी तंत्र को आधारभूत महत्व प्रदान किया गया है। यह एकात्मक है जिसमें पर्यावरण, मनुष्य, पौधे एवं जन्तु जगत सभी एक ही परिधि में समाहित हो जाते हैं इसमें घटक तत्वों के मध्य अन्तर्क्रिया का विश्लेषण करना सम्भव हो जाता है। पारिस्थितिक तंत्र संरचनात्मक होता है, जिसमें एक व्यवस्था मिलती है जिसका तर्कसंगत अध्ययन किया जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र क्रियाशील भी होता है, इसमें अनवरत ऊर्जा एवं पदार्थ का निवेश एवं उत्पाद होता है। एक बार पारिस्थितिकी तंत्र की सीमा सुनिश्चित कर लेने पर इसके अन्तर्गत घटक तत्वों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध एवं अंतर्क्रिया का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है अन्त में पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य तंत्र का ही एक खंड होता है। इसमें सामान्य तंत्र की विशेषताएं पाई जाती हैं। इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र है जिसमें ऊर्जा गतिक नियमों के अनुसार समस्थिति की ओर अग्रसर रहता है। इन सब तथ्यों उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूगोल में तंत्र संकल्पना के व्यावहारिक उपयोग की असीम सम्भावनाएँ हैं जिसे पारिस्थितिकी तंत्र के निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

पारिस्थितिकी तंत्र

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग टान्सले ने 1935 ई० में किया था जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र सभी अवयव, जैव-अजैव जीव मण्डल तथा निवास्य क्षेत्र परम्पर अंतर्प्रक्रिया द्वारा आबद्ध रहते हैं। तथा एक सुविकसित पारिस्थितिक तंत्र में लगभग संतुलन की स्थिति मिलती है। यह एक कार्यशील परस्पर प्रक्रियात्मक तंत्र है, जिसके अंतर्गत एक या अधिक जैव तत्व तथा उनका प्रभावकारी निवास्य समाहित है। इसके विवेचन में क्षेत्रीय सम्बन्धों, प्राकृतिक स्वरूपों का लेखा- जोखा इसमें निवास करने वाले प्राणी का विशिष्ट स्थान, ऊर्जा एवं पदार्थ का मूल भण्डार एवं आयात-निर्यात तथा इसकी कार्यशीलता पर ध्यान दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी तंत्र एकसूत्रबद्ध, संरचनात्मक एवं कार्यशील होता है। वातावरण तंत्र के जैव तथा अजैव घटकों में ऊर्जा का शोषण, प्रत्यावर्तन, भण्डारण तथा निष्पादन समाहित है जब तक मनुष्य कोई विघ्न उपस्थित नहीं करता वातावरण तंत्र स्वनियामक होता है, पारिस्थितिकी अनुवेश-क्रमानुसार इसका विकास स्थाई संतुलन की ओर अग्रसर होता है। स्थायित्व की दशा में प्रति इकाई उपलब्ध ऊर्जा प्रवाह की दृष्टि से अधिकतम जैविक प्रेज का पोषण होता है। स्थायी संतुलन का तात्पर्य वातावरण तन्त्र में ऊर्जा के अवशोषण एवं निर्गमन में संतुलन नहीं रह जाता। जैसे किसी जीव की संख्या एक पारिस्थितिक तंत्र में इसलिए बनी रहती है कि उसे मारकर खाने वाले जीव भक्षकजीव तथा भक्ष्य जीव की संख्या में संतुलन बना रहे।

किसी मानव निर्बाधित वातावरण में संतुलन स्थापित करने में जैविक तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है। वास्तविक जगत में वातावरण तन्त्र तीन कारकों द्वारा संचालित होता है। जो निम्न हैं—

- 1) पौधों एवं प्राणियों के माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह तंत्र के लिए संचालन शक्ति प्रदान करना है।
- 2) रासायनिक तत्वों की जटिल व्यवस्था एवं पुनर्व्यवस्था के माध्यम से पदार्थों का निर्माण तथा नियमन।
- 3) विविध प्रकार के जैविक तत्वों या वातावरण तथा जनांकिकीय अंकुशों से समायोजन।

इस प्रकार वातावरण तंत्र एक मुक्ततंत्र है जिसमें एक मण्डल से दूसरे मण्डल में ऊर्जा का प्रवाह होता है ऊर्जा प्रवाह कई चक्रों के माध्यम से संचालित होता है। इन सभी चक्रों को सम्मिलित रूप से जैव-भू-रासायनिक चक्र कहते हैं। इनमें प्रकाशसंश्लेषण, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, फास्फोरस चक्र, सल्फर चक्र व जलचक्र आदि समाहित हैं। तंत्र विश्लेषण के अन्तर्गत भूगोल में मानव- पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध, मात्र एक विशेष प्रकार के कार्य-कारण सम्बन्ध का विवेचन न होकर एक अध्ययन तल हो गया है। इसी कारण अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप को भौगोलिक अध्ययन का मूलधार मानने वाले वैज्ञानिकतावादी भूगोलवेत्ता भी विश्वव्यापी पारिस्थितिक क्षेत्र को जिसका मानव अभिन्न एवं प्रमुख अंग है। भूगोल का अध्ययन तत्व मानने लगे। 1937 ई. में बेरी ने भूगोल की भावी दिशा का निर्देश करते हुए पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रिया के विश्व विश्लेषण को इसका उद्देश्य बताया।

इसके अन्तर्गत प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के परस्पर प्रभाव की निम्न प्रक्रियाओं का निरूपण किया।

- i. प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की अन्तःप्रक्रिया का सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्रों पर पड़ता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र प्राणियों तथा उनके सम्पर्क में आने वाली प्रभावकारी वातावरण का समुच्चय होता है। जिसमें विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ पाई जाती हैं।
- ii. यह पारिस्थितिकी तंत्र अपनी अवस्थिति एवं स्थिति परक विशेषताओं द्वारा लोगों के अपनी जैविक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कार्यक्षमता को प्रभावित करता है साथ ही लोगों के अपने वातावरण से प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप भी इसी से निर्धारित होता है।
- iii. पर्यावरण के प्रत्यक्षीकरण तथा उनमें परिवर्तन लाने की क्षमता एवं तत्परता का प्रभाव वातावरण नियोजन तथा अवस्थितिगत नियोजन सम्बन्धी निर्णयों पर पड़ता है।
- iv. पर्यावरण तथा अवस्थितिगत नियोजन की रूप-रेखा के संदर्भ में ही विभिन्न प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों का निराकरण तथा ठोस कार्य की रूपरेखा निर्धारित होती है
- v. उक्त नियोजन की रूप-रेखा के अनुसार लोगों का क्षेत्रपरक आचार-व्यवहार होता है।
- vi. क्षेत्रपरक आचार-व्यवहार से क्षेत्रपरक प्रक्रियाएं उत्पन्न होती हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र की विद्यमान दशाएं बनाए रखती हैं तथा तंत्र को विकसित करने या तन्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाली हो सकती हैं।
- vii. इसका पुनः प्रभाव प्राकृतिक व सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर पड़ता है और इस प्रकार सम्पूर्ण श्रृंखला में एक पुनःप्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र की परिसीमा में मानव पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध का स्वरूप गत्यात्मक है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव पर्यावरण तंत्र एक विशेष प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध नहीं अपितु एक अध्ययन तत्त्व बन जाता है। मानव समुदाय मण्डल, जीव मण्डल विशेष प्रकार की भाँति मानव को वातावरण संश्लिष्ट का अंग बनाता है। जिसका विकास विभिन्न प्रकार के तत्त्वों के परस्पर प्रभाव से होता है। मानव द्वारा प्रकृति का मानवीकरण होता गया और प्राकृतिक वातावरण सामाजिक विकास का माध्यम बनता गया। समाज पर इस प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

- i. वह खण्ड जो सामाजिक गतिविधि को असम्पृक्त है और इसलिए उसका विकास प्राकृतिक, रासायनिक तथा जैविक नियमों के अनुसार हो रहा है।
- ii. वह खण्ड जिसके प्रादेशिक संश्लिष्ट पर अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव पड़ा है उसका विकास ऊपर बताये नियमों के अनुसार हुआ है।
- iii. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक संश्लिष्ट पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव परिलक्षित होते हैं इसलिए वे सामाजिक-भौगोलिक वातावरण अंग हैं।
- iv. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक संश्लिष्ट उत्पादन से प्रत्यक्ष तथा प्रभावित है अतः इनमें प्राकृतिक प्रक्रियायें सशक्त सामाजिक क्रियाओं के अंतर्गत कार्यशील हैं। इसमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक, जैविक तथा प्राकृतिक रासायनिक नियमों की अन्तःप्रक्रिया अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

ये सब बिन्दु इस बात पर सहमति बनाते हैं कि मानव व पर्यावरण के बीच परस्पर अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं। सभी प्राणी अपने लिए एक जैव पोषक सह अस्तित्वशील वातावरण का निर्माण करते हैं राम प्रकार पारिस्थितिक तंत्र, भूगोल में तंत्र विश्लेषण की स्पष्ट झलक पस्तुत करता है।

16.6. सारांश

तंत्र विश्लेषण विषयों के जटिल पहलूओं को समझने और उन्हें व्याख्यित करने का एक तरीका है, अध्ययन की विद्या है, जो लगभग सभी विषयों में अपनी पहुँच रखता है। भूगोल में तंत्र विश्लेषण का समावेश है। जो अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों वाले पहलूओं पर अपनी छाप छोड़ता पारिस्थितिक तंत्र एक अन्तर्क्रियात्मक विषय है जिसमें मानव व पर्यावरण को अलग-अलग पहलूओं के माध्यम से समझा जा सकता है। मानव समाज

एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें न सिर्फ उत्पादन प्रक्रिया अपितु जैविक इकाई के रूप में जीवीकोपार्जन के कार्यों की भूमिका रहती है। इस अर्थ में भूगोल में समाज मात्र एक सामाजिक तत्व ही नहीं बल्कि जैव सामाजिक तत्व होता है इसलिए भूगोल के सभी तत्वों के अतिरिक्त मानव समुदाय पृथ्वी के भू रासायनिक संतुलन में एक निश्चित आयतन का जैवपुंज तथा पृथ्वीतल के जैव व अजैव पदार्थों का जो जल एवं वायुमण्डल में भी प्राप्त होता है, विशाल मात्रा में उपयोग करने वाला भी है। इनके अतिरिक्त वह प्रकृति में कार्बन तथा अपने अन्य अवशिष्ट पदार्थों की आपूर्ति करने वाला जीव भी है। इस प्रकार मानव समुदाय का जैविक तत्व भी सामाजिक विकास को पर्याप्त प्रभावित करता है। मनुष्य की भोजन, उष्मा, सन्ततिवृद्धि, जीवन पोषण तथा जीवन यापन के लिए जो आवश्यकताएं वो कई प्रकार की मूलभूत सामाजिक प्रक्रियाओं को जन्म देती है। इन्हीं के कारण वह श्रम करने को प्रवृत्त होता है तथा समुदाय में संगठित होता है। भूगोल उस विद्यमान भौतिक तन्त्र का अध्ययन करता है जो पृथ्वी के भौगोलिक मण्डल का निर्माण करता है। यह भौगोलिक, मण्डल मानव समाज के वास्तविक अथवा सम्भाव्य विकास का पर्यावरण प्रस्तुत करता है।

16.7. पारिभाषिक शब्दावली

- **तन्त्र** — तंत्र विशिष्ट गुण धर्मों युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।
- **होम्योस्टेटिक तंत्र**—जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहे होम्योस्टेटिक तंत्र कहलाता है।
- **एडाप्टिव अनुकूलन तंत्र**— इसमें किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में से चयन की गुंजाइश होती है।
- **भूगोल में तंत्र विश्लेषण** —तंत्र विश्लेषण कार्यात्मक दृष्टिकोण से जुड़ा है, जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने में किया जाता है।
- **पारिस्थितिक तंत्र**— पारिस्थितिक तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग ए.जी टान्सले ने सन 1995 में किया जिसमें उन्होंने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र के सभी अवयव, जैव-अजैव, जीवमण्डल तथा निवान्य क्षेत्र परस्पर अन्तर्प्रक्रिया द्वारा आबद्ध रहते हैं।

16.8 बोध प्रश्न

16.8.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न— 1. तंत्र की संकल्पना क्या है उदाहरण सहित समझाइए।

प्रश्न—2. तंत्र कितने प्रकार का होता है। इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4. पारिस्थितिकी तंत्र क्या उदाहरण सहित समझाइए ।

16.8.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न—1 क्षेत्र को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न—2 गत्यात्मक तंत्र क्या है?

प्रश्न—3 होम्योस्टेटिक तंत्र क्या है?

प्रश्न—4 एडाप्टिव तंत्र क्या है?

प्रश्न—5 पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित कीजिए ।

16.8.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. पारिस्थितिकी क्षेत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग किसने किया था।

- | | |
|-------------|------------|
| (क) टान्सले | (ख) डेविस |
| (ग) डार्विन | (घ) रेटजेल |

प्रश्न 2. सामान्यतया तंत्र को कितने प्रकार का बताया गया है?

- | | |
|-------|-------|
| (क) 3 | (ख) 2 |
| (ग) 4 | (घ) 5 |

प्रश्न 3. तंत्र विश्लेषण किस दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है।

- | | |
|---------------------------|--------------------------|
| (क) कार्यात्मक दृष्टिकोण | (ख) मात्रात्मक दृष्टिकोण |
| (ग) व्यवहारवादी दृष्टिकोण | (घ) सामाजिक दृष्टिकोण |

उत्तरमाला— 1.(क), 2. (ख), 3 (क)

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.